1891

शताब्दी स्मारिका

1991

खोलता हूँ
यादों की गठरी को
तुम्हारे लिये
इसमें से निकलेंगी
घटनाएँ, तिथियाँ, और
पुरखों की छायाएँ।
सम्वत् 1948, ज्येष्ठ मास, तिथि ?
ठीक-ठीक कहूँ तो
10 जून-1891 को
एक सुखद सम्भावना के रूप में
अकस्मात हो नहीं हो गया था
मेरा जन्म।
घटनाओं के होने के पहले का,
विस्तार
समझना उसी तरह जरूरी है
जिस तरह प्रत्येक नए पाठ में
पुराने का दोहराया जाना
लाजिमी तौर पर शामिल होता है।
इसीलिए, प्रारम्भ के भी आरम्भ से
प्रारम्भ करता हूँ
अपनी कहानी।

होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

शताब्दी - स्मारिका

प्रधान सम्पादक
- **प्रो. महेश दुबे**
  गणित एवं सांख्यिकी विभाग

सम्पादन सहयोग
- **डॉ. कु. माणिक सांवरे**
  अंग्रेजी विभाग
- **डॉ. भोलेश्वर दुबे**
  वानस्पतिकी विभाग
- **डॉ. नरेन्द्र जोशी**
  भौमिकी विभाग

परामर्श
- **गोवर्धनलाल ओझा**
  अध्यक्ष - 'ओहा'
- **डॉ. दयाशंकर जोशी**
  उपाध्यक्ष - 'ओहा'
- **प्रो. प्रभाकर काले**
  प्राचार्य

ओल्ड होलकेरियन्स एसोसिएशन (ओहा) के पदाधिकारी

अध्यक्ष	- गोवर्धनलाल ओझा (सेवा-निवृत्त न्यायाधीश-सर्वोच्च न्यायालय)
उपाध्यक्ष	- डॉ. दयाशंकर जोशी
सचिव	- दीपक खरे
कार्यकारी - सचिव	- डॉ. महेशचन्द्र दुबे
संयुक्त सचिव	- महेन्द्र हार्डिया
कार्य समिति के सदस्य	- सतीश कंसल, प्रो. बालकृष्ण निलोसे, प्रो. प्रभाकर काले, प्रो. पी.डी. शर्मा, डॉ. पी.टी. मालशे, प्रो. श्रीमती एस. ढोबले, नरेन्द्र गोरे.

'ओहा' और प्राचार्य, होलकर विज्ञान महाविद्यालय द्वारा प्रकाशित

उप-राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र
VICE-PRESIDENT
REPUBLIC OF INDIA

दिनांक 24 अक्तूबर, 1991

संदेश

हमारे महाविद्यालयों को जहाँ एक ओर युवाओं की संचित ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में गतिशील करने का काम करना है, वहीं दूसरी ओर उनमें नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के तत्व भी भरने हैं । तभी कहीं जाकर शिक्षा का उद्देश्य पूरा हो सकेगा और विद्यार्थी सच्चे अर्थों में स्नातक कहलाने योग्य बन सकेंगे ।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि होलकर विज्ञान महाविद्यालय ने इस वर्ष अपने शैक्षणिक जीवन के सौ वर्ष पूरे किये हैं । आशा है कि यह महाविद्यालय हमारे देश को निरंतर योग्य स्नातक देता रहेगा ।

मैं आपके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ ।

शंकर दयाल शर्मा
(डॉ. शंकर दयाल शर्मा)

मंत्री
मानव संसाधन विकास
भारत
MINISTER
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इंदौर अपने अस्तित्व के 100 वर्ष पूर्ण कर है। किसी महाविद्यालय के लिए के 100 वर्ष की यात्रा अपने आप में एक अत्यंत सराहनीय है। ज्ञान के क्षेत्र में इस महाविद्यालय ने जो प्रतिभाएं देश और प्रदेश को प्रदान की है, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। विज्ञान वास्तव में सच्चाई और यथार्थ की खोज का एक मंच है। मैं आशा करता हूं कि इस दिशा में महाविद्यालय निरंतर कार्यरत रहेगा। मैं समस्त समारोह की सफलता हेतु अपनी शुभकामनाएं प्रस्तुत करता हूं।

(अर्जुन सिंह)

प्रभाकर काले,
होलकर विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर452001

सुन्दरलाल पटवा
मुख्य मंत्री

मध्यप्रदेश शासन
भोपाल, 462004

दिनांक 15 अक्टूबर 1991

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर अपनी स्थापना के सौ वर्ष पूरे करने के उपलक्ष्य में एक स्मारिका का प्रकाशन करने जा रहा है ।

मुझे विश्वास है कि स्मारिका संस्था के गौरवशाली शैक्षणिक इतिहास की रोचक झलक प्रस्तुत करेगी ।

स्मारिका के प्रकाशन की सफलता के लिए शुभकामनाएं ।

(सुन्दरलाल पटवा)
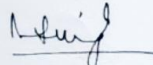
उच्च शिक्षा संचालनालय, म.प्र.
सतपुड़ा भवन, पांचवीं मंजिल, भोपाल
भोपाल 462 004
दिनांक 23.5.92

मोती सिंह,
उच्च शिक्षा आयुक्त

संदेश

हर्ष का विषय है कि शासकीय (आदर्श) स्वशासी होलकर विज्ञान महाविद्यालय ने गौरवपूर्ण उपलब्धियों के साथ सौ वर्ष पूर्ण कर लिये हैं तथा इस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है. संस्था की अनवरत विकास यात्रा में सहभागी हुए सम्पूर्ण महाविद्यालय परिवार के प्रति मैं हार्दिक शुभाशंसा व्यक्त करता हूँ.

ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं सहित उच्च शिक्षा के समग्र क्षेत्र में निःसंदेह हमने अभूतपूर्व प्रगति की है, परंतु, बौद्धिक ऊँचाईयों को अधिगत करने के बावजूद, समाज में निर्भीकता, सत्य, विनय, अहिंसा, प्रेम आदि मानव जीवन के चिरन्तन एवं उदात्त मूल्यों का क्रमिक ह्रास परिलक्षित हो रहा है. शिक्षा की वास्तविक सार्थकता इन जीवन मूल्यों को आत्मसात कराना तथा इनका सतत संवर्धन एवं परिरक्षण करना भी है. मैं कामना करता हूँ कि निकट भविष्य में यह संस्था बौद्धिक प्रगति के साथ ही उदात्त मानवीय गुणों के विकास में भी नित नये कीर्तिमान स्थापित करते हुए शिक्षा जगत में अपनी अनूठी पहचान बनायेगी.

(मोती सिंह) 23.5.92

प्राचार्य की ओर से -

शताब्दी वर्षों में अपनी मातृ-संस्था होलकर विज्ञान महाविद्यालय में प्राचार्य के रूप में कार्य करने का जो अवसर मुझे मिला, यह मेरे जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है. महाविद्यालय के विकास में मेरे पूर्ववर्ती प्राचार्यों के निरंतर प्रयासों एवं शताब्दी सम्बंधी प्रारंभिक कार्यों की ठोस पृष्ठभूमि मुझे विरासत में मिली. यह मेरा सौभाग्य था. मैंने उसी दिशा में चलते हुए, अपने सहकर्मियों एवं होलकर कॉलेज के वृहत् परिवार के सदस्यों के सहयोग से, इन कार्यक्रमों को मूर्त रूप देने का प्रयास किया है.

होलकर कॉलेज की अपनी एक विशेष पहचान है. इसकी उपलब्धियों ने हम सबको गौरवान्वित किया है. शैक्षणिक गुणवत्ता के इसी क्रम में आदर्श एवं स्वशासी योजनाओं की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए, महाविद्यालय परिवार पूर्व स्थापित परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रति दृढ़-संकल्पित है. विज्ञान के क्षेत्र में नवाचार एवं राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे व्यापक शैक्षणिक परिवर्तनों के मुख्य प्रवाह से अपने को जोड़ते हुए इस महाविद्यालय ने भी अपने पाठ्यक्रमों को विस्तार देकर, स्नातक स्तर पर इलेक्ट्रानिक्स एवं सूक्ष्म जैविकी विषय प्रारंभ किये हैं, साथ ही आगामी सत्र से कम्प्यूटर विज्ञान और औषधीय रसायन के नये पाठ्यक्रम प्रारंभ किया जाना प्रस्तावित है. विज्ञान शिक्षण की प्रविधियों में निरंतर विकास के लिये भी हम प्रयत्नशील हैं. आम आदमी तक वैज्ञानिक जानकारियाँ पहुँचाने तथा शालेय स्तर पर विज्ञान के शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाने के कार्यक्रमों में भी महाविद्यालय परिवार के प्राध्यापकों की सक्रिय सहभागिता रही है. इन परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में एक नयी कार्य-संस्कृति के प्रति हमारा आग्रह आने वाले वर्षों में निश्चित ही एक ठोस स्वरूप ले सकेगा - ऐसा मेरा विश्वास है.

इस शताब्दी स्मारिका में, होलकर कॉलेज के प्रारंभ से लेकर आज तक का विवरण; ऐतिहासिक संदर्भों एवं संस्मरणों के माध्यम से, उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है. आप इसमें अनेक दुर्लभ चित्र भी पायेंगे, जिन्हें दूर-दूर के अनेक स्थानों से प्राप्त किया गया है. कॉलेज की पुरानी पत्रिकाओं से ली गयी सामग्री पूर्व विद्यार्थियों की स्मृतियों को ताजा कर सकेगी. मेरा विश्वास है कि यह स्मारिका एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में महत्वपूर्ण होगी. बिखरे हुए सूत्रों को ढूँढकर जोड़ने के इस अथक प्रयास के लिए - सम्पादकों को मेरे साधुवाद!

स्मारिका को यह स्वरूप देने में महाविद्यालय से जुड़े आत्मीय स्वजनों व अन्य सुहृद सज्जनों से प्राप्त प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग के लिए, मैं उन सबके प्रति महाविद्यालय परिवार की ओर से आभार व्यक्त करता हूँ. एक लम्बे अंतराल के बाद आप सब महाविद्यालय

से पुनः जुड़े हैं. मैं चाहूँगा कि सम्पर्कों की यह निरंतरता बनी रहे. आप अपनी रुचि एवं सामर्थ्य के अनुसार महाविद्यालय से सम्पर्क रखते हुए, इसकी गतिविधियों से सतत जुड़े रह सकते हैं. आप अपने आर्थिक स्त्रोतो द्वारा -

* अंतर्राष्ट्रीय स्तर की विशिष्ट शोध पत्रिकाओं की सदस्यता का ५ से १० वर्ष की अवधि के लिये प्रायोजन कर सकते हैं.

* महाविद्यालय की भौतिक सुविधाओं के विस्तार के अंतर्गत प्रस्तावित सभाकक्ष के निर्माण में सहयोग दे सकते हैं.

* प्रयोगशालाओं को आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित करने में योगदान दे सकते हैं.

* उद्योगों से महाविद्यालय के शैक्षणिक पाठ्यक्रमों को जोड़ने की दिशा में अवसर दे सकते हैं.

परम्पराएँ और संस्कार इसी प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं. हम सभी का यह संवाद, अपनत्व और लगाव ही इस महाविद्यालय का संबल है. यही इस शतायु संस्था की जिजीविषा है.

- प्रो. प्रभाकर काले

अनुक्रमणिका

***

आरम्भ

☐ प्रो. महेश दुबे

इतिहास में इन्दौर का उल्लेख मुगलकाल के फरमानों में स्पष्ट रूप से मिलता है. कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह उन कुछ स्थानों में से एक है - जहाँ आगरे से भागते हुए शिवाजी ने विश्राम किया था. 18 वीं शताब्दी में (1733) इस क्षेत्र को पेशवा द्वारा मल्हार राव होलकर को प्रदान किया गया और यहीं से होलकर वंश का और इन्दौर रियासत का इतिहास विधिवत प्रारंभ होता है. मराठा दरबार में होलकरों की प्रतिष्ठा लड़ाकू योद्धाओं के रूप में थी. इन्दौर के आस-पास अपनी सीमाओं का विस्तार कर होलकरों ने इस रियासत को सुव्यवस्थित और समृद्ध इलाके के रूप में विकसित किया. 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय श्रीमंत महाराजा तुकोजीराव होलकर - द्वितीय (1835 -1886) इन्दौर की गद्दी पर थे. वे एक अत्यंत कुशल प्रशासक थे. उनका व्यक्तित्व भव्य और आकर्षक था. जहाँ एक ओर वे संस्कारों से परम्परावादी थे वहीं हृदय से उदार और सुधारवादी भी थे. वे सरल और निराभिमानी थे. वेदान्त और भगवद्गीता पर वे साधिकार विवेचना करते थे और नियमित रूप से विद्वानों से चर्चा करते थे. वे एक अत्यंत प्रभावी वक्ता थे. केशवचन्द्र सेन, जस्टिस रानाडे और दादा भाई नोरोजी जैसे सुधारकों से उनकी निकटता के कारण उनके व्यक्तित्व में सुधारवादी प्रखरता थी. उनके समय में इन्दौर की व्यापारिक समृद्धि और सामाजिक संस्कारों ने, इस शहर के लिये नयी प्रतिष्ठा और गौरव अर्जित किया. यदि इन्दौर की सात्विक छवि का श्रेय अहिल्या बाई होलकर को है तो विकसित होते हुए समृद्ध इन्दौर की पहचान का श्रेय तुकोजीराव होलकर द्वितीय को है. मराठी के एक कवि ने उनके बारे में ठीक ही लिखा था -

जेणें इन्द्रपुरी सुर नगरी सम करून दाखविली।
सत्वालनें प्रजांना माय अहिल्या हि आठवूंन दिली॥

1857 के स्वतंत्रता संग्राम के समय यद्यपि प्रगट रूप से वे अंग्रेजों के मित्र बने रहे परंतु उन्होंने गुप्त रूप से देश भक्तों को अपना समर्थन दिया और अप्रत्यक्ष रूप से उनकी सहायता भी की.

धर्म शास्त्र और दर्शन के साथ-साथ शिक्षा में उनकी विशेष रुचि थी. उन्हीं की स्मृति में उनके पुत्र महाराजा शिवाजीराव होलकर ने 10, जून 1891 को होलकर कॉलेज (वर्तमान में होलकर विज्ञान महाविद्यालय) की स्थापना की.

महाराजा तुकोजीराव होलकर - द्वितीय

महाराजा शिवाजीराव होलकर

कॉलेज की योजना को प्रस्तावित करते हुए कहा गया -

For the better encouragement of liberal education in Central India, there shall be established at Indore, a College to be styled "The Holkar College".

जिन विषयों के साथ कॉलेज प्रारंभ हुआ, वे थे - (1) अंग्रेजी साहित्य (2) संस्कृत (3) फारसी (4) तर्क शास्त्र (5) इतिहास (6) राजनीति शास्त्र - Political Economy (7) गणित (8) विज्ञान

[illegible]

राव बहादुर रावजी जनार्दन भिड़े

होलकर कॉलेज की स्थापना की योजना को तैयार करने में राव बहादुर रावजी जनार्दन भिड़े के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता. उनका जन्म 10, जून 1862 को पूना के निकट एक छोटे से गाँव में अपने नाना के घर पर हुआ था. यद्यपि उनके पूर्वज पेशवा के दरबार से संबंधित थे परन्तु बाद के वर्षों में विपन्नावस्था में भिड़े परिवार को आजीविका के लिये, इनाम में मिली जमीन से होने वाली आय पर ही निर्भर रहना पड़ता था.

उनकी शिक्षा पूना के फ्री चर्च मिशन स्कूल और डेक्कन कॉलेज में हुई. स्कॉलरशिप, छात्रवृत्ति और ट्यूशन करके उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की. 1885 में उन्होंने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और विश्वविद्यालय में गणित में सर्वप्रथम आने पर Daxina Fellowship प्राप्त की. इसके अंतर्गत वे दो वर्षों के लिये डेक्कन कॉलेज के फैलो रहे. यहीं उनका परिचय श्री काशीनाथ कीर्तने से हुआ - जिनके पिताश्री विनायक कीर्तने, महाराजा शिवाजीराव होलकर के ट्यूटर थे और राज्य के शिक्षा अधीक्षक के पद पर कार्य कर रहे थे. काशीनाथ जी की अनुशंसा पर और श्री भिड़े की योग्यता से प्रभावित होकर विनायक कीर्तने ने रावजी को इन्दौर के शिक्षा अधीक्षक के पद के लिये आमंत्रित किया. और इस प्रकार 1888 में इन्दौर से सेन्ट्रल इंडिया की रियासतों के सेवा काल का उनका लम्बा सफर शुरू हुआ. इन्दौर में अपने दस वर्षों के सेवा काल में श्री भिड़े ने शिक्षा अधीक्षक, कोषालय अधिकारी, महालेखापाल और रेसीडेंसी वकील के पदों पर सफलता पूर्वक कार्य किया. बाद के वर्षों में उन्होंने 1899 से 1902 तक जूनियर देवास, 1902 से 1908 तक देवास सीनियर और 1908 से 1929 तक ग्वालियर रियासतों में कार्य किया. सेवानिवृत्ति के बाद वे बम्बई में स्थायी रूप से बस गये, जहाँ 82 वर्ष की आयु में 1947 में उनकी मृत्यु हुई.

विज्ञान के साथ साहित्य में उनकी रुचि थी. अपनी नियमित दिनचर्या और समय की पाबंदी के प्रति वे सतर्क थे. अपने दैनिक जीवन में वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे, परंतु रूढ़िवादी नहीं थे. सही अर्थों में वे एक उदार शिक्षाविद् थे.

1890 में इन्दौर में कॉलेज को प्रारंभ करने संबंधी योजना और उसका वित्तीय आकलन तैयार करने के लिये महाराजा शिवाजीराव होलकर का निर्देश उन्हें मिला. विनायक जनार्दन कीर्तने उस समय रियासत के कारभारी थे. उनके मत में यह समय कॉलेज प्रारंभ करने के लिये उपयुक्त नहीं था, क्योंकि उस समय तक इन्दौर से मैट्रिक की परीक्षा में बहुत कम संख्या में विद्यार्थी सम्मिलित होते थे. लगभग इन्हीं वर्षों में ग्वालियर में विक्टोरिया कॉलेज और उज्जैन में माधव कॉलेज प्रारंभ किये जाने वाले थे. इसलिये जनरल बाल मुकुंद दुबे का विचार था कि इन्दौर जैसी प्रगतिशील रियासत को इस मामले में पीछे नहीं रहना चाहिये अपितु इस दिशा में पहल करना चाहिये.

रावजी जनार्दन भिड़े ने विष्णुपंत गुरूजी की सहायता से और मद्रास तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयों के विवरणों (Calenders) से आवश्यक संदर्भ जुटा कर अतिशीघ्र ही पूरी योजना तैयार कर प्रस्तुत की. परंतु कारभारी श्री कीर्तने की असहमति से इसे लागू करने में विलंब हुआ. जून 1891 में कीर्तने के स्थान पर जब श्री बेदरकर, कारभारी बने तभी यह योजना साकार रूप ले सकी. प्रारंभिक माहों में - जून से नवम्बर तक कॉलेज को व्यवस्थित नेतृत्व देने का दायित्व भी श्री भिड़े को सौंपा गया था.

इस प्रकार रावजी जनार्दन भिड़े की सक्रिय रुचि और परिश्रम से कॉलेज की स्थापना संभव हो सकी. उनके इस प्रारंभिक प्रयास ने आज एक विशाल ज्ञान-गंगा का रूप ले लिया है जिससे स्नातकों की कई पीढ़ियाँ अनुप्राणित हुई हैं. शताब्दी के अवसर पर उनके कृतित्व का पावन स्मरण करते हुए हम उन्हें अपने सादर प्रणाम अर्पित करते हैं.

स्वर्गीय रावजी भिड़े के संबंध में उपरोक्त विवरण उनके पुत्र श्री ई.आर. भिड़े द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर तैयार किया गया है. हम उनके आभारी हैं. सहयोग के लिये श्रीमती सुहासिनी चिटले के प्रति भी आभार.

1891 में जिन प्राध्यापकों की नियुक्ति की गयी, वे थे - संस्कृत के श्री पी.एन. पाटणकर, श्री रामानुजाचार्य और श्री हरिशास्त्री भट्ट, फारसी तथा तर्क शास्त्र के श्री अजीज़ुर रहमान और विज्ञान के श्री भैरवप्रसाद.

10, जून 1891 को कॉलेज का आरंभ करते हुए रावबहादुर के.सी. बेदरकर (रियासत के मंत्री) ने कहा था -

> *"I am directed by H.H. the Maharaja Holkar to appear before you this evening personally to announce His Highness's order for the opening of a new college at Indore and to declare it open from this day. I am extremely grateful to H.H. the Maharaja for thus being allowed to take the chief part in a ceremony which is to usher into existence an important institution calculated to encourage the study of literature and science in this part of the country. This day will long be remembered as making a new epoch in the 'History of Educational Progress' in this state. There is perhaps no department of the state on which His Highness and his government bestow so much care and look forward with so much hope as the Educational Department. Hitherto the State has maintained an efficient high school with much benefit to the state, the public service and the public at large. This new college is an onward step in furtherance of the same object. The alumni of the school are already occupying high posts in the state service. The tradition established by the school will now be perpetuated in this college by its students coming to fill similar offices of trust in this State and elsewhere in future".*

श्री पाटणकर, डॉ. भण्डारकर के योग्य शिष्य थे. श्री रामानुजाचार्य न्याय, अलंकार और वेदांत के प्रसिद्ध विद्वान थे और श्री हरिशास्त्री की ख्याति एक व्याकरणाचार्य के रूप में थी. श्री भैरव प्रसाद श्रीवास्तव - बरेली से आये थे. कॉलेज में वे विज्ञान और गणित पढ़ाते थे. श्री अजीज़ुर रहमान की प्रारंभिक शिक्षा इन्दौर में ही हुई थी. उन्होंने म्यूर सेंट्रल कॉलेज, इलाहाबाद, कलकत्ता विश्वविद्यालय से दर्शन शास्त्र में एम.ए. किया था. श्री बेदरकर ने अपने उद्घाटन - भाषण में श्री अज़ीज़ुर रहमान के बारे में कहा था - "He is very energetic and can not fail to be of much use in the college. I particularly commend him for his energy. He belongs, be it remembered, to that class which is known as backward in point of education, I mean the Mohomedans. All the more honour, therefore to him to have risen to the top of the ladder in education and thus to have set an example to his caste fellows."

श्री अज़ीज़ुर रहमान (1865 - 1945) का सम्बंध इन्दौर के एक प्रतिष्ठित युसुफजई पठान परिवार से था. यह परिवार अफगानिस्तान के स्वात बुनेर के प्रसिद्ध संत अखून बाबा की वंश - परम्परा में था और इन्दौर में इनके पूर्वजों का सम्बंध नवाब गफूर खान से था - जो मल्हारराव होलकर के पगड़ी बदल भाई कहलाते थे. श्री अज़ीज़ुर रहमान के पिता का नाम अब्दुल रहमान था और वे रायसेन के नाजिम थे. अज़ीज़ुर रहमान इन्दौर मदरसे के विद्यार्थी थे, जहाँ लेले मास्टर ने उन्हें पढ़ाया था. उनके दोनों भाई भी उच्च शिक्षा प्राप्त थे और बार.एट.लॉ थे. श्री अज़ीज़ुर रहमान टेनिस और बिलियर्ड के अच्छे खिलाड़ी थे. उर्दू और फारसी के साथ अंग्रेजी साहित्य में भी उनकी रुचि थी. ओलिवर गोल्ड स्मिथ और शेक्सपियर उनके प्रिय लेखक थे. वे शेख सादी की गुलिस्तां बोस्ता तथा मौलाना रूम

श्री अजीज़ुर रहमान

की मसनवी को प्रायः पढ़ा करते थे. उनका पहला विवाह अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सैयद अहमद खान की साहिबजादी से हुआ था. पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने जावरा के प्रतिष्ठित परिवार की कन्या से विवाह किया. उनके 4 पुत्र और 2 पुत्रियाँ हैं. यह भी एक संयोग ही है कि प्रो. सागिर अली के अवकाश लेने के बाद उनके एक पुत्र महबूब रहमान भी इसी कॉलेज में फारसी के प्राध्यापक नियुक्त हुए.

कॉलेज में लगभग तीन वर्षों तक कार्य करने के बाद श्री अज़ीज़ुर रहमान पुलिस सेवा में चले गये और डिप्टी इंसपेक्टर जनरल (डी.आय.जी.) नियुक्त हुए. वे विधि स्नातक और बार-एट.लॉ. भी थे. '30 के दशक में होलकर स्टेट की लेजिस्लेटिव कमेटी के अध्यक्ष के रूप में भी उन्होंने सफलतापूर्वक कार्य किया. उन्हें 'वफ़ादार-ए-दौलत' की उपाधि से सम्मानित किया गया था.

यह विवरण श्री अजीज़ुर रहमान के सुपुत्र श्री शफीकुर रहमान एम.ए. (Philosophy) के सौजन्य से प्राप्त जानकारी के आधार पर तैयार किया गया है. श्री शफीकुर रहमान गफूर खां की बजरिया स्थित अपने पुश्तैनी मकान में अभी भी रहते हैं. श्री अजीज़ुर रहमान का चित्र हमें उन्हीं से प्राप्त हुआ है, उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ.

प्रो. परशुराम नारायण उर्फ अण्णा साहेब पाटणकर - का जन्म 4, सितम्बर 1860 को महाराष्ट्र की मुलावाजिल तहसील के सासवन गाँव में हुआ था. उनकी पारिवारिक जानकारी, उनके स्वयं के शब्दों में -

'भाव-स-एवैष आधुनिक : कवि : भीमातटे संनिवेशत कुल विस्तारस्य रत्नागिरि वास्तव्य नरहरि भट्ट प्रपोत्रस्य माधवशर्मण: पौत्रस्य नारायणशर्मण आत्मज : परशुरामशर्मास्मत्सुहृद'.
- वीर धर्म दर्पण

उनके पिता नारायणराव गीत, वादन, चित्रकला, शारीरिक व्यायाम और काष्ठ शिल्प कला में निपुण थे. उनकी प्रारंभिक शिक्षा शोलापुर में हुई. उन्होंने पूना के डेकन कॉलेज से 1880 में बी.ए. की उपाधि प्राप्त की. वे पूना की डेकन ऐजूकेशन सोसायटी से सम्बद्ध थे. लोकमान्य तिलक से उनकी आत्मीय मित्रता थी. रावजी जनार्दन भिड़े की सलाह पर वे 1891 में होलकर कॉलेज में संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में आये. तिलक से अपनी मित्रता के कारण, ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट की अप्रसन्नता के फलस्वरूप महाराजा शिवाजीराव होलकर की इच्छानुसार उन्होंने 1898 में त्याग-पत्र दे दिया. कॉलेज के प्राचार्य श्री चमले ने, उनके बारे में 1898 - 99 की अपनी वार्षिक रपट में लिखा था -

'Prof. Patankar, who since the foundation of the college in 1891 had filled the chair of Sanskrit with eminent success, left us in December last. The thoroughness of Mr. Patankar's teaching is ample evidence by the number of students who have taken honours in Sanskrit during the last 7 years and his devotion to the work was in itself an object lesson to his students.'

5 वर्षों तक उज्जैन के माधव कॉलेज में कार्य करने के उपरांत, महामना मदनमोहन मालवीय के अनुरोध पर वे बनारस गये - जहाँ 1903 से 1911 तक उन्होंने सेंट्रल हिन्दू कॉलेज में अध्यापन कार्य किया. पारिवारिक कारणों से वे मालवा लौट आये. यहाँ 1912 से 1920 तक देवास में अध्यापन कार्य किया. सेवा-निवृत्ति के बाद वे इन्दौर आ गये. श्रद्धेय मालवीय जी के साथ आदरणीय डॉ. भगवानदास भी उनके निकटवर्ती मित्रों में से थे. इन लोगों के आग्रह पर वे 1925 में पुन: बनारस

प्रो. परशुराम नारायण उर्फ अण्णा साहेब पाटणकर

गये. वे विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक और धर्म प्रवचनकार नियुक्त किये गये. एक वर्ष उपरांत ही उन्हें पक्षाघात हो गया. रुग्णावस्था में इन्दौर लाये गये. यहाँ 4 दिसम्बर 1930 को उनका निधन हुआ.

अण्णा साहेब पाटणकर एक सौम्य और शालीन व्यक्ति थे. वे गम्भीर, तेजस्वी और मितभाषी थे. श्री सेतुमाधव राव पगड़ी ने उनका स्मरण करते हुए लिखा है :

'परशुराम नारायण उर्फ अण्णा साहेब पाटणकर यांना उपमा द्यावयाची तर प्राचीन कालच्या ऋषिमहर्षींची द्यावी लागेल'.
- जीवन-सेतु

वे निस्पृह और साधु प्रवृत्ति के थे. मूलत: वे शिक्षक थे. अध्ययन और अध्यापन ही उनका व्यसन था - 'अध्यापकवृत्त्या विविधान्देशानधिवसन्'. उनका जीवन अत्यंत सरल था. वे संस्कृत के अधिकारी विद्वान के रूप में आदर के साथ जाने जाते थे. हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू पर भी उनका समान अधिकार था. उनका अध्ययन और लेखन सतत् चलता रहता था. जयद्रथ - वध पर आधारित - 'वीर धर्म दर्पण' नामक उनकी नाट्य - कृति प्रसिद्ध थी. संस्कृत में लिखे अपने इस नाटक में उन्होंने स्थान-स्थान पर संवादों और गेय-पदों में प्राकृत का भी उपयोग किया था. स्यमंतक मणि की कथा पर आधारित संगीत-नाटक भी उन्होंने मराठी में लिखा था. उन्होंने कालिदास के रघुवंश और अभिज्ञान शाकुन्तलम्, दण्डी के काव्यादर्श, माघ के शिशुपाल वध और भारवि के किरातार्जुनीयम् के अंशों का अंग्रेजी अनुवाद व्याख्या सहित किया था. मराठी शब्दों की व्युत्पत्ती पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी. 1918 में Hinduism and Hindu Sainthood in the light of comparative theology पर उन्होंने Eternal Religion शीर्षक से एक प्रसिद्ध कृति की रचना की थी. उनके अन्य ग्रंथों में - स्तोत्र पदंश संग्रह, व्रतोद्वार गाथा और मल्लारिराज प्रशस्ति हैं. अपने जीवन के कुछ अनुभवों पर आत्मकथात्मक रूप में लिखी हुई उनकी एक कृति अभी भी अप्रकाशित है. उन्होंने व्याकरण संबंधी अनेक लेख लिखे थे. बनारस में वे धर्म संगति नाम का संस्कृत पाक्षिक-पत्र भी निकालते थे.

1926 में ही बनारस में उन्होंने सेतुमाधव राव पगड़ी को प्रारंभिक आश्रय दिया था. श्री पगड़ी उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए, लिखते हैं -

'श्री पाटणकरजी के कारण मेरे जीवन में अक्षरश: क्रांति आई. यदि बनारस में मुझे प्रो. पाटणकरजी का आश्रय न मिलता तो प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण मेरा जीवन तिनके के समान अस्त-व्यस्त हो जाता. उन्हीं के कारण मेरे पैर जमीन पर स्थिर हुए, आपत्तियों से लड़ने का धैर्य प्राप्त हुआ और संस्कृत तथा मराठी साहित्य के प्रति मेरी रुचि विकसित हुई. ईश्वर की कृपा से ही मुझे उनका आशीर्वाद मिला. मैं उनकी स्मृति को कोटिश: प्रणाम करता हूँ'.

संदर्भ एवं आभार -

(1) वीर धर्म दर्पण - परशुराम नारायण पाटणकर, काशी 1907
(2) जीवन - सेतु - सेतुमाधव राव पगड़ी, पूना 1967
(3) श्री पगड़ी का दिनांक 11 जुलाई 1991 का पत्र
(4) स्व. प्रो. पाटणकर के पुत्र डॉ. कृष्ण पाटणकर का दिनांक 4 अगस्त 1991 का पत्र
(5) वीर धर्म दर्पण नाटकस्य समीक्षात्मकं अध्ययनम् -सुरेश ठाकुर द्वारा लिखित लघु शोध प्रबंध - 1984

कॉलेज के लिये एक सुयोग्य प्राचार्य के चयन का दायित्व केप्टन फ्रेक्स को सौंपा गया - जो अवकाश पर इंग्लेण्ड गये हुए थे. उन्होंने एक अभिजात्य परिवार के सुशिक्षित सदस्य की अनुशंसा की - और इस प्रकार श्री. ई. सी. चमले. बी.ए. बार-एट. लॉ कॉलेज के प्रथम नियमित प्राचार्य नियुक्त किये गये. वे नवम्बर - 1891 को इस पद पर आये.

श्री चमले के आने से राव बहादुर श्री भिड़े का महाविद्यालय से सम्बंध लगभग समाप्त हो गया. उनके स्थान पर 1891 में गणित के प्राध्यापक के रूप में आये आर.एस. आठवले. 1892 में श्री भैरव प्रसाद के स्थान पर विज्ञान के प्राध्यापक नियुक्त हुए **पी.आर. भण्डारकर.** वे सर आर.जी. भण्डारकर के पुत्र थे. उन्होंने बम्बई के ग्रांट मेडिकल कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी और कुछ समय तक वहाँ रासायनिक विश्लेषक के रूप में कार्य किया था. उन्होंने लगभग 6 वर्ष तक कॉलेज में कार्य किया. इन प्रारंभिक वर्षों में महाविद्यालय में विज्ञान की शैक्षणिक परम्पराओं के निर्माण में उनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता. बाद के वर्षों
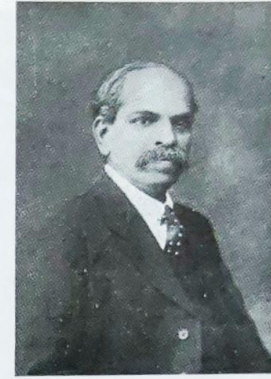
डॉ.पी.आर. भण्डारकर

में वे इन्दौर के किंग एडवर्ड अस्पताल से सम्बद्ध रहे. उन्होंने तुकोजीराव अस्पताल में सिविल सर्जन के रूप में कार्य कर - प्रतिष्ठा और ख्याति अर्जित की. वे रियासत के गृह-मंत्री भी थे. उन्होंने महाराजा यशवंतराव को शिक्षा देने के महत्वपूर्ण दायित्वों का भी सफलता पूर्वक निर्वाह किया. उन्हें दीवान-ए-खास तथा राव बहादुर की उपाधियाँ भी मिली थीं. कॉलेज के भवन के लिये - शहर से दूर, नौलखे के सुरम्य वन-प्रान्तर के निकट सुन्दर प्राकृतिक परिवेश में - जगह चुनी गयी. श्री चमले के शब्दों में - खुले वातावरण में इस विस्तृत स्थान के चयन की पृष्ठभूमि और सोच स्पष्ट होती है - "The site selected is a wide open space abutting upon the Mhow Road, where the students will have every opportunity, by indulging in many excercises, to cultivate the 'Corpus Sanum' which is the indispensable preliminary to the enjoyment of a 'Mens Sana'."

(1) प्रो. भण्डारकर के सम्बंध में उपरोक्त विवरण तथा उनका चित्र उनकी पौत्री श्रीमती सुमति बागची के सौजन्य से प्राप्त हुआ है.

1894 में एक लाख पाँच हजार रुपये की लागत से कॉलेज का मुख्य भवन, बिल्डिंग सुपर वाइजर श्री रामचन्द्र मुल्ये की देख रेख में, बनकर तैयार हुआ.

इन तीन वर्षों में कॉलेज की छात्र-संख्या 14 से बढ़कर 52 हो गयी थी. कॉलेज के प्रथम स्नातक होने का श्रेय है वाय.जी. आप्टे को जिन्होंने 1894 में प्रथम श्रेणी में विज्ञान में ऑनर्स के साथ बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रावीण्य सूची में 5 वाँ स्थान प्राप्त किया. उनके सहपाठी आर.बी. दुबे ने 1898 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय का जुबली पदक विज्ञान में प्राप्त किया.

शनिवार - 17 मार्च 1894 को कॉलेज के नवनिर्मित भवन का शुभारंभ हुआ. कॉलेज तब कैसा लगता था? श्री चमले के शब्दों में -

"The buildings comprise a handsome main structure fronting on the Mhow Road, containing a Library, a Laboratory, a recreation room, an accounts office and five large lecture rooms, flanked on either side by boarding houses for upwards of forty students. In the rear of these are cooking houses and servent's quarters, the whole forming three sides of a quadrangle, in the centre of which are tennis - courts."

कॉलेज के पुस्तकालय में आयोजित एक भव्य समारोह में, नगर के प्रतिष्ठित एवं गणमान्य नागरिकों की उपस्थिति में गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि क्रास्थवेट ने कॉलेज भवन का उद्घाटन किया. श्री क्रास्थवेट ने इस अवसर पर अपने सम्बोधन में कहा -

The Maharaja Holkar has done me the honour of asking me to open this college which he has erected for the benefit of his subjects and I have gladly undertaken the task. There is at present a laudable desire on the part of the people of this country for the acqisition of knowledge and to satisfy this desire His Highness has with his usual liberality established this college and provided the funds necessary for maintaining it. Not that Indore was unprovided with the means of education, for there was large school in the city maintained at the expense of the state and I remember when I first came to Central India in 1891, that I was much struck with the number of boys who attended the school, the large staff of masters, and the popularity and efficiency of the institution. The Maharaja Holkar wished, however, to make still further provision for the education of his people by founding a college in which they could carry on their studies beyond the standard of a school and could obtain university degrees. No time has been lost in carrying out this proposal. In the first place a Principal had to be appointed to superintend the college and control and direct the course of study. For this important office the Maharaja selected. Mr. Cholmondeley, and I must heartily congratulate His Highness on the wisdom of this

श्री. ई. सी. चमले, कॉलेज के प्रथम नियमित प्राचार्य 1891 - 1910 **Mr. E.C. Cholmondeley,** First Principal of the College

selection and on his good fortune in finding a gentleman so admirably qualified in every respect to superintend the establishment of the college and to guide its early progress. Already there are 50 students in the college and the number will, I have no doubt, increase. Having thus secured an efficient principal, and started the students on their educational career, the next thing was to provide them with a building in which they could pursue their studies. This building has now been completed and we have met today to declare it open. For his liberality in endowing the college, and in erecting this fine building, in which we are now assembled, the people of the Indore State and all those who complete their education here (for the college is open to the subjects of all the states) should be most grateful to His Highness the Maharaja Holkar. His Highness has desired that this college should be called the Tukoji Rao Holkar College in memory of his father the late Maharaja and with best wishes for its future prosperity I declare the college open."

इस अवसर पर बोलते हुए श्री बेदरकर ने स्त्री-शिक्षा के व्यापक महत्व को रेखांकित करते हुए कहा -

"What has been done in the cause of the male education forcibly reminds me of what has not been done in the cause of female education. I am painfully aware of the backward state of female education in this part of the country and of its great importance in the cause of progress and advancement. No educational system can be complete without the necessary complement of adequate instructions for females.

The greatest impediment to progress and rational enjoyment of life, is, in my humble opinion, want of enlightenment amongst our ladies, and until that want is adequately supplied the education of males must remain a half measure. Man and woman together form a harmonious whole and it will never do to nourish the one and neglect the other."

उन्होंने कॉलेज के विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा -

I exhort you, therefore, most urnestly that you set before your mental vision a high aim to achieve. Let it be such as suits your mental capacity, your physical energies, your other resources; but let it be as high as possible. Strive to achieve it, in and out of college. Do not be blinded by worldly successes. Do not go in for cramming with the sole object of passing your examination. Look upon your success at examination as a means to an end - an end high and noble. Be thorough and thoughtful in everything that you attempt to do. Slur over nothing. Avoid doing anything slovenly or hurriedly. Let not the apparent difficulty of a problem daunt you. Go at it with resolution and calmness. Enter deep and go to the bottom of it. Drink deep at the inexhaustible fountain of learning and strive to be pundits in the best sense of the term, and not quibbling pedants. If you do so, your success will be as certain as the rising of the sun tomorrow morning."

अपनी पहली वार्षिक रपट में प्राचार्य चमले ने लिखा था -

"I am confident that the interest taken in their work by the several professors must bear good fruit, and when experience has been gained as to the best method of training to suit to the requirements of the university. I have no doubt that the college will be able to claim its due proportion of success."

श्री बेदरकर और श्री चमले - दोनों के ही विश्वासों को साकार किया - कॉलेज के प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों ने. अपने प्रारंभिक वर्षों के परिश्रम के साथ यह कॉलेज सफलता के कीर्तिमान अर्जित कर शीघ्र ही सारे देश में सम्मान के साथ जाना जाने लगा.

1891 में ही **श्री आर.एस. आठवले** गणित के प्राध्यापक नियुक्त होकर कॉलेज में आये. उनकी शिक्षा पूना के Elphinstone college में हुई थी और वे Prof. Hawthornwaiter के विद्यार्थी थे. अपनी प्रखर गणितीय प्रतिभा के साथ-साथ, अपने विशद ज्ञान और भारतीय ज्योतिष सम्बंधी अपने असाधारण अधिकार के लिये वे प्रसिद्ध थे. 1909 में उनकी एक संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित और गवेषणापूर्ण पुस्तक 'श्रौत भूमि' प्रकाशित हुई थी. इसकी प्रस्तावना में, उन्होंने लिखा था -

"The following pages are intended as a kind of supplement to the Arctic Home*, as there in an attempt has been made to determine, with as much precision as is attainable in such abstruse inquiries, the locus of the earliest Aryan Civilisation."

15 जनवरी - 1910 को प्रो. आठवले की मृत्यु हुई.

प्रो. पाटणकर के स्थान पर 1899 में **सीताराम दिनकर घाटे** की नियुक्ति संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में हुई. उनके पूर्वज कोंकण के मुटाट गाँव के निवासी थे. उनकी प्रारंभिक शिक्षा पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल में हुई थी. उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम आकर संस्कृत के लिये जगन्नाथ शंकर शेठ छात्रवृत्ति प्राप्त की थी. डेकन कॉलेज - पूना से उन्होंने सम्मान सहित बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की और झाला वेदांत पुरस्कार प्राप्त किया. संस्कृत के विद्वान और कुशल शिक्षक के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक थी. उनके विद्यार्थी आज भी उन्हें अत्यंत आदर और श्रद्धा से याद करते हैं. उनकी विद्वता के लिये होलकर राज्य ने उन्हें 'पंडित-रत्न' की उपाधि से सम्मानित किया था. स्व. विनायक सरवटे ने, जिन्हें इस कॉलेज में प्रो. घाटे का प्रथम विद्यार्थी कहा जा सकता है; उनका स्मरण करते हुए लिखा है :

''सर्वात उपयोगी व कंटाळवाणे न होणारे लेक्चर होते संस्कृत के प्रो. घाटे यांचे. मी कालेजांत गेलो त्याच वर्षी त्यांची प्रोफेसर म्हणून नेमणूक झाली. त्यांनी मला उत्तररामचरित शिकविले. 'अपिग्रीवा रोदत्यपि दलति वज्रस्य ह्रदयम' ही भवभूतिची प्रतिज्ञा. आमची ह्रदयें मेणाची नसली तरी मऊ होती. वर्गात मी एकच विद्यार्थी होतो. तरीही प्रोफेसर व विद्यार्थी दोघंच्याही डोळ्यांतून अश्रुंच्या धारा वाहू लागत. विषय इतका रंगत असे की तास केव्हां संपला ते कळत नसे.''

- माझा जीवन प्रवाह

** लोकमान्य तिलक की प्रसिद्ध पुस्तक - Arctic Home of the Vedas.*

प्रो. सीताराम घाटे

अपने 25 वर्ष के कार्यकाल में उन्होंने छात्रों की कई पीढ़ियों को अनुप्राणित किया. परम्परागत पोशाक में - बडी बंडी, चूडीदार पायजामा और 'पुणेरी' पगडी पहने - प्रो. घाटे का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक था. वे सरल और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे. अपने दैनिक जीवन में वे भगवान दत्त के उपासक थे और उन्होंने दत्ताष्टक तथा दत्तभक्त कृतियों की रचना की थी. संस्कृत न जानने वाले या कम जानने वालों को इस भाषा के सौन्दर्य और साहित्य से परिचित कराने के लिये भी उन्होंने कुछ पुस्तकों की रचना की थी. उन्होंने महाराजा तुकोजीराव - तृतीय और बालासाहब यशवंतराव होलकर को भी संस्कृत की शिक्षा दी थी.

अपनी चित्रोपम अध्यापन शैली, भावुक संप्रेषण और सूक्ष्म तथा हृदयग्राही अभिव्यक्ति के लिये वे प्रसिद्ध थे. अपने स्वरानुक्रम, लयात्मक व्याख्या, ललित शब्द-योजना और स्वर-माधुर्य से वे अपने विद्यार्थियों को कक्षा में सम्मोहित सा कर देते थे.

28 नवम्बर - 1925 को उनकी मृत्यु हुई. उनकी मृत्यु पर कॉलेज के तत्कालीन प्राचार्य एफ.जी. पियर्स ने लिखा था -

'Prof. Ghate's health had been failing for some time past, but with characteristic earnestness, he had stuck to his work in spite of considerable suffering and it was only a few weeks before his death that he finally decided to retire on a well - earned pension, which unhappily, he never lived to enjoy. He had been entitled to retire several years before, but no one including himself, desired to see him leave the chair he had so long adorned. Previous Principals and myself had year after year felt justified in asking the Government to permit his services to be continued, because everyone had confidence in his ability, inspite of his age. His sudden death came as a great blow to the college and especially to his colleagues and students in the Sanskrit Department. Our heartfelt sympathy goes out to the family he leaves behind.'

- College Annual Report 1925.

प्रो. सीताराम घाटे का चित्र और विवरण हमें उनके पुत्रों - वासुदेव और विनायक घाटे के सौजन्य से प्राप्त हुआ है. सहयोग के लिये हम श्री प्रभाकर घाटे के भी आभारी हैं

1904 में कॉलेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया गया. 1907 में होलकर कॉलेज के विद्यार्थी पहली बार इलाहाबाद विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठे. श्री चमले के प्रयत्नों से कॉलेज में बी.एससी. की कक्षाएँ प्रारंभ हुई और 1909 में कॉलेज के तीन छात्रों ने बी.एससी. की परीक्षा दी.

इन प्रारंभिक वर्षों में कॉलेज में छात्रों की कुल संख्या और परीक्षा परिणाम इस प्रकार थे -

वर्ष	कुल छात्र संख्या	वर्ष	बी.ए.		एफ.ए.	
			बैठे	उत्तीर्ण	बैठे	उत्तीर्ण
1891-92	14	-	-	-	-	-
1892-93	28	-	-	-	-	-
1893-94	52	-	-	-	-	-
1894-95	49	1895	03	02	10	10
1895-96	58	1896	10	02	16	12
1896-97	42	1897	11	04	14	08
1897-98	56	1898	07	05	08	06
1898-99	50	1899	08	01	19	11
1899-1900	68	1900	10	06	19	13
1900-01	65	1901	06	01	26	17
1901-02	71	1902	10	02	15	11
1902-03	73	1903	13	07	18	08
1903-04	58	1904	15	04	16	09
1904-05	51	1905	13	09	12	02
1905-06	53	1906	10	03	21	09
1906-07	62	1907	04	03	22	06
1907-08	79	1908	04	02	21	18
1908-09	83	1909	04	02	27	07

श्री चमले के सेवा-काल में ही प्रो. गोखले और प्रो. देसाई कॉलेज में नियुक्त हुए. 1910 में श्री चमले की सेवा निवृत्ति से कॉलेज के 19 वर्षों के एक अध्याय की समाप्ति हुई. यहाँ से वे इंग्लेण्ड चले गये. होलकर कॉलेज में उनकी रुचि बराबर रही. 1958 में उनकी मृत्यु हुई.

ग्रुप फोटो सोशल गेदरिंग, 1901

प्रो. आठवले के बाद दो वर्षों तक P.K. Wattel ने गणित के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया. भारत सरकार के लेखा विभाग में नियुक्ति मिलने के कारण वे यहाँ से चले गये. उनके स्थान पर आये प्रो. कार्नेलियस. 6 फुट से भी अधिक लम्बे **Prof. I.J. Cornelius** का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावी था. वे एक सैनिक अधिकारी के पुत्र थे और अनुशासन का पाठ उन्हें अपनी पारिवारिक शिक्षा में मिला था. उनका जन्म रायपुर (म.प्र.) में हुआ था. उनकी शिक्षा नागपुर में हुई. कुछ समय तक उन्होंने हरदा के मिशन स्कूल में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया. उसके बाद वे आगरा के सेंट जॉस कॉलेज में गणित के प्रोफेसर नियुक्त हुए. वहाँ से वे इन्दौर के केनेडियन मिशन कॉलेज (जिसे अब क्रिश्चियन कॉलेज कहा जाता है) में आये. होलकर कॉलेज में उन्होंने 1912 से 1934 तक कार्य किया. दबंग, मुँहफट और रौबीले - प्रो. कार्नेलियस सख्त अनुशासन प्रिय होने के साथ-साथ साहित्यानुरागी और प्रकृति प्रेमी भी थे. शेक्सपियर के नाटकों में उनकी विशेष रुचि थी. उन्हें पशु-पक्षियों को पालने का भी शौक था. अपने छात्रों में स्वयं अध्ययन करने की प्रवृत्ति विकसित करना, उनकी शिक्षण-पद्धति की प्रमुख विशेषता थी. वे कभी भी अपनी कक्षाओं में spoon feeding teaching नहीं करते थे. वे अपने विद्यार्थियों को स्वयं पढ़ने, समझने और प्रश्नों को हल करने के लिये प्रोत्साहित करते थे. अपने विद्यार्थियों में गणितीय अनुशासन और आत्म-विश्वास विकसित करने में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली. उनके नाम पर Cornelius Memorial Maths Prize स्थापित किया गया था. 1936 में यह पुरस्कार श्रीकृष्ण नारायण जोशी को और 1937 में गजानन रामचन्द्र लागू को प्राप्त हुआ था.

प्रो. कार्नेलियस के चित्र और प्रारंभिक जानकारी के लिये हम उनकी पौत्री कुमारी विनीता कार्नेलियस के आभारी हैं.

प्रो. आय.जे. कार्नेलियस

मेरे गुरू

बाबा कार्नीलियस

डॉ. वा.वि. भागवत

बी.एससी. कक्षाओं में हमें प्रो. कार्नीलियस -गणित पढ़ाते थे. उन्हें हम 'बाबा' कहते थे. उनसे हम पढ़े कम लेकिन सीखे बहुत. गणित पढ़ाया नहीं जाता, खुद करना पड़ता है, यह बात हमें उनकी कक्षाओं में मालूम हुई. हम लोगों के गणित के लगातार दो पीरियड्स होते थे. इन काल-खंडों में वे हमें, 'I have lost this world and I do not want to loose the next' कहकर कई विषयों पर व्याख्यान देते. फिर पादरी की कथा सुनाते. नैतिक-मूल्यों की व्याख्या में संयम रखना जिसका संदेश था. वो कहानी इस प्रकार थी. एक पादरी साहब खाना खाने के लिये बैठे. बावर्ची ने मुर्गी का शोरबा परोसा. पादरी ने पूछा - 'मुर्गी कहाँ से लाये?' बावर्ची बोला - 'पड़ोस की है.' पादरीजी अड़ गये कि वे चोरी का माल नहीं खायेंगे. बावर्ची ने कहा - 'साहब! हमने चोरी नहीं की, मुर्गी खुद चलकर हमारे आँगन में आई थी.' ऐसा क्या? पादरी ने कहा, फिर बोले - 'एक बड़ी बाल्टी में शोरबा लेकर ऊपर से उसे उल्टा करो. जो शोरबा स्वयं गिरेगा वही हम खायेंगे.' अर्थात् बाल्टी उल्टी करने से क्या शेष रहने वाला था? ऐसे किस्से सुनाने में दो पीरियड खत्म हो जाते और घंटी बजती. वे हड़बड़ा कर खड़े होते और कहते - 'क्या समय निकल जाता है?' अभी तो statics है, Dynamics है, Hydrostatics है. फिर कहते -Boys, Hydrostatics Chapter so and so 25 उदाहरण करना, Dynamics के इतने और statics के इतने प्रश्न करके लाना. तब तक दूसरी घंटी होती और हम सब निकल पड़ते. दूसरे दिन आते ही पूँछते - 'उदाहरण किये? नहीं तो दरवाजे पर खड़े हो जाओ.' उदाहरण करके ही हम लोगों को आना पड़ता. हमारे बर्वे को वे कभी-कभी कक्षा में बेंच पर खड़ा कर देते. यह कॉलेज में था.

समय के वे बहुत पाबंद थे. स्वयं कभी घंटी के बाद नहीं आये. देर से आने वालों को दरवाजे पर खड़े रहना पड़ता. वे कहते नियम याने नियम! नियम है न, प्रिंसपाल का, कि समय के बाद आने वाले छात्रों को क्लास के अंदर नहीं लेना. कोई बहाना उनके सामने नहीं चलता. फिर हमारे सिर तरफ देखते और कहते - 'ओ! टोपी कहाँ है? शर्ट के अन्दर! पानी से टोपी गीली हो जाती! Your cap is more valuable than your head.'

ऐसे गुरूजनों से पढ़कर गणित अच्छा क्यों नहीं होता? स्वयं पढ़ते. 80 प्रतिशत अंक बी.एससी. में आये! उनके अक्षर सुन्दर मोती समान थे. हमारी कठिनाई हल करते समय वे प्राय: बोलते नहीं थे. तीन बोर्ड थे. उन पर step by step उदाहरण हल करते. डॉ. देशपांडे वाइस प्रिंसपाल थे. ऊपर जहाँ कार्नीलियस क्लास लेते उसके नीचे केमिस्ट्री विभाग था. वे डॉ. देशपांडे को आवाज लगाते -शंकर! हे रजिस्टर ठेवतर' उनको संस्कृत और मराठी आती थी. उनकी आवाज सुनकर डॉ. देशपांडे आते और नम्रता से उनसे रजिस्टर लेकर रखते. यही वह शिक्षा थी जो हमें मिली अपने गुरूजनों का आदर करने की! हमारी भाषा में जो खुरदुरापन है वो हमने हमारे गुरूजनों से पाया है. 'बाबा' कार्नीलियस अपने तीक्ष्ण, कटाक्ष और व्यंग्यात्मक टिप्पणियों के लिये भी प्रसिद्ध थे. मुहम्मद अली कांग्रेस के नेता थे. लंदन में उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर कार्नीलियस जी ने तुरंत कहा - 'Thanks to the climatic condition of England that one 'Goonda' is dead!'

वे सच्चे पिता थे. बच्चों को खेल आदि दिखाने को स्वयं ले जाते. उनकी पढ़ाई पर भी सख्त नजर रखते. उनका सबसे बड़ा पुत्र (आई.सी.एस.) हुआ. उसने इंटर तक होलकर कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी. वो पाकिस्तान चला गया. वहाँ वो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश बना. यह गौरव था होलकर कॉलेज का और ऐसे थे मेरे गुरू बाबा कार्नीलियस.

लगभग इसी समय - 12 नवम्बर 1911 में होलकर कॉलेज और शिवाजीराव हाईस्कूल में अंग्रेजी पढ़ाने के लिये W.E. Kirby की नियुक्ति हुई. केम्ब्रिज से ट्रायपोस उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने पेरिस (फ्रांस) में अध्ययन किया था. यहाँ आने के पूर्व वे लॉरिटो (स्कॉटलेण्ड) में एक प्रतिष्ठित शिक्षण संस्था में कार्यरत थे. वे एक अद्भुत व्यक्ति थे. अपने मोहक और प्रभावी व्यक्तित्व, खिलाड़ी प्रवृत्ति, अनुशासनप्रियता तथा सैनिक रुचियों के कारण वे विद्यार्थियों में अत्यंत लोकप्रिय थे. प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान वे सेना में भर्ती हो गये. वे 15 वीं लुधियाना सिख कम्पनी से सम्बद्ध थे. वे 1915 में फ्रांस के मोर्चे पर लड़ते हुए मारे गये. अपने विद्यार्थियों में साहित्यिक रुचियों को विकसित करने में उनकी विशेष रुचि थी. एक लम्बे समय तक कॉलेज में उनकी अनुपस्थिति अनुभव की जाती रही. उनके विद्यार्थियों ने हमेशा ही अपनी स्मृतियों में उन्हें जीवित बनाये रखा.

''सहावी सातवीमध्ये एका इंग्रजाने मला इंग्रजी शिकविलें. त्याचें नांव कर्बी. मोठा उमदा तरूण होता तो. चालतांना पावलो पावलीं त्याचें पौरूष प्रतीत व्हायचें. डोळ्यांतून त्याचें भावुक जीवन टपकायचें. आमच्या बरोबर तो खूप फुटबॉल खेळायचा. आणि बंगल्यावर जाऊन शेली किंवा कीट्स मध्ये रंगून जायचा. त्याने नुकतेंच ऑक्सफर्ड सोडले होतें. शिकवितांना इंग्रजी ही आमची मातृभाषा नाही हें तो विसरून जायचा आणि आम्हीहि विसरायचो. कर्बीने माझा हात धरून मला इंग्रजी वांग्मयाच्या दालनांत नेलें. डिकन्स वाचायला लावला. थोडा थॅकरे वाचून घेतला.

कर्बीने माझ्याकडून शेक्सपिअरचीं एक-दोन नाटकें वाचून घेतली. मला फॉलस्टाफचा अभिनय शिकविला. माझ्या बरोबर गोल्डन ट्रेझरी वाचली.

कॉलेजमध्ये पहिल्या वर्षी कर्बीनेच इंग्रजी शिकविलें. इतक्यांत महायुद्ध, सुरू झाले. कर्बीने ताबडतोब नोकरी सोडली आणि फौजेंत नांव दिलें. फ्रांसला गेला आणि त्या रणयज्ञांत त्याची आहुति पडली. कर्बीच्या आठवणी फार गोड, फार स्फूर्तिदायक आहेत. स्वातंत्र्याचा लढा चालू असतां मला इंग्रजांवर रागावतां आले नाही याचें कारण कर्बी सारखी माझ्या जीवनांत डोकावून गेलेलीं कांही इंग्रज माणसे.''

- दिवस असे होते : विट्ठलराव घाटे

कॉलेज के स्नातक - एम.एच. संवत्सर और डी.बी. देवधर को 1911 में स्नातकोत्तर अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गयीं. इस प्रकार की छात्रवृत्ति पाने वाले ये पहले छात्र थे. श्री संवत्सर को मॉरिस कॉलेज नागपुर में संस्कृत और श्री देवधर की म्योर कॉलेज - इलाहाबाद में उच्चअध्ययन के लिये ये सहायता दी गयी थी. बाद में श्री देवधर ने कुछ समय तक कॉलेज में अध्यापन कार्य भी किया. 1911 में ही इलाहाबाद में पढ़ रहे कॉलेज के पूर्व छात्र हबीबुर रहमान ने - 'Advantages of British Rule in India' विषय पर उर्दू में लिखे अपने निबंध पर स्वर्ण-पदक और प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया.

1912 में कॉलेज के पूर्व विद्यार्थी मेजर आर.बी. दुबे ने महाराजा शिवाजीराव की स्मृति को चिर-स्थायी करने के लिये 'शिवाजीराव पदक' की घोषणा की. यह सम्मान कॉलेज के Best all Rounder को दिया जाता था. इस पदक को सर्वप्रथम प्राप्त करने का श्रेय है - स्व. विश्वनाथ गोपाल गोले को - जिन्होंने इसे 1913 में प्राप्त किया. यह भी एक संयोग है कि श्री गोले के पुत्र श्री एम.वी. गोले ने इस पदक को 1944 में प्राप्त किया. यह पदक प्राप्त करना अत्यंत गौरव का विषय था. यह प्रतिवर्ष नहीं दिया जाता था. कॉलेज के जीवन से यह 'पदक' कब और कैसे लुप्त हो गया, नहीं मालूम! इसे अर्जित करने वाले छात्रों की पूरी सूची भी आज उपलब्ध नहीं है, जो जानकारी मुझे मिली है, उसके अनुसार इसे प्राप्त करने वाले कुछ छात्रों के नाम इस प्रकार हैं :-

वर्ष	नाम
1913	विश्वनाथ गोपाल गोले
1918	नारायण गोविन्द खासगीवाले, मनमोहन दामोदर कीर्तने
1919	सोमकांत भाटे
1921	बलवंत साकल्ले
1933	एल.सी. गुप्ता
1942	कु. इन्दु पाटकर, दिवाकर आत्माराम
1943	भाटवडेकर
1944	एम.वी. गोले, पी.डी. शर्मा (1943-44)

कुमारी पाटकर इस पदक को प्राप्त करने वाली प्रथम (और शायद अंतिम) छात्रा थीं. छात्राओं को शिवाजीराव पदक दिये जाने के सम्बंध में - 07 फरवरी 1942 के 'The Holkar College Times' में कु. सुशीला तारे, प्रथम वर्ष (कला) का सम्पादक के नाम एक पत्र निम्नानुसार प्रकाशित हुआ था -

'The most coveted distinction for a student of Holkar College is the Shivajirao Medal for all-round proficiency. In former years a special board was hung up in the college hall with the names of all the previous winners recorded on it. Although it is no longer there, the Medal still continues to be equally coveted, and its winner decided after a careful scrutiny of all deserving claims. One thing however, ought to be considered in this connection in the light of changed conditions. The games qualifications laid down in the rules for the award of this medal practically exclude the lady students from being eligible. We have had (and still have) lady students who were very good in their studies, and who contributed substantially to the social and cultural life in the college, but as they were not "members of the first team in any one of the team games, nor A court players in Tennis, nor among the first six in Gymanisium" they were not eligible for this distinction. In my opinion, this is hardly fair to fair sex. They should not be judged by the same standard as men. Either the rules for the award ought to be revised, or if this contrary to the wishes of the donor, a new medal called 'all-round Proficiency Medal for Lady Students' should be instituted. The Jubilee year is the fittest time to take this fair step.'

१९१६ में P. Tennyson cole द्वारा बनाया गया श्रीमंत तुकोजीराव द्वितीय का भव्य रंगीन चित्र महाविद्यालय में लगाया गया. यह आकर्षक चित्र आज भी महाविद्यालय के पुस्तकालय में लगा हुआ है.

21 फरवरी के 'द होलकर कॉलेज टाइम्स' में टिप्पणी करते हुए प्रि. रिचर्डसन ने लिखा था -

'One of the girl students has recently raised the question of giving the Maharaja Shivajirao Medal for all-round proficiency to a member of her own sex. Her argument runs that just because a girl is prevented by her sex from becoming outstanding in the sporting field this is no reason why she should be disqualified form receiving the most coveted of all college prizes. she also pointed out that when the award was initiated there was no idea of girls being students of the college, so that it was taken for granted that the winner of the prize should excel at sports as well as in the studies and general qualities of leadership; but that this precedent should not disqualify the members of the fairer sex.

With this point of view we heartily agree. However, there is no reason why girl students should not excel at the sports open to them, which at present are chiefly tennis and badminton. It is not necessary for them to compete with boys in these games, but rather to show that they have attained a very high standard with the equipment with which nature has endowed them.' उन्होंने छात्रों द्वारा व्यक्त विचारों का उल्लेख करते हुए, लिखा -''Our male correspondent agrees that if a girl student is outstanding she should not be debarred on account of not being good sports woman'.

1913 में प्रो. बी.बी. श्रीखंडे कॉलेज में दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक होकर आये. 1939 में वे सेवा-निवृत्त हुए. 1913 में श्री बी.एस. ताटके और शंकर देशपांडे को उच्च अध्ययन के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गयीं. श्री ताटके ने क्वीन्स कॉलेज, बनारस में संस्कृत तथा श्री देशपांडे ने म्योर कॉलेज, इलाहाबाद में रसायन शास्त्र का स्नातकोत्तर अध्ययन प्राप्त किया.

1911 की इण्टरमीजियेट (कला) की परीक्षा में संस्कृत विषय के लिये विश्वविद्यालय की Lumsden Scholarship वासुदेव राजाभाऊ भाटे ने प्राप्त की. इस प्रतिष्ठापूर्ण छात्रवृत्ति को पाने वाले वे कॉलेज के पहले छात्र थे. बाद के वर्षों में (1923-27) श्री हरिहरि त्रिवेदी ने इस छात्रवृत्ति के साथ - हेमांगिनी - भुवनेश्वरी पुरस्कार तथा नंदी पदक प्राप्त कर महाविद्यालय के गौरव को बढ़ाया. श्री त्रिवेदी को उ.प्र. सरकार की - स्वामी माधवानंद भारती छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई थी. इन वर्षों में कॉलेज ने खेल-कूद में भी नाम कमाया. देसी खेलों और जिमनेशियम के साथ टेनिस, क्रिकेट और हॉकी भी लोकप्रिय थे. विभिन्न खेलों में कीर्तिमान स्थापित करने वाले कुछ छात्रों के नाम इस प्रकार हैं - अब्दुल रशीद खान - (हॉकी - 1910), यशवंत रानाडे (क्रिकेट - 1910) मुल्ये (हॉकी - 1911), थोम्बरे, विष्णु अनंत (हॉकी - 1912), आर. ढोबले (हॉकी, फुटबाल - 1913), यशवंत कुलकर्णी (हॉकी - 1915), श्रीकृष्ण जोशी (टेनिस - 1918, क्रिकेट - 1919), शंकर गंगाधर पाटणकर (क्रिकेट - 1918), गोपाल निवसरकर (हॉकी -1919), करीमदाद खान (क्रिकेट - 1920), चन्द्रसेन मटकर (हॉकी - 1920), सुमेर सिंह बोडाने (टेनिस - 1920).

प्रथम विश्व युद्ध के समय 1914 में कॉलेज के छात्रों ने नाटक मंचित कर धन एकत्र किया और Indian Imperial Relief Fund में योगदान दिया. कॉलेज से - जर्मनी में भारतीय युद्ध बंदियों के लिये भी Indian Soldier's Fund को सहायता भेजी गयी.

1915 में ही प्रो. एस.एस. देशपांडे कॉलेज में रसायन शास्त्र के सहायक

Central India Winners of Football Cup 1913 - Holkar College Team

Holkar College Hockey Team - 1913

प्राध्यापक नियुक्त हुए. वे एक लगनशील एवम् लोकप्रिय अध्यापक के साथ उच्चकोटि के शोधार्थी भी थे. उनके शोधकार्यों से महाविद्यालय को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा मिली. 1920 में वे तीन वर्ष का अवकाश लेकर उच्च अध्ययन के लिये लंदन गये. उनके रिक्त स्थान पर कुछ वर्षों तक प्रो. ज्ञानेन्द्रनाथ सेन ने कॉलेज में कार्य किया. वे सर प्रफुल्लचन्द्र राय के शिष्य थे और अमेरिका तथा ब्रिटेन के रसायनवेत्ताओं ने उनके शोधकार्य को मान्यता दी थी. 1923 में विदेश से लौटकर डॉ. देशपांडे पुनः कॉलेज में अध्ययन, अध्यापन और शोधकार्य से जुड़ गये. 31 दिसम्बर 1923 को भेजी गयी अपनी वार्षिक रपट में कॉलेज के प्राचार्य ने लिखा था -

'Doctor S.S. Deshpande who had been on three years leave taking a post graduate course in London after securing his degree of Ph.D. in Chemistry - rejoined us at the end of July and is one of the most brilliant addition to our staff. We look forward to the fruit of his labour with every confidence'.

शीघ्र ही डॉ. देशपांडे का श्रम सार्थक हुआ. उनके द्वारा किये गये शोधकार्य की महत्ता को देश-विदेश के विद्वानों ने स्वीकार किया. डॉ. देशपांडे ने अपने व्यक्तित्व के सात्त्विक प्रभामण्डल से वर्षों तक इस कॉलेज को आलोकित किया और यहाँ के रसायन विभाग को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया.

संयोग से 1991 का वर्ष डॉ. देशपांडे का भी जन्म शताब्दी वर्ष है.

इसी क्रम में **प्रो. गोले** की चर्चा प्रासंगिक होगी - क्योंकि यह उनका भी जन्म-शताब्दी वर्ष है. प्रो. विश्वनाथ गोपाल गोले के पूर्वज सतारा से इन्दौर में आकर बस गये थे. उनके पिता श्री गोपाल गोले रियासत की न्यायिक सेवा में थे और सत्र-न्यायाधीश के पद से सेवा-निवृत्त हुए थे. विश्वनाथ का जन्म 1891 में इन्दौर में हुआ था. उन्होंने महाराजा शिवाजीराव हाई स्कूल से मैट्रिक तथा होलकर कॉलेज से 1915 में बी.एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण की.

1917 में उन्होने अलीगढ़ विश्वविद्यालय से गणित में एम.एससी के साथ एलएल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की. वे वकालत करने का विचार कर रहे थे कि महाराजा शिवाजीराव होलकर ने उन्हें कॉलेज में गणित पढ़ाने के लिये कहा और इस प्रकार वे 1917 में कॉलेज में नियुक्त हुए - जहाँ उन्होंने 1947 तक कार्य किया. प्रारंभ से ही वे अत्यंत मेधावी थे. अध्ययन के साथ खेल-कूद में भी उनकी रुचि थी. वे फुटबाल और टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे. 1913 में उन्होंने कॉलेज में महाराजा शिवाजीराव पदक प्राप्त

प्रो. गोले का चित्र और विवरण - उनके पुत्र - एम.वी. गोले (पुणे) के सौजन्य से हमें प्राप्त हुआ है.

प्रो. गोले

किया था. इसे प्राप्त करने वाले वे पहले छात्र थे. गणित के साथ ज्योतिष में उनकी गहरी रुचि थी और वे इन्दौर में पंचाग-सुधार समिति से सम्बद्ध थे. वे एक सहृदय, सात्त्विक और अध्ययनशील व्यक्ति थे. अपने विद्यार्थियों को वे सदा ही मार्ग-दर्शन के लिये उपलब्ध रहते थे. सेवा-निवृत्ति के बाद भी उन्होंने भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक विज्ञान के अपने अध्ययन को जारी रखा और 'Relativity and Quantum Theories Reviewed against the Background of Traditional Indian Thoughts' - शीर्षक से एक महत्वपूर्ण शोध-पत्र - 1954 में प्रकाशित किया. 1963 में वे पूना अपने पुत्रों के पास स्थायी रूप से रहने चले गये जहाँ 1977 में उनकी मृत्यु हुई. अपने यशस्वी पिता की भाँति ही उनके पुत्रों ने भी कॉलेज की कीर्ति को आगे बढ़ाया है. उनके एक पुत्र एम.वी. गोले ने 1944 में शिवाजीराव पदक प्राप्त किया था. उनके दूसरे पुत्र चन्दू गोले को भारत-पाक युद्ध में असाधारण वीरता के लिये 'अति विशिष्ट सेवा पदक' से सम्मानित किया जा चुका है.

इस शताब्दी के प्रारंभ से ही इन्दौर में राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक सुधार और नव-धार्मिक आंदोलनों के प्रभावों के संकेत दिखाई देने लगे थे. फलस्वरूप कुछ ही वर्षों में - इन्दौर में क्रांतिकारी संगठन के सूत्रों, राष्ट्रीय आंदोलन की सहभागिता एवम् उदारवादी आंदोलनों के प्रवाह ने एक सुसम्बद्ध रूप ले लिया था. नगर की इन गतिविधियों से कॉलेज का परिसर भी अछूता नहीं रह सका. इन सबका व्यापक प्रभाव कॉलेज पर पड़ा.

यहाँ थियोसाफीकल सोसायटी तथा ब्रह्म समाज की इकाइयाँ सक्रिय थी. इन्हीं वर्षों में कॉलेज में प्रो. शांताराम देसाई, प्रो. सुखटणकर, प्रो. पद्मनाभन शास्त्री और एफ.जी. पियर्स थे जो इन विचारधाराओं से जुड़े थे. इन प्रारंभिक वर्षों में राष्ट्रीय चेतना की मुख्य धारा के साथ दो समानान्तर प्रवाहों का प्रभाव कॉलेज पर देखा जा सकता है. एक तो था सनातन संस्कारों का परम्परावादी दृष्टिकोण और दूसरा था नव-उदारवादी विचार-प्रवाह. यही नहीं सर आर.जी. भण्डारकर और दामोदर धर्मानंद कोशाम्बी जैसे विद्वज्जनों का इस कॉलेज से और नगर से निकट का सम्पर्क रहा है. डॉ. भण्डारकर के पुत्र इस कॉलेज में विज्ञान के प्रोफेसर थे बाद के वर्षों में उनकी नातिन अहिल्या - अहिल्याश्रम की प्रमुख थी. दामोदर कोशाम्बी का डॉ. सुखटणकर के परिवार से आत्मीय परिचय था और उनकी बहन माणिक ताई भी अहिल्याश्रम से सम्बद्ध थी. इन व्यक्तित्वों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कॉलेज के शैक्षणिक वातावरण को प्रभावित किया.

1920-21 के वर्षों में ही बलवंत भाऊ नगरकर भी होलकर कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाते थे. यह उल्लेखनीय है कि श्री नगरकर 1893 में प्रतापचन्द्र मजूमदार के साथ शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद में ब्रह्म समाज के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए थे.

□ □

एक संस्मरण

मैं होलकर कॉलेज में पढ़ता था, तब श्री पद्मनाभन् प्राचार्य थे. उनका कॉलेज के छात्र तथा प्राध्यापक दोनों पर सक्षम नियंत्रण था. एक समय छात्रसंघ के पदाधिकारियों ने प्रसिद्ध नटसम्राट पृथ्वीराज कपूर को निमंत्रित किया था. परंतु उस के लिये प्राचार्य की अनुमति नहीं ली थी. निमंत्रित अतिथि आने के पूर्व यशवंत हॉल खचाखच भर गया था. तब प्राचार्य पद्मनाभन् ने हॉल में प्रवेश किया, और विद्यार्थियों को कहा कि वह सभा उनकी अनुमति के बिना बुलाई गई है अतः वे तुरन्त हॉल खाली करें. उनका छात्रों पर कितना प्रभाव था इस का प्रात्यक्षिक तभी सामने आया. पांच मिनिटों में पूरा हॉल निर्मनुष्य हो गया. बाद में छात्रों के प्रतिनिधि उनसे उनके कक्ष में मिले और माफी मांग कर उनसे यथोचित अनुमति प्राप्त की. इतना ही नहीं उन्होंने प्राचार्यजी को सभा का अध्यक्ष पद स्वीकार करने की विनती की. प्राचार्य ने भी पूर्व घटना भूल कर सहर्ष सम्मति प्रदान की और वे पृथ्वीराज कपूर के साथ हॉल में उपस्थित हुए. उसके बाद प्राचार्य द्वारा नटसम्राट का स्वागत, अतिथि का भाषण तथा शेक्सपीयर के नाटकों के कुछ संवादों का प्रात्यक्षिक इत्यादि मिलाकर दो घंटे का आनन्दपूर्ण कार्यक्रम अत्यंत सफलता से सम्पन्न हुआ.

– **कृष्णा दामोदर अभ्यंकर** (विद्यार्थी 1945-1949)

(श्री सुधाकर मुले के अनुसार : उस समय तक फिल्म 'सिकन्दर' में अपनी प्रभावी भूमिका के कारण श्री पृथ्वीराज कपूर अत्यन्त प्रसिद्ध थे. रंगमंच के प्रति अपनी पहली प्रतिबद्धता के कारण ही उन्होंने, छात्रों द्वारा फिल्म के संवाद प्रस्तुत करने के अनुरोध को विनम्रता से अस्वीकार करते हुए अपने 'नाटकों' में से (विशेषकर मर्चेन्ट ऑफ वेनिस के शायलॉक के) संवाद - सम्पूर्ण नाटकीय प्रभाव के साथ प्रस्तुत कर हम सबको मंत्र-मुग्ध कर दिया था)

Sweet Reminiscences

□ Dr. Y.G. Apte, B.A., L.M.S.

"We are indeed very happy to republish the following article, which was specially written for and appeared in the Holkar College Times dt. 10.01.1957 and 28.01.1957 Dr. Apte was a brilliant student of this college and was one of the first graduates as he took his B.A. degree in 1894."

It may appear paradoxical that I never read in the present building of the Holkar College. On passing the Entrance examination (in First Class) of the Calcutta University from the English Madrasa at Indore in 1890, R.J. Bhide Saheb (later Rao Bahadur) who was then Superintendent of Education, awarded me a scholoarship of Rs. 7 per month for my College education. I had to join the Christian College for F.A. as the Holkar College had not then come into being. I could leave the Christian College after passing the F.A. to join the Holkar College, but not in its present premises. Our College classes were then held in the upper rooms of the then High School, which was named Maharaja Shivaji Rao High School, before it shifted to its new building.

I had taken the Mathematics and Science course. We were only two students in that course, myself and Mr. R.B. Dube. Both of us took Honours Courses in both Mathematics and Science. For Mathematics, we had Prof Athavale M.A. from Baroda; and for Science (Physics & Chemistry); Prof. Bhandarkar B.A.L.M.S. from the Grant Medical College of Bombay, where he worked for sometime as Assistant to the Chemical Analyser. After a year's struggle with Analytical Conic sections and the Differential Calculus, I left the Honours course in Mathematics, but kept it up in Science.

The Honours Course in Chemistry included Qualitative Chemical analysis and it required a separate room for us two experimenters, which was provided on the ground floor. The Chemical tests required a free use of Sulphuretted Hydrogen, which spread its stink, whenever there was a slight breeze of wind from our room to the other classes on that side of the quadrangle. Our presence in the room was thus immediately impressed on the olfactory nerves of the students in adjoining classes. Little wonder, we were considered a nuisance by them!

For the practical examination in Chemistry, we had to go to Calcutta, as the Holkar College was then affiliated to the Calcutta University. We visited the Science Laboratory of the Presidency College and were surprised to find no stink emanating from the Chemical Analysis rooms. The Laboratory had an exhaust fan in its high ceiling, which sucked up all foul vapours!

Dr. Y.G. Apte

I passed out with First Class Honour in Science and got fifth (Last place in the U n i v e r s i t y. Principal Cholomondeley taunted me in a light vein for being last in First Class. I did not like it. but could only submit that even the last place in the First Class was better than the First place in Second Class. As it was, no one passed with First Class Honours in Science for several years after that.

The Calcutta University offered me a Scholarship to continue my Science Study, and I was planning to go to Calcutta, when a later communication cancelled the scholarship, as it was only meant for a student from Bengal! My subsequent life would have been altogether different if I had gone to Calcutta with that Scholarship. I would probably have returned to the Holkar College as a Professor of Physics or Chemistry. I did however, return to the Holkar College later on, in a different capacity.

Instead of Calcutta, I was able to go to Bombay on a Scholarship from the Holkar State to study Medicine. With that Scholarship and others secured every year in the Grant Medical College of Bombay, I was able to complete my entire medical course without any help from home. My B.A. education enabled me to complete the medical course in four years only. In the final examination I secured the Charles Morehead Prize in medicine and a Gold medal in medical Jurisprudence and Hygiene.

After a short period of plague duty. I was offered a fellowship at the Grant Medical College for study for M.D. degree in Medicine, but preferred State Hospital at Gwalior, which offered great scope for surgical work. While in the Grant Medical College I started the Grant Medical College Magazine and continued to contribute to it after I went

to Gwalior. My medical career at Gwalior was however interrupted by transfers to various new posts specially created for urgent special work in the interests of the Gwalior State.

After retiring from Gwalior service I went to Indore, and when the post of State Surgeon got vacant I was appointed to it; and in that capacity I contacted the Holkar College students as Medical Adviser. In my visits to the College, I found that some bright but poor students, when they got seriously ill and had to stay at home did not recover their health sufficiently early for want of proper medical help or medicines. To help such students, I deposited a sum of money (Rupees Five Hundred) with the Principal of the College and instituted a Poor Student's Health Recovery Fund in 1939. Out of the interest of that Fund, small amounts were doled to poor students who needed such help when they got ill. The whole amount of Scholarship which I had received from the Holkar College for two years was returned more than doubled with interest.

At my request, I get a report from the Principal of the College, about the interest accruing from the Fund and the amounts disbursed to one or more students every year.

The number of students of the college has increased very considerably and the amount available from the interest of the Fund must be found very inadequate for the number of students who may require help from it. I would therefore appeal to Old Boys, who may have received scholarships while at College and may now be in a well-to-do position, to send some of their earnings to the Health Recovery Fund, thus to increase its usefulness.

□□

Sweet Memories

By V.S. Sarwate, B.A., LL.B.

[A Veteran freedom fighter, dedicated social worker, prolific writer and educationalist Vinayak Sitaram Sarwate 'Tatya' (1884-1972) was an old student of this college. He joined this institution in 1900 and passed his B.A. in the year 1904. He was a member of Rajya Sabha. Besides other works, he has written a comprehensive history of Marathi Literature in four volumes. He was the inspiration behind the Bal Niketan Sangh - a reputed educational institution of Indore. He wrote this article in 1955 for the Holkar College Times.]

It is indeed very pleasant to go back for a while over several decades and take one's mind to the period when I was a student in Holkar College during the years 1900 to 1904. I thank the Editor of Holkar College Times for having given this opportunity to me to indulge in happy reminiscences of that time. In those days we students used to manage the social and extracurricular activities of the College. The sanctioned budget was at the disposal, of the Managing Committee. The Committee was in charge of Gymnasium, Sports, Reading Room and Gardens. I was elected the first secretary of the Debating Club which was started in 1902. Debates were held every Saturday. Principal Cholomondeley took a keen interest in these debates and used often to be personally present and participate. He gave us very useful hints as to how debates were conducted in the Oxford College.

I resided in the hostel during all the four years of my college career. There was then a code of conduct, unwritten of course, which used to be almost religiously observed by all hostellers. It was pervaded by a spirit of comradeship, character, a rather keen regard for physical fitness and mental cleanliness. New-comers who sometimes committed a breach, were exposed to such ridicule that a second breach seldom occurred. Smoking was strictly banned under this code. So was any lax talk about women. Every one was expected to leave the work in hand, and run with a stick for rescue, whenever a cry of serpent' or 'thief' was raised. Cries on account of the former were then almost a daily occurrence. More than normal attention used to be given to the morning gymnasium classes. Absence from them was noticed personally by the Principal Mr. Cholomondeley more severely than missing a lecture. As a result the normal physical fitness level, specially body development, stood at a high level in the Hostel.
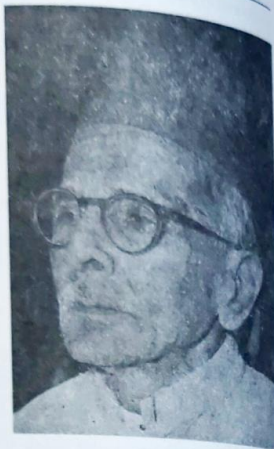
Swimming was required to be learnt by everyone in the hostel. New comers, who did not know it, were trained in the spacious well in a garden nearby the use of which for the purpose was kindly permitted by the owner. That well was our swimming pool then.

Much of the credit for this healthy tone of living, went to the Principal, who took keen interest in every thing pertaining the hostel; and next to him to Prof. Gokhale, who was the then Dean. The latter, who then professed Physics and Chemistry, was a genius; versatile both in scientific as well as literary subjects. He mixed with us very freely and was fond of discussions almost to a fault. In his behaviour with students he was helpful and trusting. He used to keep all his cash in a tin box without a lock, in a drawer of his writing-table. Whenever any of us was in need of money and went to him for a loan, he directed us to take the necessary sum from the tinbox in the drawer, and put a note to that effect in it. When the money came to be returned, reverse was the process. the money to be put in, and the note concerned to be taken away. So far as I knew the Professor never cared to ask much less to count either the sum taken away, or put in. Later (I believe in 1908) on the advice of the British Government of India, the Holkar Government terminated his services for taking part in political activities. He then went to the U.S.A., obtained a job in the well known General Electric Company and eventually rose, by sheer dint of his work and ability, to be the head of a research section in the Company's Research Laboratory. Another professor, whom I remember with reverence and gratitude, was Prof. Desai. He was a true philosopher, conscientious to a degree in his duties and equally unmindful of practical things. He devoted the later years of his life to the study of the oriental philosophy, specially the works of Shankaracharya and Marathi saints; and published at considerable monetary sacrifice a Marathi quarterly devoted to those subjects.

Prof. Athawale was another genius, whom Holkar College was then fortunate to have as its Professor of Mathematics. He was also fond of conversation with students; and when for some time he came to stay in the hostel, the discussions between him and Prof. Gokhale were intellectual treats to us. His talk had a sparkling wit-often pungent and piercing.

Prof. Ghate was Professor of Sanskrit; a good scholar, and a better teacher, who taught us to appreciate the beauty and grandeur of Sanskrit literature. I still clearly remember how during his lectures on Uttara-Rama, both the Professor and pupils lost the sense of time, and went on from verse to verse, with tears rolling down the eyes and watering the pages of our text!

Oh, old memories, made sweeter by time: I am probably one of the very few now left to indulge in them!

□□

Khode Vishvanath S. Brah. 19/4 s/o. Sakharam Kalubhai Saraf Khargon. C.H.S. All. Mat. III 1917. Some brains. Plays football. I.A. (II) 1919 Football capt and Head capt. 1920. Free. Seems to have some sense. Good steady fellow. Well behaved.

1920.

Marathe Prabhakar Vinayak 20/11 Brah. s/o Vinayak Narayan. Gua: N.A. Bande. All. mat. III 1916, Neill H.S. Failed I.Sc. (? 1918, 19), 1920, Morris Coll. Nagpur. Maratha 1920 2nd year. (Mistake in admitting). Obstinate & impertinent. Expelled from English Class for that. Fined Rs 5/- and warned. Ran away to Nagpur Non-Cooperation Conf. Very poor work. Detained. Wired and petitioned to Univ. Behaved extremely badly.

From the Scholars' Register

शतकीय भागीदारी

[कॉलेज के साथ-साथ ही शताब्दी की ओर अग्रसर होते हुए बाबूराव उर्फ यशवंत बालकृष्ण रानडे (1890-1990) ने 'शंभरीत पदार्पण' में अपने जीवन के संस्मरणों में होलकर कॉलेज का स्मरण किया है - जहाँ वे 1906 से 1911 तक विद्यार्थी थे. मराठी में प्रकाशित इस पुस्तक के विभिन्न पृष्ठों पर फैले हुए, कॉलेज से सम्बंधित संस्मरणात्मक अंशों का हिन्दी अनुवाद कर और स्व. रानडे द्वारा दी गयी अन्य जानकारियों को एक आलेख के रूप में डॉ. विट्ठल नागेश हांडियेकर ने प्रस्तुत किया है. डॉ. हांडियेकर इन दिनों भण्डारा में हैं और महाविद्यालय के पूर्व विद्यार्थी हैं. अनुवाद की दृष्टि से आवश्यक परिवर्तन और परिमार्जन करते हुए संस्मरणों के मूल स्वरूप को यथासम्भव सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है.]

आभार : श्रीमती पद्मजा परांजपे के प्रति जिनके सौजन्य से 'शंभरीत पदार्पण' की प्रति उपलब्ध हुई. इस आलेख के साथ प्रकाशित चित्र भी उन्हीं से प्राप्त हुए हैं. श्रीमती परांजपे - पुणे में निवास करती हैं और स्व. रानडे की पुत्री हैं.

- महेश दुबे

बाबूराव रानडे

''मैंने 1906 में भण्डारा से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की. मुझे नागपुर के किसी भी कॉलेज में सरलता से प्रवेश मिल जाता. उस समय इन्दौर का होलकर कॉलेज - एक श्रेष्ठ शिक्षण संस्था के रूप में जाना जाता था और यहाँ के प्राध्यापकों का भी नाम प्रतिष्ठा से लिया जाता था. प्रो. शंकरराव गोखले होलकर कॉलेज में फिजिक्स और केमिस्ट्री पढ़ाते थे. उनकी बुद्धिमत्ता और विद्वत्ता की ख्याति दूर-दूर तक थी. मैंने जून 1906 में होलकर कॉलेज में प्रवेश लिया और कॉलेज के ही छात्रावास में रहने का प्रबंध किया. छात्रावास में हमें स्वतंत्र कमरे दिये गये थे. मेरी कक्षा में 20 विद्यार्थी थे और सभी के प्रति कॉलेज के प्राध्यापक व्यक्तिगत ध्यान देते थे.''

''उस समय को देखते हुए कॉलेज की लायब्रेरी बहुत अच्छी थी. पढ़ाते समय शिक्षक संदर्भ ग्रंथों की सूची और पृष्ठ संख्या की जानकारी देते थे. हमारी कक्षा का एक विद्यार्थी जो गत वर्ष की परीक्षा में अनुत्तीर्ण था - जानबूझकर शरारत से किताबों के संदर्भित पृष्ठ फाड़ दिया करता था ताकि अन्य छात्रों को उसका लाभ न मिल सके. वह एक अच्छे राजघराने से सम्बंधित था.''

''मुझे प्रो. गोखले का नाम अभी भी याद है. वे एक अच्छे शिक्षक थे और विद्यार्थियों में अत्यंत लोकप्रिय थे. उनके पास एक दूरबीन थी. इसी दूरबीन से इन्दौर के होलकर महाराजा प्रो. गोखले की मदद से आकाश में ग्रह, तारे देखा करते थे. प्रो. गोखले की विद्वता से होलकर महाराजा प्रभावित थे. प्रो. गोखले में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी थी. 1908 में गणेशोत्सव में उनके दिये गये भाषण चर्चा का विषय बन गये थे. उनके विरोधियों ने इसका लाभ उठाते हुए उन्हें इन्दौर छोड़ने को मजबूर किया. यहाँ से वे पूर्वी बंगाल चले गये थे. प्रातः जल्दी ही, घंटी बजते ही हमें शारीरिक व्यायाम के लिये जाना पड़ता था. साथ ही हमें तैरना, क्रिकेट, हॉकी, टेनिस आदि खेलों की भी सुविधा थी जिसका हम विद्यार्थी लाभ उठाते रहे. खेल स्पर्धायें भी होती रहती थीं.''

☐ कॉलेज के कुछ छात्रों का समूह चित्र वर्ष 1908. चित्र में हैं तपस्वी सोमण गंधे इनाने बाबूराव रानडे ☐

''उस समय कॉलेज में छात्रों का एक गुप्त संगठन था जो क्रांतिकारी विचारों से प्रेरित था. खुदीराम बोस जैसे प्रसिद्ध क्रांतिकारियों के संदेश होस्टल में आते रहते थे. प्रायः नोटिस-बोर्ड पर कोई चुपचाप 'युगांतर' सरीखे राष्ट्रवादी-पत्र लगा दिया करता था. यहीं हमें गुप्त रूप से अरविंद घोष का 'वंदे मातरम्', रामानंद चटर्जी का 'मार्डन रिव्यू', तिलक का 'केसरी', युगांतर व अन्य राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने को मिलती थीं. इनसे हमें क्रांतिकारियों के साहसपूर्ण कार्यों की जानकारी के साथ-साथ विलायती माल के बहिष्कार और विलायती कपड़ों की होली जलाये जाने के समाचार भी मिलते थे. होस्टल के विद्यार्थियों में लाल-बाल-पाल के प्रति आदर की भावना थी.''

''मुझे याद है बम बनाने सम्बंधी एक पत्र भी छात्रों में गुप्तरूप से वितरित हुआ था. इसमें पिक्रिक एसिड की सहायता से बम तैयार करने सम्बंधी सूचनाएँ थीं. इस प्रकार के पत्र मोडी लिपि में होते थे और पूना या नागपुर से आते थे. ऐसे पत्रों को पढ़कर - सुरक्षा की दृष्टि से जला दिया जाता था. हॉस्टल पर पुलिस की सख्त नजर थी इसलिये सभी को बहुत सतर्क और चौकस रहना पड़ता था.''

''1908 का समय इन्दौर के इतिहास में एक क्रांतिकारी समय था. खुदीराम बोस को दी गयी फाँसी और तिलक को कठोर कारावास की सजा दिये जाने के कारण सारा वातावरण तप्त था. उस वर्ष का इन्दौर का गणेशोत्सव राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी विचार धाराओं से ओत-प्रोत था.''

''क्रांतिकारी विद्यार्थियों में से कुछ के नाम मुझे आज भी याद हैं. ये थे शेवड़े, नांदेड़कर, पंत वैद्य, दुराफे आदि. इन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया था. नांदेड़कर होस्टल में ही रहता था. उसका कमरा हमेशा बंद रहता था और दरवाजे पर 'Do Not Disturb Me' की तख्ती लटकी रहती थी. रात के समय वह अन्य छात्रों से गुप्त मंत्रणा किया करता था. कॉलेज से निकाले जाने के बाद शेवड़े और नांदेड़कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अमेरिका चले गये थे. बाद में मुझे मालूम हुआ कि नांदेड़कर वहीं अमेरिका में ही रहने लगा है.''

''बी.एससी. करने के बाद में एम.एससी. के लिये इलाहाबाद चला गया. मुझे अपने छात्र जीवन के इन्दौर के होलकर कॉलेज में बिताये गये वर्ष आज भी याद हैं. मुझे गर्व है कि मैं इस कॉलेज का विद्यार्थी रहा.''

स्व. रानडे एम.एससी. (फिजिक्स) करने के बाद म.प्र. सरकार की सेवा में आ गये थे. वे जबलपुर के ट्रेनिंग कॉलेज के प्राचार्य थे. एक सफल शिक्षक और कुशल प्रशासक के रूप में उनका नाम आज भी आदरपूर्वक लिया जाता है. अपनी इस सफलता का श्रेय वे होलकर कॉलेज में पायी हुई अपनी शिक्षा को देते हैं - जिसके कारण वे अनुशासन और ज्ञान ग्रहण करने की वृत्ति को अपने जीवन में विकसित कर सके.

☐☐

Prof. M.R. Khan

Prof. M.R. Khan writes from Quetta, Pakistan in his letter dated 8.5.91 about the hostels of Holkar College -

Prof. S. Saghir Ali was the Dean of the Hostels at that time. There was no satisfactory arrangement for daily baths for the boarders. We had to take bath from the tap water, which flowed from the college well to the small college garden. It was a pleasure to sit on a stone under the 6" tap and the eyes of the passers bye had become familiar with this scene.

Prof. Saghir Ali was known for his witty remarks on the fields and off the fields. He was regarded as the best Hockey referee. He refereed the Annual Hockey Matches of the Central India Schools Tournaments. He was recognised by his turkish red cap, sherwani and white pajama.

होलकर कॉलेज के विस्मृत क्रांतिकारी छात्र

- डॉ. विट्ठल नागेश हंडियेकर

बीसवी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में पंजाब, बंगाल और महाराष्ट्र में हो रहे राष्ट्रीय जन जागरण और सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों का व्यापक प्रभाव इन्दौर के छात्र जगत पर पड़ा. 1907 के प्लेग के दिल दहलाने वाले वातावरण के पश्चात - 22 जुलाई 1908 को लोकमान्य तिलक को 6 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गयी. सारे देश में इसकी प्रतिक्रिया हुई. इन्दौर भी उससे अछूता न रह सका. उस दिन छात्रों ने हड़ताल कर दी. 30 जुलाई से 4 अगस्त 1908 के गणेशोत्सव में राष्ट्रीय चेतना का नया रूप दिखाई दिया. इसमें छात्रों की सक्रिय भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी. 5 अगस्त 1908 - गणेशोत्सव का अंतिम दिन - इन्दौर के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया प्रभावशाली पृष्ठ है. इस दिन निकले आवेशपूर्ण जुलूस में हजारों की संख्या में जन-सामान्य, शिक्षक, विद्यार्थी और सरकारी कर्मचारी शामिल थे. 'वंदे मातरम्', के घोष और तिलक, खुदीराम बोस, अरविन्द घोष और विपिन चन्द्र पाल की जय-जयकार के नारों से आकाश मंडल गूँज उठा. देश भक्ति के गीत गाते हुए जब निडर, साहसी और मतवालों की टोली रास्तों पर निकली तब सड़कों पर खड़े नागरिकों ने भी उनके जोशीले नारों में अपना स्वर मिलाकर अपनी देश-भक्ति और एकता का परिचय दिया. इस जुलूस में छात्रों की संख्या अत्यंत प्रभावी थी. इन गतिविधियों से अंग्रेज अधिकारियों का चिंतित होना स्वाभाविक ही था. तत्कालीन पुलिस कमिश्नर सेग्रिम ने स्वीकार किया - ''निकट भविष्य में इन्दौर दूसरा पूना या बंगाल बन सकता है.''

सरकार ने दमन कार्यवाही शुरू की. प्रो. गोखले को नौकरी से अलग किया गया. भाई कोतवाल, बालू भैया दाते को इन्दौर राज्य से बाहर निकाल दिया गया. इस क्रांतिकारी घटना में भाग लेने वाले प्रमुख छात्रों में - स्कूल के थे - मोड़क, पाडालकर, कारनेरकर, शिरालकर और कॉलेज के थे : भोपटकर, चंदवासकर, दांडेकर, देव, दुराफे, पंतवैद्य, नांदेडकर और शेवड़े इनमें शेवड़े और नांदेडकर को कॉलेज से निकाल दिया गया.

श्री विनायक यशवंत शेवड़े को महाविद्यालय से 1908 में निकाल दिया गया था. उसके पश्चात उन्होंने आड़ाबाजार और म्यूनिसिपल रोड स्थित अपने दो मकान गिरवी रखकर बम्बई की ओर प्रस्थान किया. उनके साथी थे महादेव नांदेड़कर. महादेव के पिता आबाजी महू में रेल्वे में कार्य करते थे. लुनियापुरा, स्टेशन रोड पर (आज की राम मंदिरवाली बिल्डिंग) उनका किराये का मकान था. 1909 में एक दिन पिता की जेब से 300 रुपये चुराकर घरसे भाग निकले. उस समय उनकी छोटी बहन अनुसूया ने (स्व. डॉ. शंकर श्रीधर देशपांडे भूतपूर्व प्राचार्य होलकर कॉलेज की पत्नी) उनसे पूछा, ''कहाँ जा रहे हो'' तो उसे यह डाँट दिया कि, अच्छे काम के समय टोका नहीं करते और वे अपना बैग उठाकर बम्बई के लिये शेवड़े के साथ चल पड़े. वहाँ पर अपना नाम कुलकर्णी रखा और शेवड़े की सहायता से अमेरिका जाने का प्रबंध कर लिया. उन्होंने पारपग पाने के लिये अपना नाम बदलकर श्रीधर देव रख लिया. ध्यान देने योग्य बात यह है कि तत्कालीन इन्दौर के म्युनिसिपल इंजिनियर श्रीधर देव थे. मई 1909 में यह दोनों अमेरिका चले गये. जाते समय, नासिक के 'अभिनव भारत' संस्था के कार्यकर्ता एवं आगे चलकर जॅक्सन हत्या षड्यंत्र के सूत्रधार श्री. कृष्णाजी कर्वे का परिचय-पत्र श्री श्रीधर व्यंकटेश केतकर जो उन दिनों में अमेरिका में थे उनके लिये ले गये. उस समय वे वहाँ राजनीतिक गतिविधियों के लिये कार्यरत थे. आगे चलकर ज्ञानकोशकार डॉ. केतकर के नाम से प्रसिद्ध हुए. श्री शेवड़े ने कॅलिफोर्निया में केमिकल इंजिनियर का पाठ्यक्रम पूर्ण किया साथ ही बम बनाने की कला प्राप्त की. श्री नांदेडकर सक्रिय रूप से कॅलिफोर्निया राज्य में ब्रिटिश विरोधी कार्य में जुट गये. वे पॅसिफिक हिन्दुस्थानी संस्था के सूत्रधार बने. दोनों देशभक्त प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता लाला हरदयाल, डॉ. खानखोजे, विष्णु पिंगले आदि के मित्र बनें जिससे अमेरिका में भारत की स्वाधीनता के प्रयत्न में बडी तेजी आयी. भारत के बाहर राष्ट्रों में स्वाधीनता के लिये जागृति, प्रचार एवं मदद प्राप्त करने का प्रयास किया गया. ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, कॅनडा आदि देशों की भारतीय क्रांतिकारी संस्थाओं से सम्पर्क भी किया गया. गदर पार्टी से भी सीधा संबंध जोडा गया. 1914

में विश्वयुद्ध छिडते ही बर्लिन कमेटी की स्थापना की गई. बर्लिन कमेटी का जो प्रतिनिधि मंडल सॅनफ्रॅन्सिस्को से बर्लिन के लिये रवाना हुआ उसमें नांदेड़कर सम्मिलित थे. वह मंडल अपने कार्य में सफल न हो सका. इसलिये उसे वापस जाना पड़ा.

शेवड़े और नांदेडकर तथा उनकी अमेरिका में चल रही गुप्त गतिविधियों की खबरें भारत सरकार को नियमित रूप से प्राप्त होती थीं. शिमला के रेकार्ड में इस संबंध में सबूत मिलता है; यही कारण है कि जब शेवड़े दि. 5 डिसेम्बर 1914 को सॅनफ्रॅन्सिस्को से भारत के लिये रवाना हुए उसी समय देश के पुलिस अधिकारियों को इसकी सूचना दी गई. दि. 11 मार्च 1915 को शेवड़े को मद्रास पहुँचने पर गिरफ्तार किया गया. उन्हें ट्रेन से बम्बई ले जाया गया. मार्ग में रायचूर स्टेशन पर उनके एक परिचित श्री बाबुराव देसाई ने उन्हें देखा. तुरंत ही उन्होंने तार द्वारा शेवड़े के बहिनोई पूना के वामन दामोदर तलवलकर को सूचित किया साथ ही कहा गया कि इन्दौर के श्री पंतवैद्य वकील, शेवडे के मामा श्री पराडकर एवं भांजे श्री पुरोहित को भी तार द्वारा सूचित किया जाय. श्री शेवडे को इन्दौर लाया गया. होलकर रियासत के नागरिक होने के नाते उन्हें होलकर दरबार को सौंपा गया. महाराजा तुकोजीराव होलकर ने उनकी जमानत दी और अपने यहाँ केमिकल इंजिनियर नियुक्त किया. श्री शेवड़े पर पाबंदी लगाई गई कि वे महाराजा की बिना अनुमति के इन्दौर नहीं छोड़ सकते तथा स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते. फलस्वरूप इस क्रांतिकारी का कार्य आगे न बढ़ सका. राऊ की थर्मल फॅक्टरी और पालिया पेपर मिल का निर्माण उनकी देखरेख में हुआ. चीफ केमिकल इंजिनियर के पद से वे निवृत्त हुए. उनके परिचितों का कहना था कि वे उदास बने रहे. महाराजा तुकोजीराव अस्पताल में 1953 में उनका स्वर्गवास हुआ. श्री नांदेडकर कभी नांदेकर कभी शर्मा आदि जाली नाम धारण करते हुए अपने कार्य में जुट गये. किन्तु अमेरिका प्रथम विश्वयुद्ध के समय ब्रिटन का मित्र बन गया और अमेरिका में ब्रिटन विरोधी कार्यकर्ताओं के साथ उसने कुटिलता का व्यवहार किया इसका प्रमाण है 1918 का सॅनफ्रॅन्सिस्को का मुकद्दमा जिसमें भारतीयों पर तटस्थता भंग करने के आरोप में कारावास की सजा दी गई. इसमें श्री नांदेडकर को 3 माह का कठोर कारावास का दंड सुनाया गया. 1918 से 1974 तक की उनकी जीवनी संबंधी जानकारी नहीं मिलती. होमियोपेंथी डॉक्टर और योग विद्या

नांदेडकर

के प्रशिक्षक के रूप में वे जीवन के अंतिम क्षणों तक अमेरिका में डेट्राइट में कार्यरत रहे. वहाँ उनका निधन 1974 में हुआ. इन्दौर के तीसरे क्रांतिकारी श्री मुकुंद पांडुरंग मोघे थे. नासिक के जॅक्सन की हत्या के बाद वे उस षड्यंत्र में सम्मिलित समझे गये. बडी यातनाएँ उन्हें दी गई. अंततः ठोस सबूत

शेवडे

न मिलने के कारण मुक्त किया गया. फिर भी इन्दौर न छोडने का आदेश दिया गया. राजकुमार मील से वीव्हिंग मास्टर के रूप में सेवानिवृत्त हुए. दस वर्ष पूर्व ही उनका निधन हुआ. यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि मध्यभारत क्षेत्र खासतौर पर इन्दौर क्रांतिकारियों के लिए सुरक्षित केन्द्र समझा गया. यही कारण है कि प्रसिद्ध क्रांतिकारी सेनापति बापट अपने साडे चार वर्ष के अज्ञातवास के समय बडवानी, धार, देवास और इन्दौर में रहे. हालांकि उन्हें इन्दौर में ही दि. 18.12.1912 को पकडा गया था.

इसलिये स्वाधीनता संग्राम के प्रारंभिक दिनों में विशेषरूप से 1903 से 1912 तक इन्दौर में किये गये आंदोलन ने राष्ट्रवादी जागृति में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखा है. राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उसे देखने पर स्पष्ट होता है कि लोकमान्य तिलक और उनके गरम दल का प्रभाव इन्दौर के नवयुवकों पर गहरा पडा था. इसी कारण वे क्रांतिकारी कार्यों से संलग्न रहे. स्वतंत्रता प्राप्ती के लिये इन्दौर रियासत के नागरिक भी कॉंग्रेस के नेतृत्व में प्रजामंडल की स्थापना कर आगे बढे. इन्दौर का इस संदर्भ में महत्वपूर्ण योगदान रहा.

(1) पुणे के श्री त्र्यम्बक वामन तलवलकर के अनुसार -श्री विनायक शेवड़े साउथ अमरीका जाने वाले एक जहाज पर श्रमिक के रूप में कार्य करते हुए अमेरिका पहुँचे. बिना पासपोर्ट के वे मेक्सिको होते हुए इलिनॉय पहुँचे. श्री विनायक शेवडे रिश्ते में त्र्यम्बक तलवलकर के मामा थे. श्री तलवलकर की माताजी किबे परिवार से सम्बंधित थीं.

(2) विनायक शेवड़े ने 42 वर्ष की आयु में 1929 में एलएल.बी. के लिये पुनः होलकर कॉलेज में प्रवेश लिया था - परंतु उन्होंने, परीक्षा में बैठने की अनुमति न मिलने से कॉलेज छोड़ दिया. उनके पुत्र सदाशिव भी होलकर कॉलेज के 1930 - 1935 के वर्षों में छात्र थे.

(3) महादेव नांदेड़कर का जन्म हातोद में शक संवत 1808 - आश्विन मास, ग्यारस के दिन हुआ था. वे एकाग्र चित्र और अध्ययन में रुचि रखने वाले छात्र थे. वे नियमित रूप से व्यायाम करते थे और कृष्णपुरा स्थित बापूराव गुरू के अखाड़े में कसरत के लिये प्रतिदिन होलकर कॉलेज के हॉस्टल से पैदल जाते. अमेरिका पहुँचने पर, उन्होंने अपने पिता आबाजी को एक पत्र में लिखा था -''यह सत्य है कि मैंने उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की है. परंतु राष्ट्र में स्वतंत्रता के अभाव में विद्या पर प्रेम सर्वदृष्टि से सत्य प्रतीत नहीं होता. महात्मा मेजिनी ने कहा है कि गुलाम देशों में उच्च मनोवृत्ति एवम् कर्त्तव्य निष्ठा नहीं पायी जाती.''

अमेरिका में रहते हुए उन्होंने कार्नेल विश्वविद्यालय में फार्मेस्युटिकल विज्ञान का अध्ययन किया. देश के विभाजन को भी उन्होंने मन से स्वीकार नहीं किया था. अपना शेष जीवन उन्होंने अमेरिका में विद्या के प्रचार में और अखबारों में लेख लिखकर व्यतीत किया. **- महेश दुबे**

My Association with Holkar College

- Dr. S.S. Deshpande

1909-1922
The period of pursuit, knowledge & of "Playing the Game"

In May 1909 I passed matriculation examination from "the Indore English Madresa" which in course of years grew into Maharaja Shivajirao High School.I walked to Holkar College, saw Mr. Barwe the College secretary in the college office, and gave him my particulars. I told him that I wanted admission to the junior Intermediate science class of the college. Mr. Barwe noted my particulars in his register and said "yes, you are admitted". There were no forms to fill and there was only a nominal fee of two rupees which I paid. I was also given a room in the East block of the college hostel. Again no forms and no room rent.

There were about eighty students on the College roll. Most of them lived in the college hostel with accommodation for seventy. The rest came from the city, walking. There were very few bicycles then.

The teaching in the college was upto B.A. and B.Sc standard. The subjects taught were English, Persian, Sanskrit, History, Logic, Philosophy, Mathematics, Physics and Chemistry. The classes taught were (i) junior and senior Intermediate Arts, (ii) junior and senior Intermediate Science. (iii) junior and senior B.A., (iv) junior and senior B.Sc.

The head of the institution was Principal E.C. Cholmondeley. The teaching staff comprised six professors including the principal. There were no assistant professors or lecturers. The principal taught English which was compulsory to all the classes including the science classes. The allocation of teaching in other subjects was as follows :

Sanskrit and English Composition-Professor of Sanskrit. Persian and History-Professor of History, Logic and Philosophy-Professor of Philosophy, Mathematics-Professor of Mathematics, Physics and Chemistry-Professor of Science.

There was only one college building-the main building. A new science block and a gas room facing it were constructed in 1908. A few lectures were given in this building also.

Cholomondley was a tall fine Englishman and a sportsman. He made games compulsory to all the hostellers. Day scholars were also provided with games if they wished. The football and hockey fields, the cricket pitch and the tennis courts were all active every day from 5 P.M. till dusk. Cholomondley himself supervised the games and would see that every hosteller was playing one of them. It was necessary to play the game. His teaching was "If you learn to play the game on the feild that is to say to play according to the code of conduct, then this code of conduct and fairness will be reflected in your behaviour in the society and in all your actions in life".

Morning gymnastic and drill were compulsory. A special army officer used to come to teach gymnastic, and another to teach drill. Cholomondley, riding on horse-back would visit the gymnasium shed every morning.

Although a disciplinarain, Cholmondeley was not a dictator or a bully. Rather he had respect for the dignity of soul in every individual. He was proud of his college-proud of its greatness. He held his principles strongly. Once Mr. Waterfield,

the inspector general of police of Central India wanted to visit the college to interrogate some of the college students who had taken part in the Swadeshi movement. Cholomondley did not allow Waterfield to enter the college premises for this purpose. He told him that they were his students, under his discipline and they could not be approached by an outsider directly.

Gokhale was the professor of science. He ranked first in M.Sc. Physics and again in M.Sc. Chemistry of Calcutta University. He lived in his own house which he built on the college premises, and except for the necessary stay at home, he would always be in the laboratory. He taught with the aim of imparting a thorough and sound knowledge. Pursuit of knowledge was the aim in life. Passing examination had only a secondary place.

Gokhale had leanings towards the "independence struggle" and came into troubles on account of his public speeches in the Swadeshi movement. Cholmondeley told him that his teaching profession and his political views would not go together and therefore he would have to abandon one of them. Gokhale chose to abandon the former. He left the college and went to America where on account of academic merit and industry he rose to the rank of an important officer in the General Electric Company of New York.

Gokuldas succeeded Gokhale as the professor of science. He was aware of the academic eminence of his predecessor and therefore strove hard to maintain the standard of teaching established in the past. He was an M.Sc. in one subject only-I think Chemistry-but he studied intensely and ensured that his teaching was up to the mark both in Physics and Chemistry up to the B.Sc. stage. Besides teaching all the science classes he had to look after the practical work of the B.Sc. classes in physics as well as chemistry. Practicals were not introduced at the Intermediate stage then. The only assistance he received was from one laboratory assistant cum demonstrator.

Mathematics was taught by Pyare Kisshan Wattel- a tall and fair man with a smiling face. He was a scholar. I still see before my eyes the professor carrying every day half a dozen books from the college library for study at home. In the college he would never waste his time, and when not teaching he would be found doing mathematics on sheets of paper. It is not surprising that on account of his scholarly habits he rose to the rank of the Accountant General of the then Bombay presidency.

Logic and philosophy were taught by Desai. He was lean, short and grave and in these respects was a contrast to Wattel. But Desai was as much a scholar as Wattel, even more than him. He had no interest in life except study of his subject. He, like Gokhale, built his house on the college premises, and would be found either, teaching at the college or reading at home. He scarcely moved in the society. With bent neck and engrossed in thought he would be walking in the evening on the Bombay Agra road running by the side of the college. On Sundays he used to give lectures on religion. These were open to all.

Besides doing his duties as the professor of philosophy Desai performed also the duties of the Dean (Warden) of the college hostel. Punctually at eight in the evening he would leave his house to go round the hostel. He would visit every room and satisfy himself that every one is at study.

Cholmondeley retired from service at the end of 1909 and left for England. In his last address to his students he said that he expected them to follow his teaching. "Play the game".

G. Gardner Brown took over as the principal. He was a scholar of history and taught History and English. He too was interested in games like his predecessor, particularly in hockey which he played on the college fields. Besides hockey, football, cricket and tennis were as active as before. He arranged hockey league matches which were played on the college grounds and in which renowned hockey teams, including that of the local Daly college-a close rival of Holkar College in this game-participated.

Gardner Brown died in 1917. He had donated to the college his rare and personal library of History.

It took some time to find a befitting successor to Gardner Brown. The choice was ultimately made in favour of W. Osten Smith.

Osten Smith was not interested in games, but was inclined to religion. Not long after he had taken charge of the college he came into trouble. He felt that some of the day scholars coming from the city were inspired by some irresponsible section of Indore public, and he expressed this impression on the college notice board. There was a resentment from Indore public to this and a mild hint from the Government also. He therefore, in self respect, handed over the charge of the college to the Government and left.

The period 1919-1922 was a period of indecisiveness in regard to the filling of the post of the principal. C. Dobson, then headmaster of Maharaja Shivajirao high school officiated as principal for some time. Guru Dutt Sondhi, who had just been appointed as professor, followed Dobson, again as a temporary measure.

Sondhi was a sportsman, and the college sport activity regained its former level. Sondhi had won honours' degree at Cambridge and while he was officiating as principal his appointment in the Indian Education Service (I.E.S.) on the basis of his educational attainment was announced. He therefore left the college to take his I.E.S. appointment at Government college Lahore where he got full scope for his sports activity.

Sondhi came into international prominence on account of his founding the Asian Games Federation whose object was unification of Asian countries through games.

At the suggestion of some past students of the college, who were about this time high officers of Holkar State government, the latter decided to offer the post of the principal to Gokhale former science professor, who had settled down in America. Gokhale accepted the offer and took over as principal in 1921. This appointment also, like the previous one, did not last long. Gokhale found the political atmosphere not conducive to the growth of his thought about freedom. He therefore left the college in 1922 and went back to America to pursue his occupation which he had just left.

1922-1944 (The period of expansion)

Gokhale was succeeded by Sukhtankar. The latter's specialisation was in philosophy. He studied in Germany and held the doctorate degree in philosophy. By this time the teaching staff of the college had grown to some extent. Physics and Chemistry had one professor each. So also for Persian and History. There was also a professor of economics. The teaching staff in English was increased. Although there were no assistant professors in subjects other than English, Physics and Chemistry were given one demonstrator each.

About 1924 F.G. Pearce succeeded Sukhtankar. Although an Englishman Pearce mixed freely and intimately in Indian society and adopted Indian manners in his home. He could be approached by almost anybody. His interest lay in moulding the character of a student at the formative stage. He would listen patiently to whatever his student wanted to say and would then give him proper advice. He however found that a student entering junior Intermediate class had already passed the formative stage of character and it was not easy to mould it in the desired direction at that stage. He therefore, after having occupied the principal's chair for two years resigned job to become the head master of Kayastha Pathashala at Allahabad in order to experiment on the character moulding at a tender age.

Pearce was succeeded by P. Basu who held the doctorate degree in economics of Calcutta university and who was already at the college as professor of economics. From this period onward, for several successive years, the chair, of the principal remained firmly occupied by one individual. This steadiness brought in its wake the expansion of the college. The process was stimulated by the election of Basu as the Vice Chancellor of Agra University which was founded in 1927. With this position of vantage he occupied, he could quickly bring to the college a number of benefits which ordinarily would have taken long to come. Post graduate teaching was started in English, Economics, Chemistry, History and Law. Commerce, Political science, Marathi, and Hindi were introduced as new subjects. Due to these expansions and consequently a considerable increase in the number of students on the college roll the teaching staff had to be strengthened proportionately.

To provide teaching space for the rapidly growing numbers and for the increased practical work of the science students additional buildings were constructed. These additions comprised a new Physics block, a new Chemistry laboratory. The hostel accommodation was increased by construction of Gambhir block.

The college became one of the top ranking institutions affiliated to Agra University.

Basu occupied the principals' chair for sixteen years and retired in 1940. He was succeeded by H.B. Richardson, a young Englishman. The second world war had broken out in 1940, and it was a difficult task to keep the college students away from the national freedom movement which was gaining strength in the country. Young Richardson found it difficult to keep the students within the frame work of the college discipline. This resulted in Richardsons' handing over the charge of the college to J.B. Raju in 1942 and himself becoming the minister of education in the state government.

Raju was a scholar of philosophy and was reputed on account of his eloquence. He had his training in England. The tremendous responsibility of keeping the college students within the frame of college discipline fell on Raju's shoulders. But with his remarkable skill Raju proved that he was equal to the task. He could make his students feel that he was sympathehtic to them in their leaning towards the national freedom movement. He could also make the government, particulary his boss Richardson, feel that he was keeping the students under discipline. Raju retired in 1944.

1944-1964 The period of reaching post Graduate levels.

The principals who followed Raju' succession were :-

S.S. Deshpande	1944-1945
N. Padmanabhan	1945-1950
H. Ghosh	1950-1954
Dr. W.V. Bhagwat	1954-1964

This was the period in which all the science subjects and some arts subjects reached the maximum level of post graduate, Biology upto Intermediate stage was separated into Botany and Zoology. Each was raised to B.Sc. stage and finally M.Sc. stage. Post graduate teaching in Physics started in 1951, and in Mathematics in 1950. Statistics was started as an additional subject. Philosophy and commerce also attained M.A. and M.Com. stage respectively. Thus all the science subjects namely Mathematics, Physics, chemistry, Botany and Zoology attained the post graduate level of teaching.

A remarkable feature of this period is the enrichment of the science library. Every possible source of money was utilised for this purpose by Principal Bhagwat. The important science journals were subscribed with the object of making references available to those who are engaged in research. Indeed the science library has become a great stimulus for research. It would not be an exaggeration to say that the science library of Holkar College, in particular the Chemistry, is not only equal to but even superior to the science libraries of the universities in Madhya Pradesh.

Shri Narayan Sinh took over as principal in 1964. □□

OUR SPECIAL COLUMN.

We congratulate Dr. P. Basu on his re-election as the Dean of the Faculty of Arts of the Agra University, and we wish him with all our heart a higher and still higher distinction.

We congratulate Prof. Dhariwal M.A. L.L.B. on his nomination by His Excellency the Governer of U.P. who is also the Chancellor of the Agra University - as a member of the Executive Council of the University. He represents there colleges of Central India and Gwalior.

We welcome Mr. M.G. Karnikar, M.A., as a lecturer in English and History for the newly opened section of the Senior B.A. Class.

Our College Library has distinctly improved in course of the past year, for which special thanks are due to Prof. S.N. Dhar M.A., who was in charge of the Libray for the year under review.

We thank Prof. Saghir Ali M.A., the Dean of the Hostel for the great personal interest that he has all along been taking in the wel-fare of the boarders.

We thank Mr. Akolekar the Gymnasium Instructor, for the pains that he has taken to improve the Physical Culture Department of the college. We are glad that his efforts are on the way to success. His activities in games are also praisoworthy.

- From the Holkar College Magazine March - 1940

[A QUIZ FOR THE OLD STUDENTS]

OUR COLLEGE WHO'S WHO

By Shamkant K. Gokhale. (Senior B.A.)

(1) Work is play and play is life.

(2) Laboratory a paradise, world a chaos.

(3) Professor of Romance.

(4) Martial strides and Hitler talk.

(5) Love is the highest morality.

(6) Love is truth and truth love, that is all. Ye know and ye need to know on earth.

(7) Sleepless lies the head that wears the thought.

(8) An economist is one who never economizes.

(9) Grand structure with a grand heart.

(10) Rigorism a boon, sensibility a curse.

(11) Late Latif.

(12) Well Mr.! Look here!
"Morality is the greatest virtue."

(13) "Remove untouchability and help the nation."

- From the Holkar College Magazine March - 1940

श्री विट्ठल राव घाटे (1894-1978) एक योग्य शैक्षिक प्रशासक और मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं. उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं. इनमें - मधु माधव -(कविता-संग्रह), मनोगते, विचार विलासिते (विविध विषयों पर लेख) उल्लेखनीय हैं. चरित्र रेखांकन में उनकी कुशलता को - 'कांही म्हातारे आणि एक म्हातारी' और 'पांढरे कैस हिरवी मनें' में देखा जा सकता है. वे 1913 से 1917 तक होलकर कॉलेज के विद्यार्थी थे. अपने आत्म-चरित्र - 'दिवस असे होते' के एक पूरे अध्याय में उन्होंने कॉलेज की स्मृतियों को प्रस्तुत किया है. 'इंदूरची शिदोरी' -शीर्षक के इस अध्याय को हम उनके पुत्र श्री शिवाजी घाटे की अनुमति से प्रकाशित कर रहे हैं.

इसे प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिये और स्व. श्री घाटे के चित्र के लिये मैं श्री शिवाजी घाटे के प्रति अपने कृतज्ञ आभार व्यक्त करता हूँ.

- महेश दुबे

इंदूरची शिदोरी

☐ विट्ठलराव घाटे

छान थंडी पडली होती. सकाळीच ऊन ऊन पाण्याने स्नान केले. शुचिर्भूत झालों. वर आलों. प्रसन्न व निर्मळ मनाने लिहायला बसलों. आठदहा दिवसांत पेन हातांत घेतले नव्हते. मनाची तयारी करीत होतों. वाट पाहत होतों. देवघरांत पारोशाने जायचें नसतें. मन पारोसें होतें तोपर्यंत थांबलों. आज शुचिर्भूत आहे. मन वर्तमानकाळाखाली वाकलेले नाही. खिडकीतून उडत येणाऱ्या म्हातारी प्रमाणे हलके फूल झालें आहे आणि 1913 सालच्या होळकर कॉलेजकडे उडून गेलें आहे.

आज पुन: प्रत्ययाचा अनुभव आणि आनंद मिळत आहे. पंचेचाळीस शेहेचाळीस वर्षें सरकन गळून पडली आहेत. त्या गावाबाहेरच्या, दूर वसलेल्या, गेरूच्या रंगाच्या इमारती परत दिसत आहेत. तो मिड्ल् ब्लॉक, पलीकडचा वेस्ट ब्लॉक, अलीकडचा ईस्ट ब्लॉक, त्याच्या पल्याडचा तो आनंद क्लब, शेजारचा शिवाजी क्लब, त्याच्या शेजारचा महाराष्ट्र क्लब, परत दिसूं लागले आहेत. मधली दोन टेनिस कोर्ट्स, ईस्ट ब्लॉकच्या पलीकडचें हॉकीचें मैदान, त्याचे ते पांढरे पोल, मैदानापलीकडची शेती, पुढे पसरलेला नवलखा बाग, संध्याकाळच्या संधिप्रकाशांतून अंधारांतून असंख्य काजव्यांच्या चमचमत्या ज्योतिशलाकांचा भेद करून परत अंधाराकडे वेगाने धाव घेणारी माझी होबर्ट सायकल - परत दिसत आहेत. उन्हांत पाय पसरून बसलेला, दाढी खाजवणारा तत्त्व - ज्ञानी सटवा न्हावी दिसत आहे. थलथलीत पोट सावरून डुलुडुलु चालणारा बिंदाप्रसाद दिसत आहे. (त्याच्या बायकोला आम्ही 'बिंदी' म्हणत असूं.) कचरूचा चकणा डोळा दिसत आहे आणि महादूच्या "कुळकर्णी म्हा ऽऽ राज" अशी आरोळ्या परत ऐकूं येत आहेत. आज मन प्रसन्न आहे, मोकळें आहे.

होळकर कॉलेज! माझी गुरुदेवता. माझी माऊली. होळकर कॉलेज ने मला घडविलें. जगांतल्या कोणत्याहि माणसाच्या समोर ताठ मान करून आणि छाती पुढे करून उभें राहण्याची सवय होळकर कॉलेजनेच लावून दिली. लोकशाहीचे धडे होळकर कॉलेजच्या जिमखान्यानेच शिकविले. आज होळकर कॉलेज काय करीत आहे मला माहीत नाही. तीसपस्तीस वर्षांत मी तें पाहिलें नाही. मला तें आता पाहवणार नाही. होळकर कॉलेज फार मोठें झालें आहे, असें ऐकतों. दीड हजार मुलांच्या डोक्यांत ज्ञान कोंबणारी ती गिरणी बनली आहे असें ऐकतों. माझ्या जमान्यांत तें फार लहान होते, पण गुणाने फार मोठें होतें. आता मला तें कॉलेज पाहवणार नाही. मला तुम्ही तेथे नेलेंच तर त्या मिड्ल ब्लॉकच्या पहिल्या नंबरच्या माझ्या खोलीत दुसरा विद्यार्थी बसला असेल. माझ्या कॉटवर तो झोपत असेल माझ्या चित्रांच्या जागीं त्याची चित्रें भिंतीवर असतील. मला तें खपणार नाही. वर्डस्वर्थचें यारो नदीचें आकर्षण म्हणजे हे एक भास होता. कल्पनेचा खेळ होता. प्रत्यक्ष भेटीत तो बुडबुडा फुटला. माझें उलटें आहे माझी 'यारो' - माझें होळकर कॉलेज - मीं पाहिलें आहे, अनुभवलें आहे. त्या - माझ्या अनुभवांस विसंगत असे नवे अनुभव मला नको आहेत. 'यारो रीव्हिजिटेड' मला नको आहे.

मी तसा हळवा नाही. विश्वास ठेवा माझ्यावर. परंतु होळकर कॉलेजचें नांव निघाल्यावर, त्या साऱ्या आठवणी आठवल्यावर मागचें सारें डोळ्यांसमोर उभें राहतें. होळकर कॉलेजने मला काय दिलें? सांगणें कठीण आहे. तेथे पढलों तें बहुतेक गेले तें विसरायचेंच असतें. आणि तसें म्हटलें तर होळकर कॉलेजने मला विशेष ज्ञान दिलें, असें म्हणतां येणार नाही. तें त्या आडदांड, खेळाडू आणि खेळकर कॉलेजचें मुळी ध्येयच नव्हतें. आपण जें जें कांही शिकलों, वाचलें, पाठ केलें, तें सारें वाहून गेल्यावर तळाशीं जें शिल्लक राहतें आणि जन्मभर साथ देतें त्याला मी ज्ञान म्हणतों. कदाचित् त्या संचिताला शहाणपण म्हणणें योग्य होईल. कदाचित् माझें हें चुकत असेल. कारण ज्ञानसुद्धा स्मृतीच्या संदुकींत अडकलेलें असतें - बरेंचसें. ज्ञानापेक्षाहि अधिक महत्त्वाची देणगी मला होळकर कॉलेजने दिली.

त्या देणगीला काय नांव देऊं? पुष्कळ नामें, विशेषणें आणि क्रियापदें वापरावीं लागतील होळकर कॉलेजनें मनाला आणि शरिराला कांही सवयी लावल्या. होळकर कॉलेज ने स्वाभिमान दिला, इभ्रत दिली, कणखरपणा दिला, समजूतदारपणा दिला आणि चॅरिटी दिली. चॅरिटीचा अर्थ सांगणें कठीण आहे. चॅरिटी म्हणजे 'कन्सर्न फॉर अदर्स' (इतरांचा विचार), असें एक जण म्हणतो. मला तें पटतें. होळकर कॉलेजलाहि पटलें होतें. अनेक प्रसंग येतात. निर्णय घ्यायचा असतो आणि मन ताडकन् कान टवकारून सांगत, 'तूं होळकर कॉलेजचा आहेस. तूं असें करतां कामा नये. हें आपल्या परंपरेच्या विरुद्ध आहे. हा द्रोह कामाचा नाही.' आणि मी होळकर कॉलेजची आज्ञा पाळतो. लहानसहान, क्षुल्लक, मामुली गोष्टी असतात; पण त्या निष्ठेने सांभाळाव्या लागतात. कारण मी होळकर कॉलेजचा आहें. मध्यरात्रीं कोणी पाहत नसतांनासुद्धा मी टेनिस कोर्ट ओलांडणार नाही, क्रिकेट पिच् ओलांडणार नाही. आम्हां होळकर कॉलेजच्या विद्यार्थ्यांना तें निषिद्ध आहे. फिरायला निघालो आणि बरोबर एकदोन मित्र असले तर त्यांच्या पायांना पाय जुळवून मी चालतों. लेफ्ट म्हणजे लेफ्ट, राइट म्हणजे राइट. त्यांची चूक होईल. माझी होणार नाही. मी होळकर कॉलेजचा आहें.

होळकर कॉलेजने इतरांशीं पाय जुळवायला शिकविलें, इतरांचा विचार करायला शिकविलें. होळकर कॉलेजने खेळायला शिकविलें आणि खेळतांना खेळाडू राहण्यास शिकविलें. मी खेळलों नाही, पण जीवनांत खेळाडू राहिलों. जीवनांत क्रिकेटची शिस्त व नियम कटाक्षाने पाळले.

श्री विट्ठलराव घाटे

आम्ही तिघेचौघे गरीब होतों. सहासात सदरे आणि पांचसहा कोट. आम्हां एकादोघांना तर एकच कोट होता. चौघांची मिळून जस्ताची एक ट्रंक होती. ट्रंकेंत चौघांचे कपडे आणि चौघांचे पैसे. गरज लागेल त्याने कपडे उचलावे, पैसे उचलावे; विचारपूस नाही, हिशेब नाही. होळकर कॉलेजने हिशेबीपणा शिकविला नाही. द्यायला शिकविलें, घ्यायला शिकविलें नाही. 'वन हार्ट, वन पर्स' हें आमचें ब्रीद होतें. आम्ही त्याला जागलों.

आमचें कॉलेज म्हणजे ईटन, हॅरो यांसारख्या इंग्लिश पब्लिक स्कूलची हिन्दी आवृत्ति होती. फक्त तें गरिबांचें पब्लिक स्कूल होतें. श्रीमंतांचा तेथे बडेजाव नव्हता. कोणच्या पायांत बूट नसत. कुणी बूट घालून आला, कुणी केस वळवून भांग पाडला की सारे हसत. दुसऱ्या दिवशीं तो पाय जुळवून घेई. आमचें कॉलेज लहान होतें. सव्वाशे दीडशे विद्यार्थी असतील नसतील. मुली नव्हत्या. त्या काळांत फारशा मुली शिकत नव्हत्या. ज्या दोनचार शिकायच्या त्या मिशन कॉलेजमध्ये जायच्या. आमचें कॉलेज दूर, शिवाय रांगडें. त्यांना तें परवडत नसे. आम्हांलाहि त्या परवडत नव्हत्या. होळकर कॉलेजमध्ये मुली येणे ही कल्पनाच आम्हांला असह्य झाली असती. होळकर कॉलेजचें वातावरण, परंपरा, श्रद्धा आणि पथ्यें त्या मुलींना मानवली नसती. पुष्कळ मुलांना सुद्धा तें सारें मानवलें नाही, झेपलें नाही. साहजिकच अशीं मुलें होळकर कॉलेज मधून शिकून कोरडीं ठणठणीत बाहेर पडलीं.

आम्ही तसे नव्हतों. एखाद्या भुताने पछाडावें त्याप्रमाणे त्या अमूर्त अलिखित परंपरा नवागताला पछाडीत असत. त्याचा कबजा घेत असत. 'अरेबियन नाइट्स्' मधल्या लोहचुंबकाच्या डोंगराप्रमाणे त्या परंपरा, त्या श्रद्धा, नव्या विद्यार्थ्याला आपल्याकडे ओढीत असत. युनिव्हर्सिटीच्या कायद्यापेक्षा, प्रिन्सिपॉलच्या हुकुमांपेक्षा, किंबहुना आई - बापांच्या आज्ञांपेक्षा आणि प्रेमापेक्षा कॉलेजच्या परंपरांना आम्ही अधिक किंमत दिली.

परंपरांना फार मोल आहे. परंपरा राष्ट्राच्या, समाजाच्या, संस्थांच्या असतात. परंपरा म्हणजे समाजाच्या, संस्थांच्या अनुभवांचा अर्क. समाजाचें किंवा संस्थांचें सामुदायिक शहाणपण-किंवा वेडेपण. व्यक्तीच्या जीवनांत सवयींना जें स्थान असतें तेंच स्थान समाजाच्या किंवा संस्थांच्या जीवनांत परंपरांना असतें. परंपरा म्हणजे समाजाच्या सवयी.

आमच्यांत शिस्त होती, लष्करी शिस्त होती. सिंगल बार, डबल बार करतांना चूक झाली, राइट टर्न, लेफ्ट टर्न करतांना पाय चुकला, तर तो अडाणी अशिक्षित सार्जंट शिवी हासडायचा आणि ढुंगणावर वेताची छडी मारायचा. आमच्यांत स्वायत्तता होती. कॉलेजचा अध्ययन - अध्यापना व्यतिरिक्त सारा कारभार आम्ही विद्यार्थी चालवीत होतों. प्रिन्सिपॉलला, डीनला किंवा कोणा प्रोफेसरला आमच्या कारभारांत लुडबुड करण्याची परवानगी नव्हती. आम्ही फक्त चम्लेसाहेबांनी आणि शांताराम अनंत देसायांनी घालून दिलेल्या परंपरा जाणत होतों, शिरसावंद्य मानीत होतों. आम्ही फक्त त्या परंपरांची जोपासना करणाऱ्या, त्यांची अंमलबजावणी करणाऱ्या चौथ्या वर्षातील सीनिअर विद्यार्थ्यांचे हुकूम मानीत होतों.

सीनिअर विद्यार्थ्यांनी राज्य करावें, हुकूम सोडावेत, कित्ता घालून द्यावा आणि ज्यूनिअर विद्यार्थ्यांनी तो इमानेंइतबारें गिरवावा, ही एक आमची परंपरा होती. मारामारीचा प्रसंग आला, कोणी ज्यूनियर विद्यार्थ्यावर हात टाकायला धजला, तर सीनियर विद्यार्थी ज्यूनियरला पाठीशीं घेई, घाव आपल्या छातीवर घेई आणि मग दोघे मिळून हातांतल्या हॉकी स्टिकने त्या अडदांडाचा समाचार घेत. होळकर कॉलेजने कधी हार खाल्ली नाही. सीनियर विद्यार्थी जागरूक होते. सीनिअर विद्यार्थी कारभारी मंडळाचा अध्यक्ष होई, चर्चा-समितीचा अध्यक्ष होऊन प्लेटफॉर्मवर खुर्चीवर बसे. प्रिन्सिपॉल आणि प्रोफेसर्स खाली बसत, चर्चेंत भाग घेत, अध्यक्षांचे हुकूम मानीत. कॉलेजच्या स्नेहसंमेलनासाठी कधीकधी महाराज येत. कधी मुख्य पाहुणे म्हणून कोणी बडे गृहस्थ येत. सीनिअर विद्यार्थ्यांमधला प्रमुख या पाहुण्यांचें स्वागत करी.
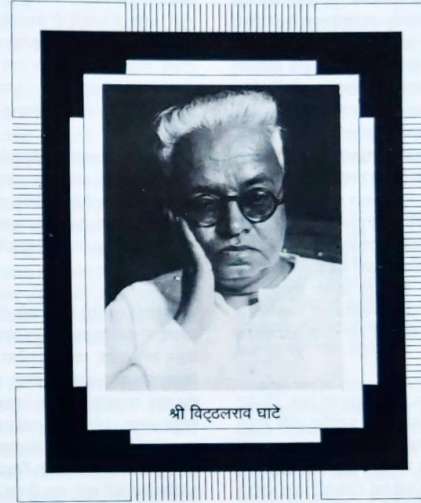
महाराजांच्या बरोबर आणि बड्या पाहुण्याबरोबर प्लॅटफार्मवर खुर्चीला खुर्ची लावून बसे. स्वागताचें भाषण तो करी. प्रिन्सिपॉल आणि प्रोफेसर मंडळी खाली इतरेजनांत बसत.

आमच्या कॉलेजने विडी कधी ओढली नाही. ब्राउनसाहेब चिरूटाचा फार शोकी. परंतु कॉलेजच्या आवारांत त्याने कधी चिरूट शिलगावला नाही. होळकर कॉलेज वर्गांत अनवाणी जात असे. बूट घालणें हें नाजुकपणाचें लक्षण समजण्यांत येत असे. मात्र कॉलेज बाहेर जातांना पॉलिश करून पांढराशुभ्र केलेला कॅनव्हसचा शू पायांत असे आणि हातांत हॉकीची स्टिक. हातांत हॉकीची स्टिक घेऊन चारजण पाय जुळवून चालत असले म्हणजे इंदूर पटकन् उमगायचें, होळकर कॉलेज चाललें आहे.

आम्ही अनेक जातींचे होतों. आमचे धर्म अनेक होते. पण चार वर्षें होळकर कॉलेजचा विद्यार्थी हीच आमची जात. कॉलेजच्या परंपरा आणि इभ्रत यांची जोपासना करायची हाच आमचा धर्म होता. आम्हाला इतर जात, इतर धर्म माहीत नव्हते. आमच्या शाळेप्रमाणेच आमच्या कॉलेजचें लक्ष खेळण्याकडे असे. खूप खेळायचें, खूप व्यायाम करायचा, दोन दोन तीनतीन मैल दौड करायची, क्लबांत खूप पोळ्या खायच्या बेताचा माफक अभ्यास करायचा, आणि रात्रीं लहान बाळाप्रमाणे गाढ झोपीं जायचें, असा आमचा कार्यक्रम असे. जिम सक्तीची होती. आठवड्यांतून दोनदा किंवा तीनदा जिम् करावीच लागे. हौशी होते ते 'डेली बॅच' मध्ये खुषीने नांव देत आणि रोज जिम करीत. जिमची पाळी असली म्हणजे सकाळीं उठावें, नळाखाली थंड पाण्याने स्नान करावें, इतक्यांत पहिली बेल होत असे. घाईघाईने हाफ पॅंट चढवीत, बटनें लावीत, अंधारांत, अंधुक प्रकाशांत 'शेड' मध्ये धावत जावें, आप आपल्या तुकडीच्या कॅप्टनच्या (हा सीनिअर विद्यार्थी असे) हुक्मतीखाली अर्धा मैल दौड मारून यावें, अंगांत उष्णता आली म्हणजे सिंगल बार, डबल बार करावा. घोड्यावरून उड्या माराव्या. दुसऱ्या तुकडीची पहिली बेल झाली की आप-आपल्या खोलींत जावें, स्टोव्ह पेटवावा. चहा हाच आमचा एकुलता एक छंद होता. आमचा मासिक खर्च जेमतेम अंकरा-साडेअकरा रुपये असेल जास्ती खर्च आम्हाला परवडला नसता. तरी पण मेरी गोल्ड छाप चहाचा आम्ही शौक केला.

संध्याकाळीं कोणता तरी एक हार्ड गेम सक्तीने खेळावा लागे. (क्रिकेट किंवा टेनिस हे होळकर कॉलेजचे सॉफ्ट गेम होते.) फुटबॉल-हॉकी खेळून आल्यावर विश्रांती साठी आणि करमणुकीखातर टेनिसचा एखादा हलकाफुलका सेट खेळलों म्हणजे आमचें समाधान होत असे. इतकें होतें तोच दामूअण्णा क्लबची बेल बाजवीत, महादू गडी त्या बेलपेक्षाहि मोठा आवाज आणि हेल काढून ओरडे. कोणी हातांत हॉकीस्टिक, कोणी रॅकेट, कोणी तसेच क्लबकडे धावत आणि दामूअण्णांनी केलेल्या गरमागरम पोळ्यांवर भुकेल्या लांडग्याप्रमाणे तुटून पडत! साडेनवाला रोलकॉलची बेल होते असे. पुढे कंदील घेऊन सटवा, मागे डीनसाहेब आमची हजेरी घ्यायला येत. साडेन वानंतर दुसऱ्याच्या खोलींत जाण्याची परवानगी नसे. अभ्यास करावा लागे. उपाय नव्हता. पावसाळ्यांत मोठी गंमत होई. उन्हाळ्यांत कॉट्स् बाहेर काढलेल्या असत. आम्ही बाहेर आकाशाखाली झोपत असूं. गझल, कव्वाल्या म्हणत असूं. कविता म्हणत असूं आणि झोपीं जात असूं. एकदम पाऊस यायचा. मग धांदल उडायची. होड लागायची; कोण जास्ती वेळ भिजतोय. कोण सर्वांच्या शेवटी खोलीच्या आसऱ्याला जातोय. शर्यत जिंकण्यासाठी डोक्यावरून ब्लँकेट घेऊन आम्ही तसेच भिजत पडायच, एकमेकांकडे चोरून पाहायचे, हळूहळू एकेक जण हार खायचा आणि शरण यायचा. खोलीकडे धावायचा. वाय्. के. कुळकर्णी शेवटपर्यंत टिकायचे, विजयी व्हायचे.

अशा गोष्टींत वाय्.के. नेहमीच विजयी होत. वाय्.के. वर 'गा यशवंता आनंदाने' ही कविता मीं लिहिली. उत्तम गवई, उत्तम बजवय्ये, बऱ्यापैकी कवि गोष्टीवेल्हाळ होते; होते म्हणजे आहेत. रात्र-रात्र गप्पा मारायचे, रात्र-रात्र सायकल दामटायचे; सिंगल बार, डबल बारमध्ये प्रवीण. दौडींत सर्वांच्या आघाडीवर. असे आमचे कुळकर्णी होते. फार संथ. साऱ्या गोष्टी सावकाश करायचे. खाकरायला तीन मिनिटें लागायचीं, हात धुवायला पांच. घासूनपुसून परत परत पाय धुवायला सहज पंधरा मिनिटें लागत. वाय्.के. चा स्नानविधी पाहण्यासारखा होता. सोप सनलाईटच असायचा. जास्त किंमतीचा सोप परवडला नाही. पण दिमाख आणि शान नूरजहानची! खायचे थोडेंच, पण अर्धापाऊण तास लागायचा. वाचायचे थोडेच, पण त्यालाही फार वेळ लागायचा. कुळकर्ण्यांनी परिक्षेचीं सारीं टेक्स्ट बुकें वाचलीं असें कधीच घडलें नाही. आणि जीं वाचलीं तीं शेवटपर्यंत वाचली असेंहि कधी होत नसे. शौचास जाण्यास निघाले म्हणजे चारचौघांना घेतल्याखेरीज जात नसत. लोकसंग्रह दांडगा. संडासांत अर्धा पाऊण तास गप्पा करीत. बाकीचे साथीदार कंटाळून जात. अभ्यासाखेरीज वाय्.के. चे सारें ठीक, 'बा-जाबत' होतें. अभ्यासाला मात्र त्यांचा नैष्ठिक विरोध असायचा. होळकर कॉलेजचें तें ब्रीदच नव्हतें.

कुळकर्णी गप्पाष्टकांच्या संप्रदायाचे शंकरचार्य होते. एकदा गप्पा मारूं लागले म्हणजे काळवेळाचें त्यांना भान राहत नसे. एकदा क्लबांत जेवून नळावर हात धुण्यासाठी म्हणून गेले, मागोमाग इतर दोनचार सांप्रदायिक आले. कसला तरी विषय नेघाला. झालें. हात धुण्याची कोणासच आठवण राहिली नाही. गप्पा चालू राहिल्या. सारे हात वाळले आणि 'रात्रिरेव व्यरंसीत्' अशी स्थिति झाली.

कुळकर्णी सहलीचे फार शोकी. हिवाळ्यांत मध्यरात्रीं कडक थंडी पडली असतां, जो तो ब्लँकेटखाली गुडुप झोपला असतां कुळकर्णी अशा रात्रीं सायकल घेऊन बाहेर पडत, माझ्या खोलीवर येत, मला उठवीत; आणखी एकदोघां निशाचरांना बाहेर काढीत. आम्ही सारे जण आपापल्या साकलवर स्वार होत असूं. सायकल नेईल त्या दिशेला आणि त्या वेळपर्यंत जात असूं. गप्पा चालूच असत. थंडीमुळे दात वाजत असत. हॅंडलवरची बोटें काकडून जात. मग पाळीपाळीने एकमेकाच्या खिशांत हात घालून हातांना ऊब आणीत असूं. एकदा रात्रीं असेच सायकलवर निघालों ते थेट देवासला जाऊन पोहोचलों. फडणिसांच्या घरीं गेलों, चहा घेतला आणि परत इंदूरला आलों. We were healthy animals; rather wild but healthy. हुंदडणाऱ्या वासरांसारखे होतों. चार पावलें चाललों की एकदम धावायला लागायचों.

कॉलेजपासून दीडदोन मैलांवरच पिंपळ्या तलाव होता. फार शांत आणि रम्य स्थान होतें. कधीकधीं आम्ही त्या तलावावरच्या एका बाकावर कविता म्हणत रात्र जागवली, ऊष:कालचीं कोवळीं किरणें अंगावर घेतलीं आणि तसेच कॉलेजांत येऊन स्टोव्ह पेटवला. रात्रभर जागले असले तरी वाय्.के. नेहमीप्रमाणे वेळेवर उठत, शेडमध्ये जाऊन डेली बॅचच्या कॅप्टनचें काम करीत, व्यायाम करीत आणि तसेच शेडमधून पळतपळत माझ्या खोलीकडे येऊन दार ठोठावीत. त्या वेळीं एका संगीत नाटक मंडळींचें 'प्रह्लाद' हे

नाटक बरेंच लोकप्रिय झालें होतें. आम्हीं तें दोनदा पाहिलें. पहिला प्रवेशच मोठा खुमासदार होता. हिरण्यकश्यपु तप करीत आहे, शंकराला आळवीत आहे, असा तो प्रवेश होता. शंकराला आळवीत असतांना तो 'शुष्क या शरीरें। शुष्कोपचारें' हें पद म्हणत असे. पदाची चाल छान होती. वाय्.के. नी त्याच चालीवर माझ्यावर पद्यरचना केली. जागरण झाल्यामुळे फार नाही पण नऊ वाजेपर्यंत मी झोपत असें. वाय्.के.ना. तें कधी खपलें नाही. जबरदस्तीने मला आरडून ओरडून उठवायचे, दार उघडायला लावायचे. मला पूर्ण जाग यावी म्हणून हाताने धरून सबंद मिडल् ब्लॉकला मला पळतपळत प्रदक्षणा घालायला लावायचे आणि मग सायकलवर स्वार होऊन स्वत: झोपत झोपत गावांत शिकवणीसाठी जायचे. अनेक प्रसंगीं मी वाय्.के.ना. दाद न देतां तसाच पडून राहीं, अशा वेळीं 'प्रल्हाद' नाटकांतल्या त्या पदाच्या चालीवर वाय्.के. म्हणायचे,

''घाटे उठा हो। दहा वाजण्याला आले
वेळ फार झाला
चहा घ्यावयाला
*** * * उठोनी तोंड धुवा हो। घाटे उठा हो.''**

होळकर कॉलेजचा आहार जबरदस्त होता. सात पोळ्या म्हणजे 'किस चिडियाँ की बात'. त्यांतल्या त्यांत दुबळा मीच होतों. सात पोळ्याच खात होतों. खाली मान घालावी लागे. कॉलेजच्या खवय्यांची कीर्ति पंजाबपर्यंत गाजली. आमचा डी.एन. देव कॉलेजांतून सुटायचा की थेट क्लबमध्ये टपकायचा. चारपांच पोळ्या खिशांत घालायचा, फुटबॉलच्या मैदानापर्यंत पोहोचण्यापूर्वी पोळ्या फस्त होत असत. आमचे बिडवई फार सात्त्विक व शांत. एकदा सुटींत रात्रीं झोपले होते. विहिरीवर आमचा भजीं खाण्याचा कार्यक्रम चालू होता. मनसोक्त खाऊनसुद्धा परातभर भजीं उरलीं. काय करावें हा प्रश्न उद्भवला. एकाने वेस्ट ब्लॉकमधून गाढ झोपेंत असलेल्या बिडवईना बोलावून आणलें. डोळे चोळीतच आले; परातीसमोर डोळे चोळीत बसले. सारी भजीं त्या स्थितींतच पोटांत गेलीं. मागून तांब्याभर पाणी प्याले आणि लगेच न बोलतां स्वस्थानीं जाऊन निद्राधीन झाले. काय ही तपश्चर्या!

होळकर कॉलेजांत सर्व जण म्हणजे बरेच जण गुरूवारचा उपास करीत. आनंद क्लबचे दामूअण्णा आणि शिवाजी क्लबचे रघुनाथराव उपासाला शिंगाड्याचा चमचमीत शिरा करीत. आठवण झाली म्हणजे अजून तोंडाला पाणी सुटतें. आमचे शास्त्रीबोवा आमच्या आनंद क्लबांतच जेवत. त्यांचें नांव महमद. फार सात्त्विक, सरळ आणि गोड मुसलमान होता तो. त्याला तें चमचमीत दृश्य पाहून सात्त्विक संताप आला. उपरति झाली. महमद गुरूवारचा उपास करूं लागला. हिंदु संस्कृतीचा तो विजय होता. महमद पुढे डेहराडूनच्या पब्लिक स्कूलचा नांवाजलेला प्राध्यापक झाला. त्याने क्रिकेटमध्ये नांव काढलें. होळकर कॉलेजचें नांव राखलें.

विष्णुपंत बारपुते ही होळकर कॉलेजची एक चालतीबोलती संस्था होती. माझ्या पिढीचें तें एक सांस्कृतिक केन्द्र होतें आणि प्रेरक शक्तीहि होती. आम्हां कांही विद्यार्थ्यांना बारपुत्यांनी फार सांभाळलें, वाट दाखविली, विचार करायला लावलें, थोडीबहुत रसिकताहि दिली.

बारपुते तसे आमच्यापेक्षा किती तरी मोठे होते. आम्हांला नुकती कोठे मिसरूड फुटली होती. कॉलेजांत आल्यावर सनलाईट सोप आणि लायन ट्रूथ पावडर यांच्या सहवर्तमान लाजतलाजत आम्हीं सहकारी तत्त्वावर क्रॉपचा वस्तरा खरेदी केला होता. कोणाच्याहि घरीं बंदिस्त न्हाणी नसे. साहजिकच माझ्या पिढींत पुरूषांना-विशेषत: मुलांना खरूज आणि स्त्रियांच्या कमरेला गजकर्ण हमखास असायचें. कॉलेजांत येण्यापूर्वी राखुंडी आणि शिकेकाई यांवरच काम भागे. बारपुत्यांच्या पाठीपर्यंत लोळणाऱ्या अस्ताव्यस्त आणि राकट कॅसांत (ज्यांनी तेल कधीच पाहिले नव्हतें) पांढरूक डोकावूं लागली होती. परंतु बारपुत्यांनी आपलें वय आम्हांला जाणवूं दिले नाही. नेहमी अगदी सहज पणे ते आमच्या पातळीवर वावरत, खेळीमेळीने वागत आणि कॉलेजच्या परंपरांची आपल्या उदाहरणाने आम्हांला जाणीव करून देत.

आधी विद्यार्थी म्हणून आणि मग डेमान्स्ट्रेटर म्हणून बारपुत्यांनी होळकर कॉलेजच्या मिडल ब्लॉकच्या कोपऱ्याच्या खोलींत उणींपुरीं दहाबारा वर्षें घालविलीं. जास्ती पण कमी नाही. कॉलेजचे पहिले प्रिन्सिपॉल चंमले (स्पेलिंग Cholomondelay) यांचे बारपुते आवडते विद्यार्थी. शांताराम अनंत देसायांशीं त्यांचा जवळचा घरोबा. या पूर्वसूरींनी घालून दिलेल्या परंपरा बारपुते निष्ठेने सांभाळीत. एखादें नवीन आलेलें पोर चुकून टेनिस कोर्ट ओलांडूं लागलें तर जटा झाडून डोळे मिचकावीत, हसत मोठ्याने ओरडत ''दॅट्स् बॅ ऽऽ ड.'' पोर घाबरून परते. परत चूक होत नसे. नवीन आलेलीं मुलें आपसात भलतें सलतें बोलूं लागलीं तर बारपुते हळूच जवळ जात, पाठीवरून हात फिरवीत आणि मृदु स्वरांत म्हणत, "That's not correct. You can't speak like that here; you see, you see." मुलें विरघळून जात. घरून आणलेली भाषा टाकून देत. कॉलेजची शिस्त आणि संयम पाळूं लागत.

'साल्या' हा शब्द मात्र आमच्याकडे संभावित आणि सभ्य समजला जाई. तें प्रेमाचेंहि संबोधन होतें. जिवलग मित्र भेटला म्हणजे पाठीवर जोराने थाप मारून विचारण्यांत येई, ''काय रे साल्या, कोठे होतास?'' तोहि न चुकतां परतफेड करी. होळकर कॉलेजचा असा एक खास शब्द होता, विशेषण होतें - 'जड्ड'. वेदांतील ब्रह्माप्रमाणेच या शब्दाचा अर्थ उकलणें कठीण. कोणा माणसाच्या संदर्भात कोणत्या परिस्थितींत तो शब्द वापरला यावर त्याचा अर्थ अवलंबून राही. बहुधा 'जड्ड' खांडव्याकडून आला असावा.

बारपुते फकीर होते आणि रसिकहि होते. होते म्हणजे आहेत. अजून सारें यथासांग चालू आहे आता पाऊणशे वयमान आहे. पण अजून सायकलवर गावभर भटकणें चालू आहे. ओरडणें आणि झिंज्या झाडणें चालू आहे. अजूनहि मुलांमुलींना घेऊन सातपुड्याचीं दऱ्याखोरी लाथाडीत सहलीला गेले तर हातांतील काठी किंवा एखाद्या झाडाची तोडलेली फांदी फिरवीत फिरवीत सर्वांच्या पुढे चालतील. अजून उखडपेंडी त्यांचें एकुलतें एक आवडतें पक्वान्न) खाण्याचा प्रसंग आला तर कोणाला हार जाणार नाहीत. उपासनेला दृढ चालवीत आहेत.

विष्णुपंत वयाच्या तेविसाव्या-चोविसाव्या वर्षीच विधुर झाले. आणि गेलीं पन्नास वर्षे विधुरच राहिले. बायको गुणी होती, देखणी होती. फार प्रेम केलें. ती गेल्यावर अर्धशतक टेबलावरच्या तिच्या फोटोची प्रियाराधना चालू आहे. कॉलेजच्या त्या खोलींत रोज सकाळीं फोटोखाली दोन ताजीं फुलें दिसत. उंची उदबत्ती पेटलेली असे. गत पत्नीविषयीं सहसा बोलत नसत. उल्लेख करायचें टाळीत. पुष्कळ वेळा जीवनांत अनुक्त आणि अनुल्लेखित हेंच प्रभावी असतें. उल्लेख झाला नाही तरी मिड्ल ब्लॉकच्या मंद प्रकाशांतल्या त्या खोलींत

गतपत्नीचें अस्तित्व भरलेलें असे आणि आम्हांला ते जाणवे. बारपुते मिड्‌ल ब्लॉकमध्ये राहत. दिवसभर आमच्याबरोबर असत; हॉकी-फुटबॉल खेळत आमच्याबरोबर वाचीत, चर्चा करीत, गप्पा मारीत. परंतु रात्र झाली म्हणजे चार फर्लांगावरच्या माळावरच्या डॉक्टर तांब्यांच्या प्लेगच्या झोपडींत जात. जवळपास चिट पाखरूं नसे. सोबत नुसती रातकिड्यांची; पुष्कळदां सापांची. आणि हरहमेश गत स्मृतिंची. बारपुत्यांना साप फार आवडत. सापांची गति, त्यांची कांति, त्यांची नजाकत, त्यांना मोहून टाकी. सापांनाहि बारपुते फार आवडत. दोघे एकमेकांकडे टक लावून पाहत. बारपुते साप दिसला की त्याच्या समोर स्थिर असे उभे राहत, त्याच्याकडे रोखून पाहत; तो स्थिर होई, रोखून पाही आणि समानधर्म्याची ओळख पटून तो खुशाल होऊन चालता होई. बारपुत्यांचे हे असले कितीतरी मुकाबले माझ्या उपस्थितींत झाले आहेत. रात्रीं मातीचा भला मोठा घडा भरून ठेवीत. सकाळीं उठल्यावर चिमणीसारखें तोंड धूत. दात घासण्याच्या भानगडींत सहसा पडत नसत. बर्फासारख्या गार पाण्याचा तो घडा डोक्यावर रिचवीत, उघड्यावर सूर्याभिमुख बसत, मेडिटेशन करीत. कांही तात्त्विक वाचन करीत. लांब गुडघ्यापर्यंतचा मुंडीछाट सदरा घालीत आणि सायकलवर स्वार होऊन मिडल ब्लॉकमध्ये येत.

तोपर्यंत आमची जिम संपलेली असायची. आम्ही घाम पुशीत खारींना, पाखरांना झाडांच्या शेंड्यांना दगड मारीत टिवल्याबावल्या करीत फिरत असायचे. एकमेकांच्या बायसेप्स तपाशीत असायचे. बारपुते व्हरांड्यांत उभे राहून ललकारी सोडीत, "खम् ऑन, खम् ऑऽऽन." उच्चाराबद्दल फार चोखंदळ होते. कम् म्हणायचे नाहीत. पॅरीस न म्हणतां पारी म्हणायचे. लोक हसायचे.

टी क्लबचे बुभुक्षित साभासद धावत खोलींत येत. बारपुते कोणाचा कान पकडीत, कोणाचे केस ओढीत, लहानग्या सभासदाचे गालगुच्चे घेत आणि "अकडं मकडं पकडं; कुड्डु कुड्डु कुड्डु" यासारखे कांहीसे आदिमानवाच्या भाषेंतले शब्द उच्चारीत आमचें स्वागत करीत!

कधी गाण्याची लहर लागे. आवाज भसाडा पण बुलंद. सुटीच्या दिवशीं तो मोकळे पणाने वर चढे. रंगात असले म्हणजे 'ऍंडी ऍंडी आली आली' ही ओळ घोळून घोळून, ओरडून ओरडून म्हणत. आवाज आसमंतांत दुमदुमे. पाखरे उडून जात. हातांतल्या चहाच्या बशा खाली पडत. हाहाकार उडे. मी खोलीबाहेर येऊन थोडा वाकून, सचिंत मुद्रेने चौकशी करीं, "अरेरे! काय झालें हो? असें केव्हापसून झाले? पोट दुखतें वाटतें?" आणि मग बारपुते आपल्या झिंज्या वाऱ्यावर इतस्ततः उडवीत कंगवा घेऊन माझ्यामागे धावत.

बारपुते तसे रसज्ञ होते. चहाचा खूप शोक केला आणि आम्हांला लावला. चहा करायचें तंत्र कटाक्षाने पाळीत. चहांत कच्चें दूध अगदी माफक प्रमाणांत घालायचे. दर कपामागे दीड चमचा सपाट माप साखर. कमी नाही, जास्ती नाही. आम्हीं जादा साखर किंवा दूध घातलें तर सुनवायचे, "पितां काय, चहा की बासुंदी?"

बारपुत्यांचे तीन आनंद होते आणि ते अगदी ब्रह्मानंदसहोदर होते-सुंदर झोप, नंतर सुंदर शौच्याला आणि नंतर सुंदर चहाचा प्याला. या तीन आनंदांपुढे सारें फिकें होतें!

खोली नेहमी बंद असायची. खिडक्यांना आणि दारांना गडद अस्मानी रंगाचे पडदे. खोलींत अंधुक आणि शीतल असा प्रकाश असायचा. भिंतीला दोनचार निवडक चित्रें. त्यांतलें ख्रिस्ताचें किशोर वयांतलें चित्र फार सुंदर होतें. टेबलावर बेझंटबाईंचा फोटो अग्रस्थानीं असे. बाईंवर अपार श्रद्धा होती. बाईंनी काढलेलीं मासिकें आणि साप्ताहिकें श्रद्धेने वाचीत. सभेंत भाषण करतांना वाक्यांत बाईंच्या सारखी लय साधीत; बाईंप्रमाणे अंगठ्याजवळचें बोट पुढे करून मुद्दा पटवीत. कधी बोट दिसे, कधी मुद्दा!

बाईंनी भारतासाठी स्वतंत्र बालवीर-संघटना काढल्यावर बारपुत्यांनी तें काम तत्परतेने अंगावर घेतलें. मध्यभारतांत बालवीर-चळवळ उभारली, नांवारूपाला आणली. बालवीरांच्या तीन पिढ्या तयार केल्या. त्यांचीं मनें निर्मळ केलीं. इंदूरच्या मुलांमुलींना धीट केलें. बारपुत्यांच्या मागे इंदूरची मुलें आणि मुली सातपुड्यांत मेंदीकुंडाकडे सहलीस जात, डोंगर चढत, ठेंचाळत, हसत, परत चढत, झाडावर चढत, वानरांप्रमाणे पळत, प्राण्यांचे आवाज काढीत, तारे आणि वनस्पति ओळखूं लागत आणि खूप पोट भरलें म्हणजे परत येत. बारपुत्यांनी आम्हांला पुषकळच दिलें. ते दिवस आणीबाणीचे होते. महायुद्ध सुरू झालें होतें, गोखले गेले होते. टिळक मंडालेहून आले होते. कॉलेजांत चार जण जमले म्हणजे महायुद्धावर आणि राजकारणावर चर्चा चाले. बहुतेक कॉलेज जर्मनीच्या बाजूचें होते. नुकत्याच निघालेल्या 'क्रॉनिकल' मध्ये दोस्तांच्या ताज्या पराभवाची खबर वाचली म्हणजे सर्वांना बरें वाटे. बारपुत्यांनी या बाबतींत आम्हां कांही जणांचा तोल जाऊं दिला नाहीं. आम्हांला जर्मनीविषयी कधीच सहानुभूति वाटली नाही. चहा पितांना आणि संध्या-सकाळी खेळणें झाल्यावर किंवा क्लबमधून जेवून आल्यावर बारपुते मध्ये आणि आम्ही भोवती, कधी खोलींत, कधी व्हरांड्यांत, कधी टेनिस कोर्टालगतच्या हिरवळींवर बसायचे कोणी पडायचे, कोणी गवताचें पान कुरतडीत बसायचे आणि अनेक विषयांवर चर्चा व्हायची. बारपुत्यांच्या सहवासांत भाषणाची आणि चर्चेची पातळी कधी खाली गेली नाही. माझ्यावर तर बारपुत्यांचे फार उपकार आहेत. मी ते जाणतों. बारपुत्यांच्या सहवासाने किंचित्काळ माझें मन थिऑसफीकडे वळलें. थिऑसफिक जीवनांत त्या काळीं सौंदर्याला महत्त्वाचें स्थान होतें. निळसर मखमली टोपी, लांबसडक केस, मुंडीछाट सदरा, सुंदर वहाणा, असा थिऑसफिस्टांचा थाट असे. गांधीजींच्या पूर्वीच या संप्रदायाने इंग्रजी पोशाखाचा दिमाख कमी केला. टेबलावर सुंदर जळती उदबत्ती भिंतीला सुंदर भारतीय चित्रांचे व शिल्पांचे नमुने, अशी खोलींत नजाकत असे. दिवाणखान्यांत खुर्च्यांऐवजी भारतीय पद्धतीची सुंदर सुसज्ज बैठक असायची. मी या सौंदर्याने भारावलों. लांब केस ठेवले बारपुत्यांबरोबर तसा फोटो काढला. या सौंदर्यापेक्षीहि आकर्षण बेझंटबाईंच्या भारतसेवेचें, वक्तृत्वाचें, धाडसी देशव्यापी प्रचाराचें आणि भव्य उत्तुंग व्यक्तिमत्त्वाचें होते. 'कॉमनवील' आलें की मी श्रद्धेने वाची.

पण थिऑसफी मला मानवली नाही. माझें गणित कच्चे होतें. मी हाडाचा कवि थिऑसफीने धर्मरहस्याचें एक आगळें गूढ विज्ञान तपशीलवार केलें होतें. अमूर्त अशा किंवा हिमालयांत तप करीत असणाऱ्या महात्म्यांच्या आप्तवाक्यांवर फार भिस्त होती. माझ्यांत असली श्रद्धा बाळगण्याची शक्ति राहिली नव्हती. शिवाय धर्माचें रुक्ष तपशीलवार शास्त्र केलेलें मला रुचलें नाही. मी त्या वयांत धर्माकडे भावनांच्या धुक्यांतून पाहत असें. आणि मला तें दृश्य रम्य वाटायचें. कांही थिऑसफिस्ट हिंदु धर्मात शिरलेल्या व रुढ झालेल्या कर्मठ कर्मकांडाचें, चातुर्वण्याचें, सोवळ्याचें शास्त्रीय समर्थन करीत. तें मला खपलें नाही.

थिऑसफीबद्दल आज मला नितांत आदर आहे, तो एका गोष्टीसाठी. इतर लोक राष्ट्रीय शिक्षणाबद्दल बडबड करीत होते. थिऑसफीने अड्यार, बनारस,

कानपुर मदनापल्ली इत्यादि ठिकाणीं वसतिगृहयुक्त अशा राष्ट्रीय शाळा काढल्या. ॲरंडेल सारखे अलौकिक शिक्षक नेमले. स्वातंत्र्यांतून शिस्तीचे प्रयोग यशस्वी करून दाखवले आणि कांही तरूण मुलांमुलींच्या जीवनांत चिरस्थायी असें सत्य, शिव आणि सुंदर ओतलें! सेंट्रल हिंदु कॉलेज ही बिझांटबाईंनी भारतास दिलेली देणगी अप्रतिम होती परंतु पंडित मदनमोहन मालवीयांनी हिंदु युनिव्हर्सिटी काढण्याचें ठरविल्यावर बाईंनी एक क्षणहि विचार न करतां सेंट्रल हिंदु कॉलेज, - आपलें आवडतें मूल त्यांच्या स्वाधीन केलें. या त्यागाचें चीज झालें नाही, हा बाईंचा दोष नाही.

आमचा प्रिन्सिपॉल - गार्डनर-ब्राउन - आमच्यासारखाच आडदांड. वय झाले होतें. पण सेंटरफारवर्ड खेळायचा. आम्हांला दमवायचा. आम्ही दौड करूं लागलों की मागून पटकन् यायचा. अवतार पाहण्यासारखा होता. खूप उंचापुरा होता. कपाळाला तीन आठ्या असत. नाकाकानांतून केस लांबवर डोकवायचे. हनुवटीला दाढी करतांना एक-दोन ठिकाणीं लागलेलें असायचें. पंचवीस-तीस वर्षें अलीगडचें आणि इंदूरचें ऊन खाऊन तावूनसुलाखून पिवळाजर्द झाला होता. भुवयांचे टेकाड उंच होतें. खाली दरींत डोळे खोल पण तीक्ष्ण आणि भेदक होते. पाहूं लागला म्हणजे गुहेंतून ढाण्या वाघ रोखून पाहत आहे असें वाटायचें. देहाची शुद्ध नसायची. शिकवितांना डोकें अंमळ डावीकडे झुकवायचा, मागेपुढे हलवायचा आणि आरंभीचा शब्द दोनतीनदा उच्चारायचा. आमचा वाकणकर हुबेहुब त्याची नक्कल करायचा. अजून आम्ही त्याला ब्राउनसाहेब म्हणतों. कामाचा उरक मात्र दांडगा होता. 1917 सालीं मे महिन्याच्या गरमींत बायकामुलांना हवा खायला पाठवून दिलें. आपण काम करायला कॉलेजांत थांबला आणि काम करतां करतां कामास आला.

गार्डनर-ब्राउन एक नामांकित इतिहासज्ञ होता. अफगाण पीरिअडवरील त्यांचे असामान्य प्रभुत्व त्या वेळचें ऐतिहासिक जग मान्य करीत होतें. 'सम फॅलसीज् इन इंडियन हिस्टरी' हा त्याचा निबंध गाजला होता. साहेबाच्या वाचनालयाच्या छोट्या खोलींत तिन्ही बाजूला आढ्यापर्यंत फळ्यांवर रचलेले इतिहासाचे ग्रंथ उभे असत. कांही चर्चा निघाली, संदर्भ पाहण्याचा प्रसंग आला तर मागे न वळतां नुसता हात मागे करून साहेब वरच्या फळीवरचा हवा तो ग्रंथ बिनचूक काढायचा.

ब्राउनसाहेबाने बी.ए. मध्ये आम्हांला शेक्सपिअरच्या ट्रॅजेडीज् आणि लॉर्ड रोजबरीचें 'लाइफ ऑफ पिट्' शिकविलें. अजून तें शिल्लक आहे. शब्द आणि वाक्यें यांच्या वखरच्या अर्थापेक्षा त्या अर्थामधलें मर्म आणि त्यांत दडलेले विचार आणि भावना ब्राउन साहेब कुशलतेने उकलून दाखवायचा. एकदा 'मॅकबेथ' मधील डॉक्टर आणि नर्स यांचा प्रवेश शिकवीत होता. नर्सने डॉक्टरला लेडी मॅकबेथच्या आदल्या रात्रीच्या चमत्कारिक अवस्थेची खबर दिली. डॉक्टरने नुसतें 'हूं' केलें. ब्राउनसाहेबाने सगळ्या वर्गाला 'हूं' करायला लावलें. डॉक्टरने हूं केलें असेल तसें करा, असें बजावलें. आम्ही सर्वांनी हूंकार दिला, पण साहेबाचें समाधान झालें नाही. मग उभा राहिला, चेहरा एकदम बदलला. दीर्घ स्वरांत साहेबाने हूं केलें. त्या हूंकारांत संताप होता, व्यथा होती आणि एका नव्या जाणिवेची उकल होती.

पिट शिकवितांना, 'And Thurlow growled his admiration' हें वाक्य आलें. पंचेचाळीस वर्षें झालीं, अजून तें गुरगुरणें आठवतें आहे. थर्लो हा दुराराध्य, तुसडा, आंबट चेहऱ्याचा चॅन्सलर होता. प्रामाणिक होता. परंतु त्याला कशाने आनंद होत नव्हता, कशाचें कौतुक वाटत नव्हतें. आणि म्हणून कौतूक व्यक्त करणें त्याला साधत नव्हतें. कौतूक व्यक्त करण्याचा त्याच्यावर एकदा प्रसंग ओढवला; त्याने तो साजरा केला. रोजबरीने अगदी निवडक शब्दांत, एका वाक्यांत, नव्हे एका क्रियापदांत, तो प्रसंग टिपला. ब्राउनसाहेब एका क्षणांत थर्लो झाले; गाल फुगवले; कुर्रेबाज आंबट चेहऱ्यावर स्मित आणण्याचें त्यांनी नाटक केलें आणि एकदम गुरगुरले!

साहेब महिन्या दोन महिन्याने आम्हांला एक निबंध घालायचे आणि कसून तपासायचे. निबंधावर लाल-निळ्या रेघोट्या, उद्गारवाचक आणि प्रश्नार्थक चिन्हें असायचीं. 'सिली', 'ॲबसर्ड' 'नॉनसेंस' असे वेचक शेरे मधूनमधून डोकवायचे. कधीकधी 'गुड' सुद्धा असायचें. निबंध तपासल्यावर कांही दिवस ते आमच्याजवळ रहात. मग एकेकाला बोलावणे येइ. साहेब निबंध घेऊन खुर्चीवर बसे समोर निबंधाचा लेखक. मग उलटतपासणी सुरू व्हायची. प्रश्नांची फैर झडायची. "हें असें विधान कां केलेंस? याला आधार काय? हा विचार कोणाचा? हें वाक्य कोणाचें घेतलेंस? तुझे मुद्दे काय होते आणि निष्कर्ष काय काढलास? या मुद्यांवरून निष्कर्ष कोणचा निघेल? या निष्कर्षाला पोषक मुद्दे कोणचे?" -असा भडिमार चाले. कोणी भांबावून जात, घाबरत. पण आम्ही कांही जण सवय झाली तेव्हा धिटाईने सामना देऊं लागलों. साहेबाला बरें वाटायचें. निबंध परत करतांना म्हणायचा, "भाषेचे अवडंबर नको. सरळ सोपें लिही आणि मुद्देसूद लिही. एका मुद्यांतून दुसरा मुद्दा निघाला पाहिजे. साऱ्या मुद्यांतून आपोआप आणि अपरिहार्यपणे निष्कर्ष निघाला पाहिजे. दुसऱ्याचे विचार उसने घेऊं नकोस. घेतलेस तर निदान त्याचे शब्द घेऊं नकोस. कांही तरी तुझें असूं दे."

साहेबाचा मुद्यांवर फार भर असे. कलाकुसरीने सुंदर भाषेंत लिहिलेला परंतु मुद्यांच्या बाबतींत ढिला आणि दुबळा असलेला निबंध साहेबाला ख़पला नाही. कमी मार्क मिळायचे. शेरा आणि ताशेरा चांगलाच मिळायचा. साहेब कधीकधी निबंधाचे नुसते मुद्दे काढायला सांगायचा आणि तेच तपासायचा.

ब्राउनसाहेब फार चोखंदळ. पुराव्याखेरीज केलेलें विधान त्याला चालत नसे अतिशयोक्ति आवडत नसे. एकदा डिबेटिंग सोसायटीमध्ये मराठे आणि इंग्रज यांच्या मधल्या एका लढाईचा संदर्भ सांगतांना मी चूक केली. ग्रँट डफ्‌वर घसरलों. त्याने खोटें, अतिशयोक्तीचें विधान केलें असें म्हणालों. अतिशयोक्ति माझी होती.

दुसऱ्या दिवशीं मला बंगल्यावर बोलावणें आलें. मी गेलों. टेबलासमोर उभा राहिलों. साहेब खाली मान घालून बसला होता. बऱ्याच वेळाने मान वर केली हळूच बोलला. "तूं काल ग्रँट डफ्‌वर अन्याय केलास. गुजरातमधल्या त्या लढाईबद्दल तूं आरोप केलास तसें ग्रँट डफ्‌ने लिहिलें नाही. वाच हें पान." मीं वाचलें. चूक कबूल केली. साहेब पुढे बोलूं लागला. ऐतिहासिक साधनांचें महत्त्व सांगूं लागला. बौद्धिक प्रामाणिकपणाच्या कसोट्या सांगूं लागला. आवाजांत अनोखी मृदुता येत गेली मी गोरामोरा झालों, रडकुंडीला आलों. साहेबाला भावनांची ती उधळपट्टी रुचली नाही. आपल्या तीक्ष्ण नजरेने माझ्याकडे पाहून म्हणाला, "बरें जा आता. परत असें करूं नकोस." पाठीवरून हात फिरविला आणि झट् मागे वळला.

मीं परत असें केलें नाही. चुका झाल्या असतील. परंतु त्या जाणूनबुजून झाल्या नाहीत. संदर्भ पाहिल्याखेरीज सहसा बोललों नाही, लिहिलें नाही. पुराव्याने साथ दिली तेथपर्यंतच जाण्याचा आणि तेथेच थांबण्याचा इमानेइतबारें प्रयत्न केला. प्रमेयाला सिद्धांत समजलों नाही, इतिहासाच्या नांवाखाली कोणी भरमसाट बोलूं-लिहूं लागला म्हणजे माझे पूज्य आचार्य मला आठवतात आणि मी मनांत म्हणतों,

".....Thou shouldst be living at this hour."

गार्डनर-ब्राउन अस्सल इंग्रज होते. कमी बोलायचे, भावना ताब्यांत ठेवायचे. प्रेम मनांतच ठेवायचे. तसें माझ्यावर प्रेम होतें. पण तें जिवंत असतांना दाखविलें नाही. तें त्या मृत्युपत्रांत - त्या टिप्पणांत - दिसून आलें. साहेब एकाएकी वारले. जवळ घरचें कोणी नव्हतें. चार्ज घेण्याचा प्रसंग आला. टेबलाच्या खणांतले कागद तपासण्यांत आले. त्या कागदांत दोन पानांचे माझ्याबद्दलचें टिपण होतें. माझ्या चार वर्षांच्या कामगिरीचा त्यांत आढावा होता; कौतुक केलें होतें. मी बी.ए.पास झालों म्हणजे माझ्यासाठी कॉलेजमध्ये फेलोची जागा (आमच्या कॉलेजांत तोपर्यंत फेलोची जागाच नव्हती). निर्माण करावी अशी सूचना देऊन साहेब गेले!

होळकर कॉलेजांत जाण्यापूर्वीच मी ब्राह्मसमाजांत जाऊं लागलों होतों. इंग्रजी पांचवींत गेलों त्या सुमारास मनांत बदल होऊं लागले. मन जमिनीवर पाय रोवूं लागलें. दत्तमंदिरांतल्या कथाकीर्तनांत गोडी वाटेनाशी झाली. अरबी भाषेंतील सुरस गोष्टी वाचवेनात. कुंभकर्णाच्या जांभईचें हसूं येईना. भीम आणि बकासुर यांच्या द्वंद्वयुद्धापेक्षा शिवाजीमहाराज आणि अफझलखान यांचे वास्तविक द्वंद्व अधिक प्रभावी वाटूं लागलें. हरदासबुवा कीर्तनांत लोकांच्या आराधनेसाठी, रामप्रभूने प्रत्यक्ष सीतामाईचा त्याग केला, अशी रामाची बडेजावी सांगूं लागले म्हणजे मनावर उलटाच परिणाम होई आणि तें त्या प्रभूला सोडून सीतामाईबरोबर उद्वेगाने वनवासांत जाई.

दत्तमंदिरांतल्या येरझारा कमी झाल्या-थांबल्या, तरी धर्मानुभवांची तहान होतीच. आणि आता तर धर्मजिज्ञासा जागृत झाली होती. तिने मला ब्राह्मसमाजांत नेलें. तेथील शांत आणि सौम्य वातावरण मला आवडलें. गडबड नव्हती, गोंधळ नव्हता. निवडक थोडीच माणसें होतीं. आणि स्वच्छता होती. 'प्रार्थनासंगीतां' तील अभंग, पदें आणि आरत्या मला आवडल्या. लहानपणींहि त्या आवडल्या होत्या. परंतु आताची आवड वेगळी होती. 'शरण मी जगन्नाथा, चरणीं ठेवियला माथा, पदर मी पसरीतों' या प्रेमळ आरतीतील भक्तीचा उमाळा, उत्कटता, अथांग शरणागति मला जाणवली. दत्तमंदिरांतसुद्धा तुकोबाचे अभंग ऐकले होते. परंतु आख्यानाची प्रस्तावना एवढेंच त्यांना तेथे स्थान होतें. ब्राह्मसमाजांत त्या अभंगांवर प्रवचने आधारलीं जात. प्रवचनानंतरच्या प्रार्थनेंत त्या अभंगातले विचार आणि शब्द येत. शेवटी परत तो अभंग गाइला जाई आणि त्याचें मर्म मनांत ठसे!

इंदूरच्या ब्राह्मसमाजाचे वार्षिक उत्सव मोठ्या थाटांत होत. मुंबई-कलकत्त्याकडचे नामांकित व्याख्याते येत. त्यांचीं व्याख्यानें आणि प्रवचनें म्हणजे एक बौद्धिक मेजवानी असे. आमचा त्यांचा परिचय होई. थोडी चर्चा होई. मन अधिकच समृद्ध होई. लाहोरकडचे अविनाशचन्द्र मुजुमदार नांवाचे एक वृद्ध, प्रेमळ ब्राह्मो मिशनरी नेहमी येत; त्यांचा तर दाट परिचय झाला. पत्रव्यवहारहि झाला. इंदूरच्या उत्सवासाठी डॉ. सर रामकृष्णपंत भांडारकर नेहमी येत. त्यांची कीर्तनें होत. डॉक्टरसाहेब थकल्यावर त्यांचे मधले चिरंजीव आणि आमच्या इंदूरचे सिव्हिल सर्जन डॉ. प्रभाकरपंत यांनी केव्हर बांधून त्यांची जागा घेतली. कीर्तन हें माध्यम जुनेंच होतें. परंतु ब्राह्मसमाजाने त्याच्या मध्ये नवा आशय, नवे विचार ओतले.

सर नारायण चंदावरकर संस्थानचे दिवाण म्हणून एका संध्याकाळीं इंदूरच्या स्टेशना वर उतरले. त्यांच्या स्वागतासाठी लवाजमा तयार होता. मोटर उभी होती. सरसाहेब उतरले ते थेट चालत ब्राह्मसमाजांत आले. कोणी उभें राहिले नाही. तें देवाचें घर होतें. देवाच्या घरांत फक्त देवापुढेच उभें राहायचें असतें. सरसाहेब नम्रपणाने बाजूस बसले. मान खाली घालून, डोळे मिटून प्रार्थनेंत सामील झाले. हळुहळु टाळ्या वाजंवून आमच्याबरोबर आरती म्हणाले, आणखी म्हणाले, ''घालीन लोटांगण, वंदीन चरण डोळ्यांनीं पाहीन रूप तुझें...''

दुसऱ्याच दिवशीं टाऊन हॉलमध्ये सरसाहेबांचें इंग्रजींत व्याख्यान झालें. विषय 'ईशावास्योपनिषद्' हा होता. त्यांचें तें भाषाप्रभुत्व, तो घनगंभीर आवाज, त्यांतला ओलावा, त्यांतली लय या गुणांनी आम्ही भारावलों. सरसाहेबांनी उंचावरून, उंच हात करून उंच आणि आर्त स्वराने उपनिषदांतील एका वचनाचा 'Oh Sun, uncover thy disk' असा अनुवाद केला आणि सूर्याला आवाहन केलें; तेव्हा आमच्या पुढे उगवत्या सूर्यासमोर शतद्रूच्या काठावर अर्घ्य देणाऱ्या वैदिक ऋषीची मूर्ति उभी राहिली. तो प्रसंग आणि तो अनुभव अविस्मरणीय होता. सरसाहेब इंदूरला फार दिवस लाभले नाहीत; परंतु होते तोपर्यंत मधूनमधून उपासना चालवायचे; नवीन विचार द्यायचे. कधी कधी भाबड्या भक्तीने 'ऐसें भाग्य कधीं लाहतां होईन' म्हणत म्हणत सद्गदित व्हायचे. आमचीहि तीच स्थिति व्हायची.

एक दिवस इंदूरच्या स्टेशनावर अण्णा उतरले. बरोबर सामान बेताचें. बरोबर ममा होत्या. त्या इंग्रज बाईना आम्ही पुढे ममा म्हणूं लागलों. कारण त्या आमच्या ममा झाल्या. अण्णांच्या स्वागतासाठी लवाजमा आला नव्हता. मोटर उभी नव्हती. खाजगी कारभारी हुजरेपाजरे अदबीने उभे नव्हते. साहजिकच आहे. अहल्याश्रमासारखी मुलींची शाळा काढायला सव्वाशेदीडशे पगारावर आलेला तो साधा माणूस. शुभ्र धोतर, शुभ्र रुमाल, शुभ्र कोट, शुभ्र वर्ण, हसतमुख; डोळ्यांतून प्रेम सांडत होतें. अण्णासुद्धा तसेच पायीं समाजांत आले. उपासना चालविली. विषय होता - 'मेसेज फ्रॉम द हिमालयाज' कारण अण्णा हिमालयांतूनच आले होते. अस्खलित इंग्रजींत बोलले. उपनिषदातील अनेक वचनें एकामागून एक सांगून अण्णांनी एक वेगळेंच मंगल व पवित्र वातावरण उत्पन्न केलें. अण्णांचें नुसतें सान्निध्य म्हणजेच मांगल्यांचा साक्षात्कार असे. अण्णा नुसते हसले म्हणजे पुरे असे; त्यांचे डोळे म्हणजे लोण्याचे गोळे होते. फार स्निग्ध, फार मवाळ. अण्णांच्याकडे पाहिलें म्हणजे 'दिठीं पाहतांच निवावें' असें होत असे.

अण्णा-डॉक्टर सुखटणकर-माझे गुरू. मी अनेक गुरू केले आहेत. अजून करीत आहें. थांबलें नाही. दत्तांनी बत्तीस गुरू केले होते, असें म्हणतात. माझे गुरू मीं मोजले नाहीत. पुष्कळ आहेत. मोजणें कठीण आहे. माझ्या कांही गुरूंना त्यांचें गुरूपद माहीतसुद्धा नसेल. मोठी गंमत आहे ती. गुरूला गुरूत्व माहीत नसतें तें त्याला शोभतें; पण शिष्याला तें पटलेलें असतें.

अण्णांचीच गोष्ट घ्या. परवा पुण्यास आले होते. वय ऐशीच्या वर होतें. चौकशी करीत आस्थेने घरी आले. भेटले. मला ब्रह्मानंद झाला. तोंडांतून शब्द निघेनात. पायां पडलों. कसाबसा म्हणालों, ''अण्णा, तुम्ही माझे गुरू.'' पण अण्णांना ऐकूं गेलें नाही. आता कमी ऐकूं येतें. पण तेंच हसतमुख. तेच हसरे डोळे आणि हसरे ओठ. डोळ्यांतून तसेंच अमृत ओसंडत होतें. अण्णांनी विचारलें, ''काय म्हणालांत?'' मी कानाशीं लागलों, ओरडलों, ''अण्णा, तुम्ही माझे गुरू.'' अण्णा खुलासेवार हसले. डोळ्यांत पाणी आलें. जुनीच सवय आहे ती. म्हणाले, ''अरेच्या, खरेंच की काय? तें कसें काय बुवा?'' आता तुम्हीच सांगा. तें कसें काय बुवा, हें कसें काय बुवा सांगूं? माझे हृदय साक्ष आहे; माझें सारें जीवन साक्ष आहे. एका बाजूने होळकर कॉलेजने आणि दुसऱ्या बाजूने अण्णांनी मला घडविलें. मी कृतज्ञ आहें.

अण्णांना आम्ही तुकोगंजांत दोनतीन खोल्यांची लहानशी बंगली पाहून दिली. नवराबायकोंचें जीवन साधें होते. ममा स्वैपाक करायच्या, धुणें धुवायच्या. अण्णांना सांभाळायच्या. (अण्णा आम्हाला सांभाळायचे.) अण्णा कपडे घालूं लागले की बटनें शोधून द्यायच्या. लावायच्या; अण्णांना बटनें सहसा सापडत नसत. त्यांच्या जर्मन प्रोफेसरांप्रमाणे अण्णांचें मन दैनंदिन कार्यात नेहमी गैरहजर असायचें. आम्ही रोज संध्याकाळीं जाऊं लागलों पायाशीं बसूं लागलों. अण्णांना गप्पा आवडत नसत. आम्ही गेलो की अण्णा एखादें पुस्तक उघडायचें. कधी वर्ल्ड क्लॅसिक्स्‌मधला वर्डस्वर्थ, कधी ब्राउनिंग, तर कधी टेनिसन. कांही नाही तर गोल्डन ट्रेझरी खरीच. कविता वाचायचे, तिच्यांतील मर्म सांगायचे. कधी वर्डस्वर्थची 'ओड ऑन इंटिमेशन ऑफ इम्मॉर्टलिटी' तर कधी टेनिसनचा 'लॉक्सले हॉल'; कधी एखादी सॉनेट घ्यायचे (The world is too much with us, late and soon) आणि घोळूनघोळून म्हणायचे. डोळे मिटायचे आणि तल्लीन व्हायचे.

त्यांतल्या त्यांत अण्णांची आवडती कविता वर्डस्वर्थने टिंटर्न ॲबे पाहून लिहिलेल्या ओळी 'Lines written a few miles above Tintern Abbey' वर्डस्वर्थची सौम्य, शांत, नि:शब्द निसर्ग पाहून तंद्री लागली; गूढ विचार सुचले. गूढ भावना जागृत झाल्या.

Five years have past; five summers, with the length Of five long winters! and again I hear these waters, rolling from their mountain springs With a soft inland murmur....

And connect the landscape with the quiet of the sky

... for nature then

To me was all in all... The sounding cataracts
Haunted me like a passion: The tall rock,
The mountain, and the deep and gloomy wood,
Their colours and their forms, were then to me
An appetite, a feeling and a love.
... for I have learned

To look on nature, not as in the hour
Of thoughtless youth; but hearing often times
The still sad music of humanity.

आणि मग निसर्गाच्या संदेशांतून जीवनाचें भाष्य मिळायचें. टिंटर्न ॲबे म्हणजे अण्णांची आत्मकथा-आत्म्याची कथा--होती. ती कविता वाचून दाखवतांना अण्णांना गहिवर येत असे; आवाजांत कोवळीक येत असे.

अण्णांच्या प्रोत्साहनाने आम्ही स्टूडंट्स् ब्रदरहुड काढलें. अण्णा अध्यक्ष, मी चिटणीस. आम्ही पंधरा-वीस जण होतों. आमचा अभ्यासवर्ग दर रविवारी ब्राह्म समाजाच्या मंदिरांत दुपारीं चाले. अण्णाच वर्ग चालवायचे. त्यांना दुसरें काम असले तर ममा वर्ग घ्यायच्या. कधीमधी सरसाहेब यायचे आणि वर्डस्वर्थ घ्यायचे. कधी डॉ. प्रभाकरपंत भांडारकर यायचे आणि आपल्या कोरड्या, खणखणीत आवाजात रेकून शिकवायचे. आम्ही त्यांना आपसांमध्ये भांडूकाका म्हणायचें.

अण्णांनी स्टूडंट्स ब्रदरहूडमध्ये आम्हाला 'इन मेमोरियम' शिकविलें. नवीन जीवन दृष्टि दिली. मन चौकस आणि चिकित्सक केलें. वाङमयाची सखोल अभिरुचि निर्माण केली आणि वाङमय हा करमणुकीचा खेळ नाही, बुद्धीची आणि कल्पनांची कसरत नाही, आतषबाजी नाही; वाङमय ही जीवनाची साधना आहे, भाष्य आहे, ही जाणीव दिली. इंग्रजी कविता मला पूर्वीच आवडत होत्या. आता त्या नीट कळूं लागल्या. शब्द आणि कल्पना यांना बाजूस सारून मी तळाशी मिळणारीं रत्नें हुडकूं लागलों.

माझ्या विद्यार्थीदशेंत पुणें, मुंबई, इंदूर अशा शहरांत स्टूडंट्स् ब्रदरहुड्स् फार चांगलीं चालत. मुंबईस सर नारायण चंदावरकर आणि प्रा.एन.जी. वेलिणकर शिकवीत. निवडक विद्यार्थी मोठ्या श्रद्धेने येत आणि चांगले संस्कार घेऊन जात. इतर अनेक चांगल्या गोष्टींप्रमाणे 1920 नंतर ही प्रथा बंद पडली. फार वाईट झालें.

बापूसाहेब आणि अण्णा, दत्तमंदिर आणि ब्राह्मसमाज, आय्.ई.एम्. आणि होळकर कॉलेज, रहाळकर आणि बारपुते, आणखी कुणीं-आणखी कुणीं शिदोरी बांधून दिली. मी ती घेऊन ग्वाल्हेरीची वाट धरली. संसाराला सुरूवात केली.

□□

इन्दौर की एक उपेक्षित विभूति

☐ डॉ. वा.वि. भागवत

श्री विट्ठलराव घाटे के संस्मरणों में जिन विष्णुपंत बारपुते का उल्लेख हुआ है - वे तात्या बारपुते के नाम से प्रसिद्ध थे. विविध रुचियों वाले तात्या बारपुते फक्कड़ किस्म के तथा हरफनमौला व्यक्ति थे. उनका जन्म 1885 में हुआ था. होलकर कॉलेज से उन्होंने बी.ए. किया. वे शिवाजीराव स्कूल में शिक्षक थे. उन्होंने स्काउट कमिश्नर के रूप में भी कार्य किया. वे इन्दौर की ब्रह्म विद्या मंदिर के संस्थापक सदस्य थे. वे इन्दौर के उन गिने चुने व्यक्तियों में थे, जो अड्यार (मद्रास) में मेरिया मांटेसरी से प्रशिक्षण लेने गये थे. उनका निधन 88 वर्ष की आयु में 17 मार्च 1974 को हुआ. प्रारंभिक वर्षों में कॉलेज के छात्र रहे तात्या बारपुते की स्मृति में हम 21 मार्च 1974 की नई दुनिया में प्रकाशित डॉ. भागवत का लेख पुनः प्रकाशित कर रहे हैं.

तात्या बारपुते को मैंने सबसे पहले 1917 में देखा जब वे हांसलपुर हमारे घर आये थे. आसपास शायद उनकी जमीन थी. उस रोज महाएकादशी थी. आते ही उन्होंने मेरी मां से कहा, महाएकादशी के उपवास पर मेरा विश्वास नहीं है. खाना खाऊँगा. मैं उनकी तरफ देखता ही रहा कि क्या अजीब व्यक्ति हैं, क्योंकि महाएकादशी को हमारे यहाँ बच्चों तक का उपवास रहता है.

बाद में ऐसे कई प्रसंग आये जब पता चला कि सामाजिक विचार धाराओं में वे स्वतंत्र विचार के हैं. उस वक्त हम उन पर हंसते थे. वे पुनर्विवाह के पक्ष में थे. इतना ही नहीं जब वे कॉलेज के विद्यार्थी थे तब उन्होंने ऐसे समारोह में भाग लिया था और जनता के विरोध का मुँहतोड़ जवाब दिया था.

शिक्षक के नाते उनका परिचय 1921 में हुआ. वे हमें अंग्रेजी 9 वें वर्ग में पढ़ाते थे. ''अर्थेली पैराडाइज'' उन्होंने हमें पढ़ाई. वैसे उन्होंने साईंस भी पढ़ाया. उस वक्त हमारी कक्षा में विज्ञान पढ़ने के लिये चंद्रावती महिला विद्यालय से दो लड़कियाँ आती थी. सब शिक्षक हाजरी लेते वक्त उनका नाम लेना टालते थे. तात्या बारपुते ही एक थे, जिन्होंने हाजरी लेते वक्त लड़के या लड़की में भेद न रखा.

जब तक मैं विद्यार्थी रहा मेरा उनके प्रति विरोधी प्रेम था. स्काउट के वे आदि प्रवर्तक थे. महाराजा शिवाजीराव हायस्कूल में उन्होंने यह संगठन चालू किया. नदी किनारे जो जगह थी वहाँ प्रशिक्षण होता. हर साल एक सार्वजनिक कार्यक्रम भी होता जिसमें कई रोचक बातें दिखाई जाती थी. आग लगने पर घिरे हुए व्यक्ति को नीचे कैसे लाना, यह भी एक दृश्य था. इसमें आज के सुप्रसिद्ध नेता विष्णु भैया सरवटे बेड पर से नीचे तनी हुई जाजम पर कूदते. सरकार ने यह कार्य तात्या पर थोपा नहीं था, न यह बेडेन पॉवेल की नकल थी. किन्तु यह समझने की योग्यता हममें नहीं थी. हम समझते थे कि यह अंग्रेजों की एक नकल है. उस समय हमें अंग्रेजों की हर एक बात से नफरत थी फिर वह अच्छी हो या बुरी हो. वातावरण ही ऐसा था. इसी कारण हमें स्काउटिंग नापसंद था. और इसी कारण तात्या भी.

इन्दौर जीमखाना के वे सदस्य थे. देशी खेल-कूद को प्रोत्साहन देने का कार्य यह संस्था करती थी. इन्दौर से उस समय लोणपाटी का खेल अत्यंत प्रिय था. बड़ौदा में यहाँ के शिवाजी क्लब तथा महाराष्ट्र क्लब तीन-तीन साल विजयी रहकर ट्रॉफी जीतकर आये. तात्या इसमें खूब भाग लेते थे. मैं शिवाजी क्लब में था जो एक वक्त छोड़कर हर बार विजयी हुआ. इसमें सब 15-16 साल के नव युवक होने से जनता की सहानुभूति हमारे साथ हो जाती है और अंपायर हमारे साथ हो जाते हैं, ऐसा तात्या का ख्याल था. इस कारण भी हम उनके विरोधी थे. जब बड़े हुए तो कई बातें समझ में आ गई.

'शिवाजी क्लब' हरसाल शिवजयंती उत्सव धूमधाम से मनाता था. उसमें भी तात्या भाग लेते. किन्तु तात्या की विचार धारा प्रमुखतः सामाजिक सुधार पर आधारित थी. जिन्होंने मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यिक प्रा. घाटे की जीवनी पढ़ी होगी उनको तात्या के विचारों का ठीक परिचय होगा.

जब होलकर राज्य में स्काउट की स्थापना हुई तब वे कमिश्नर जरूर हुए लेकिन वे चाहते थे उतनी स्वतंत्रता उन्हें नहीं मिली. फिर यह एक आर्थिक मामला है ऐसा समझकर उसमें स्वार्थी साधु भी घुसने लगे. कोई भी कार्य सरकार ने शुरू किया कि उसकी तरफ शंका से देखने का वातावरण उस समय था. इसलिये इस काम का महत्व जनता समझ न सकी. इलाहाबाद में भारत स्काउट्स की स्थापना हुई. मैं इतना कह सकता हूँ कि वह हमारे यहाँ से बढ़कर संस्था न थी. उनके सार्वजनिक प्रदर्शनों के लिये मुझे और बैरिस्टर गंधे को बुलाया जाता था.

यहाँ से सेवा निवृत्त होने के बाद वे उदयपुर में स्कॉउट का कार्य करते रहे. बच्चों की शिक्षा के बारे में हमारे कई वादविवाद हुए. वे मांटेसरी शिक्षा की तरफदारी करते. मैं उन्हें इतना ही पूछता कि अन्य शालाओं से आये हुए छात्रों में ये छात्र चमक क्यों नहीं उठते.

एक साल पहिले मैंने उन्हें विनती की थी, कि मुझे वे कस्तुरबा ग्राम में मिलने की इजाजत दें, ताकि इन्दौर के उपेक्षित महान् व्यक्तियों में मैं उनकी जीवनी लिख सकूं. उन्होंने कहा था कि मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ आऊँगा, लेकिन ईश्वरीय इच्छा न थी. इसीलिये मैं इस महान् व्यक्ति की अधूरी जीवनी ही आपके सामने रख सकता हूँ.

☐☐

जिज्ञासु पाहुणा

- प्रो. महेश दुबे

व्यक्ति
जब इतिहास को समर्पित हो जाता है
तब ऐसी त्रासदी का घटना
अनिवार्य हो जाता है
क्योंकि
इतिहास
घटनाओं के बीत जाने पर
उस खाली तूणीर जैसे व्यक्ति को
मात्र एक शीर्षक के रूप में प्रयोग कर
आगे बढ़ जाता है और
पृष्ठ पलट जाता है.

- नरेश मेहता

आइये, इसी पलटे हुए पृष्ठ पर लिखे हुए शीर्षक को पढ़ें. यह शीर्षक है निरंतर उत्कृष्टता की तलाश की कहानी का - जिसका नाम है प्रो. शंकर लक्ष्मण गोखले. प्रो. गोखले की स्मृतियाँ हमें एक साथ ही आल्हाद और अवसाद से भर देती हैं. यह हमारा सौभाग्य ही था कि उनके रूप में एक उत्कृष्ट वैज्ञानिक मनीषा और प्रखर राष्ट्रीय चेतना का तेजस्वी व्यक्तित्व इस कॉलेज में हमारे बीच था और यह इस कॉलेज का दुर्भाग्य ही रहा कि यहाँ का प्रशासन उन्हें सह नहीं सका. वे दो बार इस कॉलेज में आये. पहली बार १८९८ से १९०८ तक विज्ञान के प्राध्यापक के रूप में और दूसरी बार १९२१-२२ में प्राचार्य बन कर. गोखले के इन दोनों प्रवासों की कहानी क्षुद्र व्यक्तियों के अहमन्य दर्प के कुटिल षडयंत्रों के शिकार एक शालीन व्यक्ति की कहानी है. उनके प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थी आज शायद ही जीवित हों - हाँ दूसरी पीढ़ी के उनके विद्यार्थी या उनके सम्पर्क में आये व्यक्ति आज भी उन्हें श्रद्धा और आदर से याद कर लेते हैं.

शंकर गोखले का जन्म - १ दिसम्बर - १८६९ को भण्डारा के एक चितपावन कोकणस्थ ब्राह्मण परिवार में हुआ था. परम्परा से उनका परिवार अपनी ज्ञान-सम्पदा और विद्वत्ता के लिये पूरे महाराष्ट्र में जाना जाता था. १८९२ में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से रसायन-शास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रावीण्य सूची में दूसरे स्थान सहित उत्तीर्ण की. नागपुर के हिसलप कॉलेज में पढ़ाने के बाद वे १८९८ में होलकर कॉलेज में विज्ञान के प्राध्यापक के पद पर आये.

शिक्षक के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक थी. अपनी कुशाग्रता, स्पष्टवादिता, विषय पर अपने असाधारण अधिकार और वैज्ञानिक सिद्धांतों को सरल एव ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करने में अपनी कुशलता के कारण ही वे विद्यार्थियों में अत्यंत लोकप्रिय और सम्मानित थे. १९०० से १९०४ के वर्षों में कॉलेज में पढ़े-विनायक सरवटे ने उनके बारे में लिखा है :

'बुद्धीचे तल्लख, स्मरण शक्ति तीव्र, वाद-विवादाची हौस, व त्यांत कुशल असे ते होते. ते विद्यार्थ्यांत मोकळे पणें मिसळत, पण त्यांच्या बुद्धीच्या प्रभावा मुळे कोणीं त्यांचा अपमान किंवा चेष्टा करण्यास धजत नसे. माझ्यावर त्यांचा विशेष लोभ पुढे जडला. ते सायन्स चे प्रोफेसर होते. फिजिक्स व केमिस्ट्री दोन्ही ते शिकवीत.'

'प्रो. गोखले यांच्या लेक्चर्स पासून मला फार लाभ झाला. त्या वेळी शिकवलेले लाइट वगैरेंचे सिद्धांत मी अजून ही विसरलो नांही.'

- माझा जीवन प्रवाह

प्रो. गोखले ने होलकर कॉलेज में कार्य करते हुए - स्वतः अध्ययन से १९०५ में कलकत्ता विश्वविद्यालय की एम.ए. भौतिकी की परीक्षा प्रथम श्रेणी में - प्रावीण्य सूची में प्रथम स्थान सहित उत्तीर्ण की. इसके लिये उन्हें विश्वविद्यालय का स्वर्ण-पदक, पुरस्कार तथा मोतीलाल मलिक पदक प्राप्त हुआ.

यहीं से उन्होंने अध्ययन की निदेशात्मक पद्धति - 'Directive System' का विकास किया. अपने अध्ययन के लिये विद्यार्थियों की, शिक्षकों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति पर केन्द्रित परम्परागत शिक्षण पद्धति के विकल्प में; वे इसका उपयोग करने लगे थे. इस पद्धति का उद्देश्य विद्यार्थियों में स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना था. प्रारंभिक वर्षों में अपने सीमित प्रयोग के कारण यह पद्धति उतनी विवादास्पद नहीं बनी -जितनी कि यह उनके दूसरे कार्यकाल में हो गयी थी.

श्री गोखले राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत थे. १९०३ में जब महाराजा शिवाजीराव होलकर को गद्दी छोड़ने पर विवश किया गया उस सयम तुकोजीराव-तृतीय अल्पवयस्क थे और रियासत के कारभारी थे श्री नानकचन्द. तुकोजीराव प्रो. गोखले की विद्वत्ता से प्रभावित थे और उनका आदर करते थे. फलस्वरूप श्री नानकचन्द उन्हें नापसन्द करने लगे थे.

इन्दौर के शासकों की अंग्रेज विरोधी मनोवृत्तियों के कारण यहाँ राष्ट्रीय गतिविधियों के लिये सहयोगात्मक वातावरण उपलब्ध था. १९०६ में स्थापित ज्ञान प्रसारक मंडल ने सामाजिक सुधारों और राष्ट्रीय जन-जागरण के लिये प्रत्येक रविवार को व्याख्यान आयोजित किये. १९०७ में प्लेग के कारण दु:खी इन्दौर वासियों की हताशा अपनी चरम सीमा पर थी. इसी समय तिलक को ६ वर्ष के कठोर कारावास की खबर ने इस हताशा को एक अभूतपूर्व आक्रोश प्रदान किया. और तभी आया - १९०८ का गणेशोत्सव! इन्दौर के लिए और इस कॉलेज के लिए ऐतिहासिक गणेशोत्सव. हम लोग उत्सवों में ही अपनी निराशा को डुबोते हैं. धार्मिक आराधनाओं के सामूहिक आयोजनों से हमारी उत्सव - धर्मा मनोवृत्ति-उत्साह और जीवन प्राप्त करती है. १९०८ का गणेशोत्सव भी इन्दौर के हताश नागरिकों के लिये एक सहारा बनकर आया जिसमें शीघ्र ही राष्ट्रीय चेतना के शंखनाद के स्वर गूँजने लगे थे.

प्रो. शंकर लक्ष्मण गोखले

प्रो. गोखले ने भी इस गणेशोत्सव में दो अत्यंत प्रभावी व्याख्यान दिये. इन व्याख्यानों के विषय थे :

(१) राष्ट्रीय शिक्षा में तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता
(२) स्वदेशी व बहिष्कार आंदोलन को सफल बनाने के लिये किस बात की आवश्यकता है.

उस समय सारा शहर राष्ट्रीय चेतना की उमंग से भर उठा था. लोग सड़कों पर आ गये थे. ५ अगस्त - १९०८ - गणेशोत्सव का अंतिम दिन! इस दिन निकले प्रभावशाली जुलूस और उसमें लगाये जाने वाले नारों ने प्रशासन को हिला दिया था. इस प्रदर्शन में विद्यार्थियों के स्वर अत्यंत आक्रामक थे. सरकार ने दमन की कार्यवाही शुरू की और प्रो. गोखले को नौकरी से निकाल दिया गया और उन्हें रियासत छोड़ने के आदेश दिये गये.

प्रो. गोखले को नौकरी से निकालने के षड्यंत्र की पृष्ठभूमि के बारे में हमें कुछ अन्य संकेत भी मिलते हैं. बाबूराव रानडे, जो १९०६ से १९११ तक यहाँ विद्यार्थी थे, लिखते हैं :-

'इंदोरला श्री शंकरराव गोखले यांचेकडे दुर्बिण होती. होळकर महाराज त्या दुर्बिणीतून आकाशातील ग्रह व तारे शंकररावांचे मदतीने बघत असत. एकदा दुर्बिणीतून धूळ पुसायला शंकरराव फडके शोधत असताना महाराजांनी आपला हातरूमाल काढून दिला. शंकररावांचे प्रस्थ वाढणार अशी भीती कारभारी मंडळीत उत्पन्न होऊन हळूहळू त्यांचेवर निरानिराळी बालंटे येऊ लागली. त्याचे पर्यवसान शंकरराव इंदूर सोडून बंगाल मध्ये जाण्यात झाले.'

- शंभरीत पदार्पण (पुणे - १९८९)

१९२० में महाविद्यालय के छात्र एवं प्रो. गोखले के निकट सम्पर्क में रहे श्री त्र्यम्बक वामन तलवलकर (पुणे) के अनुसार व अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर इस प्रसंग का निम्नांकित स्वरूप उभरता है :-

प्रो. गोखले के पास दूरबीन थी. महाराजा तुकोजीराव प्रो. गोखले की सहायता से दूरबीन से आकाश के ग्रह एवं तारे देखा करते थे. आकाश की सैर ने दोनों को निकट ला दिया था. अपनी ही धुन में मगन रहने वाले कुछ भुलक्कड़ से इस प्रोफेसर को किशोर महाराजा सम्मान से देखने लगे थे. जब महाराजा ने स्वयं दूरबीन खरीदना चाही तो उन्होंने चयन के लिये प्रोफेसर को राजमहल में बुलाया. प्रो. गोखले वहाँ पहुँचे. महल में उन्हें कारभारी दीवान दिखे. गोखले उन्हें अनदेखा कर सीधे तुकोजीराव के पास पहुँचे. मुजरा किये बिना प्रोफेसर का आगे चला जाना दीवान को बहुत नागवार गुजरा. महाराजा के पास पहुँचकर, राजकीय शिष्टाचार को भूलकर प्रोफेसर ने अपना कोट वहाँ एक कुर्सी पर पटक दिया. वे महाराजा के प्रति भी परम्परागत सम्मान दर्शाना भूल गये. आते ही वे दूरबीनों का परीक्षण करने लग गये. दूरबीन के लेंस को साफ करने के लिये उन्हें रुमाल की जरूरत पडी. वे अपना रुमाल तो लाना भूल ही गये थे. यह देखकर तुकोजीराव ने स्वयं दौड़कर एक कपड़ा लाकर प्रोफेसर को दिया. प्रोफेसर गोखले का महाराजा से एक विद्यार्थी के समान व्यवहार और तुकोजीराव का आदर से उनके समक्ष खडे रहना - सामंती वातावरण में पले -बढ़े और घमंडी दीवान को चिढ़ाने के लिये पर्याप्त था. उन्होंने और उनके कुटिल सहयोगियों ने प्रोफेसर को सबक सिखाने की ठान ली. इसी पृष्ठभूमि में गणेशोत्सव में दिये गये उनके व्याख्यानों ने आग में जैसे घी का काम किया. उन्हें नौकरी से निकाले जाने और रियासत छोड़ने के आदेश दिये गये.

इन्दौर छोड़ने के बाद प्रो. गोखले पूर्वी बंगाल में पावना के एक कॉलेज में प्राचार्य के पद पर नियुक्त हुए. वहाँ उन्होंने लगभग एक वर्ष (१९०९-१०) तक कार्य किया. अंग्रेजी सरकार के हस्तक्षेप के कारण उनका वहाँ रहना

रायबहादुर नानकचन्द CSI, CIE : श्री नानकचन्द, मशीरूद्दौला रायबहादुर उमेद सिंह के पुत्र थे. १८६७ में श्री उमेदसिंह की मृत्यु के पश्चात उनकी जागीर और पदवी उनके ज्येष्ठ पुत्र नानकचन्द को प्रदान की गयी. श्री नानकचन्द को उनकी प्रशासकीय योग्यताओं के लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा १९०० में केसरे-हिन्द स्वर्ण-पदक दिया गया था. श्री नानकचन्द की मृत्यु १९२० में हुई.

असम्भव हो गया. १९१० में नयी सम्भावनाओं की तलाश में उन्होंने विदेश जाने का विचार किया. यह उनके विदेश प्रवास की शुरूआत थी. वे इंग्लैंड गये. वहाँ उन्होंने ग्लासगो में, उस समय के प्रसिद्ध प्रतिष्ठान Baird and Tatlock में उपकरणों के निर्माण एवं परीक्षण सम्बंधी विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया. प्रतिष्ठान के व्यवस्थापक प्रो. गोखले की योग्यता एवं निपुणता से प्रभावित होते हुए भी, राजनैतिक कारणों से उन्हें वहाँ रखने में असमर्थ थे. आखिरकार - गोखले अमेरिका की ओर चल पड़े.

अमेरिका में उन्होंने हार्वर्ड विश्वविद्यालय की जेफर्सन प्रयोगशाला में एक वर्ष तक डॉ. ब्रिजमेन के सहायक के रूप में High Pressures पर महत्वपूर्ण कार्य किया. १९१२ के लगभग वे स्केनेक्टाडी, न्यूयार्क की जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी में आ गये. प्रारंभ में उन्होंने ड्राफ्ट्समेन के साधारण पद पर कार्य किया - परंतु अपनी वैज्ञानिक कुशलता और उपकरणों सम्बंधी अपने असाधारण ज्ञान के आधार पर शीघ्र ही वे मुख्य मेग्रेटिक इंजीनियर जैसे शीर्षस्थ पद पर पहुँच गये. इस पद पर उन्होंने कई वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य कर अमेरिका में प्रतिष्ठा अर्जित की.

अपने पूर्व विद्यार्थियों के आग्रह और महाराजा तुकोजीराव की इच्छाओं का आदर करते हुए १९२१ में वे फिर होलकर कॉलेज में वापस आये. कॉलेज में Directive System के प्रयोग की शर्त के साथ वे तीन वर्ष के अनुबंध पर प्राचार्य नियुक्त किये गये. इस समय तक वे अमेरिका के नागरिक बन चुके थे. इसलिये अंग्रेज शासन उनकी नियुक्ति को रोक नहीं सका परंतु उसने महाराजा की इस पहल को पसंद नहीं किया. महाराजा तुकोजीराव को बाद में इसकी कीमत भी चुकानी पड़ी.

प्रो. गोखले ने - अमेरिका के 'स्वतंत्रता दिवस' - ४ जुलाई को कॉलेज प्रारंभ किया. उनके Directive System के प्रयोग को जहाँ कुछ प्राध्यापकों ने सहर्ष स्वीकार किया वहीं अनेकों ने उसकी सफलता के प्रति संदेह व्यक्त किया और उसका विरोध किया.

अंग्रेज अधिकारियों के इशारे पर स्थानीय प्रशासन ने प्रो. गोखले के कार्यों में षड्यंत्र पूर्वक बाधायें खडी कीं. उनके विरूद्ध महाराजा के कान भरने का सिलसिला प्रारंभ हुआ. कहा गया कि वे विद्यार्थियों में अत्यंत अलोकप्रिय हैं - जबकि स्थिति इसके विपरीत थी. कुटिलतापूर्वक महाराजा को विवश कर उन्हें नौकरी से अलग किये जाने के आदेश जारी करवा दिये गये. और इस प्रकार एक वर्ष से भी कम अवधि का उनके इन्दौर प्रवास का यह दूसरा दु:खद अध्याय समाप्त हुआ. विद्यार्थियों ने उन्हें शानदार बिदाई दी. क्रिश्चियन कॉलेज में एक भव्य सभा का आयोजन किया गया जिसे प्रो. गोखले ने सम्बोधित किया. वे सपरिवार अमेरिका चले गये. इसके बाद वे कभी भारत नहीं लौटे. जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी से सेवा-निवृत्त होने के बाद भी वे अपना वैज्ञानिक कार्य एवं शोध करते रहे. उपकरणों के निर्माण एवं अभिकल्पना के संदर्भ में वे वाशिंगटन एवं कोलोराडो विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध रहे. ५, अक्टूबर १९६२ को लगभग ९३ वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ. उनके परिवार में उनकी पत्नी उमाबाई के अतिरिक्त दो पुत्र मधुसूदन और सुधाकर तथा तीन पुत्रियाँ शरयू, नीरा और मोहक थीं.

विज्ञान के साथ-साथ धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास और सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी. इन विषयों पर मराठी में लिखे - 'पुरुषार्थ' और 'सह्याद्रि' में प्रकाशित उनके अनेक लेख बहुत प्रसिद्ध हुए हैं. भगवद्गीता, महाभारत तथा संस्कृत साहित्य के साथ -बाइबल पर उनका अध्ययन अत्यंत गम्भीर और विस्तृत था. ईसाई - धर्म के अपने विशद ज्ञान के कारण ही वे अमेरिका की चर्चों में प्रवचन हेतु आमंत्रित किये जाते थे. होलकर कॉलेज के विद्यार्थी उनसे Sermon on the Mount सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे.

उनकी वैज्ञानिक, तकनीकी तथा संशोधनात्मक उपलब्धियों की चर्चा भी प्रासंगिक होगी. उन्होंने विद्युत चुम्बकीय उपकरणों के निर्माण और उनकी कार्य-क्षमताओं में विकास के साथ-साथ चुम्बकीय-पारगम्यता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया. उन्होंने विद्युत विभव मापी - Potentiometer, शून्य स्थान वर्ती प्रवर्त्तक - Zero setting Inductor, तृप्तावस्था चुंबकीय पार्यतामापी Saturation Parameter और परिच्छिन्न चुंबकीय पार्यता मापी - Precision Parameter के निर्माण में नयी अभिकल्पनाएँ और संयोजन देकर उनकी कार्य - क्षमताओं में वृद्धि की. Magnetic shielding पर १९२९ में प्रकाशित उनका एक शोध-पत्र बहुत चर्चित हुआ था. इसमें प्रयोगशालाओं में चुम्बकीय क्षेत्रों में उपकरणों को सुरक्षित रखने सम्बंधी उपायों और विधियों पर मूलभूत रूप से सविस्तार चर्चा की गयी थी. उन्होंने Astatic wound coils of second degree का निर्माण किया. चुम्बकीय पारगम्यता पर किये गये उनके महत्वपूर्ण कार्यों के निष्कर्ष - गोखले -नियम के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिसके अनुसार -

$$B - H = S(1 - b e^{-aH})$$

उन्होंने चुम्बकीय परीक्षण सम्बंधी अनेक उपकरणों को विकसित किया. वाशिंगटन विश्वविद्यालय में डॉ. उपसन के साथ उन्होंने ध्वनि-रहित पंखों का निर्माण किया.

ऐसा बहुआयामी और विलक्षण व्यक्तित्व था. प्रो. गोखले का - स्वाभिमानी, निस्पृह और समर्पित! उनके प्राचार्य के कार्यकाल में उनके कार्यों में बाधायें उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रशासन द्वारा कॉलेज के अनुदान में कटौत्री की गयी - तब इसकी आंशिक पूर्ति प्रो. गोखले ने अपने वेतन में से की. १९२२ में उन्हें षड्यंत्र पूर्वक नौकरी से अलग किया गया.

महाराजा तुकोजीराव ने बाद में कॉलेज में आकर छात्रों से चर्चा की और वस्तुस्थिति का पता लगाया. उन्हें अपनी भूल का एहसास भी हुआ परंतु तब तक बहुत देर हो चुकी थी. उन्होंने प्रो. गोखले को रोकने की दृष्टि से उन्हें Director of Education का पद देने की पेशकश भी की - परंतु स्वाभिमानी गोखले को यह स्वीकार्य नहीं हुआ. सम्भवतया उनकी स्वतंत्र-चेतना रियासती वातावरण के षड्यंत्रों और राजाओं की सनकों या विवशता भरी भूलों से तंग आ गयी थी और उन्होंने अमेरिका जाना पसंद किया. निर्धारित समयावधि के पूर्व नौकरी से हटाये जाने के फलस्वरूप मुआवजे के रूप में प्राप्त धनराशि से उन्होंने 'गोखले लोन फण्ड' की योजना प्रारंभ की जिससे अमेरिका उच्च-अध्ययन को जाने वाले विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता दी जाती थी. श्री त्र्यम्बक वामन तलवलकर - इस सहायता को प्राप्त करने वाले पहले विद्यार्थी थे.

वे अत्यंत सहृदय व्यक्ति थे. अमेरिका में आये भारतीयों की सहायता के लिये उनके दरवाजे हमेशा खुले रहते थे. सुप्रसिद्ध समाज सुधारिका

पार्वती बाई आठवले को उन्होंने अमेरिका में जो मदद की वह कभी भुलाई नही जा सकती. पार्वती बाई आठवले (१८७०-१९५५) का नाम भारतीय महिला समाज सुधारकों में अत्यंत आदर से लिया जाता है. उन्होंने भारत में विधवाओं की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिये अथक परिश्रम किया. इसी सिलसिले में वे जब अमेरिका गयी तो वहाँ प्रवास के प्रारंभिक दिनों में प्रो. गोखले ने उनकी जो मदद की उसे पार्वती बाई ने बड़ी आत्मीयता से अपनी आत्मकथा- 'माझी कहानी' में स्मरण किया है. वे लिखती हैं:

'Prof. Gokhale was living at Schenectady, New york. It would take six days of railway journey to go to him. The ticket alone would cost about 150 dollars or about 450 rupees. I did not possess that amount of money. I wrote and told this to prof. Gokhale. By good fortune I received a letter from him inviting me to come and sending me the money necessary for the journey. I shall never forget the kindness he showed me.'

- My Story (Engl. Tr. by Justin E Abbott)

अपनी कहानी के १९ वे अध्याय में पार्वती बाई ने प्रो. गोखले, उनकी कम्पनी और रुचियों की चर्चा करते हुए लिखा है :-

'The general electric company has a great plant here for the generation of the electricity. 26,000 men are employed in this plant. Prof. Gokhale is employed here as an electric engineer. His spare time he devotes to the upliftment of the working man. He is the author of a book on unemployment published in America.'

महाविद्यालय के जीवन के प्रारंभिक वर्षों में जिन मनीषियों ने इसकी शैक्षणिक गतिविधियों को सुदृढ़ आधार दिया और इसकी तरुणाई को अपनी आस्थाओं और संकल्पों के रंगो से सँवारा उनमें प्रो. शंकर गोखले का नाम सदा ही आदर और कृतज्ञता के साथ लिया जायेगा, उनका स्मरण सदा ही हमें निरंतर उत्कृष्टता की तलाश के लिये प्रेरणा देता है. शताब्दी के अवसर पर प्रो. गोखले को हमारे विनम्र प्रणाम.

पिछले १५ वर्षों से कॉलेज मे मेरे कमरे मे प्रो. गोखले का चित्र टंगा है. इन तमाम वर्षों से मै मानसिक रूप से उनके व्यक्तित्व की ऊष्मता की निकटता अनुभव करता रहा हूँ. उनके बारे मे मै जितना जानता गया उतना ही मेरा मन उनके प्रति श्रद्धा से भरता गया. मेरे इस लेख का शीर्षक भी प्रो. गोखले के नवम्बर १९३६ मे 'पुरुषार्थ' मे प्रकाशित लेख का ही शीर्षक है.

प्रो. गोखले के बारे मे विवरण मुझे आदरणीय त्र्यम्बक वामन तलवलकर (पुणे) के सौजन्य से प्राप्त हुआ है. उनके सहयोग को मै कृतज्ञता के शब्दों की सीमा मे बाँधना नही चाहता. यह सत्य है कि यदि वे ये तमाम विवरण मुझे उपलब्ध न कराते तो ये लेख इस रूप मे कदापि नहीं लिखा जा सकता था. प्रो. ब्रह्मो और प्रो. एल.बी. देशपांडे ने भी चर्चाओं मे कुछ जानकारियाँ दी. कॉलेज मे प्रो. गोखले का चित्र डॉ. रवि प्रकाश और स्व. प्रो. सुमतिदेव नायक के प्रयत्नों से उपलब्ध है.

पार्वतीबाई आठवले से संदर्भित विवरण मुझे SPAN पत्रिका के सौजन्य से मिला. मै विशेष रूप से वरिष्ठ सम्पादक श्रीमती अरुणा दासगुप्ता का आभारी हूँ.

मेरी बहुत इच्छा थी कि शताब्दी के अवसर पर प्रो. गोखले के परिवार को कॉलेज से पुन: जोड़ा जाये. उनके ज्येष्ठ पुत्र मधुसूदन ने भी १९२१ मे कॉलेज मे प्रवेश लिया था. हमारे तमाम प्रयत्नों के बाद भी हम उनसे सम्पर्क करने मे सफल नहीं हुए उनका वर्तमान पता हमें ज्ञात नहीं हो सका. इसका हमें खेद है.

FROM THE COLLEGE ANNUAL REPORT 1921 :
There is nothing to report with reference to Hostel - In spite of the leaky roofs and wet floors, the general health during the rainy season was fairly good. The students seem to be making good progress in studies and in athletics. This year the Gymkhana has been reorganized giving more of the management in the hands of the students, in consequence of which the students taking more interest in the work.

S. L. Gokhale

Principal,
Holkar College, Indore.

उद्या येऊ नका -

प्रो. महेश दुबे

एक कृशकाय शरीर बिस्तर पर लेटा है. बिलकुल अस्थि-पंजर. अशक्य. उठने-बैठने तक की ताकत नहीं. अध्ययन में रुचि इतनी कि भारी भरकम ग्रंथों को हाथ में न पकड़ सकने की असहायता के कारण पन्ने-पन्ने फाड़कर; उसे पुस्तक को पढ़ते हुए देखा जा सकता है. लग रहा है शरीर मृत्यु से लड़ रहा है- परंतु बुद्धि और विवेक दोनों ही स्थिर और निर्मल. बिछौने के पास पड़ी कुर्सियों पर बैठे हैं - तरूण मुमुक्ष - विद्यार्थी. धीरे-धीरे वेदना से निकले हुए शब्दों के साथ उतर रही है गम्भीर दार्शनिक व्याख्याओं की मंदाकिनी. यह केवल एक दिन की बात नहीं है. पिछले एक साल से ऐसी ही दिनचर्या चल रही है. उपनिषदों की पुन: रचना का महारास!

४ मार्च १९१४. विद्यार्थी जा रहे है. लगता है बिस्तर पर लेटे हुए शरीर ने निकट आती हुई मृत्यु की पदचाप सुनली है. उसके अदृश्य संकेतों को पढ़ लिया है. काल की ज्यामिति का एक पृष्ठ पूरा हो गया है. कल से नये घाट की ओर, नये तीर्थों की तलाश में जीवात्मा को निकलना है.

दूर नदी पर नौका सुंदर
दीखी मृदुतर बहती ज्यों स्वर
वहाँ स्नेह की प्रतनु देह की
बिना गेह की बैठी नूतन

- निराला

पितरलोक से रंग-बिरंगी नौकाएँ जो आ रही हैं. जाना ही होगा. विद्यार्थियों से कहा 'उद्या येऊ नका'

और ५ मार्च को जीर्ण वस्त्रों को तट पर डालकर प्रो. शांताराम अंनत देसाई ने अपने संकल्प प्रधान जीवन के ४८ वे सर्ग को पूरा किया.

उनकी मृत्यु पर कॉलेज के प्राचार्य गार्डनर ब्राउन ने लिखा :-

'Early in the year 1914 the death of Prof. S.A. Deasi who had retired a year previously took place. It had been hoped that the cessation of his active work in the college might lead to a prolongation of his life and usefulness in other spheres, but the disease to which he succumbed had taken too firm a hold. The very general grief which his death caused among the students of the college showed what an impression his life and character had left.'

दरअसल- सूक्ष्म दार्शनिक अन्तर्दृष्टि, सुव्यवस्थित विचार, सबल तार्किक निष्कर्ष, सरलता, बाह्य परिवेश तथा भौतिक सुविधाओं के प्रति निस्पृह उदासीनता का नाम था - प्रो. शांताराम अंनत देसाई.

उनका जन्म महाराष्ट्र के रत्नगिरि जिले के एक गाँव कुंभवडे में सन् १८६६ में हुआ था. देसाई परिवार उस इलाके का राजस्व वसूलता था और खोत कहलाता था. उन्होंने १८९३ में पुणे से दर्शन-शास्त्र में एम.ए. किया. १८९५ में वे इन्दौर के होलकर कॉलेज में दर्शन-शास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त होकर आये और जीवन पर्यंत इसी संस्था से जुड़े रहे.

वे पूरी तरह से अध्ययन और अध्यापन को समर्पित थे. दर्शन-शास्त्र के अलावा अंग्रेजी साहित्य, राजनैतिक प्रवृत्तियों की मीमांसा और भारतीय संस्कृति संबंधी उनका सतत् अध्ययन निरंतर और व्यापक था. अध्ययन के प्रति उनकी रुचि और पुस्तकों के साथ उनके साहचर्य को, निम्न पंक्तियाँ सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं :-

My never failing friends are they
with whom I converse day by day

ब्राह्म समाज के वे नियमित और सक्रिय सदस्य थे. सत्य की खोज की यही प्यास उनके द्वारा लिखे हुए अनेक ग्रंथों के माध्यम से प्रगट होती है, जिनमें मुख्य हैं -

प्रो. शांताराम अनंत देसाई

A Study of Indian Philosophy
Vedanta of Shankar - Exponded and Vindicated

वैदिक तत्त्व मीमांसा
ग्रीक तत्त्व मीमांसा
उपनिषदांतील वचनांचा संग्रह

अपनी पुस्तक 'तुकारामाच्या अभंग - रत्नांचे हार' में उन्होंने तुकाराम और ब्राउनिंग की तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की थी. उनके लिखे हुए अनेक दार्शनिक लेखों को विदेशों में मान्यता मिली. ऋषि-तुल्य उनका जीवन था--सरलता और सादगी से भरा हुआ. उनको देखने से ही उनके प्रति श्रद्धा रखने का मन हो उठता था. प्रो ब्रह्मो बताते हैं कि प्रो. देसाई एक अद्भुत व्यक्ति थे. गम्भीर, मननशील, नियमित और अनुशासन प्रिय. कपड़ों के प्रति वे बिलकुल लापरवाह थे. जो भी सामने मिल गया उसे पहन लिया. एक बार कॉलेज में कोई विशिष्ट अतिथि आने वाले थे. प्राचार्य महोदय प्रो. देसाई की कपड़ों के प्रति उदासीनता से परिचित थे. सो उस दिन उन्होंने प्रो. देसाई से जरा ढंग के कपड़े पहनकर आने का अनुरोध कर दिया. देसाई साहब तो देसाई साहब ठहरे और वो भी फिलॉसफी के प्रोफेसर! उन्होंने अपने घर से एक संदूक में अपने तमाम अच्छे कपड़े रखकर - उसे प्रिंसिपल के पास पहुँचा दिया - साथ में लिख दिया - You want good clothes only, not man! ऐसे थे प्रो. देसाई! कॉलेज के प्रारंभिक वर्षों में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता! तभी तो उनकी मृत्यु के कुछ पूर्व जब वे अवकाश पर थे, कॉलेज के पुरस्कार वितरण समारोह में, उनके बारे में बोलते हुए महाराजा तुकोजीराव ने कहा था -

"And here I am reminded to the loss to the college caused by the retirement of Prof. Deasi. His illness has deprived the college of his services, but while we all deeply regret his retirement we can not forget that he has left the fragrance of his simple, pious and philosophical life to serve as a healthy example to professors and pupils alike."

१३ मार्च १९१४ को प्रकाशित होलकर स्टेट के गजट में उनकी मृत्यु पर लिखा गया था -

'His Highness Maharaja Holkar much regrets to hear, the death on 5th instant of Prof. Shantaram Anant Deasi M.A., L.L.B., Professor of Philosophy Holkar college for 19 years and on leave pending retirement, a man of wide learning and of the highest personal character with the mind of a scholar and grasp of a desciplinarian, never allowing physical pain to interfere with his sense of duty.'

उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की गंध से आज भी महाविद्यालय का परिसर महक रहा है. उनको हमारा प्रणाम, उनकी स्मृतियों को हमारा कृतज्ञ प्रणाम.

संदर्भ एवं आभार :-

(१) प्रो. शांताराम अनंत देसाई : चरित्र आणि जीवन कार्य - वासुदेव वामन ठाकुर १९६६.

The resources of the college both as regards finance and accommodation are at the present time strained almost to the breaking point. When the college buildings were erected and the present recurring grants allocated, they were on a scale that was generous and handsome for a college of 80 students: now that the college has increased to a good deal more than double that number, both have become somewhat exiguous, in spite of the ingenuity expended on finding accommodation for classes and an economy that borders on cheese-paring. The proverb "it is a pity to spoil the ship for a haporth of tar" is a sound one, and where as the State has often in the past been responsive to suggestions that made for the improvement of the college, it is to be hoped that such an attitude will continue in the future: that the college will not be required to take in more students than it can control or teach and that increased grants - when necessary - will be made to enable the college to progress along the most desirable lines.

In conclusion the thanks of the Principal are due for the sympathy and support accorded to the college during the past year by Rai Bahadur S.M. Bapna, B.A., B.Sc., LL.B., the Home Minister and Rai Bahadur Major R.B. Dube, M.A., B.Sc., LL.B., the Chief Minister and himself an old student of the college.

G. Gardner Brown

Principal, Holkar College, Indore.

Progress Report of Holkar College for 1921.

by Prof. P.C. Basu

35/1 Hari Ghosh Street
Calcutta
May 7, 1921.

Sir,

In response to your forwarding letter no. 198 of May 4, I beg to send you the following report. The blanks may be filled from the Office record.

I have the honour to be,
Sir,
Your most obedient servant
P. Basu.

Progress Report on Holkar College ~~during~~ for the quarter ending on 31st March, 1921.

In January, after a staff meeting in which the merits of the senior boys were discussed ~~indiv~~ individually, the following numbers were sent up for university examination held in March:

	Total number	Number sent up
~~I.A.~~		
I.A.		
I.Sc.		
B.A.		
B.Sc.		

In February Mr. Jnanendranath [illegible] joined the College as Professor of Chemistry during the absence on leave of Mr. S. S. Deshpande who left for England in August last.

The movement popularly known as non-cooperation affected the students of Indore in February. Some persons from outside Indore came here and harangued the boys in the city over the heads of their guardians and teachers. For a time it seemed that the boys would be wholly carried away. The behaviour of our boys was admirable. They held frequent meetings just outside the College compound in the open field. I held several informal meetings with the boys, and argued with them. This was done unofficially as I thought that ~~in~~ any official

2

action would be misinterpreted in the existing
temper of the boys. In the end the boys expressed
[illegible] satisfied with the argument, and
promised not to [illegible] for collective withdrawal
from the College, nor to leave the College indivi-
dually, without further consulting me. The
result was highly satisfactory, and reflects
credit to the boys. Not a single student left
the College, not even those who had already
signed a document to the effect, I was
told; that they would not take any examina-
tion of the University of Allahabad, but do
that of the new "university" in Gujrat. I
think that this cannot be said of any oth[er]
educational institution of Indore except the
Daly College which, by its nature and composi-
tion, was entirely unaffected, and the girls'
school. I regret however to have to say that
the Dean avoided his responsibility as the
official in charge of the boarders, as he did
during the troubled days of September last.
To avoid similar negligence of duty in futu[re]
on the part of the Dean, I introduced in
March last some rules for the guidance of
the Dean and the boarders. This was done
with the previous sanction of Government.
I myself joined the boys in Tennis, and
could persuade some other members of
the staff to do so. This had a healthy
influence on the boys. It is a pity that
want of a sufficient number of tennis
courts does not permit this during the
full session, i.e., from July to February.
The annual examination began on 31st
March and was not finished when the period
under review closed.
The College won the senior cup in Central
India Hockey Tournament, but lost the junior
cup. It also won the Jolly Club (sic) Football
Shield.
May 7, 1921. Calcutta. [illegible] Bosu.

हमारे प्राचार्य

– प्रो. महेश दुबे

महाविद्यालय के पहले नियमित प्राचार्य नियुक्त होकर **ई.सी. चमले** (E.C. Cholmondeley) नवम्बर १८९१ में इन्दौर आये. वे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के स्नातक और बार-एट-लॉ थे. कॉलेज को १९ वर्ष की तरुणाई तक सम्[हा]ला था श्री चमले ने. इन तमाम वर्षों में कॉलेज का इतिहास, इसकी उन्नति के लिये किये गये श्री चमले के अथक प्रयासों की गौरव गाथा है. उन्होंने अपने आप को इस कॉलेज से और इसके हितों से, एकात्म कर लिया था. मात्र १४ विद्यार्थियों से प्रारंभ हुई ये संस्था १९ वर्षों में-सेन्ट्रल इंडिया के एक प्रमुख शैक्षणिक केन्द्र के रूप में पहचानी जाने लगी थी.

ई.सी. चमले

E.C. Cholmondeley

दबंग, सख्त अनुशासन प्रिय, भव्य एवं प्रभावी व्यक्तित्व के धनी श्री चमले की ख्याति एक कुशल प्रशासक के साथ-साथ एक अच्छे शिक्षक के रूप में भी दूर-दूर तक थी. वे अपने विद्यार्थियों को एक अच्छे इंसान के रूप में देखना चाहते थे. इसीलिये शिक्षा के साथ क्रीड़ा और मानवीय गुणों के विकास में उनकी गहरी रुचि थी. उनकी इन्हीं विशेषताओं की चर्चा करते हुए श्री तात्या सरवटे ने लिखा है :-

'प्रि. चमले यांची शिकविण्याची पद्धत निराळी होती. ते वर्गात प्रश्न विचारीत, व टेक्स्ट मध्ये येणाऱ्या पौराणिक कथा, कठीण शब्द वगैरे लायब्ररीतून पाहून टिप्पणे करून आणण्यास सांगत, व वर्गात कोणी कशी तैयारी केली आहे ह्याची चांचणी घेत. त्यांचा वर्ग असे त्या दिवशी मी सकाळी लवकर ग्रंथालयांत जाऊन रेफरेन्सेस व कठिण शब्दांचे अर्थ काढून ठेवीत असे. त्यामुळे त्यांच्या प्रश्नांना उत्तरें देण्यास माझी नेहमींच तैयारी असे. प्रि. चमलेची माझ्यावर मर्जी होती ते म्हणत की "I don't care in which class you pass your exam, but I very much wish that you must be men in future life." आमच्यांत शील-चारित्र्य (character) व मैत्री बंधुभाव (comradeship) असावा, असा याचा आशय आम्हीं सर्व विद्यार्थी समजत असूं'.

– माझा जीवन प्रवाह

प्रारंभ में कॉलेज कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था. १९०४ में इसे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया गया. प्रो. चमले के प्रयत्नों और व्यक्तिगत प्रभाव से कॉलेज को विज्ञान में स्नातक स्तर (बी.एससी.) के लिये सम्बद्धता प्राप्त हुई.

श्री चमले ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के सदस्य प्रो. वार्ड (केनिंग कॉलेज) को इन्दौर आमंत्रित किया. उन्होंने १९०६ में यहाँ आकर प्रो. गोखले द्वारा सुसज्जित प्रयोगशालाओं का निरीक्षण किया. स्नातक स्तर पर शिक्षण की दृष्टि से उन्होंने कॉलेज की प्रयोगशालाओं को उपयुक्त पाया. श्री चमले ने प्रो. वार्ड की राय से विश्वविद्यालय को अवगत कराया. विश्वविद्यालय ने एक निरीक्षण-दल १९०७ में इन्दौर भेजा-जिसमें प्रो. वार्ड और प्रो. वेनिस सदस्य थे. दल ने एक प्रयोगशाला की और गैस प्लान्ट की आवश्यकता की पूर्ति की शर्तों पर सम्बद्धता की अनुशंसा की. इस प्रकार १९०८ में कॉलेज बी.एससी. स्तर की कक्षाओं के लिये सम्बद्धता प्राप्त कर सका. श्री चमले के कार्यकाल में प्राकृतिक विपदाओं के प्रकोप का प्रभाव भी कॉलेज पर पड़ा. इन्दौर में १९०३, १९०६ और १९०८ में प्लेग का भयंकर प्रकोप था. कॉलेज भी इससे प्रभावित हुआ. विद्यार्थियों की संख्या कम होती गयी. १९०९ के बाद पुनः छात्र-संख्या में वृद्धि हुई.

श्री ई.सी. चमले जुलाई १९१० में सेवा-निवृत्त हुए. उनके छात्रों ने उन्हें भव्य और आत्मीय बिदाई दी. अनेकों पूर्व छात्र भी इस अवसर पर एकत्र हुए. श्री चमले ने अपने छात्रों को जो संदेश दिया उसका मूल-मंत्र था 'खेलते रहो' - Play the Game

श्री चमले की सेवा-निवृत्ति के बाद १९१० में **गार्डनर ब्राउन** कॉलेज के प्राचार्य नियुक्त होकर आये. वे १९१० से १९१६ तक प्राचार्य थे. वे एक सुप्रसिद्ध इतिहास-विद थे. उन्होंने अपने संग्रह के दुर्लभ इतिहास-ग्रंथ होलकर कॉलेज को दिये थे. सम्भवतया वे अब शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय के ग्रंथालय में आज भी सुरक्षित होंगे. श्री गार्डनर ब्राउन ने

तुगलक वंश पर किये अपने मौलिक कार्य से प्रशंसा प्राप्त की थी. मोहम्मद तुगलक के राजधानी परिवर्तन के कारणों की विवेचना करते हुए उन्होंने इस निर्णय की प्रशासन तथा सुरक्षा की दृष्टि से मीमांसा करते हुए उसे उचित ठहराया. मुहम्मद तुगलक पागल या मानसिक रूप से असंतुलित नहीं था. यह धारणा प्रस्तुत करने वाले वे सम्भवतया पहले इतिहासज्ञ थे. बाद के इतिहासकारों के निष्कर्षों ने उनकी इस धारणा की पुष्टि की.

गार्डनर ब्राउन

श्री ब्राउन ने कॉलेज के विद्यार्थियों की रोजगार की समस्या की जानकारी और मदद के लिये कॉलेज में 'Students Employment Register' रखे जाने की व्यवस्था प्रारंभ की. १९१२ की अपनी वार्षिक रपट में उन्होंने जानकारी दी कि - रजिस्टर में दर्ज ३२ विद्यार्थियों में से -

14 have obtained employment through the Register, 02 have obtained employment through other means. 12 are still pu-rsuing their studies, 04 are at present unemployed.

गार्डनर ब्राउन अपने सेवाकाल में लगातार -शिक्षकों की संख्या में वृद्धि, छात्रावास में सुविधाओं के विकास, कॉलेज भवन में विस्तार और कॉलेज में एक सभागृह की आवश्यकताओं पर जोर देते रहे. उनके ही प्रयत्नों एवं रुचि से महाविद्यालय में, वैकल्पिक विषय के रूप में इतिहास का अध्ययन १९१३ में प्रारंभ किया गया और १९१४ में महाविद्यालय की पत्रिका का पहला अंक निकल सका. वे कॉलेज के निकट ही प्राध्यापकों की आवासीय व्यवस्था के लिये भी प्रयत्नरत रहे. कॉलेज की गतिविधियों को विस्तार देते हुए उन्होंने स्वैच्छिक प्रशिक्षण कक्षाओं को प्रारंभ किया जिसमें क्रमशः Practical Surveying और प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी दी जाती थी. प्राथमिक चिकित्सा के सफल प्रशिक्षणार्थी विद्यार्थियों को St. John's Ambulance Certificate दिया जाता था. उनके कार्यकाल में कॉलेज की स्थापना के बाद से पहली बार - अक्टूबर १९१५ से प्राध्यापकों के वेतन में वृद्धि हुई और नये वेतनमान प्रभावशील हुए. उनके समय में भी प्रतिवर्ष - प्लेग के कारण कॉलेज बंद किया जाता रहा कई बार विद्यार्थियों को तम्बुओं में रखा जाता था. १९१७ में उनका असामयिक निधन हुआ.

गार्डनर ब्राउन के बाद कुछ समय तक प्रो. **गुरूदत्त सोंधी** ने प्राचार्य के रूप में कार्य किया. प्रो. सोन्धी का जन्म जालंधर में १० दिसम्बर १८९१ को हुआ था. १९११ में उन्होंने गवर्मेंट कॉलेज लाहौर से अर्थशास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की. उच्च अध्ययन के लिये उन्होंने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश लिया (१९११-१३) और १९१४ में लिंकन इनन से विधि में स्नातक की उपाधि प्राप्त की.

१९१५ में वे होलकर कॉलेज में अर्थशास्त्र के पहले प्राध्यापक नियुक्त हुए. यहाँ उन्होंने १९१७ तक कार्य किया. १९१८ में वे गवर्मेंट कॉलेज, लाहौर चले गये. १९३९ से १९४५ तक वे इस कॉलेज के प्राचार्य रहे. गवर्मेंट कॉलेज, लाहौर के प्रथम भारतीय प्राचार्य होने का श्रेय प्रो. सोंधी को है. सेवा-निवृत्ति के बाद वे कुछ वर्षों तक स्वास्थ्य - मंत्रालय से सम्बद्ध रहे. स्वतंत्रता के बाद युवा महोत्सव और युवक कल्याण कार्यक्रमों के प्रभारी के रूप में उन्होंने शिक्षा-मंत्रालय में कार्य किया. खेल-कूद में उनकी रुचि प्रारंभ से ही थी. वे स्वयं भी एक अच्छे खिलाड़ी थे और अपने विद्यार्थी जीवन में उन्होंने क्रास-कंट्री दौड़ का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया. वे एक कुशल खेल प्रशासक और सफल संगठन कर्त्ता के रूप में सदा ही याद किये जायेंगे. लॉस-एंजेल्स (१९३२) और बर्लिन (१९३६) भेजी गयी भारतीय ओलम्पिक टीम के वे व्यवस्थापक थे. वे अंतर्राष्ट्रीय ओलम्पिक संगठन से (१९२८ से १९६६) तक भी सम्बद्ध थे. उन्होंने एशियाई खेलों के लिये पहल की. उन्हें एशियाई खेलों के जनक के रूप में भी जाना जाता रहेगा. भारत में खेल-सुविधाओं के विकास के लिये वे सदा ही समर्पित रहे. उनकी मृत्यु २० नवम्बर १९६६ को हुई. खेल-प्रेमी होने के साथ-साथ वे एक सुरुचिपूर्ण कला मर्मज्ञ भी थे. रंगमंच और साहित्य में उनकी गहरी रुचि थी. उन्होंने पंजाबी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए मंचीय दृष्टि से शेक्सपियर के कई नाटकों का उर्दू अनुवाद किया. उन्होंने एशियाई उपमहाद्वीप में खुले रंगमंच की स्थापना की. यह हमारे लिये गौरव की बात है कि प्रो. सोंधी जैसा व्यक्ति इस कॉलेज से सम्बद्ध था. परंतु यह दुःख की बात है कि कॉलेज ने उनसे कोई सम्पर्क नहीं रखा अन्यथा राष्ट्रीय स्तर पर खेल-कूद के क्षेत्र में यहाँ की स्थिति कुछ अलग ही होती.

होलकर कॉलेज के लगभग दो वर्ष के अपने सेवा-काल में प्रो. सोंधी यहाँ क्रीड़ा के प्रभारी प्राध्यापक रहे. उनके प्रयत्नों एवं रुचि से होलकर कॉलेज की हॉकी टीम लाहौर गयी. उन्होंने टेनिस-कोर्ट और क्रिकेट के मैदान में सुधार और सावधानी पूर्वक उनके रख-रखाव की योजनाएँ बनायीं.

प्रो. सोंधी के पश्चात कुछ समय तक Chas. A. Dobson ने प्राचार्य के रूप में काम किया. वे आगरा कॉलेज से इन्दौर आये थे. होलकर कॉलेज में नियुक्ति के पूर्व वे बरसों तक महाराजा शिवाजीराव हाई स्कूल में हेड मास्टर थे और उन्होंने इंसपेक्टर ऑफ स्कूल के रूप में भी कार्य किया था. उनका शासकीय निवास आज भी डाबसन कोठी के नाम से प्रसिद्ध

प्रो. सोंधी के बारे में जानकारी के लिये हम उनकी पुत्री श्रीमती रहमान खान, लाहौर (पाकिस्तान) के आभारी है.

है. १९३४ में वे कॉलेज में Professor Emeritus बनाये गये. डाबसन साहब का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावी था. वे एक कुशल शिक्षक और सहृदय इंसान के रूप में आज भी याद किये जाते हैं. कॉलेज में वे अंग्रेजी साहित्य के प्राध्यापक थे. कविताओं में उनकी विशेष रुचि थी. वे स्वयं भी कविताएँ लिखते थे. एक बार कॉलेज की परीक्षा में उन्होंने किसी विषय पर अपने विद्यार्थियों को Verse की पंक्तियाँ लिखने का प्रश्न दिया था. एक छात्र ने लिखा -

Dobson Baba Mercy take
Verses I, can not make.

वे एक जीवंत व्यक्ति थे. सरस, सहृदय और हमेंशा मदद करने को तत्पर. विद्यार्थियों के मनोविज्ञान के वे अच्छे ज्ञाता थे. मृत्युपर्यंत वे होलकर कॉलेज के शैक्षणिक और सांस्कृतिक जीवन से जुड़े रहे. उनके विद्यार्थी आज भी उन्हें आदर और श्रद्धा से कृतज्ञता पूर्वक याद करते हैं.

१९१७ में W. Owston Smith कॉलेज के प्राचार्य नियुक्त होकर आये. वे मई - १९२० तक इस पद पर थे. इतने कम समय में भी उनके कार्यकाल की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रहीं - जिनका उल्लेख यहाँ प्रासंगिक होगा. उन्होंने १९१८ में सैनिक प्रशिक्षण की कक्षायें प्रारंभ की. १९१९ में उन्होंने कॉलेज में Guardian Tutor scheme प्रारंभ की. इस व्यवस्था में विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों को १ समूह में बाँटा गया था. समूह के २० विद्यार्थी अलग-अलग कक्षाओं के होते थे और प्रत्येक समूह एक प्राध्यापक के जिम्मे था. इसी वर्ष क्रीड़ा के क्षेत्र की दो उल्लेखनीय सफलताएँ भी महत्वपूर्ण हैं. कॉलेज ने पहली बार Central India Cricket Tournament की Daly Shield पर अधिकार प्राप्त किया और कॉलेज ने Central India Tennis Tournament में भाग लिया. अपनी काव्यात्मक शैली में लिखी १९१८ की कॉलेज की रपट को लेकर वे विवादास्पद भी बने. इस रपट में उन्होंने कॉलेज की आवश्यकताओं की ओर प्रशासन तथा महाराजा का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा था -

"For the last few years it seems that the attention of His Higness' Government has been directed chiefly to school education, and the fine building which has arisen on the north side of the town is but one proof of this. We rejoice in the establishment of the Maharaja Shivajirao High School, and do not grudge the rays of princely favour which fall upon it. But we feel that the sun should be able to shine in all directions at once, and that we are left too much in darkness. Sometimes an ugly shadow is cast upon a landscape by vulture flying across the face of the sun. Whatever it may be that shuts off the light from us, We hope that our period of partial eclipse will soon be over. It is hard to work with good will when our requests for adequate funds fall on deaf ears. and sometimes we are not quite sure whether our work is noticed and appreciated. Now that the great war is over, we hope that better times are in store for us and that we may look forward to a successful future."

रियासत के गृह सचिव ने अपने पत्र क्रमांक १२/८/इ/१९१९ दिनांक १९ सितम्बर १९१९ द्वारा, यह प्रतिवेदन वापस कर उन्हें आपत्तिजनक अंश निकालकर वार्षिक प्रतिवेदन पुनः प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया. श्री स्मिथ ने विनम्र दृढ़ता से इसे नकारते हुए लिखा -

' I think there can be no doubt about the facts contained in the Report. There may be some objections to the opinion expressed or to the expression of those opinions in a Report or to the style in which the matter is clothed.
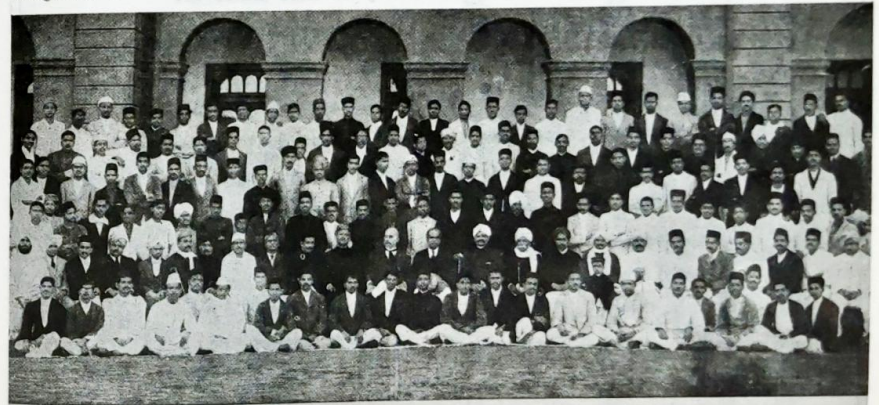
A group photo of students and staff members of the College taken in 1919, with Late Mr. Chas A. Dobson, the European Principal.

Attention has been drawn to the rather florid metaphor in the paragraph in which the favour of a prince is compared with light of the Sun and any influence which turns aside that favour with some objects casting a shadow. The same figure, I think may be found in the poetry of many nations. However, if it has caused any offence it is unfortunate that I should have used it.

I thought that I ought to place my opinion before you and I did so. Nothing can undo that fact. I still hold the same opinion and still think that you ought to know them. I think that it is useless to change anything after so many months. However, if you think it necessary I venture to suggest that you should delete anything to which objection is taken. After the Report has left my office I have no power over it.

The Report is herewith returned."

इससे उनकी चारित्रिक दृढ़ता और अपने पक्ष को सबल तथा साहस के साथ रखने के गुण स्पष्ट होते हैं.

श्री स्मिथ के असामयिक निधन के बाद कुछ समय तक डॉ. बसु ने प्राचार्य का कार्य सँभाला. १९२१ में **प्रो. शंकर लक्ष्मण गोखले** इस पद पर नियुक्त हुए. वे पूर्व में भी (१९९८-१९०८) इस कॉलेज में विज्ञान के प्राध्यापक के रूप में कार्य कर चुके थे. उनके बारे में विस्तार से एक स्वतंत्र आलेख में चर्चा की गयी है. वे दृढ़ निश्चयी, कर्मठ और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत व्यक्ति थे. उनकी चर्चा करते ही शेक्सपियर की निम्न पंक्तियाँ याद आ जाती हैं.-

His life was gentle, and the elements
so mixed in him that Nature might stand up
And say to all the world "This was a man".

प्रो. गोखले का प्राचार्य का कार्यकाल अत्यंत संक्षिप्त रहा. १९२२ में वे यहाँ से अमेरिका चले गये.

But we feel that the sun should be able to shine in all directions at once, and that we are left too much in darkness. Some times an ugly shadow is cast upon a landscape by a vulture flying across the face of the sun. Whatever it may be that shuts off the light from us, we hope that our period of partial eclipse will soon be over. It is hard to work with good will when our requests for adequate funds fall on deaf ears, and some times we are not quite sure whether our work is noticed and appreciated. Now that the great war is over, we hope that better times are in store for us and that we may look forward to a successful future.

February 20 1919

W. Owston Smith

Principal,
Holkar College, Indore.

- FROM THE COLLEGE ANNUAL REPORT - 1919

विकास

□ प्रो. महेश दुबे

डॉ. वासुदेव अनन्त सुखटणकर की नियुक्ति के साथ ही कॉलेज के इतिहास का एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है. इन तीस वर्षों में कॉलेज ने एक लम्बा सफर तय किया. इन तमाम वर्षों में जहाँ कॉलेज ने अपनी एक विशेष पहचान बनाई वहीं बढ़ती हुई छात्र-संख्या और नयी शैक्षणिक आवश्यकताओं के संदर्भ में अपने अभावों और समस्याओं से रूबरू होते हुए 1921 में प्रवेश किया.

दरअसल, डॉ. सुखटणकर ने अत्यंत विषम एवम् अस्त-व्यस्त परिस्थितियों में कॉलेज का कार्य-भार संभाला था. वे प्रो. गोखले के बाद कॉलेज में आये थे. जिन अप्रिय परिस्थितियों में प्रो. गोखले को त्याग-पत्र देना पड़ा था, उससे विद्यार्थियों में आक्रोश था. रियासत के प्रशासन के साथ प्रो. गोखले के सम्बंध मधुर नहीं थे. उनकी Directive Method को लेकर भी कॉलेज के प्राध्यापकों के साथ उनका मतभेद था. फलस्वरूप प्रो. गोखले का एक वर्ष का कार्यकाल संघर्ष करते-करते ही समाप्त हो गया. इन सबका विपरीत प्रभाव कॉलेज पर पड़ा. साथ ही पिछले वर्षों में कॉलेज में स्थायी प्राचार्य की नियुक्ति न होने से, प्रभावी नियंत्रण के अभाव में-खराब परीक्षा परिणाम और अनेक समस्याओं ने जन्म लिया.

1922 की परीक्षाओं के परिणाम, कॉलेज के इतिहास में पिछले वर्षों की तुलना में सबसे खराब थे -

परीक्षा	बैठे	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	कुल
बी.ए.	20	-	02	01	03
बी.एससी.	05	-	01	01	02
इण्टर-आर्ट्स	42	-	04	14	18
इण्टर-साइन्स	23	-	-	10	10

लगभग 30 प्रतिशत परीक्षा परिणाम और प्रथम श्रेणी में किसी भी कक्षा में एक भी छात्र नहीं. जुलाई - 1922 में कॉलेज की कुल छात्र-संख्या भी पिछले वर्षों की तुलना में कम थी -

सत्र	कक्षा	विज्ञान	कला	कुल	कुल छात्र संख्या
1916	IV	05	25	30	
	III	04	17	21	172
	II	21	49	70	
	I	17	34	51	
1917	IV	08	33	41	
	III	05	22	27	184
	II	17	46	63	
	I	17	36	53	

सत्र	कक्षा	विज्ञान	कला	कुल	कुल छात्र संख्या
1919	IV	09	32	41	175
	III	03	25	28	
	II	15	31	46	
	I	21	39	60	
1920	IV	07	31	38	198
	III	06	19	25	
	II	25	32	57	
	I	20	58	78	
1922	IV	06	22	28	159
	III	08	07	15	
	II	30	36	66	
	I	24	26	50	

समय-समय पर कॉलेज के पूर्व प्राचार्यों द्वारा समस्याओं, कठिनाइयों, आवश्यकताओं और अभावों की ओर शासन का ध्यान आकर्षित किया जाता रहा. वर्ष १९२१ में इन सब पर समग्र रूप से शैक्षणिक संदर्भों में विचार कर प्रशासन का ध्यान आकर्षित करने का सशक्त प्रयास किया गया. इस समय कॉलेज के प्राचार्य का दायित्व अस्थायी रूप से डॉ. बसु सँभाल रहे थे. उन्होंने १९२१ के वार्षिक प्रतिवेदन में उनकी चर्चा की. जिन बिन्दुओं पर विस्तार से लिखा गया, वे निम्नानुसार थे -

(१) कॉलेज में आर्थिक रूप से कमजोर छात्रों की अधिकता का उल्लेख करते हुए, डॉ. बसु ने लिखा था -'Another feature which has attracted the attention of several Principals is that the Community from which the majority of our boys come is very poor. One who has not worked as the head of a college here can not perhaps realise the poverty with which the majority of our boys put up a manly flight. But the obstacles are so great and the circumstances are so depressing that our best efforts have not been rewarded with complete success.'

कुल १९८ विद्यार्थियों में से ५० को शुल्क से मुक्ति दी गयी थी. ०८ छात्रों को सामान्य, ०५ को जहाँगीरदारी और ०५ अन्य को विशेष छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत की गयीं थी. इसके साथ - गार्डनर ब्राउन लोनफण्ड और निर्धन छात्र पुस्तकालय से भी सहायता उपलब्ध करायी जाती थी.

(२) प्राध्यापकों के लिये आवास व्यवस्था की चर्चा करते हुए, डॉ. बसु ने लिखा -'The most important question in connection with the staff is that of providing them with quarters in the vicinity of the college. Now influence of Professor out side the class room is almost nothing and the general tone of college life is proportionately low.'

इसके पूर्व गार्डनर ब्राउन ने भी प्राध्यापकों के लिये आवास की आवश्यकता पर जोर देते हुए एक योजना प्रस्तुत की थी यद्यपि जनवरी १९१६ में प्रशासन ने इसे मंजूर कर लिया था परंतु आर्थिक कारणों के कारण इसका क्रियान्वयन रुका रहा. १९१७ और १९१८ में पुनः इन ओर प्रयास किये गये परंतु कोई प्रगति नहीं हुई. डॉ. बसु ने कॉलेज के निकट प्राध्यापकों को आवास उपलब्ध कराये जाने की पुरजोर वकालत करते हुए लिखा था -'I take this opportunity to urge upon the attention of the Government the need of staff quarters in the vicinity of the college, without which we can never hope to secure the fuller development of college life.'

(३) भवन व्याख्यान कक्षों की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए डॉ. बसु ने लिखा था - 'We have no central hall which can accommodate all our students. We require more lecture rooms.' इसी क्रम में अन्य समस्याओं का उल्लेख करते हुए, रपट में कहा गया था -'The Deans quarters were declared uninhabitable in 1991, and they have not been touched yet. The boarders are compelled to bathe in the open near the well, as only a few rooms can be utilized for that purpose. If conservation of physical energy plays any part in one's life, this means a huge waste among our boys. As a result a large number of our boys keep ailing throughout the cold season, without actually falling ill. The latrines require to be extended. For the staff and day students there is no arrangement either for drinking water or for water closets. the result is that we can not utilise the services of some members of the staff, who are willing to go in the college life outside their lecture rooms.'

महाविद्यालय में छात्रों की बढ़ती हुई संख्या के संदर्भ में भौतिक सुविधाओं के अभावों की ओर राज्य प्रशासन का ध्यान आकर्षित करने के प्रयास, पूर्व में भी प्राचार्यों द्वारा किये जाते रहे थे. १९१७ में प्रो. ऑस्टिन स्मिथ ने लिखा था -''The resources of the college both as regards finance and accommodation are at present time strained almost to the breaking point. When the college buildings were erected and the present recurring grants allocated, they were on a scale that was generous and handsome for a college of 80 students; now that the college has increased to a good deal more than double that number, both have become some what exiguous, in spite of the ingenuity expended on finding accommodation for classes and an economy bordering on cheese - paring" ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशासन द्वारा इन समस्याओं के निराकरण के लिये कोई भी प्रयास नहीं किया गया.

(४) अनुशासन-किसी भी शिक्षण संस्था के सर्वांगीण विकास का प्रमुख आधार वहाँ का अनुशासन है. इस कॉलेज में प्रारंभ से ही विद्यार्थियों को अनुशासित जीवन का पाठ पढ़ाया जाता रहा है. शायद इसीलिये प्रारम्भिक वर्षों में अनुशासन-हीनता जैसी कोई विशेष समस्या कभी नहीं रही. परंतु १९२१ तक आते-आते इस समस्या ने वार्षिक प्रतिवेदनों में उल्लेख किये जाने लायक कुख्यात आकार ग्रहण कर लिया था. डॉ. बसु ने लिखा -'It is important to note that discipline has been growing lax for some time in the past. Our number has increased from year to year, while our hostel accommodation has remained the same. The result is a continually growing proportion of day students and now they are more than double the number of boarders. Inevitably, our control over the boys ceases beyond the class room. The lax descipline that follows has its reflex on hostel descipline, and the end of this drift along the inclined plane is difficult to realise.' डॉ. बसु के इन शब्दों में भविष्य की भयावह स्थिति के संकेत स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं.

[क्या ये समस्याएँ आज भी मूल रूप में वहीं की वहीं नहीं हैं? सिर्फ उनका आकार बढ़ गया है. गत ७०-८० वर्षों से कॉलेज इन समस्याओं से जूझ रहा है और निदान के अभाव में अंदर ही अंदर जर्जर होता चला जा रहा है.]

(५) परीक्षा परिणाम - महाविद्यालय की शैक्षणिक उपलब्धियों एवं गुणवत्ता के मापदण्ड परीक्षा परिणाम ही माने जाते रहे हैं. इस भ्रांति को स्पष्ट करते हुए डॉ. बसु ने लिखा -'I may be permitted to point out, the popular error which identifies the quality of teaching with the number of passed. The number of-passed is a function of many variables, of which good teaching is only one.' परंतु, परीक्षा परिणाम निश्चित ही व्यापक रूप से हमें, शिक्षण पद्धति, विद्यार्थी की मानसिक प्रवृत्तियों एवं उसके द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले और बहुलता से बाजार में उपलब्ध साधनों तथा सम्पूर्ण शैक्षणिक परिदृश्य पर विचार करने को बाध्य करते हैं. नोट्स, गाइड और वंन-डे-सिरीज पढ़ने की प्रवृत्ति आज बढ़ती जा रही है. स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों और मानक संदर्भ ग्रंथों में विद्यार्थियों की रुचि कम हो रही है. उस समय (१९२१ में) इस प्रकार के सरल उपाय प्रारंभ ही हुए होंगे. उस समय डॉ. बसु ने चेतावनी के स्वर में जो लिखा था - वो उनकी गम्भीर एवं अन्वेषक दृष्टि का परिचायक है. उन्होंने कहा था -''I do not suggest that the examinations are easy to pass; the large percentage of failures is sufficient evidence that they are not. But the large number of failures also proves that a wide syllabus of prescribed subjects, with an external examination as the test of the information acquired, inevitably tends to uneducational methods of work, and that far too many of the candidates are only 'having a shot at it', because there is a fair chance of scraping through a rather indiscriminating test with a minimum amount of knowledge and a turn of good luck. The work can be more effectively and more easily prepared by means that are not really educational.

The university attempts to maintain a standard among the large number of institutions affiliated to it, by the device of a common syllabus which has become more and more detailed in recent years. The effect upon the students and the teachers is disastrous. To quote the royal commission on university education, London, 'the students have the ordeal of the examination hanging over them and must prepare themselves for it or fail to get the degree. Thus the degree comes first and the education a bad second. They cannot help thinking of what will pay; they lose theoretic interest in the subject of study, and with it the freedom, the thought, the reflection, the spirit of inquiry, which are the atmosphere of university work. They can not pursue knowledge both for its own sake and also for the sake of passing the test of an examination. And the teacher's powers are restricted by the syllabus, their freedom in dealing with their subject in their own way is limited; and they must direct their teaching to preparation for the examination; or else lose the interest and attention of their students.'

Thus there is a disposition among both candidates and teachers to make a show of results in examinations by mechanical aids or tricks, or by so called shortcuts which have no cultural value or perhaps only a negative one.

The first and most urgent educational reform we stand in need of today is the sweeping away to the dustbin of the cribs and cram books, the notebooks with which the student arms himself for the fateful encounter of the examination hall. The teacher finds himself powerless to punish these 'dictators' of the class-room."

डॉ. बसु की इन पंक्तियों में उनकी गहरी शैक्षणिक प्रतिबद्धता और स्वायत्तता के प्रति ललक के संकेत स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं. इन्हीं अवधारणाओं और संकल्पों के साथ डॉ. बसु ने १९२६ से १९४० तक कॉलेज को सुदृढ़ नेतृत्व प्रदान किया और इसके विकास को नये आयाम दिये. निःसंदेह उनके कार्यकाल को कॉलेज का स्वर्ण युग कहा जा सकता है. आज का शैक्षणिक वातावरण भी कमो-बेश इन्हीं बीमारियों से दूषित है-इसलिये आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व व्यक्त डॉ. बसु के ये विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने ये तब थे.

(६) खेल-कूद-डॉ. बसु की मान्यता थी कि -'It is not for health only but for the wider influences on character that games should be eneouraged, and, if possible, made compulsory for all those who are physically fit for them.'

अनेक पुरानी समस्याओं के साथ डॉ. सुखटणकर का कार्यकाल प्रारंभ हुआ. शीघ्र ही वे कॉलेज में स्थिरता स्थापित करने में सफल हुए. उन्होंने कॉलेज की शैक्षणिक व्यवस्था को सुचारू रूप दिया. 1923 की परीक्षाओं के परिणाम, उनके परिश्रम और प्रयत्नों के द्योतक है. इस वर्ष के परिणाम थे -

बी.ए. - 58%
बी.एससी. - 67%
इण्टर-कला - 27%
इण्टर-साईंस - 48%

महाविद्यालय में इतिहास का अध्ययन 1914 से प्रारंभ किया गया था. परंतु यह विषय लोकप्रिय नहीं था. पिछले वर्षों में इतिहास लेने वाले छात्रों की संख्या निम्नानुसार थी -

वर्ष	कुल छात्र संख्या
	11
1914	09
1915	08
1916	07
1917	11
1918	04
1919	05
1920	

इसकी तुलना में संस्कृत और अर्थ-शास्त्र अधिक लोकप्रिय विषय थे और छात्रों को आकर्षित करते थे. इतिहास तो शायद बंद किये जाने की स्थिति में था - तभी संयोग से अगस्त 1923 में **प्रो. शैलेन्द्र नाथ धर** की नियुक्ति इस विषय के प्राध्यापक के रूप में हुई. प्रो. धर ने अपनी विद्वता, अध्यापन शैली और विषय-केन्द्रित शैक्षणिक गतिविधियों से शीघ्र ही इस विभाग को एक ठोस आधार प्रदान किया. उनके श्रम और प्रयत्नों की सफलता के प्रति विश्वास व्यक्त करते हुए कहा गया था - 'He has shown himself very keen in his subject and has already inaugurated a Historical Society which we have every hope will reawaken something of the old spirit which in the past late gardener Brown's time gave to the Holkar College a very high reputation in Allahabad university.' - **College Annual Report - 1923**

प्रो. शैलेन्द्रनाथ धर

और शीघ्र ही उन्होंने इस विश्वास को सच कर दिखाया. प्रो. शैलेन्द्र नाथ धर का जन्म 1897 में राजशाही (बंगाल) में हुआ था. उन्होंने 1920 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की. विश्वविद्यालय की प्रावीण्य सूची में उनका द्वितीय स्थान था. कुछ वर्षों तक उन्होंने लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज में अध्यापन कार्य किया. वे 1923 में होलकर कॉलेज में आये और लगभग 27 वर्षों तक इस संस्था में रहे. 1950 में वे ग्वालियर में माध्यमिक शिक्षा मण्डल के सचिव नियुक्त किये गये. 1953 में वे कलकत्ता चले गये जहाँ कुछ समय तक उन्होंने विश्वविद्यालय के अतिरिक्त परीक्षा नियंत्रक के रूप में कार्य किया.

प्रो. धर एक अच्छे लेखक भी हैं. 1936 में इन्दौर में आयोजित विज्ञान कांग्रेस के अवसर पर Indore State and its Vicinity शीर्षक से उन्होंने एक संक्षिप्त परिचयात्मक पुस्तिका लिखी थी - जो अपनी रोचक शैली और तथ्यपरक विषय वस्तु के कारण बहुत लोकप्रिय हुई थी. इस सचित्र पुस्तिका में उन्होंने होलकर वंश के इतिहास के साथ इन्दौर के शैक्षणिक और आर्थिक विकास का विवरण दिया था. इन्दौर के साथ-साथ, आस-पास के ऐतिहासिक महत्व के स्थानों की भी जानकारी इस में दी गयी थी. पुस्तिका में -

Situation and Physical Features
Malwa Through the Ages
The Rise of Indore
Storm and stress
The Modernisation of Indore
The Growth of the Administrative system of Indore
The Governance of Indore
Economic Conditions
Economic Development
Education in State
The city of Indore.

अध्यायों के माध्यम से - मालवा और इन्दौर के विकास की यात्रा का वर्णन किया गया था. मांडू और बाघ की गुफाओं पर भी दो अध्याय थे.

Europe between Two World wars और Atomic Weapons in World politics उनकी अन्य कृतियाँ हैं. स्वामी विवेकानंद के जीवन चरित्र पर दो भागों में लिखा उनका ग्रंथ -A comprehensive Biography of Swami Vivekananda बहुत प्रसिद्ध है और प्रामाणिक माना जाता है. अभी हाल ही में इसका द्वितीय संस्करण विवेकानंद केन्द्र, मद्रास से प्रकाशित हुआ है.

प्रो. धर के शालीन और संस्कारी व्यक्तित्व ने इस कॉलेज को जो शैक्षणिक गरिमा दी, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता. वे श्रद्धास्पद थे और अपने दायित्वों को पूरी तरह से समर्पित थे. उनके मित्र स्नेह से और उनके विद्यार्थी अत्यंत आदर से आज भी उन्हें स्मरण करते हैं.

इन दिनों वे कलकत्ता में रह रहे हैं. कॉलेज के प्रति उनके हृदय में आत्मीय भाव वैसा ही है. शताब्दी के अवसर पर हम उनकी दीर्घायु की कामना करते हुए अपने प्रणाम उन्हें निवेदित करते हैं.

१ दिसम्बर - १९२२ को कॉलेज में अंग्रेजी के वरिष्ठ प्राध्यापक नियुक्त होकर आये **चार्ल्स एल्फ्रेड डाबसन.** इसके पूर्व भी वे कॉलेज से सम्बद्ध थे. महाराजा शिवाजी राव स्कूल के प्रधानाध्यापक और इंसपेक्टर ऑफ स्कूल्स के रूप में काम करते हुए भी वे कॉलेज में अंग्रेजी पढाने के लिये आते रहते थे. उन्हें हम उस समय के कॉलेज-परिवार का 'शालीन-वृद्ध' कह सकते हैं. (उनका जन्म १८.१२.१८६६ को हुआ था). उनकी उपस्थिति ही आश्वस्त करती थी. भव्यता, तेज, परिपक्वता, करूणा, सहृदयता इन सबको एक ही साथ व्यक्त करने का अर्थ है - प्रो. डाबसन का स्मरण जिससे उदात्त निर्लिप्तता और स्नेह सतत झरता था. स्वभाव से वे कवि थे. कितने ही विद्यार्थियों को उन्होंन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मदद की. आज वे हमारे बीच नहीं हैं परंतु उनकी स्मृतियाँ सदैव जीवित रहेंगी और उन स्मृतियों के माध्यम से वे हमेंशा हम सब के बीच मौजूद रहेंगे -

धरती के कुछ नहीं में विघल जाने के बाद
एक शब्द बचेगा
तुम्हारा नाम
सारी आवाजें, सारे बोल जब ईंट और पत्थर हो जायेंगे
पहाड़ों पर एक कोयल खिले हुए पलास पर बोलेगी
तुम्हारी आवाज

- शिरीष ढोबले : जैसे मैं अभी कह रहा हूँ

१९३४ में सेवा-निवृत्ति के बाद वे Professor Emeritus के रूप में कॉलेज से जुड़े रहे. निश्चित ही वे एक असाधारण मनुष्य थे. वे श्रेष्ठ परम्पराओं को बनाये रखने के पक्षधर थे. वे एक सशक्त और कुशल अध्यापक थे. उनके व्यक्तित्व में अद्भुत मेधा, विलक्षण स्मरण शक्ति और तर्कपूर्ण कुशाग्रता का अद्भुत समन्वय था. दृढ-निश्चय, निष्ठा, समर्पण, लगन और परिश्रम ने उनके व्यक्तित्व को और अधिक आभा प्रदान की. १९४३ में उन्हें मुमताज़िम-ए-खास बहादुर की उपाधि से अलंकृत किया गया था. १३ दिसम्बर, १९४४ को उनकी मृत्यु हुई.
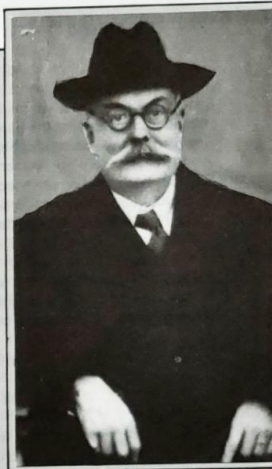
पितृतुल्य चार्ल्स डाबसन

डॉ.वा.वि.भागवत

होलकर कॉलेज के Vice Principal चार्ल्स डाबसन का पितृ-तुल्य चेहरा आज भी मेरे सामने है. वे वैसे ऊँचे कद के थे किन्तु मोटे होने के कारण उनका ऊँचा कद ध्यान में नहीं आता था. भरा हुआ गोल चेहरा और लम्बी मूँछे. बडे भव्य दिखते थे. आयुष्य में उनका एक ही लक्ष्य था - पढाना, अंग्रेजी पढाना. आज हम कह सकते हैं -'Sir, God did not want anything more from you'. वे महाराजा शिवाजी राव हाईस्कूल में हेड मास्टर थे. १९२१ में मैं जब ९वीं कक्षा में था तब वे हमें Anthology of verses, Grammar और General English पढाते थे. तभी मैंने उन्हें नजदीक से देखा. उस समय उन्होंने हमें - Home they Brought the Warrior Dead कविता पढाई थी. अत्यंत कारूणिक कविता है. मुझे याद है हम सब रोने लगे थे. वे अत्यंत तन्मयता से पढाते थे. व्याकरण जैसे क्लिष्ट और नीरस विषय को बड़ी सरलता से पढाते. उन्होंने स्वयं भी Simple Grammar की एक पुस्तक लिखी थी.

हम वैसे सामान्य विद्यार्थी नहीं थे. हमारा मित्र परिवार बड़ा था. उनमें से कइयों को नकल से अपने साथ ऊपर के वर्ग में ले जाने को हमें विवश होना पड़ता था. जब इसमें सफल नहीं होते तब हमारा मित्र गोपू परांजपे -'Promoted to Next Class' लिखकर नीचे हू-ब-हू चार्ल्स डाबसन के दस्तखत बना देता और हमारी मित्र-मण्डली के सदस्य अगली कक्षा में प्रवेश पा जाते. एक दिन डाबसन साहब को इस प्रयोग का पता चल ही गया. उन्होंने गोप्या को बुलाया. पूछा -'क्या तुम मेरे दस्तखत करते हो?' गोपू के हाँ बोलने पर एक कागज पर उसे दस्तखत करने को कहा. गोपू ने उनके सामने उनके ही हस्ताक्षर बना दिये. देखकर बहुत खुश हुए - बोले 'Very fine!, Very fine!' गोपू को दुबारा करने को कहा. वे कागज को देखते जाते और प्रसन्नता से कहते जाते -''Very fine!, Very fine!' फिर एकदम गम्भीर हुए और बोले आइन्दा से कभी मत करना, नहीं तो रॅस्टीगेट कर दूँगा. ''जाओ!' ऐसे दयालु थे. गोपू उस दिन से एक प्रामाणिक विद्यार्थी हो गया. जो काम कठोरता से न होता उसे उनकी दयालुता ने कर दिखाया.

यह घटना १९२१ की होगी. तब अहिल्याश्रम की छात्राएँ साईस पढने के लिये. पहले पीरियड में महाराजा शिवाजी राव हाईस्कूल आने लगी थीं. हमारे वर्ग में करमरकर नाम का एक विद्यार्थी था. उसने सुंदराताई काणेकर का रेखा चित्र खींचा. छात्रा के ध्यान में ये आते ही उसने स्फूर्ति से दौड़कर वह चित्र लिया और तंजावरकर मास्टर साहब को बताया. तंजावरकर पुराने जमाने के शिक्षक होते तो वे छात्र को पीटते. वे ब्रह्म समाजी थे. न पूरे नये युग के और न पूरे पुराने समय के. क्या करना यह प्रश्न उन्होंने डाबसन साहब को कक्षा में बुलाकर सुलझाने की कोशिश की. हम सब डर गये. डाबसन कुर्सी पर बैठे और कहा, ''कहाँ है वो चित्र?'' डाबसन स्वयं उत्तम कलाकार थे. श्रीमती डाबसन भी पेंटिंग करती थीं. चित्र देखकर उन्होंने उसकी प्रशंसा की और कहा, 'अच्छा रेखा-चित्र है.' फिर पूछा 'क्यों बनाया?' करमरकर ने कहा कि, मैं इण्टरमीजिएट ड्राइंग' की परीक्षा में बैठ रहा हूँ. भंगिमा अच्छी लगी इसलिये चित्र बना लिया.' 'बहुत अच्छा प्रयत्न है' डाबसन साहब ने कहा फिर बोले, 'Look here my boy. These things are not appreciated in India so don't repeat it! इतना कह कर चले गये. हम लोगों ने छुटकारे की साँस ली. इतने सहृदयी थे वो!

डाबसन ने मारा है? हाँ, मारा है - उस नाफडे को जिसने खरे मास्टर से कहा था 'मेरे से जोर मत पकड़ो. मुझे मालूम है तुम्हारी कौनसी टाँग टूटी है! ऐसा दूँगा कि तीन गुलाटी खाओगे.' डाबसन ने उसे आठ दिन का समय माफी माँगने के लिये दिया था. नवें दिन प्रार्थना खत्म होते ही उसे डायस पर बुलाया और माफी माँगने को कहा. नाफडे के मना करने पर अपने हाथ की छडी से आठ-दस फटकारे दिये, छडी फेंक दी और चले गये. किस्सा समाप्त हुआ.

१९२२ में वे कॉलेज में आ गये. मैंने भी १९२३ में कॉलेज में प्रवेश लिया. वे अत्यंत एकाग्र होकर हमें पढाते थे. रस्किन की 'सीसम और लिलीज' उनसे हमने दो साल पढी. इसमें शेक्सपीयर के अनेक नाटकों का उल्लेख है. उन्होंने हमें प्रत्येक नाटक का सारांश दिया. Life and Death of Socrates का पेरा बाय पेरा (प्रत्येक पेरेग्राफ का) सारांश देकर हमें पढाया. १९२४ में कॉलेज में नये विचारों के एक अंग्रेज पियर्स प्रिन्सपल नियुक्त हुए. वे बगीचे में पढाते थे. हमारे कोर्स में मेकाले की History of England part -3 नामक पुस्तक थी. प्रो. पियर्स हमें पढाने को आये. हम सब बगीचे में बैठे. उन्होंने किताब खोली. पहला पेरेग्राफ इतना कठिन पड़ा कि वे बोले -'अब हम कल मिलेंगे.' वो कल फिर कभी आया ही नहीं. हम सब डाबसन के पास गये. उन्होंने हमें वो पुस्तक समझायी और उसके विस्तृत नोट्स दिये.

एक बार उन्होंने हमें एक निबंध लिखने को दिया. मैंने १०-१२ पृष्ठ का निबंध लिख कर दिया. वे कक्षा में आये. मेरी पीठ थप-थपायी - बोले -'अच्छा निबंध है, मैं तुम्हें १०० में से १०० अंक देता हूँ' मैं फूल गया. फिर बोले, 'अब जरा गलतियाँ देखें. हर गलती पर आधा अंक काटेंगे.' गलतियाँ निकालते और अंक काटते-काटते मुझे -५५ (ऋणात्मक) अंक मिले. मेरा मुँह उतर गया. वे हँस पड़े. मैं समझ गया बुड्ढा बहुत चतुर है.

उनके समय में १९२७ में एम.ए. अंग्रेजी की कक्षाएँ प्रारंभ हुईं. आगरा विश्वविद्यालय में होलकर कॉलेज का नाम था. कु. भण्डारकर, एल.ओ.जोशी I class First आये थे.

वे वरिष्ठ थे, उप-प्राचार्य थे किन्तु डॉ. बसु ने उन्हें मात दी. डॉ. बसु के प्राचार्य बनाये जाने पर कई वर्षों तक वे नाराज रहे. बाद में उन्होंने स्वीकार किया कि जो काम डॉ. बसु ने किये उन्हें वे नहीं कर पाते. प्रतिस्पर्धी के गुणों को ग्रहण करने की और उसकी प्रशंसा करने की सहृदयता उनमें थी.

सेवा-निवृत्ति के बाद Professor Emeritus के रूप में वे मृत्यु पर्यंत होलकर कॉलेज से जुड़े रहे. हम लोग उनकी शव-यात्रा में शामिल हुए थे. उनकी पुत्री की मृत्यु उनके लिये अत्यंत दुःखद घटना थी. उनका कोई पुत्र नहीं था. उनकी मृत्यु के उपरांत श्रीमती डाबसन अपने भाई के साथ इग्लैण्ड चली गयीं थी. प्रो. डाबसन की कार को स्मृति के रूप में उनके शिष्य प्रो. बोरगाँवकर ने खरीदा था. उस कार को देखकर हमें डाबसन सा. की याद आती. □□

श्री एन.सी. जमींदार के सौजन्य से मुझे प्रो. डाबसन की दो रचनाएँ पढ़ने का अवसर मिला. 'Rustam And Tahmineh' उनका एक गीत काव्य है. उनकी दूसरी कृति है -'A Text Book of Morality' – **- महेश दुबे**

- From the College Magazine Jan. 1936.

The Song of the English Suffragettes

- Prof. Chas A. Dobson

I

God-breathing souls that ye coop and pen,
Dolls in palace and drabs in den,
What have we been but the toys of men?
Passion's poor playthings, and soon forgot,
Done to death by the drunken sot,
Sad above measure is woman's lot,
Patted, flattered, in naught denied,
Played with, broken and flung aside,
This is the destiny we have defied.
Fathers and brothers in name are ye,
Sisters and daughters, at least, are we,
Mind, heart, and body, we claim to be free.

II

Sisters and daughters, yet made to dwell,
Hopeless, unhelped, at the gates of hell....
Sow ye your wild oats to reap as well?
Worthy of you there are women bred,
Soulless body, and empty head....
Lo! in your vices the land lies dead.
Read it in blood in your records old.
Lust and luxury, greed of gold,
Ever a nation's decay foretold.
Fathers and husbands ye still should be.
Wives and mothers, your equals we,
When from your lust the land breaks free.

III

Measure for measure to Man we meet,
Children had saved you, the children sweet;
Them you reject for the scum o the street.
Marriage, our birthright, we fear and dread,
Bound by your bounds we are worse
than dead;

Lightly ye break them, and nothing said,
If ye will sin shall we sin as you?
Why is shame but the Woman's due?
Why pardon Man that he sin anew?
Husbands and fathers ye claim to be,
Wives and mothers, your equals we,
How are we bound if you still be free?

IV

Gone are the days of the woman meek,
Mild, submissive, and soft, and weak;
Say, "Is the cause of it hard to seek?"
What the blows on our bravest fell
Deep at heart shall the memory dwell,
Answer, ye Men, "Have ye acted well?"
Jeered at, and gibed at, and lodged in jail,
Scorned, rejected, we seem to fail;
Yet are we stronger and shall prevail.
Husbands and fathers shall come to see Wives and mothers
their equals be,
Equals in honour, as equals free.

V

God-gifted sould with our hopes and fears,
Fouled and fooled with these years on years,
Yet are we cleansed in our blood and tears.
True men shall come to our aid for shame;
Right and justice is all we claim,
What in our cause can ye find to blame?
Right to share in the good of life,
Justice, no more, in our bitter strife,
Bread unpolluted for maid and wife.
Husbands and fathers in name are ye,
Wives and mothers, your equals we,
Equals in honour, as equals free.

VI

Woman! Arise ye in word and deed;
Daily bread is our present need;
Woman in honour, our holy creed.
Woman and Man must the lesson learn
Home and children on Woman turn,
Both are lost if the lore we spurn.
Wave then our banner, the fairest seen
Sorrow and hope and peace between
Banner of purple and white and green.
Husbands and fathers, whoe' eye be
Wives and mothers, your equals we;
While we are slaves can your sons be free?

धीरे-धीरे होलकर कॉलेज में प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थियों की संख्या बढ़ रही थी. १९२४ में कॉलेज की छात्र-संख्या २०० थी और १९२५ में २५६ -

	१९२४		१९२५	
	कला	विज्ञान	कला	विज्ञान
प्रथम वर्ष	४६	३५	६७	३५
द्वितीय वर्ष	३८	२८	५२	३४
तृतीय वर्ष	१४	१२	२५	१२
चतुर्थ वर्ष	१२	१५	१५	१६

इन वर्षों के परीक्षा - परिणाम भी पिछले वर्षों की तुलना में बहुत अच्छे कहे जा सकते हैं -

	प्रतिशत	
	१९२४	१९२५
बी.ए.-	४३	८३
बी.एससी.-	०	६४
इण्टर-कला -	४८	५८
इण्टर-विज्ञान	७०	६०

अच्छे परीक्षा परिणामों के कारण होलकर कॉलेज इलाहाबाद विश्वविद्यालय और यू.पी. बोर्ड के क्षेत्रों में एक प्रतिष्ठित संस्था के रूप में जाना जाता था. फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों से अनेक विद्यार्थी यहाँ प्रवेश पाने के लिये लालायित रहते थे. छात्रावास में सीमित स्थानों तथा सीमित शैक्षणिक एवं भौतिक सुविधाओं के कारण सबको प्रवेश दिया जाना सम्भव नहीं था. इसके साथ इन्दौर में कम लिया जाने वाला शिक्षण-शुल्क तथा राज्य की ओर से जरूरतमंद छात्रों को मिलने वाली छात्रवृत्तियाँ एवं अन्य मदद भी आस-पास के प्रांतों से छात्रों को यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करने के लिये आकर्षित करने के लिये पर्याप्त थे. वैसे भी इन्दौर अन्य देशी रियासतों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील मानी जाती थी. राजनैतिक स्थिरता, शांत वातावरण, खेल-कूद की सुविधाएँ तथा ख्यातिप्राप्त प्राध्यापक सभी कुछ एक साथ होलकर कॉलेज में उपलब्ध था. प्रवेश के लिये प्राप्त आवेदनों में वृद्धि को देखते हुए ही कॉलेज के प्राचार्यों ने भौतिक सुविधाओं के विकास के लिये सतत प्रयत्न किये. कॉलेज का वर्तमान स्वरूप इन्हीं प्रयत्नों का प्रतिफल है.

जुलाई १९२२ में **प्रो. नीलकंठ पद्मनाभन शास्त्री** की भौतिक विभाग में नियुक्ति, आत्मीय सम्बंधो की एक लम्बी और पारिवारिक श्रृंखला की शुरूआत थी. श्रीमती मैत्रेयी पद्मनाभन ने भी इसी कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की और पद्मनाभन दंपत्ति के पुत्र गौतम, कृष्णा, अजीत और अशोक इसी कॉलेज के परिसर में पले, बढ़े और शिक्षित हुए. उनकी पुत्रवधू मीनाक्षी भी इसी संस्था की छात्रा थी. श्रीमती पद्मनाभन एक ख्यातिप्राप्त शिक्षिका, बाल मनोविज्ञान की अच्छी जानकार और सफल शैक्षणिक प्रशासक के रूप में जानी जाती हैं. आज भी वे सक्रिय रूप से इन्दौर के शिक्षा जगत से जुड़ी हैं. गौतम १९४८ से १९५० तक इस कॉलेज के छात्र थे. १९५३ में उन्हें भारतीय वायुसेना में कमीशन मिला. कांगों में संयुक्त राष्ट्र संघ की सैनिक गतिविधियों में भाग लेते हुए उन्होंने वायु सेना पदक प्राप्त किया. भारत-पाक युद्धों के दौरान (१९६५, १९७०) उन्हें असाधारण शौर्य, पराक्रम एवं वीरता के लिये दो बार महावीर चक्र से सम्मानित किया गया. यह एक दुर्लभ सम्मान था - जिससे न केवल उनका परिवार अपितु यह कॉलेज और यह नगर भी गौरवान्वित हुआ है. आज वो हमारे बीच नहीं हैं - परंतु हमारी स्मृतियों में है. काल की ज्यामिती की कोई भी रेखा उसे हमारी स्मृतियों से काट नहीं सकती. कृष्णा १९५२ से १९५७ में इस कॉलेज में थे. उन्होंने एक भौतिकविद्के रूप में ख्याति प्राप्त की. उन्होंने विसकॉन्सिन विश्वविद्यालय में शोध कार्य किया. वे बनारस विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्राध्यापक थे. इन दिनों वे कृष्णमूर्ति फाउन्डेशन के शिक्षा-संस्थान से सम्बद्ध हैं.

प्रो. पद्मानाभन भौतिकी के उत्कृष्ट शिक्षक के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं.

२६ जनवरी १९९१ को महाविद्यालय में शताब्दी के 'आरम्भ' कार्यक्रम में प्रो. पद्मनाभन

कॉलेज में पं. माखनलालजी चतुर्वेदी के साथ प्रो. पद्मनाभन

उनकी उपस्थिति ने बरसों तक कॉलेज के शैक्षणिक जीवन को अनुप्राणित किया. उनसे बात करने का अर्थ, इस शताब्दी की भूली-बिसरी यादों की गठरी को खोलने जैसा है. धीरे-धीरे बोले गये उनके शब्दों में कॉलेज का अतीत साकार होने लगता है और -

भाषा में
लौटते हैं
सदियों से गुम हो गये
प्राचीन शब्द.

- अशोक वाजपेयी : कहीं नहीं वहीं.

उनका आशीर्वाद हमें सतत मिलता रहे - यही प्रार्थना है.

कॉलेज में डॉ. राधाकृष्णन के साथ प्रो. पद्मनाभन

कॉलेज में टेनिस अत्यंत लोकप्रिय था. कॉलेज के छात्र श्री चुन्नीलाल टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे और वे Central India Tennis Tournament के Gentlemen's Singles Championship विजेता थे. फुटबाल में कॉलेज की टीम सालारजंग स्पर्धाओं में भाग लेने अलीगढ़ गयी थी. बेडमिंटन और वॉलीबाल नये-नये प्रारंभ हुए थे. बेडमिंटन को प्रारंभ करने का श्रेय प्रो. डाबसन को है जिन्होंने स्वयं के व्यय से इसकी सारी व्यवस्था की थी. हॉकी में विद्यार्थियों की रुचि बढ़ रही थी. बाला. साहब-यशवंतराव होलकर-स्वयं कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ हॉकी का अभ्यास करने आते थे. दो वर्षों के अंतराल के बाद कॉलेज का २४ वाँ वार्षिक स्नेह सम्मेलन - १९२५ में उत्साह से आयोजित किया गया. इस अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों की सफलता से प्रेरणा लेकर - प्रो. गोले ने निर्धन विद्यार्थियों की सहायतार्थ बेडयांचा बाजार नामक मराठी नाटक तैयार कर प्रदर्शित किया. इस नाटक से छात्रों ने ६०० रुपये की धनराशि एकत्र की. उस समय की दृष्टि से यह एक सराहनीय प्रयास था. शैक्षणिक गतिविधियों के अंतर्गत कॉलेज में -Historical Association और Economic Seminars सक्रिय थे.

विकास की सुखद सम्भावनाओं के संकेतों के साथ १९२६ का सत्र प्रारंभ हुआ. जून १९२६ में श्री पियर्स ने अपने पद से त्याग-पत्र दिया. उनके स्थान पर डॉ बसु ने कार्य सँभाला - जिनकी प्राचार्य के रूप में स्थायी नियुक्ति दिसम्बर १९२६ में हुई. नये सत्र के साथ ही कॉलेज की समस्याओं के निदान एवं शैक्षणिक सुधारों के लिये प्रारंभिक और प्रभावी कदम उठाये गये. कॉलेज में -

- अंग्रेजी और अर्थ-शास्त्र में दो सहायक प्राध्यापकों के नये पद स्वीकृत किये गये.
- Physical Culture के प्रशिक्षक का पद निर्मित हुआ
- दो प्रयोगशाला सहायक के पदों को स्वीकृति प्रदान की गयी.
- लिपिकों, डिमान्स्ट्रेटरों के वेतन में वृद्धि हुई.
- छात्रवृत्ति की संख्या एवं राशि बढ़ाई गई.
- वाचनालय की अनुदान-राशि अधिक स्वीकृत की गयी.
- छात्रावासों की मरम्मत का कार्य पूरा हुआ.
- नया फर्नीचर लिया गया.
- वृहत गॅस-प्लान्ट को लगाये जाने के प्रावधान को स्वीकृति मिली.

इन कार्यक्रमों और कुल २७१ की छात्र-संख्या के साथ १९२६ का सत्र प्रारंभ हुआ. इस वर्ष - प्रवेश संख्या निम्नानुसार थी -

इण्टर कला - १२२
विज्ञान - ७२
बी.ए. - ६०
बी.एससी. - १७

वर्ष १९२६ का परीक्षा परिणाम भी संतोषप्रद था -

परीक्षा	**बैठे**	**उत्तीर्ण**	**प्रतिशत**
बी.ए.	१५	०९	६०
बी.एससी.	१६	१४	८७.५
इण्टर-कला	४७	२४	५१
इण्टर-विज्ञान	३१	०६	१९

इण्टर विज्ञान का प्रतिशत यद्यपि कम था, परंतु यशस्वी भी था इसीलिये, प्राचार्य ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था -

'One student passed in I division and obtained distinction in Physics an honour which the college has secured for the first time in its career'

डॉ. प्रफुल्लचन्द्र बसु

१९२६ में ही - संस्कृत और हिन्दी के प्राध्यापक के रूप में **पं. श्रीनिवास चतुर्वेदी** और संस्कृत तथा मराठी के लिये **प्रो. वामनराव ऊर्ध्वरेषे** की नियुक्ति हुई. पं. श्रीनिवास चतुर्वेदी संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी के प्रखर विद्वान और वैदिक साहित्य तथा भारतीय संस्कृति के ज्ञाता थे. उनका जन्म १८९१ में आगरा के चन्द्रपुर नामक गाँव में हुआ था. उनके पिता इन्दौर में 'अमीन' थे. उनकी प्रारंभिक शिक्षा चंद्रपुर में हुई. उन्होंने इन्दौर के मिशन स्कूल से तर्कशास्त्र, संस्कृत और इतिहास लेकर इण्टर मीजिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की. उन्होंने आगरा विद्यापीठ से बी.ए. और बनारस से एम.ए. की उपाधि प्राप्त की. प्रारंभ में कुछ वर्षों तक उन्होंने इन्दौर के तिलोक चन्द जैन हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया. लगभग ५ वर्षों तक मेरठ के नानकचन्द हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक रहने के उपरांत वे १९२६ में होलकर कॉलेज में आये. उन्हें ज्योतिष और आयुर्वेद का भी अच्छा ज्ञान

पं. श्रीनिवास चतुर्वेदी

था. सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ. वेनिस के साथ उन्होंने अशोक कालीन शिलालेखों का अध्ययन किया था. वे अत्यंत तीक्ष्ण बुद्धि वाले, नम्र स्वभाव के मिलनसार व्यक्ति थे. उनका जीवन सादा और सात्विक था. वे एक कुशल और आदर्श शिक्षक के रूप में अपने छात्रों में लोकप्रिय थे. उनके विद्यार्थी आज भी उन्हें आदरपूर्वक स्मरण करते हैं. अपने पूर्ववर्ती प्राध्यापकों - (स्व. पाटणकर और स्व. घाटे) द्वारा निर्मित संस्कृत के अध्ययन - अध्यापन की परम्पराओं को उन्होंने न केवल कायम रखा अपितु अपने प्रयत्नों से उन्हें और अधिक कीर्ति प्रदान की. वे हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे और होलकर कॉलेज में हिन्दी के प्रथम प्राध्यापक के रूप में सदैव याद किये जाते रहेंगे. इन्दौर की मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति से वे आजीवन सम्बद्ध रहे. २१ नवम्बर १९४१ को उनकी मृत्यु हुई. २० दिसम्बर - १९४१ के 'The Holkar College Times' में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके मित्रों और विद्यार्थियों ने उनके असाधारण व्यक्तित्व और गुणों को स्मरण करते हुए लिखा था -

'He was an eloquent speaker in Hindi, Sanskrit and English and a great devotee of Indian culture. With all this scholarship and merit he was quite free from vanity and took great delight in coming in contact with the down - trodden poor brothren for whom he cherished unbounded sympathy.'

- KBM

१९२६ से १९४० तक का समय कॉलेज के सर्वांगीण विकास का था. शैक्षणिक कीर्तिमानों की उपलब्धियों के साथ इस अवधि में क्रीड़ा व अन्य शैक्षणेत्तर गतिविधियों तथा भौतिक सुविधाओं में शनैः शनैः वृद्धि की सफलताएँ भी उल्लेखनीय हैं. इन १४ वर्षों का इतिहास - कॉलेज की प्रगति और इसके लिये किये गये डॉ. बसु के प्रयासों की महाकाव्यात्मक गाथा है. कॉलेज में स्नातकोत्तर स्तर पर अंग्रेजी, अर्थ-शास्त्र, रसायन-शास्त्र और इतिहास की कक्षाएँ प्रारंभ हुई. कॉलेज के पाठ्यक्रमों में विधि और वाणिज्य संकाय शामिल हुए. स्नातक स्तर और इण्टर की कक्षाओं में हिन्दी और मराठी विषय प्रारंभ किये गये.

इन वर्षों में कॉलेज की छात्र संख्या, इस प्रकार थी -

वर्ष	**छात्र संख्या**	**विशेष**
१९२६	२७१	
१९२७	३६८	अर्थ-शास्त्र, अंग्रेजी में एम.ए., बी.ए. में हिन्दी विषय.
१९२८	४३७	विधि की कक्षाएँ, इण्टर में हिन्दी और मराठी
१९२९	५६८	
१९३०	६२०	रसायन-शास्त्र में एम.एससी.
१९३१	५९७	
१९३२	६२२	
१९३३	५७९	
१९३४	६२८	
१९३५	६६१	
१९३६	६९८	
१९३७	७०५	इतिहास में एम.ए.
१९३८	७१५	
१९३९	७०२	वाणिज्य विषय
१९४०	६९५	

कॉलेज के छात्रावास में उपलब्ध सीमित स्थानों के कारण, बाहर से आये अनेक विद्यार्थियों को अपनी वैकल्पिक व्यवस्था करना पड़ती थी. डॉ. बसु के प्रयत्नों से १९२७ में Inspector General of Police ने

भँवरकुआ स्थित पुलिस बँगला और उसके निकट ही, श्री एम.के. वागले ने अपने बँगले को छात्रों के निवास के लिये उपयोग में लाये जाने की अनुमति दी. श्री वागले का बँगला - वागले हट्स के नाम से जाना जाता था. ये दोनों ही स्थान बाद के अनेक वर्षों तक कॉलेज के छात्रों द्वारा उपयोग में लाये जाते रहे.

परीक्षा परिणामों की दृष्टि से १९३३ का वर्ष महाविद्याय के लिये अत्यंत गौरवशाली था. इस वर्ष विभिन्न परीक्षाओं में प्रतिशत इस प्रकार था -

एम.ए.	अंग्रेजी	८० प्रतिशत
एम.ए.	अर्थ-शास्त्र	६७ प्रतिशत
एम.एससी.	रसायन	१०० प्रतिशत
बी.ए.		६५ प्रतिशत
बी.एससी.		९२ प्रतिशत

एम.ए. अंग्रेजी में प्रावीण्य सूची में प्रथम और तृतीय स्थान कॉलेज के विद्यार्थियों को मिला. प्रथम स्थान पर आकर कु. सुमति भण्डारकर ने विश्वविद्यालय का शेषाद्रि स्वर्ण-पदक प्राप्त किया. कु. भण्डारकर ने १९३४

से ३६ के सत्रों में महाविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में अध्यापन कार्य भी किया. उन्हें इस महाविद्यालय की प्रथम महिला प्राध्यापक होने का श्रेय है. बी.ए. और बी.एससी. में प्रावीण्य सूची में प्रथम स्थान अर्जित कर महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने कीर्तिमान स्थापित किया. श्री लालचन्द गुप्ता को बी.एससी. में सर्वप्रथम आने पर कृष्णाकुमारी पदक प्राप्त हुआ. इण्टर में प्रावीण्य सूची में प्रथम आकर श्री लक्ष्मीनारायण ओंकारलाल जोशी ने स्वर्ण और द्वितीय स्थान पर आये श्री दुर्गाप्रसाद ने रजत पदक प्राप्त किये. इसी श्रृंखला में एम.एससी. (रसायन) में द्वितीय और एल.एल.बी. की परीक्षा में प्रथम स्थान कॉलेज के छात्रों ने प्राप्त किया. यह वर्ष प्रो. डाबसन के शिक्षक जीवन के स्वर्ण-जयंती वर्ष के रूप में भी स्मरणीय रहेगा. बाद के वर्षों में - १९३६ में श्री राजकुमार सिंह ने एम.ए. अर्थशास्त्र में और श्री शंकरलाल नाथूलाल जोशी ने इण्टर में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर स्वर्ण-पदक अर्जित किए. श्री जोशी ने अपनी पूर्व ख्याति के अनुकूल ही १९३७ में एम.ए. अंग्रेजी में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये. इसी वर्ष कु. चम्पा भावे को इण्टर में छात्राओं में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने पर स्वर्ण-पदक से सम्मानित किया गया. १९३८ में श्री प्रभाकर घाटे ने यह सम्मान प्राप्त किया. इन वर्षों में अपनी सफलताओं से कीर्तिमान स्थापित कर विभिन्न पुरस्कार प्राप्त करने वाले छात्रों में, उल्लेखनीय हैं-

(१) कृष्णाकुमारी देवी स्वर्ण-पदक

श्रीधर घाटे (१९३८) - बी.एससी. में सर्वप्रथम
एस.डी. सिंहल (१९४१) - सामान्य उत्कृष्टता के लिये

(२) केदारेश्वर पदक -

राजकुमार सिंह १९३४
गोविंदराम शर्मा १९३७
माधव नारायण सिंहल १९३८
कैलाश चन्द्र जैन १९३९
प्रभाकर घाटे १९४०
लक्ष्मण बापट १९४१

(३) राधाबाई नाफडे पुरस्कार-

तुकाराम चतुर्वेदी १९३२
रामचन्द्र अनऊकर १९३४
मदन किशोर रविदत्त बाजपेयी १९३५
कुंदनलाल जैन - १९३६
कमलाकर केमकर १९३७

(४) सर गोविन्द मडगाँवकर पदक

अम्बिका प्रसाद सक्सेना १९४०-४१
शिव किशन कौल १९३७

(५) कृष्णाराव रेशिमवाले पुरस्कार (मराठी के लिये)

वसंत बर्वे १९३६
लक्ष्मण मुंशी - १९३७
प्रभाकर घोंगडे - १९४०-४१
गंगाधर जगदाले - १९४०-४१
शंकर वालिम्बे - १९४०-४१
मोरेश्वर गद्रे १९४१-४२

महाविद्यालय के पहले प्राचार्य प्रो. चमले की स्मृति में चमले पुरस्कार दिया जाता था. यह कब प्रारंभ हुआ और कब बंद हुआ - ये जानकारी प्राप्त करने में हम असमर्थ रहे. हाँ, विभिन्न वर्षों में इस पुरस्कार से सम्मानित कुछ विद्यार्थियों के नाम अवश्य प्राप्त हुए हैं, जिनका उल्लेख प्रासंगिक होगा -

माधव चिमनजी टेंभेकर - १९३४
नूरुद्दीन - १९३५
शंकरलाल जोशी - १९३६
सैयद मोहम्मद हुसैन - १९३६ (खेल-कूद के लिये)
सत्य नारायण व्यास - १९३६
गोविन्द राम शर्मा - १९३७
कुमारी चम्पा भावे - १९३७

माधव नारायण सिंहल - १९३८
यूसूफ अली नानजियानी - १९३८ (खेल-कूद के लिये)
श्यामनारायण श्रीवास्तव - १९३९
राजेन्द्र किसन कौल - १९३९ (खेल-कूद के लिये)
कैलाशचन्द्र जैन - १९४०
शांतिलाल जैन - १९४०-४१
प्रभाकर घाटे - १९४०
लक्ष्मण नरहरि बापट - १९४१-४२
सरदार मोहम्मद - १९४३
दया शंकर जोशी -

इन वर्षों में कॉलेज में खेल-कूद की गतिविधियाँ भी पूरे जोर-शोर पर थीं. जिमनेशियम प्रशिक्षक के रूप में श्री एस.बी. अकोलेकर की नियुक्ति १९२६ में हुई. वे एक लगनशील और उत्साही व्यक्ति थे. वे एक लम्बे समय तक कॉलेज से सम्बद्ध रहे. वे कॉलेज से इतना एकात्म थे कि उनके बिना कॉलेज की कल्पना करना लगभग असम्भव सा था. देसी खेलकूद, व्यायाम, टेनिस एवं तैराकी में उनकी विशेष रुचि थी और वे नियमित रूप से अपने विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देकर इनके लिये तैयार करते थे. वे नियम के पाबंद और एक सख्त प्रशिक्षक थे. बड़ी तेज नजर थी उनकी. परीक्षा में उनकी नजर से नकल करता कोई छात्र बच जाये, ये असम्भव था. सेन्ट्रल इंडिया की टेनिस चैम्पियनशिप पर बरसों तक कॉलेज का एकाधिकार रहा. जोगेन्द्र किसन कौल, एम.जे. कृपलानी, मदन मोहन खार, केदारनाथ कक्कर, राजेन्द्र किसन कौल, रतनसिंह वडोरे, आर.पी. कौशल, श्रीकृष्ण केतकर और रामनारायण नागू टेनिस के अच्छे खिलाडी थे. प्रो. बसु स्वयं भी टेनिस में रुचि लेते थे. प्रो. बोरगाँवकर, प्रो. डाबसन, प्रो. पदमनाभन शास्त्री, प्रो. सागिर अली, डॉ. परमसुख माथुर और श्री अकोलेकर आदि भी नियमित

एस.बी. अकोलेकर

रूप से टेनिस खेलते थे. १९२८ में प्रो. सागिर अली ने अपने स्वयं के व्यय से एक टेनिस कोर्ट बनवाया था. १९३० में कॉलेज की छात्राओं ने टेनिस खेलना प्रारम्भ किया. इन्दौर जिमखाना टूर्नामेंट में कॉलेज की छात्रा श्रीमती एन. मैत्रेयी ने १९३२ में महिलाओं का एकल खिताब जीता. कु. कृपलानी, डी.एन. कक्कर, शंकरसिंह, कोमलगिरि और एस.एम. रेगे भी टेनिस के अच्छे खिलाडी थे.

प्रो. सागिर अली के प्रयत्नों से कॉलेज ने हॉकी के खेल में अपना स्थान बना लिया था. प्रो. सागिर अली स्वयं भी हॉकी के कुशल खिलाडी थे और हॉकी के मैचों में उन्हें रेफरी के रूप में देखा जाना सुखद और स्मरणीय

Winners of Football Tournament - 1932

था. उनके नेतृत्व में २५ छात्रों का एक दल - १९३२ में भोपाल, आगरा, देहली, अजमेर और जयपुर गया था जहाँ इस दल ने हॉकी और फुटबॉल की विभिन्न प्रतिस्पर्धाओं में भाग लिया था. १९३४ में Indian Olympic Association द्वारा आयोजित Koh-i-noor Physical Education camp में महाविद्यालय के छात्र एवं हॉकी के कप्तान मोहम्मद हुसैन को भेजा गया था. श्री मोहम्मद हुसैन ने इस प्रशिक्षण शिविर में प्रथम स्थान प्राप्त किया था. विश्वनाथ अडसुले, दत्तात्रय हिंगे, एम.के.नायक, शौचे, आर.पी. कौशल, दत्तात्रय केशव मोने, सैयद इसरार अली, प्रभाकर सामन्त, नारायण वासुदेव धोड़पकर, रांगणेकर और हाजिक अली - हॉकी के अच्छे खिलाड़ी थे.

'बीस के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में पर्याप्त सुविधाओं और धन के अभाव के कारण कालेज में क्रिकेट बहुत लोकप्रिय नहीं था -
Cricket has not been very popular in the college. The main reason is the bad ground. The black cotton soil is too bad to be kept in good conditions except at a cost which is too high for our purse'

- College Annual Report. 1926

डॉ. बसु के प्रयत्नों से क्रिकेट के लिये आवश्यक सुविधाएँ जुटायीं गयीं और अतिरिक्त अनुदान से खेल का मैदान तैयार किया गया. आने वाले वर्षों में कॉलेज की क्रिकेट टीम ने विभिन्न स्पर्धाओं में भाग लिया. वसन्त सिंह, देवीदास किशनराव, यूसुफअली नानजेनी, मदनसिंह जगदाले, रामचन्द्र धन्नालाल जोशी, कुतुबुद्दीन खान, श्रीराम खांडेकर और खुर्शीद हसन - क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी थे. श्री जगदाले ने, जो बाला साहब के नाम से जाने जाते थे, क्रिकेट में राष्ट्रीय स्तर की ख्याति अर्जित की. वे होलकर टीम के एक विश्वस्त खिलाड़ी थे. उन्होंने भारत की राष्ट्रीय क्रिकेट चयन समिति में भी कार्य किया. कॉलेज में व्हालीबाल और फुटबाल भी लोकप्रिय था. व्हालीबॉल में त्र्यम्बक शिवराम मतकर, केशव बल्लाल, राजकुमारसिंह बापना, राजेन्द्र किसन कौल, वसन्त द्रविड, भास्कर रामकृष्ण चौरे, दत्तात्रय हिंगे, के नाम से प्रसिद्ध थे, तो फुटबॉल में भालचन्द्र पुरूषोत्तम दिघे, अच्युत विष्णु कालकर, रामसिंह राठौर सुमेरसिंह तंवर, मनोहर दिघे, शिवकिसन कौल, लक्ष्मण महाजन, मोहम्मदअली, कुतुबुद्दीन खान का नाम प्रसिद्ध था.

प्रो. डाबसन के प्रयत्नों से कॉलेज में बेडमिंटन का खेल प्रारंभ हुआ था. यद्यपि कॉलेज की बेडमिंटन टीम बहुत सशक्त नहीं थी - परंतु प्रारम्भिक वर्षों में इसका प्रदर्शन संतोषप्रद कहा जा सकता है. कैलाश प्रसाद भार्गव और माधो नारायण सिंघल ने बेडमिंटन में ख्याति प्राप्त की थी.

इन खेलों के साथ-साथ 'इनडोर गेम्स' में ब्रिज और कैरम लोकप्रिय थे. शंकरसिंह ऐरन ब्रिज के, संतोष कुमार मुखर्जी तथा सुले-कैरम के कुशल खिलाड़ी के रूप में जाने जाते थे. श्रीधर कोठारी और वासुदेव मोघे ने अनेक वर्षों तक आट्या-पाट्या के खेल में महाविद्यालय को प्रतिनिधित्व दिया. इन वर्षों में कॉलेज ने आगरा विश्वविद्यालय की क्रीड़ा प्रतियोगिताओं में भाग लिया और १९३७-३८ में द्वितीय, १९३९ में तृतीय तथा १९४० में द्वितीय स्थान प्राप्त किया, विभिन्न प्रतियोगिताओं में कॉलेज का प्रतिनिधित्व के. बल्लाल, डी.पी. पाठक, हाजिक अली, खार, आर.के. कौल, मोहम्मद हुसैन, कक्कर और आर.एस. राठौर ने किया था.

Winners of Agra University Sports 1937-38, Holkar College - Indore

प्रो. देशपांडे के शोध-कार्यों के फलस्वरूप - महाविद्यालय राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जाना जाने लगा था. डॉ. बसु ने लिखा था - 'Prof. S.S. Deshpande's researches on the synthesis of hetero cyclia compounds were published in the Journal of Indian Chemical Society. Dr. Deshpande has been working on this subject for a long time and his achieve- ments constitute a real contribution to organic chemistry.'

- College Annual Report : 1932

प्रो. श्रीखण्डे ने - 'The relation of Moral to spiritual Excellence' शीर्षक से अपना शोध-आलेख Indian Philosophical Congress -1929 में प्रस्तुत किया. प्रो. धर की कई रचनाएँ देश की लब्धप्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई. उन्होंने पूना में आयोजित छत्रपति शिवाजी के जन्म के त्रि-शताब्दी महोत्सव में भाग लिया और अपना लेख प्रस्तुत किया. प्रो. बोरगाँवकर का पहला नाटक 'The Image Breakers' (1938) में प्रकाशित हुआ. बाद के वर्षों में उनकी कई नाट्य - कृतियाँ प्रकाशित हुई. हेमलेट के कथानक पर आधारित Ophelia शीर्षक से उनका नाटक विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ. राज्य ने प्रो. सागिर अली (१९३५) और प्रो. श्रीखण्डे (१९३६) को 'मुंतजिम-बहादुर' की उपाधि से सम्मानित किया. डॉ. बसु ने Extension Lectures की शुरूआत की. इस व्याख्यान माला का शुभारंभ हुआ था १९३४ में सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ एवं भारतीय संस्कृति के अप्रतिम विद्वान डॉ. राधा कमल मुखर्जी के व्याख्यान से. बाद के वर्षों में अनेक ख्याति प्राप्त प्राध्यापक व्याख्यान के लिये आमंत्रित किये गये.

सांस्कृतिक गतिविधियों के अंतर्गत - पारम्परिक रूप से अहिल्योत्सव, गणेशोत्सव प्रतिवर्ष आयोजित किये जाते थे. १९३० में पहली बार प्रो. डाबसन की अध्यक्षता में महात्मा गाँधी के जन्म दिन पर कार्यक्रम आयोजित किया गया - जो बाद के वर्षों में नियमित गतिविधि के रूप में मनाया जाने लगा था. इसी वर्ष से हजरत मोहम्मद साहब के जन्म दिन पर भी कार्यक्रम आयोजित किया जाने लगा था. उर्दू में बज़्में-अदब और हिन्दी, मराठी तथा अंग्रेजी में साहित्य समितियाँ सक्रिय थीं. इन वर्षों में अनेक सफल नाट्य प्रस्तुतियाँ भी की गयीं.

१९३६ का वर्ष कॉलेज के लिये विशेष रूप से गौरवपूर्ण है. इस वर्ष

विज्ञान कांग्रेस के २३वें अधिवेशन का दायित्व कॉलेज को सौंपा गया. डॉ. बसु स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे. उन्होंने अपने सहयोगी प्राध्यापकों के साथ इस आयोजन को सफल और स्मरणीय बना दिया. इन्दौर के महाराजा श्रीमंत यशवंतराव होलकर ने इस का उद्घाटन किया था. अपनी सादगीपूर्ण भव्यता, आत्मीय व्यवस्था और कॉलेज तथा स्थानीय शैक्षणिक जगत की सक्रिय सहभागिता के कारण यह अधिवेशन आज भी अनेकों की स्मृति में है. इस गौरवपूर्ण ऐतिहासिक अवसर पर डॉ. बसु द्वारा दिया हुआ स्वागत-भाषण और श्रीमंत यशवंतराव होलकर द्वारा दिया उद्घाटन - भाषण इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है. १९९१ में, इन्दौर में साइंस कांग्रेस के ७८ वें अधिवेशन में, अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो. दिलीप कुमार सिन्हा ने, १९३६ के अधिवेशन की चर्चा करते हुए कहा था -

'Factually speaking we were exploring the possibility of holding the congress somewhere in Madhya Pradesh for the simple reason that we have not had any congress in M.P. since 1936 and that too, at Indore. Madhya Pradesh is in the forefront of encouraging science and technology. Not with standing its cultural heritage, its tribal life and culture home become a legend not merely because of their richness but also for vibrant character. The fascinating story of the tribal people, their practices, their traditions and the dynamics of their society have attracted sensitive minds of Verrier Elwin, a great friend of Nehru, who as you know, apart from being an annual visitor to the Science Congress, was a past General Prasident of the Association. The tribal people must have developed over the ages, ways and means to combat natural disasters and these need to be cashed upon so that others can profit by them. Recently I had an opportunity to get in touch with Prof. S.N. Dhar, a former Professor of History of Holkar College who described how the entire academic community cutting across different desciplines became enthused and rose as one man for the organisation of the Indian Science Congress in 1936 in the Holkar College.

----The 94 year old professor still remembers how the Holkar College at that time inspired the entire intellectual community to see that the science congress in 1936 achieved success. We cannot but develop emotional kinship, however brief the session of the congress may be, with the people and inner spirit of Madhya Pradesh.'

- Presidential Address : 78th session

१९२७ में कॉलेज के अंग्रेजी विभाग में - **डी.एम. बोरगाँवकर** और **हरिजीवन घोष** की नियुक्ति हुई. प्रो. बोरगाँवकर होलकर कॉलेज के विद्यार्थी थे. उनका जन्म अक्टूबर १९०३ को हुआ था. उनके पिता एक अध्यापक थे. १९२५ में उन्होंने होलकर कॉलेज से बी.ए. किया और १९२७ में इलाहाबाद से एम.ए. किया. अपनी शैक्षणिक जिम्मेदारियों से उन्होंने अपने आपको इतना एकाकार कर लिया था कि वे इस शहर में अंग्रेजी शिक्षा, शिक्षण सुविधाओं और व्यवस्थाओं के पर्याय बन गये थे. अपने अध्यापकीय दायित्वों के साथ-साथ
वे अपने विद्यार्थियों में अंग्रेजी तथा मराठी साहित्य और रंगमंच के प्रति लगाव उत्पन्न करने के लिये भी जाने जाते हैं. वे अच्छे लेखक थे. अंग्रेजी में उनकी अनेकों नाट्य कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं वे स्वयं भी एक अच्छे अभिनेता थे. अंग्रेजी निबंधों के वे सिद्धहस्त लेखक थे. उनकी अपनी विशेष 'बोरगाँवकर शैली' में लिखे गये उनके निबंध - प्रवाह, भाषा की प्राजंलता और सूक्ष्म व्यंग्य के लिये प्रसिद्ध थे. वे टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे. ब्रिज में भी उनकी गहरी दिलचस्पी थी. १९४४ में उन्हें मुंतजिम बहादुर की उपाधि से विभूषित किया गया था. वे अत्यंत सफल और आदर्श प्राध्यापक थे. निरंतर आगे बढ़ रहे कॉलेज की प्रगति के साक्षी प्रो. दत्तात्रय महादेव बोरगाँवकर - अपने व्यक्तित्व, सृजनात्मक व्याख्याओं, शैक्षणिक उत्कृष्टताओं, अभिव्यक्ति और शब्द - चातुर्य के साथ-साथ अपनी रचनात्मक सक्रियतां के लिये भी स्मरण किये जाते रहेंगे. उन्होंने मध्ययुगीन रोमांटिक नायक की भाँति कॉलेज के मंच पर प्रवेश किया. अत्यंत शालीनता से अपनी भूमिका निभाई और ०६ नवम्बर १९६५ को धीरे से इस संसार से विदाई ले ली.

प्रो. हरिजीवन घोष

जहाँ प्रो. बोरगाँवकर के अध्यापन में कलात्मकता थी वहीं प्रो. हरिजीवन घोष के अध्यापन में एक रागात्मक लय थी. उसमें संगीत था - बंगाल की मिट्टी का सोंधापन था. १९२७ से १९५४ तक घोष दंपत्ति इस कॉलेज की अविभाज्य इकाई बने रहे. श्रीमती घोष एक अच्छी गायिका थीं और कॉलेज के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अपने पति के साथ उनकी भूमिका भी महत्वपूर्ण होती थी. अपनी सांस्कृतिक अभिरुचियों के लिये प्रो. घोष अपने मित्रों और छात्रों में अत्यंत लोकप्रिय थे.

प्रो. बोरगांवकर

प्रो. डी.एम. बोरगांवकर उस पीढ़ी के एक प्रतिनिधि थे कि जिसने उन मूल्यों एवं परिपाटियों की स्थापना की कि जिनके फलस्वरूप इन्दौर नगर का वर्तमान रूप और वातावरण बना है. एक सौम्य व्यक्तित्व, जिन्दादिल तबियत तथा अध्यापन के पवित्र कार्य के प्रति अतीव निष्ठा उनकी ऐसी विशेषताएँ थीं कि उनके सम्पर्क में आने वाले किसी व्यक्ति के लिये संभव ही नहीं था कि वह प्रभावित न हो. उनके द्वारा जिन विद्यार्थियों के व्यक्तित्वों का निर्माण हुआ उनमें से अनेकों ने नगर, प्रदेश एवं अन्यत्र भी जिम्मेदारी के पद संभाले हैं तथा बदलती परिस्थितियों के साथ समझौता करने को मजबूर होने पर भी मानवी मूल्यों को बनाये रखने की भरसक कोशिश की है.

बोरगांवकर 'सर' का व्यक्तित्व अन्य कई प्रकारों से भी सक्रिय रहा है. खेलों में उनकी सक्रिय रुचि थी. साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी उनके प्रयास उल्लेखनीय हैं. नगर के नाट्यमंच से भी वे सम्बंधित रहे हैं. और इन सारी गतिविधियों से संलग्न होते हुए भी उनके सारे क्रियाकलापों में व्यवस्था का सिलसिला अटूट रहता रहा है. कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, काम का बोझ कितना ही अधिक क्यों न हो पर बोरगांवकर साहब कभी झल्लाये नहीं, और न आपे से बाहर हुए. ऐसे प्रभाव ही वास्तव में रचनात्मक एवं स्थायी होते हैं.

जमाने के साथ चलते हुए भी उसके अवांछनीय दबावों के सामने वे कभी झुके नहीं, यह उनकी विशेषता उनके परिचितों से छिपी नहीं है. हमें उनके स्नेहपूर्ण आशीर्वाद प्राप्त होते रहें हैं और इसे हम अपना बड़ा सौभाग्य मानते हैं. प्रत्येक व्यक्ति की एक अवधि होती है जिसके पश्चात उसे दुनिया के मंच से हटना ही होता है. किन्तु जो दूसरों की स्मृति में ही नहीं, उनके सक्रिय मूल्यों में स्थान बना लेते हैं वे अपनी भौतिक अवधि पूरी हो जाने पर भी बने रहते हैं. प्रो. बोरगांवकर ऐसे ही थे.

- नई दुनिया, ०९ नवम्बर १९६५

1926 में अर्थ-शास्त्र विभाग में सहायक प्राध्यापक नियुक्त हुए थे **श्री एल.सी. धारीवाल!** वे डॉ. बसु के विश्वस्त सहयोगी थे और वर्षों तक वे आगरा विश्वविद्यालय की कार्यकारी समिति के सदस्य थे. 1927 में श्री एस.वी. चितले - भौतिकी में और परमसुख माथुर - रसायन-शास्त्र में डिमान्स्ट्रेटर नियुक्त हुए थे. ये दोनों ही एक लम्बे समय तक कॉलेज में रहे - और प्राध्यापक के पदों से सेवा-निवृत्त हुए. विधि संकाय में **प्रो. वी.आर. सुब्रमण्य अय्यर** 1928 में नियुक्त हुए. प्रो. अय्यर ने मद्रास विश्वविद्यालय से विधि में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की थी. वे सख्त अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे. कॉलेज की विधि की कक्षाओं को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने में उनका स्मरणीय योगदान है. उनके परिश्रम और लगन से कॉलेज का विधि विभाग - सेन्ट्रल इंडिया में प्रसिद्ध था. श्री अय्यर के प्रारंभिक सहयोगी के रूप में **प्रो. एस.एस. व्यास** का उल्लेख प्रासंगिक होगा. श्री व्यास उच्च न्यायालय में वकील थे और कॉलेज में अंशकालीन शिक्षक के रूप में कार्य करते थे. इसी वर्ष **केशरीलाल बोर्दिया** भी कॉलेज में अंग्रेजी विभाग में नियुक्त हुए. वे राष्ट्रीय विचार धारा के शिक्षाविद् थे. 1942 के लगभग वे उदयपुर चले गये. शैक्षिक समस्याओं के प्रति वे आज भी समर्पित और सक्रिय हैं. 1928 में ही **श्री कमलाशंकर जी मिश्र** हिन्दी विभाग में प्रो. चतुर्वेदी के सहायक नियुक्त हुए. अत्यंत सहज और सरल व्यक्तित्व के धनी प्रो. मिश्र ने इस कॉलेज में हिन्दी के अध्ययन और अध्यापन की परम्पराओं को बनाया है. उनका जन्म सन् 1900 में रामपुरा के माचलपुर ग्राम में हुआ था. उनकी प्रारंभिक शिक्षा रामपुरा में हुई थी. महाराजा शिवाजीराव हाई स्कूल से उन्होंने 1920 में हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर होलकर कॉलेज में प्रवेश लिया. 1925 में उन्होंने बी.ए. पास किया. उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. किया था. उन्हें ज्योतिष और वैद्यक का अच्छा ज्ञान था. वे एक कर्मठ और निस्पृह व्यक्ति थे. सामाजिक, सांस्कृतिक

.पं. कमलाशंकर मिश्र

तथा साहित्यिक सेवाओं के प्रति उनकी रुचि थी. 1942 में वे हिन्दी के प्राध्यापक बने. प्रो. मिश्र का स्मरण करते हुए. डॉ. शिवमंगल सिंह ने लिखा था -

''पहले साक्षात्कार में तो मैं बहुत प्रभावित नहीं हुआ क्योंकि आचार्यजी की वेशभूषा अथवा वाग्चर्या में ऐसी कोई बात नहीं थी, जो किसी को सम्मोहित करती परंतु जितना-जितना मैं उनके सम्पर्क में आता गया उतना-उतना श्रद्धा से नत होता गया और आज तो मुझे इस बात का गर्व है कि मैं उनके प्रीति-भाजनों में से एक हूँ. मैंने अपनी जीवन में इतना सरल, निरभिमान, निश्छल और आडम्बरविहीन व्यक्ति नहीं देखा. हिन्दी साहित्य में बहुत सोचने के बाद केवल एक और नाम स्व. शिवपूजन सहायजी का याद आता है. दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में अनन्य हैं.''

- वीणा 41/492.

हिन्दी के इस मूक और तपोनिष्ठ साधक की आदरणीय स्मृतियाँ आज भी अनेकों के पास सुरक्षित हैं.

इन्हीं वर्षों में - सी.एन. देसाई (1933), पी.सी. जोशी (1937) एल.बी. देशपांडे (1938) अंग्रेजी विभाग से जुड़े. श्री देसाई 'चिन्टू' के नाम से जाने जाते थे. वे इसी कॉलेज के प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे. श्री जोशी अपने ही अस्तित्व पर खुद मोहित एक रोचक व्यक्ति थे. डॉ. भागवत को उनके बहुत से किस्से याद हैं. प्रो. देशपांडे एक सीधे और सज्जन प्राध्यापक के रूप में याद किये जायेंगे. 1938 में ही कु. डेजी लाकड़ावाला अंग्रेजी विभाग में नियुक्त हुई. सौम्य और सुदर्शन - कु. डेजी इसी कॉलेज की छात्रा थी. दुर्भाग्य से मस्तिष्क की बीमारी के कारण 1940 में उनका असामयिक निधन हो गया. कु. सुमति भण्डारकर और कु. डेजी लाकड़ावाला की नियुक्ति से महिला प्राध्यापकों की जो परम्परा बनी वो समय के साथ समृद्ध होती गयी. वर्तमान में महाविद्यालय में 40 से भी अधिक महिला प्राध्यापिकाएँ कार्य कर रहीं हैं. गणित के **प्रोफेसर फूलचन्द्र गंगराडे** (23-09-1905 - 5-11-1989) की याद बहुतों को होगी. वे इसी कॉलेज के विद्यार्थी थे. उन्होंने प्रथम श्रेणी में बी.एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण की और इलाहाबाद के Applied Mathematics में एम.एससी. प्रथम श्रेणी में पास की. इलाहाबाद में उन दिनों श्री सेतुमाधवराव पगड़ी भी अध्ययन कर रहे थे. श्री गंगराडे की याद करते हुए, वे लिखते हैं :

''1931 मध्ये इंदूरचा आणखी एक विद्यार्थी आमच्या बरोबर राहण्यास आला त्याचे नाव फूलचन्द गंगराडे. हा अतिशय हुशार, सज्जन पण अबोल असा मुलगा होता.''

- जीवन सेतु

श्री गंगराडे 1932 में विज्ञान में डिमान्स्ट्रेटर के पद पर नियुक्त हुए. शीघ्र ही वे गणित के सहायक प्राध्यापक के रूप में पदोन्नत हुए वे गणित विभाग के अध्यक्ष के रूप में सेवा-निवृत्त हुए.

प्रो. फूलचन्द्र गंगराडे

वे बहुत सरल स्वभाव के थे. आज भी उनके बहुत से विद्यार्थी मौजूद हैं - जो बताते हैं कि किस तरह परीक्षा के पूर्व - अवकाश में या परीक्षा के दिनों में प्रो. गंगराडे - विद्यार्थियों के घर-घर जाकर उनके अध्ययन की जानकारी लेते और उनकी कठिनाइयाँ हल करते थे. वे जरूरतमंद विद्यार्थियों को अपने नाम से कॉलेज लाइब्रेरी की पुस्तकें उपलब्ध कराते. उनमें से कई पुस्तकें वापस नहीं आतीं और प्रति-वर्ष प्रो. गंगराडे एक भारी-राशि कॉलेज में जमा करते. पर इससे विद्यार्थियों को मदद करने के उनके संकल्प में न तो कोई बाधा पहुँची और न ही उन्होंने पुस्तकें देना बंद किया. उनके घर के दरवाजे विद्यार्थियों के लिये हमेशा खुले रहते थे.

एक लगनशील और परिश्रमी प्राध्यापक के रूप में प्रो. जी.डब्ल्यू. कवीश्वर का उल्लेख सदा ही आदर के साथ किया जायेगा. वे दर्शन-शास्त्र के प्राध्यापक थे. 1937 में वे इस कॉलेज में नियुक्त हुए. उन्होंने वर्षों तक होलकर कॉलेज टाईम्स का सम्पादन कर विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमताओं को प्रोत्साहित किया. महाभारत के युद्ध की तिथि निर्धारण तथा उसके अनेक प्रसंगों की मीमांसा, पर केन्द्रित उनके लेख और पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और चर्चित हुई हैं.

होलकर कॉलेज के इतिहास का कोई भी पन्ना मरहूम **प्रो. सागिर अली** के जिक्र के बिना मुकम्मिल नहीं हो सकता. वे फ़ारसी के उस्ताद की हैसियत से १९०९ में कॉलेज में दाखिल हुए और तकरीबन ३०-३१ बरस तक इसकी जिन्दगी से पूरी शिद्दत के साथ वाबस्ता रहे. हर दिल अज़ीज़ प्रो. सागिर अली निहायत ही खुश - मिज़ाज और शाइस्ता इंसान थे. बदगुमाँनियों और तल्खियों से वे कोसों दूर थे. अलीगढ़ी पायजामा, काली अचकन और लाल तुर्की टोपी में - प्रो. साग़िर अली हिन्दुस्तानी अदब और तहज़ीब के जीते-जागते नुमाइन्दे थे. फ़ारसी के साथ कॉलेज में वे अंग्रेजी भी पढ़ाते थे. बरसों तक वे कॉलेज हॉस्टल के डीन रहे. अपने तालिबे-इल्मों की खुशी और ग़म में बराबर के शरीक रहने वाले प्रो. सागिर अली सही मायनों में उनके रहबर और दोस्त थे. टेनिस और हॉकी के वे अच्छे खिलाड़ी थे. हिक़मतों और तिकड़मों से दूर वे सिर्फ तकदीरो-तवक्कुल पर यकीं रखने वाले इंसान थे. इन्दौर के रियासती माहौल में अपनी ग़ैर-ज़ानिबदारी के बावजूद भी वे जराइते-इज़्हार और खामोश अक़ीदतों के लिये हमेंशा याद किये जायेंगे. वे सुखन-शनास और शाइराना तबीयत के थे. उनकी याद ख़ुशबुओं का एक ऐसा सफ़र है - जिसे लफ़्जों में बयाँ नहीं किया जा सकता. हाँ, इतना जरूर कहा जा सकता है -

'दुनिया में ऐसे लोग बहुत कम हैं दोस्तों'

- अहमद फ़राज़

वे १५ नवम्बर १९४० को रिटायर हुए और इन्दौर से फरीदाबाद चले गये जहाँ के वे रहने वाले थे. बस, इसके बाद उनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिल सकी है. उनका पुत्र बुद्धन और पुत्री बुधियाँ - इन दिनों पाकिस्तान में हैं. वे वहीं बस गये हैं. अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद भी हम उनका पता मालूम नहीं कर सके.

१९४० में रियासत में हुए प्रशासकीय परिवर्तन का प्रभाव कॉलेज पर भी पड़ा. श्री बापना के स्थान पर कर्नल दीनानाथ - राज्य के प्राइममिनिस्टर नियुक्त हुए. उनके आते ही प्रो. बसु को सेवा-निवृत्त कर दिया गया. डॉ. बसु की विदाई के साथ ही कॉलेज के जीवन के दूसरे महत्वपूर्ण अध्याय का पटाक्षेप हो गया. वह समय आज भी अनेकों की स्मृति में जीवित है. डॉ. बसु १ अगस्त १९४० को सेवा-निवृत्त हुए.

१९४० से १९४७ तक का समय व्यापक परिवर्तनों का था. इस दौरान विश्व ने दूसरे महायुद्ध की विभीषिका को भोगा और जन-तांत्रिक मूल्यों

होलकर कॉलेज प्राध्यापक परिवार - 1940.

होलकर कॉलेज प्राध्यापक परिवार - १९४०.

बायें से दायें -
कुर्सी पर - प्रो. संवत्सर, प्रो. अय्यर, प्रो. धर, प्रो. धारीवाल, डॉ. देशपाण्डे, डॉ. बसु (प्राचार्य), प्रो. सागिर अली, प्रो. घोष, प्रो. पद्मनाभन, प्रो. गोले, प्रो. चतुर्वेदी.
खड़े हुए प्रथम पंक्ति -
प्रो. यार्दे, प्रो. उर्ध्वरेषे, श्री अकोलेकर, प्रो. शर्मा, प्रो. आर.के. यार्दे, प्रो. बोर्डिया, प्रो. वर्मा, प्रो. जोशी, प्रो. कौशल, प्रो. अनिखन्डी, प्रो. चितले, प्रो. सिंघल.
द्वितीय पंक्ति -
श्री खरगोनकर, प्रो. देसाई, प्रो. गंगराडे, डॉ. अडवाणी, प्रो. माथुर, प्रो. पॉल, प्रो. बोरगाँवकर, प्रो. मिश्रा, प्रो. कवीश्वर.
नीचे बैठे हुए-
सर्व श्री तारे, सुभेदार, काकिर्डे, देशपाण्डे, रस्से, एम.वी. तारे.

की विजय के साथ ही महत्वपूर्ण राजनैतिक बदलावों को भी देखा. इन सबका प्रभाव स्थानीय स्तर पर होलकर कॉलेज पर भी पड़ा. देश के राजनैतिक परिदृश्य पर जो घटनाएँ घट रहीं थीं - कॉलेज उनसे अप्रभावित नहीं था. इन तमाम वर्षों की कहानी - राष्ट्रीय आंदोलन में कॉलेज के छात्रों की सक्रिय सहभागिता की कहानी है - जिसमें 'वंदेमातरम्' को लेकर उपजा अप्रिय विवाद भी शामिल है. इन्हीं वर्षों में कॉलेज ने यशवंत हॉल और स्वीमिंग पूल को पाया था और इन्हीं वर्षों में पं. माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, सर सी.वी. रमन, राजकुमारी अमृतकौर, चक्रवर्ती राजगोपालाचारीऔर बीरबल साहनी जैसे व्यक्तित्वों ने कॉलेज में आकर विद्यार्थियों को सम्बोधित किया.

उल्लेखनीय है कि ऐसे अस्त-व्यस्त और उथल-पुथल से भरे समय में भी कॉलेज ने शैक्षणिक और शैक्षणेत्तर कीर्तिमानों को बनाये रखा. डॉ. प्रफुल्लचन्द्र बसु के बाद H.B. Richardson कॉलेज के नये प्राचार्य नियुक्त हुए. वे अंग्रेजी के प्राध्यापक थे. १९४०-४१ के सत्र की शैक्षणिक उपलब्धियों का परिचय, विभिन्न परीक्षाओं की प्रावीण्य सूची में कॉलेज को प्राप्त स्थानों से लग सकता है - जो निम्नानुसार थे :-
बी.ए. - १० वाँ स्थान
बी.एससी. - पहला, तीसरा और चौथा स्थान
इण्टर - दूसरा, तीसरा और नौवां स्थान

एल.एल.बी. - ६ ठा स्थान

इसके साथ ही एम.ए. - अंग्रेजी, अर्थ-शास्त्र और एम.एससी. (रसा.) के परिणाम शत-प्रतिशत थे.

१९४१ में आगरा विश्वविद्यालय की क्रीड़ा प्रतियोगिताएँ - होलकर कॉलेज में आयोजित की गयी थी. सफल आयोजन के साथ-साथ कॉलेज ने अंकों के आधार पर अपने उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिये - मॉल्कम हेली चेम्पियनशिप पर विजय प्राप्त की थी. महाराजा यशवंतराव होलकर ने खिलाड़ियों को सम्बोधित किया था और महारानी ने विजयी टीमों और खिलाड़ियों को पुरस्कृत किया था. इन प्रतियोगिताओं में लांग तथा शटल रिले रेस में कॉलेज ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था. इसके साथ ही - ३ और १ मील की दौड़ में कॉलेज के आर.एम. वर्मा, २०० और १०० गज की दौड़ में सी.एम. बारगल, डिसकस थ्रो तथा शॉट पुट में - आर. मोजेस और हेमर थ्रो में आर.के. कौल प्रथम स्थान पर आये थे. इस प्रतिस्पर्धा में कॉलेज ने Halley Athletic Championship Shield लगातार दूसरे वर्ष जीती थी. अजमेर में १९४२ में आयोजित राजस्थान ओलम्पिक प्रतियोगिताओं में हमारे कॉलेज का प्रदर्शन प्रशंसनीय था. इस प्रतिस्पर्धा में हमारी कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार थीं -

(१) मिर्ज़ा मोहसिन अली बेग - १०० मीटर (प्रथम) समय - ११ सेकंड - २०० मीटर (प्रथम) समय -२३.८ सेकंड

(२) व्ही.एस. मेनन - पोल वॉल्ट (प्रथम) ऊँचाई- १० फुट ४.५ इंच

(३) आर. के. कौल - हेमर थ्रो (प्रथम) दूरी - ७९ फुट ४.५ इंच

(४) आर.एम. वर्मा - ५००० मीटर (प्रथम) समय १८ मि. २.६ सेकंड

(५) होलकर कॉलेज दल - ४x२५०० मी. क्रॉस-कंट्री (प्रथम) समय ३७ मि. २७.८ सेकंड- ४x४०० मी. रिले (प्रथम) समय ५२.६ सैकंड
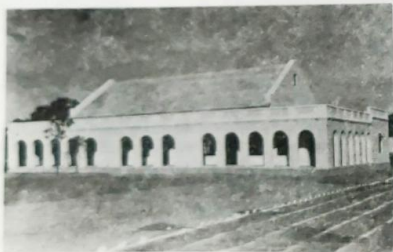
यशवंत हॉल के उद्घाटन के अवसर पर महाराजा यशवंतराव होलकर

यशवंत हॉल तब ऐसा था

१९४१ में कॉलेज की स्थापना के ५० वर्ष पूरे हो चुके थे. स्वर्ण-जयंती समारोह अत्यंत उत्साह और उल्लास के साथ मनाया गया था. तीन दिनों तक (२६, २७, २८ नवम्बर - १९४१) चलने वाले इस भव्य और आत्मीय समारोह की स्मृतियाँ आज भी उन अनेक विद्यार्थियों को हैं जिन्होंने इसमें भाग लिया था. इस समारोह में खेल-कूद प्रतियोगिताओं के अतिरिक्त -हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी एकांकी, पूर्व छात्रों द्वारा नाट्य प्रस्तुतियाँ, संगीत के विभिन्न कार्यक्रम, मराठी और हिन्दी कवि-सम्मेलन, मुशायरा, नृत्य और पुराने छात्रों के संस्मरण अन्य आकर्षण थे. इस समारोह के पहले दिन ही महाराजा यशवंतराव ने नवनिर्मित सभागृह का उद्घाटन किया- जो यशवंत हॉल के नाम से जाना जाता है. इस सभागृह के निर्माण से कॉलेज का ५० वर्ष पुराना स्वप्न पूरा हुआ और इसी कार्यक्रम में महारानी ने स्विमिंग पूल के निर्माण के लिये १५,००० रुपये की राशि देने की घोषणा की. स्विमिंग पूल का निर्माण दो वर्षों में पूरा हुआ. दिसम्बर १९४३ की The Holkar College Magazine में अपने Editorial Notes में सम्पादक ने लिखा था -

'The Swimming pool is at last getting ready. Swimming costumes and soaps should be ordered for.'

लगभग २०-२१ वर्षों तक यह तरण-पुष्कर कॉलेज की ही नहीं अपितु पूरे नगर की युवा गतिविधियों का केन्द्र रहा. यहीं अनेकों कीर्तिमान रचे गये. कल तक जो युवा-हृदयों की धड़कन था, जहाँ पानी पर खिचती रेखाओं के साथ कॉलेज ने नये इतिहास की रचना की - आज वही सुनसान, उजाड़ और भग्न पड़ा है. दुष्यंत कुमार ने एक स्थान पर लिखा है -

अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार।
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार॥

अतीत के तमाम कीर्तिमानों के इश्तहार भी आज इस स्विमिंग पूल की दीवारों की दरारों को ढक नहीं पायेंगे.

इसके पहले कि समय के साथ हम आगे चलें, यह जानना सुखद होगा कि स्वर्ण-जयंती (Golden Jubilee) के अवसर पर पूर्व छात्रों ने किन शब्दों और भावनाओं के साथ कॉलेज को स्मरण किया था. The Holkar College Times के Special Jubilee Number -२६ नवम्बर - १९४१ से श्री विनायक सरवटे, श्री मुद्रे और मुसाहिबे खास बहादुर रायबहादुर एस.वी. कानूनगो के संस्मरणों के अंशों को उद्धृत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है. साथ ही जुबली के अवसर पर लिखी प्रो. रिचर्डसन की रचना भी पुन: प्रकाशित की जा रही है.

Mr. Mudre

Mr. Mudre, retired Asst. Headmaster, M.S. High School, Indore, is a good artist and at this ripe age his paintings have been markedly influenced by the recent visit of Roerich. He and also Mr. S.K. Gandhe, retired Headmaster, M.S.H.S., supplied information about the staff and the students with great accuracy.

Our College was affiliated to the Calcutta University and the total strength was about eighty in all. Principal Cholomondley was assigned a 'non-conducting' room, with a wooden floor, the present room number 4, for then the whole atmosphere was strictly orthodox. Even some of his colleagues would take a bath if he entered their rooms. Philosophy and Logic were with Prof. Desai, who was so voracious a reader that he would never be found without a book even in his evening walks or while going up the staircase. Prof. Patankar, and later on Prof. Ghate, were the Sanskrit Pundits. Krishna Shastri Paradker, who gave coaching in 'Kaumudi' for B.A. (Hons.) was so learned a scholar that he could even lecture on while dozing. Mathematics, including astronomy, was in the ablest hands of Prof. Athawale. Prof. Ahmed, the Dean, was entrusted with both Persian and Ancient History of Greece and Rome.

In 1900, a good number of students resided in the hostels. There were no complaints adout cycle-nuisance, as cyclists were very few. All the present outdoor games were in vogue even then and the Principal took special interest in Cricket, football and gymnasium. Mr. Gandhe, a good scholar, remarked that the College was more noted for its games. The annual gathering and occasional debating were the only social activities. Once the Marathi adaptation of Moliere's drama, 'Doctor inspite of himself', was staged in the gathering. Prof. Desai had started a Holkar College Reading Club, to encourage extra reading among students. It should be interesting to note that in the Gymnasium-shed students used to perform their Shravani or the annual thread renewal ceremony. The two Maharashtra and the Shivaji messes, which existed in their time, will be very soon completing their fifty not out.

The Principal was a man of Principles and made strict rules, and would himself rigorously observe them first. A notice was put up in the Library 'Noise above whisper strictly forbidden', and the Principal would himself warn the defaulters only in whispers. That inveterate smoker had prohibited smoking for his students as well as for himself in the College premises. He would daily go for his morning ride with some dogs, and appeared like a typical hunter in that dress.

Mr. Mudre gave a vivid appreciation of the Professor of Science, S.L. Gokhale (nicknamed by students 'solid liquid gas' from his initials), whose whole life was simplicity incarnate. He was the ideal of plain living and high thinking.

Mr. V.S. Sarwate

Prof. Gokhale, who is now in America, was a popular conversationalist. This scientist was always on a little higher level than the rest. He was impersonal and could never think in terms of personality. That is why his humour was like a cool shady verdure agreeable to all, while the intellectual dezzling wit of Prof. Athawale was charming like the lightning but also at times damaging. Mr. Gokhale was so simple and trusting that he would keep all his pay in an unlocked drawer and whenever any student was in need of money, he had only to take it and keep a chit of his own name and when returning, take back the chit and replace the amount. Does it not remind us of the good old days at the time of Ashoka, when every one was honest and trustworthy?

Rai Bahadur S.V. Kanungo

Lord Hardinge was equally impressed when as Viceroy of India he visited the college in 1912. The great advantage which the college then enjoyed was that the students were mostly residential students and the institution enjoyed practically all the advantages of a residential college. The natural result was good regard and traditions of the college, good discipline, good understanding between students and the staff, great solidarity among the students themselves and an altogether cordial and harmonious atmosphere.

Hockey enjoyed the foremost place in the games due largely to the lead given to this game throughout Central India by the then Principal Gardner Brown. Sturdy games like Hockey and Football must necessarily be encouraged in a college.

Fortunately we had a remarkably good cook who used to feed us very well so that we could stand the stress and strain of this game with abundance of energy. It may be a coincidence but it was a fact that all the best players in Hockey, including our Principal, were good eaters. I do not know whether it was because no good eaters were left that this famous cook afterwards left the college and settled down in the city as the future proprieter of the leading Hindu hotels in Indore.

Hymn of Jubilee

In fifty years the world grows old,
If old age counts the passing day;
In fifty years the world grows young
As youth looks forth, new lives unfold.
They see no darkness on their way,
Nor heed the song so often sung,
Of man's travail, his woes untold.
As from Life's all-healing ray
They turn unseeing eyes away.

While age hangs back, youth presses on;
Till worn quite thin by man's cruel law
It wilts and lets its visions fade.
So young men see the battle won,
But mirage-like that which they saw Moves ever back, as though afraid,
When young the old pressed t'wards the Light
That gem-like glows without a flaw
and filled their eager souls with awe.

Now old they sit with tarnished sight
And preach to those who burn with zeal,
As once they burned. They warn them clear
Of how they learnt to know the might
Of worldly power; of how its wheel
Turns slow and strong, propelled by fear.
Yet youth must ever seek to fight
For all those things it knows are real,
Bowing to justice while they kneel,
Acclaiming Truth, sweet Beauty's seal.

So let us look at days long past
When first these noble halls were raised
That youth might drink from fountains pure
The wine of wisdom, rich repast
That turns men's minds to paths unblazed,
And leads them on to knowledge sure
Beyond the stars; till at the last
They come to know, with soul amazed
Eternal Love and Life unscathed.

In times gone by our fathers sought
For God in these same hallowed halls;
So search we too in different guise
As newer powers, fiercely wrought,
Impel us on. We answer calls
To them unknown; we seek a prize
Whose outer form our fancy's caught.
Yet deep inside the same voice calls
That called to them with gentle sighs,
The voice that bids men to be taught
By love that God alone instals
With ageless hands, eternal walls.

- H.B.R.

जून - १९४१ में सोवियत संघ पर नात्सी जर्मनी के आक्रमण ने और मार्च - १९४२ में बर्मा पर जापानी हमले ने युद्ध के स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया था. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी अपनी नीतियों में परिवर्तन कर संघर्ष को और अधिक सक्रिय करने का निश्चय किया. अप्रेल - १९४२ में महात्मा गाँधी ने अपने एक लेख में 'भारत छोड़ो' का नारा दिया. अगस्त्र में महात्मा गाँधी समेत अनेक राष्ट्रीय स्तर के नेताओं की गिरफ्तारी से सारे देश में स्वत: प्रेरणा से ब्रिटिश विरोधी प्रदर्शनों और हड़तालों का सिलसिला व्यापक पैमाने पर प्रारंभ हो गया. इस कॉलेज पर भी इस आंदोलन का प्रभाव पड़ा. छात्रों की ब्रिटिश हुकूमत विरोधी गतिविधियाँ अनेक प्रकार से - सक्रिय रूपों में संचालित होती थीं. उन सबका स्मरण आज हमें रोमांचित कर देता है. अपने संस्मरणों में कॉलेज के पूर्व छात्रों ने इन दिनों का चित्र प्रस्तुत किया है. इसी क्रम में 'वंदेमातरम्' को लेकर हुए विवाद की चर्चा प्रासंगिक होगी. बंकिम बाबू का यह गीत सारे देश में राष्ट्रीय-गान के रूप में गाया जाता था. गीत की ओजस्वी शब्दावली और संगीतमय ललित पदावली जन-जन में देशभक्ति के अद्भुत भावों का संचार करती थी. प्रिन्सिपाल रिचर्डसन के समय इस गीत को लेकर उपजा विवाद एक लम्बे समय तक चला.

कॉलेज में इस गीत पर प्रतिबंध था और छात्रों का आग्रह था कि वे इसे गायेंगे. इसी को लेकर विवाद था. सम्भवतया छात्रों के एक वर्ग द्वारा भी इस गीत को गाये जाने का विरोध किया गया था. विरोध स्वरूप छात्रों ने कॉलेज में आयोजित अनेक कार्यक्रमों का बहिष्कार किया. कॉलेज से प्रकाशित The Holkar College Times में भी इस विवाद पर चर्चा हुई. श्री प्रभाकर ऊर्ध्वरेषे लिखते हैं -

'या साप्ताहिकात त्यावर्षी एक राजसी वादाचे प्रकरणही खूप गाजले. हा वाद होता 'वंदे मातरम्' हे राष्ट्रीय गीत गाण्याच्या हक्काबद्दल. या गीतावर त्यावेळी इंग्रजांचा फार रोष होता व इंग्रजांच्या ताटाखालची मांजरे असलेल्या संस्थानिकांची राजनिष्ठा तर राजाहूनही अधिक जाज्वल्य (More Loyal than the King) होती! युद्ध सुरू असल्यामुळे हे धोरण अधिकच कड़क झालेले. अशांत आम्ही विद्यार्थी फेडरेशनने कॉलेजांत वंदे मातरम् म्हणण्याचा हक्क मिळालाच पाहिजे असा हट्ट धरला व त्यासाठी आंदोलन सुरू केले. प्रिन्सिपॉल रिचर्डसन विद्यार्थ्यांच्या लोकशाहीच्या बाजूचे असले तरी 'वंदे मातरम्' प्रश्नबाबत त्यांना संस्थांनी सरकारचे व इंग्रज सरकारचे धोरण अंमलात आणणे क्रमप्राप्त होते. त्यामुळे त्यांनी अर्थातच 'वंदे मातरम्' ला परवानगी नाकारली.' मग आम्ही मोर्चे निदर्शने वगैरे चळवळ सुरू झाली म्हणून आम्ही खुषीत होती. पण दोन-चार दिवसांनी चळवळीचा जोर ओसरू लागला. सभा मिरवणुकीत सामील होणाऱ्यांची संख्या रोडावली. रिचर्डसन साहेबांनी आम्ही काही 'पुढारी' विद्यार्थ्यांना बोलावूत घेतलं व समजावण्याचा प्रयत्न केला. विद्यार्थ्यांना 'वंदे मातरम्' म्हणण्याचा व राजकीय चळवळ करण्याचाही हक्क आहे हे मी व्यक्तिश: मानतो. आमच्या देशात विद्यार्थी राजकीय चळवळ करतात, राजकीय पक्षांचे सभासद होऊन विद्यापीठात त्यांच्या शाखा चालवतात हे संगळं मी पाहिलेलं आहे. त्यात भागही घेतलेला आहे. पण इथे हिंदुस्थानातल्या इंग्रज सरकारला व संस्थांनी राजवटीला ते मान्य नाही त्यामुळे माझा; नाइलाज आहे. तुम्ही ही चळवळ बंद केली नाहीत तर मला तुमच्यापैकी काहींना तरी कालेजातून काढून टाकणं भाग पडेल!'

'ती चळवळ लवकरच थंडावली. कालेजच्या आवाराबाहेर वंदेमातरम् म्हणन्याचा हक्क बजावून आम्ही विजयाच्या व एकजुटीच्या घोषणा दिल्या व ते प्रकरण संपलं.'

- सोबत-दिवाली अंक १९८३

३१ जनवरी १९४२ के The Holkar College Times में प्रकाशित Hostel Notes की प्रारम्भिक पंक्तियाँ कहती हैं -

-"The 'Hostel Day' was celebrated on the 24th and 25th of January. The celebrations began on each day with the singing of Vande Mataram."

इससे स्पष्ट है कि हॉस्टल में -'वंदे मातरम्' - गाया जाता था और उल्लेखनीय यह है कि इस विवादास्पद और प्रतिबंधित 'राष्ट्रीय-गीत' के गाये जाने का समाचार प्रकाशित हुआ.

दिसम्बर - १९४३ (Vol. XXX. No.1) की कॉलेज पत्रिका में Editorial Notes में हमें टिप्पणी पढ़ने को मिलती है, कि-

The issue of "Vande Mataram" still remains undecided.

इस टिप्पणी के नीचे सम्पादक ने निम्न काव्य पंक्तियों को उद्धृत किया:

" 'Tis best to grant me cinna what I crave,
And next best cinna is refusal straight
Givers I like ; refusal I can brave
But you don't give. you only hesitate."

सम्भवतया ये पंक्तियाँ तत्कालीन प्रशासन की मनोवृत्ति को लक्ष्य करके उद्धृत की गयी होंगी. ठीक इसके बाद बहाई धर्म पर डॉ. एच.एम. माजी (बम्बई) के व्याख्यान का समाचार देते हुए, लिखा है -"Vande Mataram was allowed and no unpleasant scene on consequences followed"

यह कार्यक्रम - यशवंत हॉल में आयोजित किया गया था. रिचर्डसन के उत्तराधिकारी श्री राजू के कार्यकाल में भी यह विवाद था - परंतु ऐसा लगता है कि- कॉलेज के बाहर इसको गाये जाने और फिर छात्रावास के कार्यक्रमों मे इसके उपयोग से यह कटुता अपने आप समाप्त हो गयी होगी. लगभग दो वर्षों तक कॉलेज के परिसर में वंदे मातरम् को लेकर हलचल थी. कॉलेज के इतिहास में इस प्रसंग का एक ऐतिहासिक महत्व है.

श्री रिचर्डसन एक उदारवादी अंग्रेज तरूण थे. छात्रों की सृजनात्मक क्षमताओं को विकसित करने के उद्देश्य से और अनेक विवादास्पद मुद्दों पर वैचारिक चर्चा के लिये एक फोरम तैयार करने की दृष्टि से उन्होंने The Holkar College Times नाम से एक साप्ताहिक पत्र प्रारंभ किया था. यह कॉलेज के सत्र में प्रति शनिवार को प्रकाशित किया जाता था. इसका वार्षिक शुल्क दो रूपये था. निश्चित ही यह एक उल्लेखनीय पहल थी और शैक्षणिक तथा पत्रकारिता की दृष्टि से इसका प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना थी.

'होलकर कॉलेज टाइम्स' में कॉलेज की गतिविधियों के समाचार, विविध टिप्पणियाँ, सम्पादक के नाम पत्र और पुस्तक समीक्षाओं के माध्यम से विविध सामग्री उपलब्ध करायी जाती थी. इसमें विज्ञापन भी होते थे. सम्पादकीय के रूप में श्री रिचर्डसन का लेख होता था. जिन विविध विषयों पर रिचर्डसन महोदय ने अपनी कलम से लिखा वे एक प्रतिक्रियावादी अंग्रेज नौकरशाह की परिधि के बाहर के होते थे. ३१ जनवरी १९४२ के अंक में अपने लेख के प्रारंभ में उन्होंने गोखले की पंक्ति spiritualize politics उद्धृत करते हुए भारत के सामाजिक उत्थान की दिशा में महादेव गोविन्द रानाडे के योगदान की प्रशंसा करते हुए विस्तार से उनके व्यक्तित्व की चर्चा की. इसी लेख के अंतिम पेरेग्राफ में उनकी निम्न पंक्तियाँ पढ़ने पर सहसा

विश्वास नहीं होता कि ये शासक वर्ग के एक प्रतिनिधि द्वारा लिखी गयी होंगी -

'The steadiness of vision and breadth of understanding that he (Ranade) possessed are sorely needed to help solve India's problem today, and these qualities are the products of only a cultured mind. The desire to do the right thing is not enough. We must train and prepare ourselves through mental and spiritual culture to help others and to build a new and better India.'

'टाइम्स' में समय-समय पर पूर्व छात्रों के संदेश भी प्रकाशित किये जाते थे. २० दिसम्बर १९४१ के अंक में भाऊ साहब कोतवाल और वी.बी. कवीश्वर के पत्र प्रकाशित हुए थे. श्री कवीश्वर के परिचय में कहा गया था -

Mr. Kaveeshwar is nationalistic in outlook.

भाऊ साहब कोतवाल (१८९४ में कॉलेज के छात्र) का संदेश था -

"My brother students of the Holkar College. Be a sportsman; be a gentleman, stand united and be devoted in the service of the Indore state and mother India. Our college has a tradition of its own to uphold, which every student of the college has to try his level best to uphold"

कॉलेज की विभिन्न समस्याओं एवं गतिविधियों को लेकर छात्र-छात्राओं के लिखे पत्रों को भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता था. २० दिसम्बर १९४१ के अंक में लिखे अपने पत्र में छात्र शशिकांत भोरास्कर ने कॉलेज के कार्यक्रमों में अनुशासन और व्यवस्था के लिये बुलाये गये पुलिस दल की उपस्थिति की निंदा की थी.

His Highness Sir Tukoji Rao Holkar's Generous Gift

GHODE DEBATE:—The Ghode Debate was held on Saturday, the 31st in the sixth, seventh and eighth periods. Eight competitors took part in the debate. The judges, Dr. Deshpande, Mr. Ghosh and Mr. Dhar recommended N. L. Jain for the first prize.

Professor Shrinivasa Chaturvedi - Tributes.

THE BANK OF INDORE LIMITED

INDORE.

Under the Patronage of the Gove... of His H... Maharaja Holkar incor...

Branch...

SAU...

LITERACY CLASS FOR WOMEN:—Mrs. ...chardson and Mr. Ghosh were present at 2-15 p.m. on Wednesday the 4th February when the literacy class for women was opened in the garden adjoining the old Dean's quarters. Miss Zanane, Miss Lila Kher and Miss Oak who have volunteered to teach were also present. Hindi Primers and slates and other ... pencils will be ... given to encou...

A Boon to Brain—workers.

CHITRABELI BRAHMI OIL.

(Hair Tonic)

CHITRABELI-For Blackness

BRAHMI-For Freshness

BAJRADANTI-Tooth...

DEBATING CUP & PRIZE:—

Memorial Challenge cup and p...

HOLKAR COLLEGE CAPTAINS, 1941-1942.

Literacy Classes for College Servants

THE POOR STUDENTS' LIBRARY

SRIMATI RAJKUMARI'S LECTURE:—Srimati Rajkumari Amrit Kaur addressed the students of Holkar College in the Yeshwant Hall on Tuesday, the 17th February, Mr Sundaram of the Benares Hindu University presiding. In a most appealing manner the wellknown speaker dwelt on the gravity of the present conditions and the manifold responsibilities devolving upon the shoulders of the ... and women of this country and earnest...

...DAY, JANUARY, ...

... may take it then that the Student... tion is bent on this latter task of de... of refinement of thought and ... This certainly is a mo... and if it is pro... fruit in ... Dr. W. V. Bhagwat has kindly sent us a sense ... brief account of the reaserch work done in ... the Chemistry Department. The credit of ... young men and wo... it will not bear ... their understanding and p... more refined and effective, but it ... open up a wide new field of experience wh... can offer unlimited natural resources for explora... by creative minds.

...ut delay. ...arandikar due ... Let it be

Yours etc.

N. C. Zamindar

GUARDIAN TUTOR GROUPS

On Friday and Saturday, the 12th and 13th December, the guardian tutors met the members of their respective batches with a view to devising, among other

PANCHOLI ART'S KHAZANCHI

Starring the Star of "AULAD" & "QUAIDI"

ravishing RAMOLA with M. ESMILE & MANORAMA

...r Fa...rite REGAL THEATRE

NONE SHOULD AFFORD TO MISS.

NOTICE

Do You Know?

Letters to the Edi...

The HOLKAR COLLEGE TIMES

Published every Saturday during the College Year

Subscription: Rs. 2 per Annum.

Vol. II] HOLKAR COLLEGE, INDORE ...Y, JANUARY, 17, 194...

R. P. Instructors:—We heartily congratu... Dr Karandikar, Dr. Bhagwat, Prof. ...dia and Prof. Gangrade on having ...d the A. R. P. Instructors' examination. ...n these four instructors in our midst, ...hope to become ... soon.

Indian Games (Hu-Tu-Tu)

College team played against the ...

WANTED:—4 ambitious young men ... the General Assurance Society Ltd., Indore, Branch for the post of District organisers. Probat...ary period on commission basis.

SPORT

NOTES AND QUERIES.

Recently an Essay competition was held, by the Marathi Literary Society, in memory of the late Professor W. G. Urdhwareshe. It is sincerely hoped that the Society won't evolve itself into examining body.

It was said that the widowed Students' Counc... had elected (or selected) for itself a President and a ...cretary. But what further ?

It is a well-known law ... expands and cold contracts. But ... that our college libra... cold season ... fact.

Printed at the Holkar Government Press ... K. GOKHALE, President. Marathi Literary Association

Yours etc.

N. PADMANABHAN. Dean.

...GE TIMES

FAREWELL ADDRESS TO Dr. G. ...

...ary 31, 1...

HOSTEL NOTES

GENERAL Meeting of the hostel was held on Saturday, 23rd of August at 8.30 p.m. when Dr. S. S. Deshpande gave a short talk on "Science ...

Book Reviews.

...साहित्याचें अंतरंग

Professor S. M. Mate of ... College, Poona

A THOUGHT FOR THE WEEK

Some say, that ever 'gainst that season comes Wherein our Saviour's birth is celebrated, This bird of dawning singeth all night ... And then, they say, no spirit can ... The nights are wholesome; then no ... No fairy takes, nor witch ha... So hallowed and so ...

हमारे महाविद्यालय में एन. एन. सी. की सभी यूनिट उत्साह एवं योजनाबद्ध तरीके से कार्यरत है जिनमें महाविद्यालय के लग भग सभी छात्र-छात्राऐं ट्रेनिंग ले रहे हैं । इस विभाग को संपूर्ण जानकारी हमारे

The Balmukund Medal for Tennis has been won by S. S. Khandekar (IV Arts).

यह पत्र कब बंद हुआ, यह तो निश्चित ज्ञात नहीं हो सका है, हाँ, बाद के वर्षों में डॉ. भागवत ने अपने कार्यकाल में इसे पुर्न जीवित किया था. कॉलेज के 'अर्ध-कथानक' के रूप में होलकर कॉलेज टाइम्स का प्रकाशन हमेशा ही महत्वपूर्ण बना रहेगा और इसका श्रेय निश्चित ही एच.बी. रिचर्डसन को है.

१९४१ में **प्रो. वामनराव ऊर्ध्वरेषे** के निधन से कॉलेज का एक समर्पित व्यक्तित्व हमारे बीच से उठ गया. वे इसी कॉलेज के विद्यार्थी थे. १९२६ में संस्कृत और मराठी पढ़ाने के लिये नियुक्त प्रो. ऊर्ध्वरेषे परिश्रमी और अध्ययन शील व्यक्ति थे. उनकी मृत्यु पर श्री रिचर्डसन ने लिखा था -

'In Prof. Urdhwareshe we have last a very sincere and popular teacher and a man who was responsible for bringing to the force the co-operative movement in the state.'

इसी वर्ष कॉलेज में अर्थ-शास्त्र विभाग में सी.एम. पालविया की नियुक्ति हुई. वे होलकर कॉलेज के ही विद्यार्थी थे. कॉलेज में उन्होंने १९४८ तक कार्य किया. इस अवधि में अर्थ-शास्त्र के साथ वाणिज्य-संकाय की शैक्षणिक गतिविधियों में भी उनका सक्रिय सहयोग रहा. १९५३ में उन्होंने जेन टिनबर्गन के मार्गदर्शन में नीदरलेण्ड से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की. प्रो. टिनबर्गन अर्थ-शास्त्र के प्रथम नोबल पुरस्कार विजेता थे. डॉ. पालविया ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न विश्वविद्यालयों और संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों से सम्बद्ध रह कर ख्याति अर्जित की. उन्होंने Indian Institute of Public Administration में Associate Project Director और योजना आयोग के सलाहकार जैसे महत्वपूर्ण पदों पर भी सफलता पूर्वक कार्य किया. वे अपनी उपलब्धियों का श्रेय होलकर कॉलेज को देते हुए कहते हैं, कि 'मेरी जड़ें यहीं हैं.'

१९४३ में प्रो. बोर्डिया - उदयपुर और प्रो. एस.पी. वर्मा- मेरठ में नयी नियुक्तियों पर गये. १९२७ में विद्यार्थी के रूप में दाखिल शांति प्रसाद वर्मा ने लगभग ९ वर्षों तक (१९३४-१९४३) यहाँ इतिहास विभाग में अध्यापन कार्य किया. गाँधीवादी विचार दर्शन के पक्षधर प्रो. वर्मा ने इस अवधि में अपने विद्यार्थियों को अहिंसक जीवन शैली और आदर्शवादी मान्यताओं के प्रति प्रेरित किया. इन दिनों जयपुर में रह रहे प्रो. वर्मा अंतर्राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिशास्त्र के विद्वान माने जाते हैं. अपने संस्मरणों में उन्होंने १९२७ से १९४३ तक कॉलेज में बिताये अपने समय को याद किया है.

१९४३ में डॉ. भागवत पदोन्नत किये गये. कम वेतन और निम्न पद पर बरसों से कार्य कर रहे डॉ. भागवत ने असंतुष्ट होकर जेलर के पद के लिये आवेदन दिया था. वे चुन भी लिये गये थे. यह संयोग ही था कि वे जेलर के पद पर जा नहीं सके. कॉलेज की पत्रिका में उन्हें पदोन्नति पर बधाई देते हुए, सम्पादक ने लिखा :

'We are told that he narrowly escaped from going to the State Central Jail as superintendent. We congratulate him on his fortunate escape and on his promotion.'

डॉ. देशपांडे १९४४-४५ के सत्र में प्राचार्य थे. अपनी शैक्षणिक रुचियों और शोधकार्य के कारण उन्होंने इस प्रशासकीय दायित्व से शीघ्र ही मुक्त होना उचित समझा. उनके स्थान पर प्रो. पद्मनाभन प्राचार्य नियुक्त किये गये. प्रो. देशपांडे के कार्यकाल में सर सी.बी. रमन स्नेह सम्मेलन के सम्मानित अतिथि होकर कॉलेज आये थे.

१५ अगस्त १९४७ को जब देश आजाद हुआ तब कॉलेज प्रांगण में स्वतंत्र भारत का तिरंगा फहराने का गौरव प्रो. पद्मनाभन को प्राप्त हुआ.

रियासतों के विलीनीकरण के फलस्वरूप मध्यभारत - प्रांत अस्तित्व में आया. इसके साथ ही प्राध्यापकों की संस्था से दीर्घ सम्पर्कों की श्रृंखला लगभग समाप्त हो गयी. स्थानान्तर के कारण प्रांत के दूसरे भागों से प्राध्यापकों की पदस्थापनाएँ इस कॉलेज में हुई तो यहाँ से भी प्राध्यापक अन्यत्र भेजे गये. नयी व्यवस्थाएँ, नया प्रशासन - प्रारंभ हुआ. पुरानी परम्पराएँ टूट गयीं. १९४७ तक कॉलेज पूरी तरह स्थापित हो गया था. फलस्वरूप प्रो. पद्मनाभन, उनके बाद प्रो. घोष और फिर डॉ. भागवत का कार्यकाल निर्बाध और गतिशील रहा. १९५७ में पुन: प्रांतों के नये सिरे से विलीनीकरण के पश्चात मध्यप्रदेश बना और इस प्रकार शैक्षणिक सम्पर्कों का दायरा और विस्तृत हो गया. इन तमाम वर्षों की झलक संस्मरणों में है.

कॉलेज की छात्र-संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही थी. विज्ञान, कला, वाणिज्य एवं विधि संकायों की कक्षाओं का शिक्षण कॉलेज में हो रहा था. महाविद्यालय अपने आकार में इतना विस्तृत हो गया था कि व्यवस्था की दृष्टि से इसे दो भागों में विभक्त करने का निर्णय लिया गया. ३ नवम्बर १९५८ को भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने महाविद्यालय के कला और विधि संकाय के नये भवन का शिलान्यास किया. भवन के तैयार होने पर १९६१ में इसमें स्वतंत्र इकाई के रूप में शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय अस्तित्व में आया. विज्ञान संकाय के साथ पुराने भवन में, पुराने नाम के साथ पुरानी परम्पराओं के गौरव से सम्पन्न होलकर विज्ञान महाविद्यालय अस्तित्व में बना हुआ है. □□

We congratulate Mr. G.K. Yarday on his recent promotion to the position of Head Clerk in the office of the Minister of Education. His long association with the College and his able supervision made him almost indispensable to our College and the staff and students miss him very much, but at the same time they hope that the new sphere of work will give him greater opportunities for showing his ability.

The Staff Club gave a farewell party at Piplia Pala to Mr. G.K. Yarday, and wished him success and prosperity in his new field of activity.

From the Holkar College Magazine - January 1943.

सर सी.वी. रमण कॉलेज में

बायें से-
बैठ हुए : शर्मा, इन्दु व्यास, डॉ. देशपांडे, हक्सर और दिनकर साठे
खडे हुए : प्रभाकर घाटे, कापसे, भोर, ?

फैंसी ड्रेस हॉकी मैच वर्ष 1945

आजादी से पूर्व के वर्षों में होलकर कॉलेज का वातावरण जैसा था, उसकी आज कल्पना करके ही रोमांच हो उठता है. कितनी पारिवारिकता थी उस समय. उन वर्षों में एक परंपरा थी छात्रों और छात्राओं का विलक्षण हॉकी मैच. इस मैच की खासियत यह थी कि इसमें खेलने वाले सभी छात्र महिलाओं के वस्त्र पहनते और छात्राएँ पुरूषों के. १९४५ में आयोजित ऐसे ही एक फैंसी ड्रेस हॉकी मैच की टीम के खिलाड़ी पहली कतार - कु. के. सिंह, एफ. अंकलसरिया, पांजारे, एम. गुप्ता, ए. गोदरेज, एफ. अंकलसरिया जूनियर, जेड. अंकल्सरिया, एम. कालेवार.

दूसरी कतार - सी.एम. ठक्कर, अख्तर हुसैन (ओलिम्पिक खिलाड़ी), एन. रशीद, के.जी. मानके, एस.एस. चौहान, एस.एन. भंडारे, एन.पी. शर्मा (कप्तान). तीसरी कतार - एस.पी. लाम्बा, एम. हाफिज, एन.अमीन. चौथी कतार - पी.बी. जाधव, एन.के.जी. देशमुख.

REMINISCENCES OF HOLKAR COLLEGE

- S.K. ABHYANKAR

This college is my Alma Mater. She created in me love of learning. I was there for Inter Science from 1918 to 1920 and for B.Sc. from 1920 - 1923. It was affiliated to the University of Allahabad.

Principals of the College :

For 1918 - 1920 W. Owston Smith was the Principal. He was a scholar in History. He read with us some portions from Macaulay's History of England.

Prof. P. Basu, a scholar in Economics officiated as Principal for 1920-21.

During 1921-22 Prof. S.L. Gokhale was the Principal. He was called from America for one year. He was a scientist of the calibre of J.C. Bose. He tried to inspire us for self study. In the opening address he described the Directive Method. He said, "The true work of a teacher is to make the student independent of the teacher." His plan was to make the college an independent one i.e. a sort of university for the Holkar State. The state administration was not ready for this bold step and so Gokhale went back to U.S.A.. He told me that the Directive Method was based on the Upanishadic method known as Bhargavi Varuni Vidya. In his final talk he told us that he was turned away as a Professor called back as a Principal after twelve years, and wished to be in India after retirement.

During 1922-23 Dr. Sukhtankar was the Principal He was a Ph.D. from Germany. He was kind hearted and allowed me to read his Times of India.

Prof. S.K. Abhyankar (1904-1985) studied in this college in the years 1918 to 1923. After completing his graduation from Holkar College, he did his M.Sc. from Nagpur in the year 1928. He served as Lecturer and Professor of Mathematics at Ujjain, Gwalior and finally retired in 1959 as Principal.

His erudition in Ancient Indian Mathematics was remarkable. He has several articles to his credit on the Mathematics of Barhamgupta and Bhaskara. He also translated Bhaskaracharya's Bijganita in English and Marathi.

As our request he wrote this article in 1984.

Total number of students was about 150 which rose to 200 in 1923. Teachers including the Principal were fourteen and they managed to teach ten subjects English, Sanskrit Persian, Logic, Philosophy, Economics, History, Mathematics, Physics and Chemistry. Five of the teachers may be called Holkarians.

(1) The professor of Chemistry was S.G. Deshpande. He was a true salt of the soil, who worked in the college till the end, after a sojourn at Agra and Gwalior. He can be called the Father of Chemistry for this region. His father was an Amin in the Holkar State. He was a devotee of Chemistry with no ill-will at all - oh! if all were like him.

(2) Prof. D.B. Deodhar of Physics was here for eight years 1913-21. He was a student of Prof. S.L. Gokhale at this very college. He left us in 1921 to join the Lucknow University. As the vacancy was not filled for a long time. We had to suffer. There was a group photo of the science students with Gokhale and Deodhar. It is there at his home in Lucknow called Anand Vilas. Prof. Deodhar inspired me to study Physics.

(3) Prof. V.G. Gole was the Asstt. Professor of Mathematics. He was also demonstrator for Physics. He taught us Chemistry also when Deshapande went on study leave. My latent love for Mathematics was nurtured under his guidance. He was a true scientist. He gave us the fundamentals of Mathematics. When I was a Professor in the Gwalior state he was a guide to me. His home Pawan Vila was a training Centre for me. He had a silent helping hand to all who came

to him. His father was a judge in the Holkar State. Nana Deshpande and Tatya Saheb Gole lived like brothers. They were neighbours. Their friendliness started from their high school and lasted till the end.

(4) Mr. W.G. Urdhareshe was a fellow for Sanskrit. I had met him in 1914.

(5) Mr. M.G. Kekre was demonstrator for Chemistry for some time. Mr. M.D. Gharpure and Mr. G.R. Mahammadpurkear were also demonstrators, for Chemistry, Shintre Y.R. demonstrator physics joined in 1921.

Now we come to non Holkarions -

Professor R.V. Pai, of English was from Bombay. He was transferred in 1921 to other jobs in the State. We had to suffer by Prof. Pai's transfer. There was one Prof. Naik who was M.A. In History. He taught General English also. Mrs. Naik an M.A. was inspector of schools. Both of them left Indore for Allahabad. They had come from Bombay. One Prof. Nagarkar of Bombay and another Prof. Karamchand of Punjab had taken our General English class when we were in the B.Sc. D.B. Randade of the education deptt. of the state was also a professor of English at the college for sometimes.

Prof. Ghate was for Sanskrit. He was a very old man, He may have come from Bombay University.

Prof. Saghir Ali was for Persian. He came from Aligarh college. He was in charge of the Hostel. They called him Dean Saheb, I thought Dean was his family name. He spoke in Broken English, usually without verbs.

Prof. W. Shrikhande was for logic and philosophy. He was a scholar from Bombay University. For the Intermediate he used to teach translation from marathi to English once a week.

Prof. I.J. Cornelius was for mathematics. When he took his M.A. of the Allahabad University perhaps he was a teacher in the Christian Collegiate high school in Indore Camp. He made us study regularly by giving occassional tests. He was good at Analytical Geometry and at solving problems in the Calculus. He condemned books on Algebra which contained too many solved examples. That was an inspiration to me to compile STUDENTS Elementary ALGERRA and ALGERRA for INTERMEDIATE classes.

Prof. N. Padmanabhan joined in 1922 to fill up the vacancy in Physics. He was from Madras University. He was kind to me. He lent me books from the departmental library.

Prof. J.N. Sen came to fill up the leave vacancy created by Prof. S.S. Deshpande's going to England on Study leave. He was from Calcutta University, a student of Prof. P.C. Ray. Prof. Sen wished that I should score about 75 per cent. He insisted on regular study and gave us tests,

Games :

The college was renowned for good play grounds. Day students had parade for two days a week. Hockey, Football Tennis and Cricket were played. Prof. Saghir Ali was always present at the parade. His "Forty Five" meant the angle made by the feet should be 45• There was a cadet corps-visit to the Gymnasium and parade was a must for the Hostellers. Prof. Padmanabhan played Tennis. Prof. Gole took interest in Foot ball.

Hostel :

There were three wings for the Hostel, we had to use kerosene Lamps. The kerosene oil was provided by the College.

General :

Every teacher knew almost every student of the college. Day students walked the distance from the city to the college. Some used bicycles. Surendra Nath Dubey used his Tonga. Professors used cycles. Prof. Sen walked from the Camp to the college. Sometimes we were with him. In 1918 there was only one clerk Mr. Gandhe in the Office. One Mr. S.R. Bhale assisted him for library work.

In the central Hall, names of distinguished students mostly first divisioners were exhibited on the wall. That was an inspiration to us. In 1911 there were four first classes at the Intermediate S.S. Deshapande V.G. Gole, P.S. Sharangpani and H.N. Wanchoo. After a gap of 10 years appeared the name of D.M. Borgaonkar in 1921.

For an all round boy during four years, there was a Shivajee Rao Gold Medal. One Mr. M.D. Kirtane was awarded the medal perhaps in 1921. He was a science student. In the B.Sc. class there were 5 or 6 boys only.

After I left Indore in 1923, I retained happy memories of all the HOLKARIANS, boys and teachers.

Difficulties :

I would like to point out difficulties that were experienced by us. Some well to do parents sent their boys to Bombay, Pune or Allahabad even for undergaraduate courses that were available at Indore. Prof. Cornelius sent his son A.R. Cornelius to Allahabad in 1921 after the Intermediate. He was a brillient boy and was selected for I.C.S.. He migrated to Pakistan and became Chief Justice. D.S. Jog went to Allahabad with a special scholarship after the Inter Science in Holkar College in 1923. This shows that the State Government did not put sufficient effort to improve the college and bring it to the level of colleges, in Allahabad, Bombay, Pune or Agra during those days.

Post-graduate departments were non-existent in the college in 1923. And even regular merit scholarships were not available to the best students who wanted to go outside for M.A. or M.Sc. or Engineering. I was in the M.Sc. previous class of Allahabad for about five months in 1923. For want of a scholarship, I left Allahabad and took a teachers job in Central Provinces. In 1927 I joined the college at Nagpur and got the M.Sc. degree in 1928. Thus it took 5 years in stead of 2 to get the post graduate degree for want of a scholarship. I was a merit scholarship holder in Holkar college for standing first in almost all six monthly and annual examinations, and even then I had to discontinue studies. I have retired as the Principal of the Govt. College at Gwalior. Even during my stay in Gwalior and Ujjain Professors at the Alma Mater treated me as their own.

Alma Mater is a temple for learning. Those who regard her as such are sure to have their life's aim fulfilled. Let her be healthy and healthier and pure after the centenary is my earnest prayer at the Lord's feet.

□□

Know Me I'm He

It was a hellish night. The storm had just ceased. The darkness grew thicker and thicker, the horizon was illumined in a deep blue radiance. The universe was clothed in a sleeping garb of silence. An old huge Neem Tree, a hideous and ghastly object, waving his myriad long dark branches languidly looked like a giant on his nightly haunt. The barren fields lay dead. The occasional hissing breeze trumpeted the judgment day. Heavens poured darker and darker. The distant spire of the village-church shone dimly all night. My silent steps led me to the demon tree.

"But what's that yonder?"

My heart sunk deep. A black tottoring thin figure, clothed in a white garment, supported on a cross. I vacantly gazed. The image arose.

"Oh! My Lord!! -"

We were one - embraced and kissed with a choking throat. But all vanished disappeared. A fancy or a dream! What is that? A starving poor blind beggar leanning on a staff.

"But My Lord, where art thou gone?" I fondly uttered. My eyes asleep, but heart awoke-the fanning breeze rang in my ears, 'KNOW ME, I'M HE".

S.N. Bajpai,
Senior B.A. Class.

- From the college Magazine, 1936.

मेरा होलकर कॉलेज़

डॉ. हरिहर त्रिवेदी

पुरा यत्र स्रोत: पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरल भाव: क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेश: शैलानां तदिदमिति बुद्धि दढ़यति।।

– भवभूति : उत्तररामचरित – II, 27

रामचन्द्र जब दूसरी बार दण्डक वन में गये तब उन्हें उस स्थल की अपनी पहली यात्रा का स्मरण हो आया. उनके वे ही उद्‌गर इस श्लोक में हैं. वे कहते हैं - 'पहले जहाँ नाले बहते थे, अब वहाँ सूखी रेत है. घने वनों में अब बिरले वृक्ष हैं और विरले घने. इस वन की काया पलट हो गयी, पहचान नहीं हो पाती; फिर भी पर्वतों की यथावत् स्थिति से ज्ञात होता है कि यह निश्चित ही वही वन है.' होलकर कॉलेज को देखकर मेरा भी यही हाल होता है. मुझे कल्पना भी नहीं थी किन्तु शुक्ल पक्ष की एक रात्रि में मेरे मित्र जब उस क्षेत्र से मेरे साथ अपनी मोटर से गुजर रहे थे, मैं सहम कर चिल्ला उठा -'ड्राइवर गाड़ी रोको' बाहर आकर मैं भौचक्का सा होकर चारों और आँखें घुमाने लगा. मेरे मित्र बाहर के निवासी थे. वे आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे. इधर मैं भाव-विभोर हो चुका था. निश्चय नहीं कर पाया कि यह वही कालेज है जिसका मैं छात्र था. उस परिसर में नई इमारतें थीं, सड़के बन गयीं थीं, कुआ पाट दिया गया और उसका रहट अलग कर दिया गया था; जहाँ छोटा-सा दवाखाना था वहाँ बगीचा हो गया और आस-पास के बिरले जंगल में घनी बस्ती हो गयी. किन्तु कॉलेज का प्रमुख भवन, उसके पीछे के टेनिस-कोर्ट और हॉस्टल को देखकर मैं जान सका कि यह वही कॉलेज है जहाँ मैंने १९२३ से १९२७ तक शिक्षा पाई और साथ ही मित्रता, स्नेह, पारस्परिक सद्‌भाव और नियमितता का पाठ सीखा था.

होलकर कॉले का मैं आभारी हूँ. इसने मेरे जीवन की रूपरेखा अंकित की; सुचरित्रता का पाठ पढ़ाया और जीवन के अंतिम क्षण तक नियमपूर्वक अध्ययन और लेखन की प्रवृत्ति का श्रीगणेश किया. इसकी छाप मिट नहीं सकती. मेरे मस्तिष्क की प्रत्येक शिरा में इसके रूप-रंग का संचार सदैव बना रहता है. किन्तु, प्रसंगवश जब यह स्मृति मस्तिष्क के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाती है, तब मेरी स्थिति क्या होती है यह मैं ही जानता हूँ.

महाविद्यालय की मेरी स्मृतियाँ और मेरे विचार आज के विद्यार्थियों के लिये कितने प्रासंगिक होंगें यह तो मैं नहीं जानता, परंतु अपनी इस मातृ-संस्था को मैं जब भी देखता हूँ तब मुझे ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं -

निर्जन वन में शांत भवन यह खड़ा हुआ है
मानो वसुधा - नाप - दण्ड यह खड़ा हुआ है।
चारों ओर कहीं भी इसके शोर नहीं हैं
ईश्वर का लघु रूप अध्ययन-योग्य यही है।

आज, कॉलेज की वही इमारत है, वही परिसर है और वही खेल का मैदान भी - परंतु वह नीरवता और एकांत कहाँ, जो अध्ययन के लिये आवश्यक है और जो हमारे समय में था. सन १९२३ से १९२७ तक मैं इस कॉलेज का छात्र रहा. तब बी.ए. तक अध्यापन होता था. कुल छात्र संख्या थी लगभग ५०-६० और अध्यापक केवल सात! वे सात - सप्तर्षि के समान थे. अपने विषय में पारंगत तथा यदा-कदा अन्य विषय भी पढ़ाने के योग्य. डॉक्टर - केवल दो ही थे- डॉ. प्रफुल्लचन्द्र बसु -(इतिहास और अर्थशास्त्र के प्राध्यापक और बाद में प्राचार्य) और डॉ. शंकर श्रीधर देशपांडे (रसायन शास्त्र). संस्कृत विभाग के प्राध्यापक केवल बी.ए. उत्तीर्ण थे, किन्तु योग्यता से परिपूर्ण. उनकी दी हुई चुनौती का एक उदाहरण प्रसिद्ध है. जब संस्कृत में एम.ए. की कक्षा प्रारंभ होने की बात चली, उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय से डॉ. अमरनाथ झा यहाँ की स्थिति देखने आये. उन्होंने प्रो. घाटे से कहा -''आप एक दो वर्षों में एम.ए. उत्तीर्ण हो जायें तभी नियमानुसार इस कक्षा को पढ़ाने योग्य हो सकेंगे'' घाटे साहब ने तत्काल उत्तर दिया -''इस वर्ष परीक्षा के आवेदन की तिथि निकल चुकी है. आप मेरा आवेदन स्वीकृत करवा दीजिये और मैं एक दो नहीं, इसी आने वाले मार्च में परीक्षा में सम्मिलित होता हूँ; यदि उत्तीर्ण छात्रों में सर्वप्रथम न आऊँ तो मुझे यहाँ से भी निकाल देना.'' झा साहब चुप! प्रो. घाटे का लोहा सारे प्रयाग विश्वविद्यालय में माना जाता था. वे संस्कृत विषय को इसी भाषा में पढ़ाते थे - अंग्रेजी या मातृभाषा का उपयोग बहुत ही कम, आवश्यकतानुसार करते थे. पढ़ाते समय वे हमारी अंग्रेजी कैसे सुधारते थे - इसका भी एक उदाहरण देने योग्य है. कालिदास के शाकुंतल में 'आम्र-शाखा व लम्बिते' आया है. प्रो. घाटे ने एक छात्र से इसका अंग्रेजी अनुवाद पूछा. उसने कहा' - Hanging from a mango branch'. घाटेजी ने उसे सुधारते हुए कहा - 'suspended from a mango bough'. नाटक पढ़ाते समय अपनी वाणी द्वारा उसका दृश्य सामने उपस्थित कर वे छात्रों को रस-विभोर कर देते थे. मनोरंजन द्वारा पढ़ाने में वे सिद्धहस्त थे. ऐसे आदर्श अध्यापक आज कम ही हैं.

घाटे साहब मुझे पुत्रवत् स्नेह करते थे. इण्टर और बी.ए. की परीक्षाओं में संस्कृत में सर्वोच्च अंक लाने के लिये मुझे जो छात्रवृत्ति और पदक मिले उसके पीछे मूलत: उनकी ही प्रेरणा थी.

दूसरे वंदनीय प्राध्यापक थे चार्ल्स.ए. डाबसन्! बडा ही स्नेहिल व्यक्तित्व था उनका. अध्यापन में निपुण और ज्ञान से परिपूर्ण डाबसन साहब का स्मरण आते ही कालिदास की ये पंक्तियाँ याद आने लगती हैं -

शिलष्टा क्रिया कस्य चिदात्म संस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एवं।।

– मालविकाग्निमित्र

विषय का गहन ज्ञान और उसे छात्रों में वितरित करने में सिद्धहस्त! ऐसे थे प्रो. डाबसन. वे छात्रों के चरित्र-निर्माण में भी कुशल थे. उपस्थिति अंकित करते समय वे पूछते : 'Were you present yesterday? छात्र के 'हाँ' या 'नहीं' कहने को मान लेते. उनके इस प्रकार के व्यवहार से हम सत्य को महत्व देने लगे.

इसके विपरीत डॉ. बसु का व्यवहार था किन्तु उससे हमने नियमितता और समय पर काम करना सीखा. उस समय दो घंटियाँ बजती थीं. एक पीरियड के समाप्ति की और दूसरी घंटी अगले पीरियड के प्रारंभ होने की. डॉ. बसु अपना पहला पीरियड समाप्त होते ही कक्षा में प्रवेश करते, तत्काल सबके नाम पुकार कर उपस्थिति अंकित कर लेते और किसी छात्र का एक पाँव भी दूसरी घंटी के समय कक्षा में होता तो उसे उपस्थित मानते अन्यथा नहीं.

पर्शियन के प्रोफसर सागिर अली साहब अंग्रेजी भी पढ़ाते थे. दिया हुआ कार्य (Homework) करके न लाने वाले छात्रों को वे उंगली से बाहर जाने का इशारा करते. नियम से अभ्यास करने के लिये वे कक्षा में व्याख्यान देते थे. यही व्यवहार अन्य गुरुजनों का भी था. उन सभी को, चाहे उन्होंने हमें पढ़ाया हो या नहीं - हम गुरू मानते हैं. उन सभी ने हमारे चरित्र को प्रभावित किया है. हम उन सबके आभारी हैं.

हमारे समय में स्नेह-सम्मेलन का स्वरूप अन्य ही प्रकार का था. दूसरे कार्यक्रमों के साथ उसमें विद्वानों के व्याख्यान भी होते. एक बार तो शेक्सपियर का नाटक ऑथेली भी हमने यहीं देखा था. कॉलेज में कवि सम्मेलन भी आयोजित होते थे जिनमें हास्य का पुट अधिक रहता था. उस समय होली के अवसर पर लिखी हुई मेरी एक कविता मुझे आज भी याद है -

'काले, पीले, मोतीवाले, रेशिमवाले, लेते
नवले, आठले और अकोले के साथ बापेले।
कोई सूबेदार बने हैं कोई है कोतवाल
कोई दफ्तरी, प्रधान तो कोई अनोखेलाल।

छात्रों के निवास के लिये हॉस्टल की तीन इमारतें थीं -West, East और Middle Block. छात्र अपने खाने-पीने की व्यवस्था स्वयं करते जैसे बाजार से सामान लाना, रसोइयों की देख-रेख आदि. शहर से आने वाले अधिकतर छात्र पैदल ही आते साइकिलें कम ही थीं. रिक्शा या स्कूटर तो हम लोगों ने देखा भी नहीं था. प्रसंगवश कभी मोटर महाविद्यालय के परिसर में आजाती - तो हम उसे देखने दौड़ पड़ते. यह थी उस समय की स्थिति! जिसके बाद आज लगभग ६५ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं. इतना लम्बा समय बीत जाने के बाद भी कॉलेज की याद आते ही मेरी स्थिति कीट्स के समान हो जाती है, जो Nightingale का गाना सुनकर कहता है:

कितना कर्ण-मधुर यह गान!
अंग-अंग पुलकित कर देता,
नहिं रहता कुछ भान।
नहिं खग-रव यह; नभ-देवी का
प्रत्युत कण्ठ-वितान।।
मैं भूतल पर यह नभ में है;
कैसे सन्निधि पाऊँ?
भौतिक साधन सभी निरर्थक, कैसे
सन्निधि पाऊँ?
नई कल्पना मन में लाकर इसकी स्तुति
जब गाऊँ;
काव्य पंख पर चढ़ कर इसके पास पहुँच मैं जाऊँ.

वही हाल आज मेरा है. जिस महाविद्यालय में मैं प्रतिदिन नियमपूर्वक आता जाता था, वह अब केवल स्मृति में ही रह गया है. उस समय के अपने मित्रों का स्मरण करते हुए मुझे चार्ल्स लेम्ब की निम्न पंक्तियाँ याद आ जाती हैं -

I have had playmates, I have had companions
In my days of childhood, in my joyful school-days;
All, all are gone, the old familiar faces.

I have been laughing, I have been carousing
Drinking late, sitting late, with my bosom-cornies;
All, all are gone, the old familiar faces.

Ghost-like I paced round the haunts of my childhood
Earth seemed a desert, I was bound to traverse,
seeking to find the old familiar faces

श्रीहरिहर त्रिवेदी - १९२३ से १९२७ तक महाविद्यालय के विद्यार्थी थे और इस अवधि में उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत के लिये प्रतिष्ठित Lumsden Scholarship, हेमांगिनी भुवनेश्वरी पुस्तक पुरस्कार और नंदी पदक प्राप्त किया. पुरातत्व विभाग के अपने यशस्वी सेवाकाल में उन्होंने उज्जैन, विदिशा, महेश्वर और दशपुर के ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक विवरण लिखे और गाँधीसागर बाँध के निकट स्थलों का पुरातत्वीय सर्वेक्षणर कर इन्द्रगढ़, आवरा और मनोटी में उत्खनन किया. उनके प्रकाशित शोध-पत्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विद्वतजनों द्वारा समादृत हुए हैं.

कार्पस इंस्क्रिप्शनस इंडिकारम्' उनकी महत्वपूर्ण कृति है. उन्होंने नाग-मुद्राओं पर भी उल्लेखनीय कार्य किया है. संस्कृत और हिन्दी में उन्होंने नाट्य-कृतियों की रचना की है और वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैले, बायरन की कविताओं का संस्कृत अनुवाद किया है. अनेक पुरूस्कारों से सम्मानित डॉ. त्रिवेदी आज भी अपने अध्ययन और लेखन में सक्रिय हैं. आत्मीय रूप से लिखे हुए उनके इस लेख को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है.

बचपन जिनके साथ बिताया
खेल-कूद, मस्ती, अनन्त
परिचित मेरे वे सब साथी
कहाँ गये? हा हंत!

उन्हें खोजने, उन्हीं स्थलों की
प्रेत-यात्रा पर मैं जाता! किन्तु
परिचित चेहरों में से
नहीं, एक भी पाता!

हाँ, केवल एक व्यक्ति है - डॉ. वासुदेव भागवत जो मेरा साथी, सहपाठी सहृदय-मित्र, सहायक और उपदेशक भी है. कभी-कभी उनके दर्शन हो जाते हैं.

इस महाविद्यालय का उद्देश्य केवल, उपाधि प्राप्त कर लेने के लिये आवश्यक शिक्षण देना नहीं था. अपितु मानसिक वृत्तियों में अभिवृद्धि के साथ-साथ चरित्र-निर्माण पर भी जोर देना था. इतना होते हुए भी उस समय यहाँ शिक्षण कितना सस्ता था यह इसीसे स्पष्ट है कि इण्टर की फीस तीन रुपये और बी.ए. की पाँच रुपये थी. इसीलिये दूर-दूर के प्रांतों से विशेषकर महाराष्ट्र, बरार और सेण्ट्रल प्राविन्स की अनेक रियासतों से छात्र यहाँ पढ़ने के लिये आते थे.

प्रो. घाटे हम लोगों के लिये प्रेरणा-केन्द्र थे. निधन के पूर्व अपने अंतिम व्याख्यान में उन्होंने हमें भवभूति के 'उत्तर-रामचरित' से अश्वमेध प्रसंग में लवकुश - लक्ष्मण संवाद पढ़ाया था. उनका वह व्याख्यान हमें आज भी स्मरण है.

प्रो. घाटे, प्रो. डाबसन् और डॉ.बसु प्राध्यापक-माला के मेरू-मणि (त्रि-रत्न) माने जाते थे. कला संकाय के विद्यार्थियों का इन्हीं से विशेष सम्पर्क आता था. व्यक्तिगत विभिन्नता होते हुए भी - इनकी पढ़ाने की शैली में बहुत कुछ साम्य था. प्रो. घाटे इस बात पर जोर देते थे कि पाठ्य-पुस्तकों में से कुछ अच्छे श्लोक हम छात्रगण कण्ठस्थ करें. साथ ही अपनी शब्द-सम्पदा को बढ़ाने के लिये वे हमें; महत्वपूर्ण शब्दों के पर्यायवाची शब्दों की तालिका बनाकर उसे बार-बार पढ़ने की सलाह देते थे.

यही बात प्रो. डाबसन् में भी हम पाते थे. वे भी पाठ्यपुस्तकों के उत्तम अंश कण्ठस्थ करने का उपदेश देते. हाँ, वे तुलनात्मक - अध्ययन पर विशेष जोर देते थे. उनका कहना था कि शैले की कविताएँ पढ़ते समय - वर्ड्सवर्थ की प्रासंगिक कविताएँ अवश्य पढ़ना चाहिये. एक बार जब वे हमें टेनिसन की 'Ocean' नामक कविता पढ़ा रहे थे - तब इसीसे प्रेरणा लेकर मैंने कक्षा में कालिदास के रघुवंश के १२ वें सर्ग में आये हुए समुद्र-वर्णन के कुछ अंश सुनाये थे. इसे सुनकर उन्हें जो आनन्द हुआ उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं है.

डॉ बसु ने एक नवीन पद्धति प्रचलित की थी. उसके अनुसार कोई भी छात्र एक विषय (लगभग ३-४ पृष्ठों मे) तैयार करता और उसे कण्ठस्थ करता. फिर वही विषय बिना देखे, कक्षा में प्राध्यापक और सभी छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता. उसकी हस्तलिखित प्रति डॉ. बसु के हाथ में रहती और वे उसमें आवश्यक सुधार करते जाते. उनके पीरियड्स में प्रति माह एक पीरियड इसी हेतु रहता. उनका मानना था कि सार्वजनिक भाषण की यह पहली सीढ़ी है. संस्कृत में तो कण्ठस्थ करने की प्रथा पहले से ही विद्यमान थी - परंतु हाल ही में मनोविज्ञान की पुस्तकों में भी इस पर जोर दिया गया है.

डॉ बसु इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़ाते थे. जब वे प्राचार्य बने तब उन्होंने कॉलेज में प्राध्यापकों की संख्या बढ़ाने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया. उन्हींके समय में प्रो. ज्वाला प्रसाद (अर्थशास्त्र), प्रो. श्री निवास चतुर्वेदी (संस्कृत) और प्रो. बोर्डिया अंग्रेजी में नियुक्त हुए. हमारे समय में ही प्रो. धर इतिहास विभाग में आ गये थे. प्रो. घाटे के निधन के कारण हम लोगों को संस्कृत प्रो. चतुर्वेदी जी ने पढ़ायी. वे बहुत ही मिलनसार थे.

महाविद्यालय के विकास के प्रयत्नों में तथा छात्रों के शैक्षणिक स्तर को बढ़ाने में डॉ. बसु के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता. अपने विषय के साथ ही वे प्रति रात्रि को हमें अपने बंगले पर अंग्रेजी पढ़ाते थे यह उनकी रुचि थी. वे कितने लोकप्रिय हो गये थे ये उनका बिदाई-समारोह देखने वाले ही जानते हैं. ऐसा भव्य समारोह आज तक देखने में नहीं आया. उनके बंगले से रेल्वे स्टेशन तक का सारा मार्ग फूलों से पाट दिया गया था. आज भी वे हमारे लिय प्रातः स्मरणीय है.

मेरे प्रिय होलकर कॉलेज, मेरी तीव्र अभिलाषा होती है कि मैं एक बार फिर उसी परिसर में, शिक्षण-कक्षों में, खेल के मैदानों में सब कहीं घूमूँ पर, आज मैं विवश हूँ, जरातुर हूँ, असमर्थ हूँ अन्यथा दौड़कर मैं तेरा सानिध्य प्राप्त कर लेता. आज मैं शेले की West Wind की पंक्तियों का स्मरण करके ही संतुष्ट हो लेता हूँ - जिसमें उसने लिखा है कि 'यदि मुझमें अपनी युवावस्था जैसा जोश होता तो मैं भी तेरे साथ सर्वत्र उड़ता रहता'

मेरे प्रिय होलकर कॉलेज! मैं सदैव तेरा आभारी हूँ. तू ही तो मेरा पथ-प्रदर्शक है. अपने गुरूजनों से हमने बहुत कुछ सीखा - उन सबका यह लेख लिखते समय स्मरण हो आता है. बरसों से तू अचल और अडिग खड़ा है. मैं तुझे और अपने गुरूजनों को प्रणाम अर्पित करता हूँ.

हम डॉ. दयाशंकर जोशी के आभारी है-जिनके आत्मीय आग्रह ने श्री हरिहर जी से यह लेख हमें स्मारिका के लिये उपलब्ध कराया.

□□

मरण्याचं भय

आता मी एक प्राध्यापक झालो आहे
म्हणून
मला मरायचं भय नाही
कारण
माझ्या मागे,
माझ्या आत्म्याला शांती मिळावी म्हणून
माझ्या कॉलेजचे दोन हजार विद्यार्थी
दोन मिनिटासाठी
मौन ठेवतील!

- रवि शेवडे

मेरे समय मित्र-मित्र रहते थे. 1927 की परीक्षा में हम तीन छात्र बी.एससी. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे. इन तीनों में मेरा क्रम आखिरी था. वर्ग-बन्धु सभी पास हुए. 1925 में सभी फेल हुए थे. कॉलेज के प्रोफेसरों को सोने की घड़ियाँ देकर सरकार ने सम्मान किया था. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को कुछ न मिला. कॉलेज के इतिहास में शिक्षक-सत्कार की एकमेव घटना है यह. बी.एससी. तक पढ़ने की भी मेरी परिस्थिति नहीं थी. फ्री-शिप, कॉलेज नोट्स और Poor Boys Library से जो किताबें मिलीं-उनसे ही पढ़ा. शहर से कॉलेज - पैदल आते-जाते. बारिश में गीले ही कक्षाओं में बैठते. बी.एससी के बाद मेरे लिये आगे पढ़ना असम्भव था. मेरे मित्रों की परिस्थिति किंचित ठीक थी. उन्होंने छात्रवृत्ति के लिये आवेदन दिया. मुझे मालूम न था. मेरे मित्र शंकर मुंगरे ने मुझे भी आवेदन करने को कहा. मैंने सुना अनसुना कर दिया. वह फार्म भरकर ले आया, मेरे दस्तखत लिये और स्वयं Education Secretary को दे आया. मुझे छात्रवृत्ति स्वीकार हो गयी. मेरे मित्रों को नहीं हुई - क्योंकि सरकार को केमिस्ट्री का व्यक्ति चाहिये था. उन्होंने Physics या Mathematics के लिये माँगी थी. ऐसे मित्र थे.

एम.एससी - प्रथम श्रेणी में प्रथम आने से सरकार ने मुझे डी.एससी. के लिये छात्रवृत्ति कायम रखी. इलाहाबाद विश्वविद्यालय की Research Scholarship मुझे एक वर्ष मिली और तीन वर्षों के लिये Empress Victoria Readership मिली. मैंने 1932 में अपना कार्य पूरा किया. प्रारंभ में मुझे St. John's College आगरा में 150 रुपये प्रति माह के वेतन पर व्याख्याता के पद पर नियुक्ति मिली. डॉ. पंड्या विभागाध्यक्ष थे. वे मुझे स्टेशन पर लेने आये. साल भर, मैं उन्हीं के यहाँ रुका! ऐसे थे प्रोफेसर! वहाँ St. John's और आगरा कॉलेज की एम.एससी. की कक्षाएँ संयुक्त रूप से लगती थीं. वहाँ के सभी शिक्षकों ने मुझे बहुत प्रेम दिया. छुट्टी के दिन कोई-न-कोई मुझे अपने घर ले जाता. उस समय सेंट जोन्स में शंकर दयाल शर्मा पढ़ रहे थे. वाणिज्य के प्रोफेसर और मेरे मित्र एस.एल. शर्मा भी तब वहाँ विद्यार्थी थे. कॉलेज का वातावरण बहुत अच्छा था. फादर हालण्ड - प्राचार्य थे और फादर सले उप-प्राचार्य थे. वहाँ प्रतिदिन हॉल में प्रार्थना होती थी - जिसमें सर्व-धर्म का समावेश था. मैं उस समय बड़ा धार्मिक था. प्रार्थना में रोज जाता. वहाँ शिक्षकगण विद्यार्थियों की उपस्थिति (attendence) लेने का काम करते. एक दिन मैं नहीं गया. उस दिन उपस्थिति रह गयी. फादर हालंड ने मुझे बुलाया. उन्होंने कहा -'तुमने हाजिरी नहीं ली. क्यों नहीं आये?' मैंने तपाक से कहा 'कल से बिल्कुल नहीं आऊँगा. मैं केमिस्ट्री पढ़ाने के लिये नियुक्त हूँ, प्रार्थना के लिये नहीं. धार्मिक हूँ, इसलिये आता हूँ. हाजिरी लेकर आपको ओबलाइज् करता हूँ.' वे एकदम खड़े हुए. मुझे अपने पास खींचकर, स्नेह भरे शब्दों में बोले -'Yes my boy, you were obliging us. Continue, to do so.' क्या सहृदयता थी! मैं निरुत्तर हो गया.

मैं होलकर स्टेट का Scholarship Holder था और यहाँ सर्विस का मेरा bond भी था. एम.एससी (रसायन-शास्त्र) में खुलने के कारण विश्वविद्यालय की शर्तों के अंतर्गत एक व्याख्याता नियुक्त किया जाना था. अक्टूबर -1933 में मुझे होलकर कॉलेज में 100-5-150 के वेतनमान में 100.00 प्रतिमाह के वेतन पर अस्थायी नियुक्ति का आदेश मिला. होलकर कॉलेज में मैंने 1 नवम्बर 1933 को ज्वाइन किया. कुछ दिनों बाद मुझे ज्ञात हुआ कि डिमान्स्ट्रेटर का वेतनमान (125-5-175) मुझसे अधिक है. मेरी शैक्षणिक योग्यताएँ सबसे उत्तम थी. मैं एम.एससी. (First class first) था. डी.एससी. का शोध प्रबंध पूरा कर चुका था. मेरे 13 शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके थे. मुझे स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाने का भी अनुभव था. फिर भी मुझे अस्थायी नियुक्ति दी गयी और Demonstrator से कम वेतन मिलता था.

डॉ. भागवत

बकलम खुद

मुझमें कुछ है
जो मेरा बिलकुल अपना है
जो है मेरे क्षीरोज्ज्वल मन के मन्थन का कोमल माखन.
जिसको मैंने बहुत टूट कर
बहुत-बहुत अपने में रह कर
बहुत-बहुत सह कर पाया है -
जिसको अहरह दुलराया है.
गद्‌गद् चिन्तन, आराधन एकान्त समर्पण की घड़ियों में वहीं-वहीं है: मेरा आश्रय, मेरा आत्मज,
पूर्णभूत मैं जिसको स्वर में, लय में, शत चित्रों में,
शत-शत संकेतों में तुमको देना चाह रहा हूँ.

- प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक

मैंने डॉ. देशपांडे का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहा-तो वे मुझे 'झगडालू' कहने लगे. डॉ. बसु से मिला. उन्होंने अत्यंत रूखेपन से कहा, 'तुम स्टेट स्कॉलर हो. हम तुम्हें कुछ भी वेतन दे सकते हैं. सौ दिये ये ही बहुत.' पद्मनाभन साहब कहते कि मैं जूनियर हूँ. कॉलेज में मुझसे कम योग्यता वाले सहायक प्राध्यापक थे. मैं ही Lecturer - below demonstrator था. अस्थायी होने के कारण मुझे वेतन वृद्धि भी नहीं दी जाती थी. मैं एक-दो साल तक देखता रहा.

परिस्थितियों ने मुझे एकदम बदल दिया. मैंने भी झगड़ने की ठान ली. कॉलेज का कोई व्यक्ति मेरे साथ न था. सब मुझसे दूर रहते थे. डी.एससी. मिलने पर किसी ने मुझे Congratulate तक नहीं किया. अपने ही कॉलेज में मैं पराया हो गया था.

१९३६ में, मैं डी.एससी हो गया था - परंतु मेरा वेतन वही १०० रुपये था. मैंने भी निश्चय कर लिया था कि इस अन्याय के विरुद्ध आखरी दम तक लड़ूँगा. डॉ. बसु, प्रो. पद्मनाभन, प्रो. बोर्डिया - इन सबका कोई-न-कोई प्रभावी संरक्षक था. डॉ. बसु और बोर्डिया - प्राइम मिनिस्टर बापना के निकट थे तो पद्मनाभन साहब - श्री अरुण्डेल के निकट सम्बन्धी थे. श्री

डॉ. भागवत

अरुण्डेल उन दिनों शिक्षा-मंत्री थे. मेरे साथ किसी ने न्याय नहीं किया - उलटे मुझे चेतावनी भी दी गयी.

१९४०-४१ में बापना साहब के हटते ही डॉ. बसु सेवा-निवृत्त कर दिये गये. रिचर्डसन - प्राचार्य बन कर आये. वे एक आदर्शवादी अंग्रेज तरूण थे. मैंने डॉ. देशपांडे से कहा -'आपकी वरिष्ठता क्यों नजर अंदाज कर दी गयी? ये तो मेरे से भी जूनियर है - और केवल एम.ए. है - बस.' रिचर्डसन को कर्नल दीनानाथ का संरक्षण था. मैंने रिचर्डसन से सारी बातें बताई. उन्होंने मेरा वेतन १५० रुपये का करवाया. नौ साल - वार्षिक वेतन वृद्धि मिलती - तब भी १५० रुपये मिलते थे. परंतु ऐरियर मुझे नहीं मिला.

दो वर्ष के भीतर ही श्री रिचर्डसन - शिक्षा-मंत्री बनाये गये. उनके स्थान पर डॉ. राजू आये. राजू ने Military Training शुरू की. उन्होंने मुझे प्रशिक्षण के लिये भील-कोर में भेजा. मैंने Weapon Training भी ली. युद्ध के समय मुझे Air, tank, signals और नौ-सैनिक केन्द्रों को देखने के लिये अंबाला, फिरोजपुर, महू, जबलपुर और बम्बई भेजा गया. बम्बई में मैंने Rescue Training भी लिया.

इसी समय जेलर के पद के लिय विज्ञापन निकला. वेतनमान प्रोफेसर के समतुल्य था. मैंने आवेदन कर दिया. लोक सेवा आयोग द्वारा में चुन लिया गया. प्रकरण पर मंत्री-मंडल में विचार के समय कानून-मंत्री -(जस्टिस) रंगीलाल ने रिचर्डसन से पूछा 'इतनाqualified आदमी कॉलेज से क्यों जाना चाहता है, साइन्स में नालायक है क्या?' रिचर्डसन ने कहा, 'नहीं झगड़ालू है! रंगीलाल ने कहा -'झगड़ेगा नहीं तो क्या करेगा? तुम इतना कम वेतन जो दे रहे हो. उसे जेलर की ग्रेड कॉलेज में दो. उसके बाद झगड़े तो निकाल देना.' इस प्रकार मुझे प्रोफेसर का पद और वेतन मिलना निश्चित हुआ. कहानी यहीं खत्म नहीं हुई. अनेकों को ये अच्छा नहीं लगा. बड़ी चालाकी से एक प्रोफेसर की जगह दो सहायक प्राध्यापक के पद माँगने की उन लोगों की चाल सफल हो ही जाती. परंतु इस बार मेरा भाग्य जोरदार था.

काफी प्रयत्न और संघर्ष के बाद मैं - एम.एससी. (उत्तरार्द्ध) में Physical Chemistry प्रारंभ कर पाया. अच्छे और परिश्रमी विद्यार्थी मिलते थे -फलस्वरूप परीक्षा - परिणाम भी अच्छा रहता था. मेरी मान्यता रही है कि परिणाम - विद्यार्थियों पर निर्भर करता है, हाँ श्रेय शिक्षकों को मिलता है.

डॉ. राजू के बाद डॉ. देशपांडे - प्राचार्य बने. शिक्षा-मंत्री से युद्ध-सेवा में जाते-जाते प्रो. रिचर्डसन एक महत्वपूर्ण परिवर्तन करवा गये. अभी तक कॉलेज सीधे शिक्षा-मंत्री के अधीन हुआ करता था. नयी व्यवस्था में इसे Director of School Education से सम्बद्ध कर दिया गया. श्री अनुकुलम इस पद पर थे. प्रो. पद्मनाभन से उनकी मित्रता थी. उन्होंने ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित की, कि विवश होकर डॉ. देशपांडे ने सेवा-निवृत्ति ले ली. अब, प्रो. पद्मनाभन - प्राचार्य बने. सबसे पहले उन्होंने एन.सी.सी. बंद की और मुझे मिलने वाला Allowance बंद करवाया. इसी समय रामपुरा में खुलने वाले कॉलेज के लिये प्रिन्सपाल के पद के लिये मैंने आवेदन दिया. आयोग में ढंडा, एनाकुलुम और मसुदकुली खान ने साक्षात्कार लिया. श्री ढंडा ने मुझसे प्रशासकीय अनुभव के बारे में पूछा. मैंने बताया कि स्नातकोत्तर विभाग का अध्यक्ष हूँ, सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त हूँ और एन.सी.सी. में हूँ. वे बोले, 'ये भी कोई प्रशासकीय अनुभव है क्या?' मैं तुरंत समझ गया कि अपना चयन होना नहीं है - इसलिये डरना किसलिये! मैंने भी कहा -'Sir, When you selected Mr. Padamnabhan as a Principal of a post graduate college, he was only a degree head.' फिर मैंने श्री एनाकुलुम की ओर इशारा करते हुए कहा, 'And, excuse me sir, there sits the Head Master of Malharashram who has been made Director. He was below me till yesterday - now he sits on my head - and you want an experienced man for an intermediate colleg which is non-existant.' वे हँस पड़े. उन्होंने कहा Dr. Bhagwat I d'not mean it! मैंने भी कहा -'Sir, I also did'nt mean it.' श्री ढंडा ने एनाकुलुम से कहा- कि यदि वे कुछ पूँछना चाहते हों तो पूछे. वे क्या पूछते? मैं चुन लिया गया. प्रकरण केबिनेट में गया. वहाँ प्रजामंडल के लोग थे. मुझे बुलाया गया. वहाँ मुझसे जाने का कारण पूछा गया. मैंने कहा वेतन ज्यादा है, वेतनमान भी अच्छा है. 'तुम्हारे Science career और रिसर्च का क्या होगा?' मैंने कहा 'आज तक किसी ने उसकी कीमत नहीं की'. तब श्री गंगवाल ने कहा कि वे इसी वेतनमान में अधिकतम देकर भी मुझे होलकर कॉलेज में ही रखना चाहेंगे. मैंने स्वीकृति दे दी.

१९५४ में प्रो. घोष सेवा-निवृत्त हुए. उनके सेवाकाल में वृद्धि नहीं की गयी - जबकि ग्वालियर के प्रिन्सपाल को extension दिया गया. छात्रों ने आंदोलन किया - जो उग्र होता गया - पुलिस और प्रशासन ने गोलियाँ चलाकर आंदोलन को दबाया. मुझे इसी पृष्ठभूमि में प्राचार्य का कार्यभार सँभालने को मिला. गोली-कांड की जाँच के लिये वांचू आयोग बिठाया गया. इसी बीच में दो बार लोक सेवा आयोग द्वारा प्राचार्य के लिये अस्वीकृत किया गया. प्रो. पद्मनाभन उन दिनों आयोग के सदस्य थे. १९५६ में म.प्र. के गठन के साथ ही - लोक सेवा आयोग ने मुझे प्राचार्य पद के लिये चयनित किया. कॉलेज में १९६४ तक रहा. फिर विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के रसायन विभाग में १९७१ तक कार्य किया. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अंतर्गत १९७१ से १९७४ तक होलकर विज्ञान महाविद्यालय में कार्य किया. इसके बाद मैं १९८३ तक इन्दौर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रहा. वहाँ के मेरे अनुभव सुखद नहीं हैं.

हमारे समय में देशभक्ति यह स्वाभाविक बात थी. हम इस विचारधारा में ही पले. हमारा एक शिवाजी क्लब था. इसमें हम १५०-२०० विद्यार्थी थे. खेल प्रतियोगिताओं के साथ शिवाजी-जयंती, बाजीराव-मल्हारराव उत्सव आयोजित करते. लोन-पाटी में तो बाहर जाकर - (बड़ौदा, पूना) हम लोगो ने चम्पियनशिप जीती. खुद के खर्च से साथ में दाल, चाँवल, आटा लेकर जाते. गणपति उत्सव, प्रताप-जयंती आदि भी हम लोग मनाते. हम सब गरीब या मध्यमवर्ग के थे. लाठी, तलवार चलाना और कुश्ती सीखते. रियासत होने से कोई रोक नहीं थी.

१९२७ से १९३३ तक मैं बाहर रहा पढ़ने के लिये. वहाँ भी हम मिल-जुल कर ये गतिविधियाँ चलाते. काँग्रेस के आंदोलनों में अन्य विद्यार्थियों के साथ भाग लिया. परंतु इससे अधिक सक्रिय होने का शायद साहस नहीं था. मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक विवशताएँ, माँ और परिवार की जिम्मेदारी आड़े आ गयी. हाँ, मेरा छोटा भाई इसमें कूद पड़ा. वो धार डकेती केस में था. इलाहाबाद में पंडित मोतीलाल नेहरू के शव को कंधा दिया. अल्फ्रेड पार्क में चन्द्रशेखर आजाद के मृत शरीर के पाँव छूने वाले पहले व्यक्ति थे. आनंद-भवन जाते. वहाँ कृष्णा नेहरू से झड़प हुई, जवाहरलाल जी से धक्का खाया. हृदयनाथ कुंजरू के 'हिन्दुस्तान-स्काउट्स' के कार्यक्रमों में - कुश्ती, मलखंब आदि के प्रदर्शनों में भाग लेते थे. आज, इन सब बातों का कोई अर्थ नहीं है - केवल स्मृतियाँ हैं. सार्वजनिक कार्यों में भाग लेना - यह हमने बचपन से सीखा था. १९३३ में काँग्रेस की गतिविधियाँ प्रतिबंधित थीं. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में भाग लिया. कार्यवाह रहा. हेड्गेवार से मिला. वैचारिक मतभेदों के कारण - हम इस संस्था से अलग हो गये.

मैं विचार स्वातंत्र्य का पक्षधर हूँ. मैंने देखा हर पक्ष अपनी ही धारणा पर अटल है - परंतु यह मेरा स्थायी गुण नहीं था. मैं किसी भी पक्ष में नहीं मिला. सबसे मित्रता थी और सबसे झगड़ता रहा. वैसे बचपन से ही मैं उद्दण्ड प्रकृति का था. ९ वीं कक्षा तक अध्यापकों की मार खा-खा कर ही यह शरीर मजबूत हुआ है. उत्तर को प्रत्युत्तर देते और मार खाते. पर शिक्षकों ने स्नेह भी बहुत दिया.

मेरे तरूण पुत्र के हृदयाघात से हुए असामयिक निधन ने मुझे बहुत तोड़
दिया. वैसे भी अब आयु के साथ वो पहले जैसी उग्रता नहीं रही. अपने गुरूजनों से मैं लड़ा - पर उनका विश्वस्त भी था. कॉलेज के लिये काम करता. डॉ. देशपांडे मुझसे कस कर काम लेते. ना-खुश भी रहते. पर अपने टिफिन में से साथ खाना खिलाना कभी नहीं भूलते. उनके लिये घर से आया हुआ दूध मैं ही पीता. डॉ. बसु से मेरी बनी नहीं - पर कॉलेज के अनेक कार्यों मे वे मुझे अपने साथ अधिकार से लेते. बाद में, जब मैं होलकर कॉलेज का प्रिन्सपल बना, तब मैंने डॉ. बसु को इन्दौर आमंत्रित किया था. कॉलेज के निरंतर बढ़ते हुए स्वरूप को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे. प्रो. पद्मनाभन का भी मैं विद्यार्थी रहा हूँ. अध्यापक होने के नाते वे मेरे वंदनीय हैं, इसीलिये मैंने २६ जनवरी, १९९१ को 'स्मरण होलकर कॉलेज' कार्यक्रम में उनके चरण स्पर्श कर न केवल अपनी आज तक की भूलों के लिये अपितु शेष जीवन में मुझसे होने वाली गलतियों के लिये भी क्षमा माँगली थी.

इन तमाम वर्षों में मुझे मेरे मित्रों का भरपूर स्नेह, सहयोगी प्राध्यापकों का पूरा-पूरा सहयोग और छात्रों से आदर ही आदर मिला. मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली मानता हूँ. इन सबके प्रति मैं, आत्मीय भाव से अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ. आयु के ९ वें दशक में जब मैं पीछे देखता हूँ - तो अनेकों विविध चित्र, खट्ठी-मीठी यादें ही पाता हूँ. इस कॉलेज के प्रति मैं अत्यंत संवेदन-शील हूँ. ये मेरी कर्म-भूमि है. यहीं मैंने अपनी तरूणाई के सपने देखे और यहीं मेरे अनुभवों ने परिपक्वता पाई. यह कॉलेज यशस्वी हो यही कामना है. हमारा क्या? अब क्या सुख-दुःख, समेकृत्वा! हम इस जगत में नहीं हैं. सब मिल चुका! राह देख रहे हैं. ▫▫

आसान नहीं है!

- विश्वप्रकाश विजयवर्गीय
एम.एससी. उत्तरार्ध

जी सकना आसान नहीं है।
मरने का अधिकार नहीं है।

कितने सुंदर सपने प्यारे,
निष्ठुर जग ने तोड़े सारे।
कहने का अधिकार नहीं है,
सह सकना आसान नहीं है।

जी सकना आसान नहीं है।
मरने का अधिकार नहीं है।

चोट हृदय की सहते रहना,
केवल मन से कहते रहना।
क्रन्दन का अधिकार नहीं है,
हँस सकना आसान नहीं है।

जी सकना आसान नहीं है।
मरने का अधिकार नहीं है।

स्नेह प्राण का चुकता जाता,
दीपक मानों बुझता जाता।
बुझने का अधिकार नहीं है,
जल सकना आसान नहीं है।

जी सकना आसान नहीं है।
मरने का अधिकार नहीं है।

मैं दुस्तर पथ का हूँ राही,
चारों ओर घटाएँ छाई।
रूक जाऊँ, अधिकार नहीं है,
बढ़ जाऊँ, आसान नहीं है।

जी सकना आसान नहीं है।
मरने का अधिकार नहीं है।

होलकर कॉलेज टाइम्स १६ सित.' १९५७ से

प्रो. आर.बी. जोशी

मराठी के ख्याति प्राप्त लेखक स्व. प्रो. रामचन्द्र भिखाजी जोशी ने 'साठवणी' में - १९२३ से १९२७ तक इस कॉलेज के अपने विद्यार्थी जीवन के बारे में लिखा है. उनकी इसी पुस्तक का कॉलेज से सम्बंधित अध्याय - 'किती घेशिल-?' प्रकाशित किया जा रहा है.

मी दोन वर्षे डी.सी. च्या ऑफिसात नोकरी केली पण कॉलेजात जायची इच्छा जबरदस्त होती. ती दबली नाही किंवा नाहीशी झाली नाही. पण मुख्य अडचण पैशांची होती. मनी मुलींच्या सरकारी हायस्कुलात शिकत होती. तिथे तिला फी माफ होती. शिवाय स्कॉलरशिप होती. माझ्या पगारातून थोडीबहुत मदत मी करीत होतो. पण माझ्या कॉलेज-शिक्षणाला पैसे कुठून आणायचे? दादांनी थोडे पैसे ठेवले होते. पण ते हैदराबादला को-ऑपरेटिव्ह सोसायट्यांत मुदतीच्या ठेवी म्हणून ठेवले होते. ते मिळण्यासारखे नव्हते. शिवाय ते पैसे दादांनी मनीच्या लग्नासाठी म्हणून ठेवले होते. त्यामूळे ते मिळण्यासारखे असले तरी मला त्यांना हात लावता आला नसता. म्हणून मला स्वत:लाच पैशांची सोय करायला हवी होती. माझ्या दोन वर्षांच्या पगारातून मी काही पैसे शिल्लक टाकले होते. पण तेवढ्यान भागण्यासारखे नव्हते. रवींद्रनाथ टागोरांच्या आठवणींचे 'जीवनस्मृति' ह्या नावाने भाषांतर करणारे श्री.स. गोखले हायस्कुलात माझे शिक्षक होते. त्यांचे माझ्याकडे लक्ष असे. माझी इच्छा आणि अडचण त्यांना ठाऊक होती. ते काही लोकांजवळ माझ्याबद्दल बोलले असावेत. एक दिवस मीमांसाभूषण पु.बा. साठे ह्यांनी मला त्यांच्या घरी बोलावून घेतले. ते त्या वेळी उमरावतीत वकिली करीत होते. पण लेखकही होते. आणि लेखक म्हणून मला त्यांच्याबद्दल आकर्षण होते आणि आदरही होता. मी मधून-मधून त्यांच्याकडे जात असे. तसेच सहज बोलावले असेल असे समजून मी गेलो, पण त्यांनी माझ्या कॉलेजला जाण्याच्या इच्छेचा विषय काढला आणि माझी अडचण समजून घेऊन एका विद्यार्थी सहाय्यक फंडातून मला स्कॉलरशिप मिळेलशी व्यवस्था केली. मला कॉलेजात जायला मदतीची आवश्यकता आहे हे कळल्यावर काही वकिलांनी मला मदत करायचे कबूल केले. अशा रीतीने अखेर थोडीबहुत पैशांची सोय करून मी इंदूरला गेलो आणि होळकर कॉलेजात दाखल झालों. मी कॉलेजात आलो ह्या गोष्टीचाच मला आनंद झाला होता. कारण अशक्य वाटत होते ते शक्य झाले होते. अभ्यास करायचा आणि कॉलेजचा जास्तीत जास्त फायदा करून घ्यायचा, हा एकच विचार माझ्या मनात होता. कॉलेजात एखादी स्कॉलरशिप मिळेल असे आधी वाटत होते. पण नंतर कळले की, मदत म्हणून स्कॉलरशिप मिळत नाही. पण टर्मिनल आणि वार्षिक परीक्षांत पहिला नंबर आला तर इंटरच्या वर्गात दरमहा पाच रुपये आणि बी.ए. च्या वर्गात दरमहा सात रुपये स्कॉलरशिप मिळते. अर्थात प्रत्येक टर्मच्या परीक्षेत पहिला आलो तरच ती चारही वर्षे मिळायची.

त्या वेळी इंटरची फी दरमहा तीन रुपये होती आणि बी.ए.ची पाच रुपये म्हणजे प्रत्येक परीक्षेनंतर स्कॉलरशिप मिळाली, तरी फी दिल्यानंतर हातात दोनच रुपये राहणार. म्हणजे स्कॉलरशिप मिळणे ह्याचा अर्थ फी सुटणे एवढाच होता. पण त्यात मान होता आणि मला ते दोन रुपये देखील मोलाचे होते. तसा इंदूरला कॉलेजचा खर्चही त्या वेळी कमीच होता. हॉस्टेलला भाडे नव्हते. तीन क्लब होते. हॉस्टेलमध्ये राहून क्लबात जेवायचे, तर जेवणाचा खर्च महिना बारा ते पंधरा रुपये येत असे. काही विद्यार्थी कॉलेजापासून काही अंतरावर कॉटेजिस घेतलेल्या होत्या त्यांत राहत आणि हातांनी स्वयंपाक करीत. त्यांना जेवणखर्च महिना सात-आठ रुपयेच येत असे. हातांनी स्वयंपाक करण्यात वेळ घालवायचा नाही, असे मी ठरवले. आणि हॉस्टेलमध्येच राहिलो. हॉस्टेलच्या ईस्ट ब्लॉकमध्ये मला खोली मिळाली आणि मी शेवटपर्यंत त्याच खोलीत राहिलो.

मी कॉलेजात गेल्यावर आरंभी आरंभी मला विद्यार्थी विचारीत, ''जोशी, तुम्ही उपरावतीहून आलात, मोरोपंत जोशी, नागूताई जोशी ह्यांचं तुमचं नातं असेलच.''

''मोरोपंत जोशी माझे कोणी नाहीत. नागूताई जोश्यांना मी फोटोतच पाहिलं आहे. सुंदर आहेत. पण त्यांचं गोत्रसुद्धा मला ठाऊक नाही. आणि त्यांचं माझं नातं असतं तर इथं इंदूरला कशाला आलो असतो? पुण्याला डेक्कन कॉलेजातच गेलो असतो.''

असे जो विचारील त्याला सांगायचा मला कंटाळा येऊ लागला. पुढे हे असले प्रश्न बंद झाले.

मी इंटरला ऐच्छिक विषय संस्कृत, लॉजिक आणि इतिहास असे घेतले होते. संस्कृत मला कधी कठीण वाटले नाही. उलट सोपे वाटले. संस्कृतच्या बाबतीत कॉलेजात मला त्रिवेदी नावाचा एक विद्यार्थी प्रतिस्पर्धी होता. तो कॉलेजात येण्यापूर्वीच 'काव्यतीर्थ' झालेला होता. पण इंग्लिश विषयात आणि इंग्रजी लिहिण्यात तो कमी पडे. इंटरच्या पहिल्या टर्मिनल परीक्षेत मी पहिला आलो आणि मला स्कॉलरशिप मिळू लागली. त्यामुळे मला तर आनंद झालाच, पण ज्यांनी मला पैशांनी किंवा इतर रीतीने मदत केली होती त्यांनाही त्यामुळे आनंद होणार होता. मला ह्या परीक्षेत चांगले यश मिळाल्यामुळे माझा आत्मविश्वासही वाढला. कारण मॅट्रिकनंतर मध्ये दोन वर्षांचा खंड पडला होता. पुढे इंटरच्या युनिव्हर्सिटीच्या परीक्षेत आर्ट्सच्या बाजूला मी पहिला आलो. नंतर ज्युनियर बी.ए. च्या वर्गातही टर्मिनल आणि वार्षिक परीक्षांत मी पहिला येऊन मला स्कॉलरशिप मिळत राहिली.

इंटरच्या पहिल्या वर्षात असतानाच मी कलकत्ता संस्कृत असोसिएशनच्या 'प्रथम' आणि 'मध्यमा' ह्या परीक्षा दिल्या आणि ज्युनियर बी.ए. च्या वर्षात असताना 'काव्यथीर्थ' झालो. आमचे संस्कृतचे प्रोफेसर वा.गो. ऊर्ध्वरेषे यांच्या उत्तेजनामुळे आणि प्रेरणेमुळेच हे झाले. ह्या परीक्षांच्या अभ्यासामुळे संस्कृतचा पाया अधिक पक्का आणि व्यापक झाला. त्या निमित्ताने संस्कृतचे वाचनही अधिक झाले.

बी.ए. ला मी संस्कृत आणि फिलॉसफी असे ऐच्छिक विषय घेतले. इतिहासाची मला आवड होती; पण त्यातल्या तारखांना, तपशिलांना मी कंटाळलो होतो. म्हणून बी.ए. ला इतिहास घेतला नाही.

१९२३ से १९२७ अशी चार वर्षे मी होळकर कॉलेजात होतो. त्या वेळी कॉलेजात विद्यार्थ्यांची संख्या अगदी कमी होती. मला वाटते, सबंध कॉलेजात आर्ट्स् आणि सायन्स मिळून अडीचशे किंवा फार तर तीनशे विद्यार्थी असतील. त्यांतले जवळजवळ सत्तर विद्यार्थी कॉलेजच्या आवारातल्या वसतिगृहात आणि पंचवीस-तीस कॉटेजिसमध्ये राहत असत. म्हणजे अडीचशे-तीनशेपैकी शंभरएक विद्यार्थी हॉस्टेलातच होते असे म्हणता येईल. त्यांतले काही व्हेटेरन्स म्हणजे मुरलेले विद्यार्थी होते. एकेका परीक्षेला चार-चार, पाच-पाच वेळा बसलेले. हे एक प्रकारे कॉलेजचे आणि हॉस्टेलचे 'दादा' च होते. मात्र वाईट अर्थाने नव्हे. कारण ते कोणालाही दमदाटी करीत नसत. किंवा त्रास देत नसत. तर एक प्रकारे ते नवीन विद्यार्थ्यांचे मार्गदर्शक आणि कॉलेजच्या परंपरांचे संरक्षक होते. अर्थात त्यांच्या मुरब्बीपणाची त्यांच्या पाठीमागे चेष्टा होत असे, पण तोंडावर कोणी त्यांचा अपमान करीत नसे.

विद्यार्थ्यांची संख्या अगदी लहान असल्यामुळे, आणि त्यांतलेही बरेच हॉस्टेलमध्ये राहत असल्यामुळे, जवळजवळ सगळेच विद्यार्थी एकमेकांना ओळखीत आणि प्रोफेसरही बहुतेक विद्यार्थ्यांना ओळखीत. आपापल्या आवडीप्रमाणे कोणालाही कोणत्याही अभ्यासेतर उपक्रमात भाग घ्यायला मुभा असे आणि संधीही मिळत असे. कॉलेजच्या मागच्या बाजूला हॉस्टेलच्या दोन ब्लॉक्सच्या मध्ये जिमनेशियम शेड होती. तिथे पॅरलल आणि हॉरिझाँटल बार, रोमन रिंग, चढण्यासाठी दोर, उडी मारण्यासाठी घोडा असे सर्व व्यायामाचे साहित्य होते. आमचे जिमनॅस्टिक इन्टस्ट्रक्टर अकोलेकर हे इंटरचे व्हेटेरेन होते. त्यांच्या मार्गदर्शनाने रोज सकाळी तिथे व्यायाम होत असत. त्याचबरोबर टेनिस, हॉकी, फुटबॉल आणि क्रिकेट हे खेळही मी मधून मधून खेळत असे. पण ह्या खेळांत प्रावीण्य मिळविण्यासाठी जितका वेळ द्यावा लागे तितका देणे मला परवडण्यासारखे नव्हते. आणि मला तशी तीव्र इच्छाही नव्हती.

आमच्या ईस्ट ब्लॉकला लागून एक आखाडा होता. तिथे कुस्तीसाठी मऊ लाल मातीचा हौदा आणि व्यायामासाठी हत्ते, मुद्गलांच्या लहानमोठ्या जोड्या वगैरे साहित्य होते. तिथे मात्र मी नेमाने जोर, बैठका, आणि मुद्गलजोडी फिरवण्याचा व्यायाम करीत असे. हा व्यायाम सर्वस्वी स्वतंत्रपणे आणि आपल्या इच्छेनुसार आणि वेळेनुसार करता येत असे.

बर्नार मकफॅडनचे 'फिजिकल कल्चर', तसेच 'हेल्थ अँड स्ट्रेंग्थ', 'हेल्थ अँड एफिशन्सी' ही आमची आवडती नियतकालिके होती. त्यांतले अर्ल ई लीडरमन, लायनेल स्ट्राँगफर्ट हे आमचे हीरो होते. आपल्याकडल्या दोंदिल पहिलवानांपेक्षा ग्रीक पुतळ्यांसारखे पिळदार आणि प्रमाणबद्ध शरीराचे हे परदेशी व्यायामवीर आम्हांला अधिक आवडत. आम्ही त्यांची चित्रे कापून भिंतीवर लावीत असू. पण पुढे-पुढे असे वाटू लागले की, त्या व्यायामवीरांनी जन्मभरात शरीरे कमावण्याखेरीज काहीच केले नाही. आणि शरीर कमावणे हा आपला धंदाच केला होता. आम्हांला शरीरबहाद्दर व्हायचे नव्हते.

तेवढ्यात केव्हातरी शॉची एक मुलाखत प्रसिद्ध झाली. ''शरीर कमावण्याबद्दल तुमचे काय मत आहे?'' असे त्याला कोणीतरी विचारले. तेव्हा त्याने म्हटले, ''माझी छाती हा हत्तींचा नृत्यमंच आहे असं मी मानीत नाही. जगप्रसिद्ध व्यायामवीर सँडो बावन्नाव्या वर्षी हृदयक्रिया बंद पडून मरण पावला आणि सत्तराव्या वर्षी माझ्या अंगात पंचवीस वर्षांच्या तरुणाचा चपळपणा आणि उत्साह आहे.'' आणि ते खरेच होते. व्यायामाला महत्त्व नव्हते असे नव्हे. स्वत: शॉदेखील लाकडे फोडणे, पोहणे, असा व्यायाम त्या वयात करीत असे. मात्र त्याच्या बोलण्यातून तारतम्य कळले.

कॉलेजात असताना मी स्काउट ट्रूपमध्येही होतो. स्काउटिंग ही त्या काळी एक अत्यंत बदनाम झालेली चळवळ होती. लोक स्काउटचा जवळजवळ तिरस्कार करीत. ती मुलींची चळवळ आहे असेही म्हणत. पण कणखरपणा, चपळपणा, स्वावलंबन, टापटीप, इतरांबरोबर मिळूनमिसळून काम करणे, अडचणीच्या प्रसंगात सावध आणि शांत राहून मार्ग काढणे, आरोग्य, स्वच्छता, त्याबरोबरच काट्याकुट्यांत, झाडझुडुपांत, खाचाखळग्यांत हिंडण्याची, काम करण्याची तयारी ह्या गोष्टी त्या चळवळीत भाग घेतल्याने अंगी बाणतात, असा मला अनुभव आला, डोंगर-दऱ्या, नद्या-नाले, झाडे-जंगले ह्यांतून सहल करणे, पायीं किंवा सायकलने लहान - मोठे प्रवास करणे, रानात रात्रीचे मुक्काम करणे ह्याची आवड स्काउटिंगमुळेच मला लागली.

असाच एकदा पाताळपाण्याला आमचा कॅंप होता. त्या कॅंपमध्ये आणि तिथून केलेल्या ब्रह्मकुंड, मेंदीकुंड वगैरे सहलींत दामोदर धर्मानंद ऊर्फ बाबा कोसंबी हे आमच्याबरोबर होते. ते अमेरिकेत शिकायला असत. त्यांची मोठी बहीण माणकताई अहल्याश्रमात शिक्षिका होती. सुटीचे काही दिवस त्यांच्याकडे राहण्यासाठी ते इंदूरला आलेले होते. त्यांचे वय त्या वेळी सोळासतरा वर्षांचे असेल. पण ते अंगाने मजबूत आणि पिळदार शरीराचे होते. सबंध सहलीत खूप मोकळेपणाने गप्पा मारीत होते. खांद्यांच्या स्नायूंना चांगला भरदार आकार येण्यासाठी कोणता व्यायाम करावा ते त्यांनी आम्हांला सांगितले. त्यांचा देह जसा पिळदार होता तसे ते 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' देखील होते हे त्यांच्या पुढल्य आयुष्यात दिसून आलेच.

स्काउटिंगमध्ये आम्हांला जी प्रवासाची, सहलीची गोडी लागली तिच्यामुळेच आम्ही मित्रांनी मिळून कॉलेजच्या चार वर्षीच इंदूरच्या आसपासची, पन्नास-पाऊणशे मैलांच्या परिसरातली, बहुत प्रेक्षणीय स्थळे सायकलीने प्रवास करून पाहिली. कॉलेजात असतानाच इंदूर ते मुंबई आणि मुंबई ते पुणे असा प्रवास सायकलीने केला आणि तोही फक्त तिघांनी. प्रवासाचा आनंद न संपणारा असतो. प्रवास संपतो पण आनंद संपत नाही, आणि आणखी प्रवासासाठी मन आतुरते हे मी त्या वेळी अनुभवले. त्यापूर्वी जवळजवळ घरघुशा असलेला मी त्या चार वर्षी अगदी बदलून गेलो!

आमच्या कॉलेजचा जिमखाना ही एक नमुनेदार लोकशाही संस्था होती. प्राचीन ग्रीसमध्ये जसे ॲथन्सचे सगळे नागरिक तिथल्या लोकसभेचे सभासद असत तसे कॉलेजचे सगळे विद्यार्थी जिमखान्याचे सभासद असत. आणि संख्या लहान असल्यामुळे बहुधा सगळे सभांना हजर राहत असत. आणि ज्याची इच्छा असेल त्याला सभेच्या कामकाजात भाग घेता येत असे.

जिमखान्याचा एक अध्यक्ष. एक उपाध्यक्ष. नंतर स्पोर्ट्स ॲंड गेम्स, डिबेटिंग, मॅगझीन, देसाई फ्री रीडिंगरूम ॲंड लायब्ररी असे विभाग असत. त्यांच्या कमिट्या, या कमिट्यांचे मुख्य आणि सेक्रेटरी असे जिमखान्याचे पदाधिकारी असत. ते खुल्या सभेत निवडून येत. सर्वांत मुख्य अध्यक्ष असे. कॉलेजचा एखादा प्रोफेसर इन्‌चार्ज असला तरी तो फक्त मार्गदर्शनापुरता असे. निवडणुका झाल्यानंतर जिमखान्याचे बजेट सगळ्या विद्यार्थ्यांच्या सभेसमोर येत असे. मागण्यांवर खडाजंगी चर्चा होत असे. कपातमागणी होत असे. वर्षाच्या शेवटी सभा होऊन कामाचा आढावा घेतला जात असे. पदाधिकाऱ्यांच्या कामावर टीकाही होत असे. एकदा मला आठवते, अनंत हरी गद्र्यानी आपल्या 'मौज' किंवा 'निर्भीड' ह्या पत्रात 'विविधवृत्ता' ला 'लाल पदरा' ची असे म्हटले होते. अशी असभ्य भाषा वापरणारे पत्र रीडिंग रूममध्ये घेतले जाऊ नये असा ठराव सभेत आला आणि उलटसुलट चर्चा होऊन तो मान्य झाला, आणि ते पत्र बंद करण्यात आले. अशा प्रकारे कॉलेजच्या जिमखान्यात पार्लमेंटरी कामकाजाचे आणि संस्थेत काम करण्याचे विद्यार्थ्यांना पद्धतशीर शिक्षण मिळत असे.

वेगवेगळ्या खेळांत जरी मी भाग घेत असे तरी मला खरी आवड मॅगझीन आणि डिबेट ह्यांचीच होती. पहिल्याच वर्षी मी कॉलेजच्या मॅगझीन कमिटीवर निवडून आलो, नंतर सेक्रेटरी झालो आणि शेवटी संपादक. मॅगझीन कमिटीतल्या बढतीच्या ह्या पायऱ्या होत्या. लेख मिळविणे, अनाहूत आलेले लेख स्वीकारणे-नाकारणे, स्वीकारलेल्या लेखांचे संपादन करणे ही सगळी कामे मॅगझीन कमिटीच्या सभासदांनाच म्हणजे विद्यार्थ्यांनाच करावी लागत. प्रोफेसर ही कामे करीत नसत. प्रुफे वाचणे, टाइप निवडणे, मजकुराची मांडणी करणे ह्यांची माहिती मला मॅगझीनचे काम करताना मिळाली. संपादक झाल्यावर 'फ्रॉम द कॉलेज टॉवर' हे सदरही लिहावे लागे. मॅगझीन वर्षातून दोनदा प्रसिद्ध होत असे. त्यामुळे दोन्ही टर्म्समध्ये मॅगझीनचे काम असे.

मी गेलो तेव्हा कॉलेजात एकही मुलगी नव्हती. खिश्चन कॉलेज गावाला अधिक जवळ होते. तिथे मुली जात. नाही म्हणायला मध्येच एक वर्ष दोन मुली आल्या. एक सरदार माधवराव किब्यांची मुलगी. आणि दुसरी इंदूरचे एक ज्येष्ठ वकील यशवंतराव भांडारकर ह्यांची मुलगी. पीरियड नसला म्हणजे ह्या दोनच दोन मुली कॉलेजच्या ऑफिसच्या मागच्या बाजूच्या व्हरांड्यात एका बाकावर उदासवाण्या (असे आम्हांला वाटे) बसून राहत. त्यांच्याशी बोलण्याचा कधी प्रसंगच येत नसे! व्हरांड्यातल्या बाकावरून वर्गातल्या बाकावर आणि वर्गातल्या बाकावरून व्हरांड्यातल्या बाकावर अशी त्यांची बाकापासून बाकापर्यंत ठरलेली चाल असे.

एकदा मॅगझीनसाठी लेख मागण्याच्या निमित्ताने मी त्यांच्याशी बोललो. आणि मला वाटते, किब्यांच्या मुलीने हो-ना करून लेख दिला. तिची आई सौ. कमलाबाई किबे ह्या त्या काळी एक प्रख्यात लेखिका आणि वक्त्या होत्या. मुली म्हणून त्यांच्याशी बोलताना मला धडधडल्यासारखे, बुजल्यासारखे मुळीच वाटले नाही! (वाङ्मयाबाहेर रोमान्स असू शकतो ह्याची त्या वेळी कल्पना नसल्यामुळे असेल) इतक्या मोठ्यांच्या आणि सामाजिकदृष्ट्या बऱ्याच उंचीवरच्या मुलींशी बोलायचे म्हणून मात्र थोडासा संकोच वाटला.

मॅगझीनच्या कामाप्रणेच मी डिबेटमध्येही भाग घेत असे. हैदराबादला किंवा उमरावतीला शाळेत असताना फारतर दोनचारदा सभांत बोललो असेन. दोन्ही ठिकाणी शाळेत नियमित डिबेट होत नसे. होळकर कॉलेजात मात्र दिवसाच्या वेळी सगळ्या विद्यार्थ्यांसाठी, आणि शनिवारी रात्री हॉस्टेलमधल्या विद्यार्थ्यांसाठी नियमितपणे डिबेट होत. ह्या डिबेटना प्रोफेसर आणि प्रिन्सिपल बहुधा हजर राहत. रात्रीच्या डिबेटला तर प्रिन्सिपल आणि व्हाइस प्रिन्सिपल हटकून हजर राहत. कारण कॉलेजच्या शेजारीच दोन बाजूला एका आवारात एकाचा आणि दुसऱ्यात दुसऱ्याचा असे बंगले होते. डिबेटसाठी वक्ते आणि श्रोते गोळा करून आणावे लागत नसत. आणि मॅगझीनप्रमाणेच याही बाबतीत प्रोफेसरांना काहीही करावे लागत नसे. डिबेटिंग सोसायटीच विचारविनिमयाने विषय ठरवी आणि वक्त्यांची नावे मागवी.

माझा आवाज वक्तृत्वाला अनुकूल नव्हता आणि माझ्या अंगी सभाधीटपणाही नव्हता. (पुढल्या आयुष्यात काही लोकांची भाषणे एकल्यानंतर, बऱ्याच वक्त्यांजवळ एवढ्याच दोन गोष्टी असतात आणि तेवढेच त्यांना पुरेसे वाटते असे मला दिसून आले ते वेगळे!) आपल्यापेक्षा अधिक जाणते लोक श्रोत्यांत आहेत-असतील-हा विचार माझ्या मनात संकोच उत्पन्न करीत असे. पण शाळेत असल्यापासूनच अभ्यासाखेरीज इतर विषयांसबंधी मला आस्था वाटू लागली होती. आणि आपण त्यासंबंधी वाचावे, विचार करावा, बोलावे, लिहावे, असे वाटू लागले होते. म्हणून मी कॉलेजच्या डिबेटमध्ये भाग घेऊ लागलो.

आमच्या कॉलेजचे काही विद्यार्थी चांगले वक्ते होते. मी पहिल्या वर्षात होतो तेव्हा जूनिअर बी.ए. च्या वर्गात पी.व्ही. पागे नावाचे अकोल्याचे विद्यार्थी होते. अतिशय पद्धतशीरपणे अभ्यास करणारे, गंभीर स्वभावाचे आणि चांगले विद्यार्थी असा त्यांचा कॉलेजात लौकिक होता. ते पुढे वऱ्हाड-मध्यप्रांतात ई.ए.सी. नेमले गेले. ते एक चांगले वक्ते होते. पूर्वतयारीची भाषणे ते फार चांगली करीत. मला उत्स्फूर्त भाषणे करणे किंवा उत्तरपक्ष करणे अधिक आवडत असे. हळूहळू मला बोलण्याचा-आणि वादात बोलण्याचा-चांगला सराव झाला. आणि प्रत्येक डिबेटमध्ये पागे आणि मी असूच. आणि तेही एकमेकांच्या विरूद्ध बाजूला. एकदा इंदूरच्या खिश्चन कॉलेजशी आमची वादस्पर्धा झाली तेव्हा आमच्या कॉलेजच्या टीममध्ये मीही होतो.

प्रत्येक परीक्षेत स्कॉलरशिप मिळविणारा, खेळ, स्काउटिंग, डिबेट वगैरेतही आस्थेने आणि चांगल्या प्रकारे भाग घेणारा विद्यार्थी म्हणून विद्यार्थ्यांत, आणि प्रोफेसरांतही, माझ्याबद्दल कुतूहल निर्माण झाले होते. थोडेसे कौतुकही होऊ लागले होते. त्यामुळे मला साहजिकच बरे वाटले. पण विशेष म्हणजे माझा

आत्मविश्वास वाढला. त्याबरोबरच माझ्या वागण्यावर लक्षही ठेवण्यात येऊ लागले. एकदा कॉलेजच्या हॉलमध्ये डिबेट चालू असताना मी आपल्या खोलीतच बसून होतो. तेवढ्यात हॉस्टेलचे डीन प्रो. सगीर अली हिंडत हिंडत आमच्या ब्लॉकपाशी आले आणि मी खोलीतच असलेला पाहून दाराशी उभे राहून म्हणाले,

''जोशी, तू गेला नाहीस डिबेटला?''

मी म्हटले, ''नाही, सर.''

''तुझ्यासारखे विद्यार्थी जर असं वागू लागले तर इतरांना आम्ही काय सांगावं?''

हे त्यांचे वाक्य माझ्या मनात फारखोल गेले.

''आय ॲम सॉरी, सर.'' असे म्हणून लगेच कपडे बदलून मी हॉलमध्ये गेलो आणि डिबेटमध्ये भागही घेतला.

उमरावतीला हिंदू हायस्कुलात इंग्रजी सहावीत असताना सहामाही परीक्षेत मला गणितात फार कमी मार्क मिळाले आणि मी नापास झालो. पाचवीच्या वार्षिक परीक्षेत मी चवथा आलो होतो. गोखले सर हे आमचे क्लास टीचर होते आणि आम्हांला गणितही शिकवीत. माझा रिझल्ट पाहून त्यांनी मला बोलावून घेतले, घरच्या परिस्थितीसंबंधी एकदोन प्रश्न विचारले, आणि ऐकून घेऊन एवढेच म्हटले, ''हे बरं का?''

तीनच शब्द, पण त्यांचा माझ्या मनावर फारच परिणाम झाला. पुढे वार्षिक परीक्षेत मी पहिला आलो. त्यांचे ते तीन शब्द माझ्या मनात कायमचे ठसले. तसेच प्रो. सगीर अलींचेही. दोघांच्याही शब्दांनी मला माझ्या जबाबदारीची एक वेगळीच जाणीव करून दिली.

कॉलेजातल्याप्रमाणेच कॉलेजबाहेरही काही गोष्टी मी करीत होतो. आम्ही काही मित्रांनी मिळून 'शारदोपासक मंडळ' नावाचे एक मंडळ काढले होते. त्यात निबंधवाचन आणि चर्चा होत असे. मी तिसऱ्या वर्षात असताना विट्ठलराव घाटे इंदूरला आलेले होते. ते होळकर कॉलेजचे माजी विद्यार्थी होते. त्यांना आम्ही 'शारदोपासक मंडळा' त बोलावले. त्यांनी तास-दोन तास मोकळ्या मनाने आणि मोकळ्या गळ्याने 'रविकिरण मंडळा'च्या कविता म्हटल्या. त्यांच्या स्वतःच्या 'आलांत ते कशाला', उमड गडे, माझ्या फुला' 'दावा हिन्दी जन मजला', ' आळंदीची पालखी' आणि माधव जूलियनांच्या 'तेथे चल राणी', 'कंचनी', गिरीशांची 'शांतिस्थान' ह्या कवितांनी काही दिवस आमच्या मनाचा अगदी कबजा घेतला होता.

केशवराव रुद्र ह्या नावाचे आमचे एक सहाध्यायी होते. खरे तर वय आणि पोक्तपणा ह्या दृष्टींनी ते 'गृहस्थ'च होते. त्यांनी एकदा असा विचार मांडला की, ''मुंबईत सर नारायण चंदावरकर वगैरे स्टूडंट्स ब्रदरहुडमध्ये इंग्रजी कविता शिकवीत असत तसे आपण का करू नये! आपण काही मोठे नाही, पण काम चांगलं आहे.'' मग काही दिवस कृष्णपुरा पुलाजवळ ए.व्ही. स्कूलच्या जागेत आम्ही लोकांनी हायस्कूलच्या विद्यार्थ्यांना इंग्रजी कविता शिकवल्या. त्यांत मीही एका वर्गाला शिकवल्या.

तशात चवथ्या वर्षात. आम्हांला संस्कृत शिकवायला चतुर्वेदी नावाचे एक नवे प्रोफेसर आले. माझे संस्कृत बिघडू लागले होते असे नाही. उलट 'काव्यतीर्थ' झाल्यामुळे ते अधिक चांगले झाले होते. पण प्रो. चतुर्वेदी नेहमी मला माझा जुना प्रतिस्पर्धी जो त्रिवेदी त्याच्यापेक्षा कमी मार्क देत. अशा अनेक कारणांनी माझे मन व्यग्र झाले होते. त्यामुळे सीनियर बी.ए. च्या टर्मिनल परीक्षेत माजा पहिला नंबर हुकला. स्कॉलरशिप गेली. ती वर्षीत घडले नव्हते ते आता घडले. साहजिकच मला फार वाईट वाटले. पण माझा काही दोष होता असे वाटले नाही.

होळकर कॉलेजच्या सर्वोत्कृष्ट विद्यार्थ्याला शेवटल्या म्हणजे सीनियरच्या वर्षी 'महाराजा शिवाजीराव' पदक मिळत असे. ते मिळणे हा कॉलेज-जीवनातला सर्वांत मोठा मान असे. चारही वर्षे सतत अभ्यासात अग्रभागी असणाऱ्या, खेळ, डिबेट वगैरे अभ्यासेतर उपक्रमात आस्थेने सर्वांगीण रस घेणाऱ्या, वागणुकीने चांगल्या असलेल्या आणि सर्वांशी मिळून-मिसळून वागणाऱ्या, विद्यार्थ्यांचे आणि प्रोफेसरांचे असे दोघांचेही ज्याच्याबद्दल चांगले मत आहे. अशा विद्यार्थ्याला ते मिळत असे.

चवथ्या वर्षात मी आलो तेव्हापासूनच 'शिवाजीराव मेड्ल्' मला मिळणार असे विद्यार्थी बोलू लागले. त्याला अर्थात अर्थ नव्हता. कारण निर्णय प्रोफेसरांची समिती घेत असे. दुसरी टर्म सुरू झाली तशी उत्सुकता आणि बोलणी वाढू लागली. एक दिवस ऑफिसच्या हेडक्लार्कने मला गुप्तपणे सांगितले, ''जोशी, मेड्ल् तुम्हांला मिळालं आहे.'' साहजिकच मी उत्तेजित झालो. मला खूप आनंद वाटला. पण गप्पच होतो. कोणाजवळ बोललो नाही. पहिल्या वर्षापासून माझ्याबद्दल आस्था वाळगणारे आमचे संस्कृतचे प्रोफेसर वा.गो. ऊर्ध्वरेषे यांनी नंतर काही दिवसांनी मला मेड्ल् मिळाल्याचे अधिकृतपणे सांगितले. संस्कृतचे नाही, पण इंग्लिश आणि फिलॉसफी ह्या दोन विषयांत पहिला आल्यामुळे त्या विषयांची बक्षिसे मला मिळाली आणि वक्तृत्वातल्या नैपुण्याबद्दलही पदक मिळाले. कॉलेजात आल्याचे सार्थक झाले मुख्य म्हणजे ज्यांनी मला मदत केली होती, प्रोत्साहन दिले होते, त्यांचा मी अपेक्षाभंग केला नाही. टर्मिनलमध्ये पहिला न आल्याचे गालबोट लागले नसते तर बरे झाले असते, असे मात्र साहजिकच वाटले.

परीक्षा झाली. मी उमरावतीला परत येऊन माझ्या नोकरीवर रुजू झालो. आणि परीक्षेच्या निकालाची वाट पाहत काम करू लागलो.

अखेर एक दिवस, 'लीडर' कडे निकालासाठी तारेचे पैसे भरले होते त्याप्रमाणे तार आली. मी पहिल्या वर्गात पास झालो होतो, आणि आमच्या कॉलेजात पहिला आलो होतो. इष्टमित्र, हितचिंतक, साहाय्यक माझे 'हार्दिक' आणि 'मनपूर्वक' अभिनंदन करू लागले. तारांनी. पत्रांनी. प्रत्यक्ष भेटून. पण ह्या आनंदाच्या भरात माझ्या मनात एक दुःख बोचत होते. ते म्हणजे हा आनंद पाहायला माझे घरचे, जवळचे कोणीही नव्हते. दादा दहा वर्षीपूर्वीच गेले होते. त्यांच्यामागून ज्या आमच्या मामांनी आमचा सांभाळ केला होता ते मी कॉलेजात जायच्या आधीच एक वर्ष गेले होते. (त्यांचा जरी माझ्यावर राग झाला असला तरी माझे यश पाहून त्यांना आनंदच झाला असता.) माझी एकुलती एक बहीणही त्या वेळी उमरावतीत नव्हती. आणि हे मनातले दुःख मला कोणाजवळ उघड करता येत नव्हते, त्याचे सगळ्यात अधिक दुःख होत होते.

पण एकंदरीत होळकर कॉलेजातले चार वर्षीचे जीवन म्हणजे एक स्फटिका सारख्या स्वच्छ पाण्याचा उसळता-उफाळता झरा होता. त्याचे पाणी स्पर्शाला शीतल आणि अंतःकरणाची तृषा तृप्त करणारे होते. त्यातून उडणाऱ्या तुषारांत क्षणोक्षणी उमटणारी आणि मिटणारी लहानमोठी सप्तरंगी इन्द्रधनुष्ये डोळ्यांना आणि मनालाही उल्हसित करणारी होती. त्याच्या प्रवाहात डुंबणे, खेळणे, जीवनोत्साह वाढविणारे होते. ''किती घेशिल दो करांनी'' असे विचारणारे होते. त्या चार वर्षीची आठवण आज इतक्या वर्षीनीसुद्धा मला उत्तेजित करते.

□□

प्रेमाचा शाप

वासुदेव गोपाल सुभेदार

तें दृश्य हृदयीं मम विलसे।
दुःखाचें परि मोहकसें॥
आनदें अश्रु गळाले।
अतिदुःखें तेच निवाले॥१॥

अश्विनी पौर्णिमा रम्या।
जनतेचें चित्त हराया॥
रमणीय दृश्य तें दावी।
जनतेचीं हृदयें रिझवी॥२॥

नवयुवक सुधाकर खेळे।
प्रमाचे गंगनीं चाळे॥
ही धरणी बाला नटली।
निजप्रेमा दाविण्यां सजली॥३॥

वस्त्र शुभ्र शोभा देई।
निसर्ग रूप तें खुलवी॥
मग घेई करीं ती माला।
निजनाथा अर्पायाला॥४॥

युवक तें पाहुनी हांसे।
रमणीय अधिक तैं भासे॥
पाहुनी सुंदरिहि हंसली।
विनयानें लज्जित झाली॥५॥

प्रेमानें थट्टा करण्या।
प्रेमाची गंमत वघण्या॥
तो दूर तियेच्या जाई।
परि त्याला यश ना येई॥६॥

मग लपे ढगांच्या मागें।
हुडकाया सखि तैं लागे॥
नैराश्यें छाया पसरे।
सखि झांके वदना पदरें॥७॥

पाहुनी खिन्न बहु तिजला।
बाहेर शशी तो आला॥
सुंदरी पुन्हां मग हंसली।
विनयानें लज्जित झाली॥८॥

बहुकाल क्रीडा चाले।
आनंदें अश्रु गळाले।
प्रणयिनी काय मग पाहे।
जें दृश्य स्वप्निं ना साहे॥
निजप्रियाजवळिं नवतरूणी।
तिजकडे पाहते हंसुनी॥९॥

रोहिणी शुभ्रवर्णा ती।
सुंदरी योग्य शशिला ती॥
ती तया टाकि मोहोनी
तो जात तिच्या मागोनी॥१०॥

चंचला वृत्ति पाहोनी।
प्रणयिनी भान विसरोनी॥
मानसी कोप अति भरला।
तैं शाप तयांना दिधला॥११॥

निर्व्याज शुद्ध प्रेमाला।
फसविलें घातला घाला॥
तें प्रेम तुम्हांतें शापें
''पावाल नाश रवि तापें''॥१२॥

शशि रमणीसह त्या गेला।
पुनरपी कदा नच दिसला॥
बालेनें शोक बहु केला।
तो हलवी या चित्ताला॥१३॥
दंवरूपे अश्रु गळाले।
अतिदुःखें तेच निवाले॥

– होलकर कॉलेज पत्रिका : जनवरी – १९२५ से

Some Reminiscences

- Prof. N. Padmanabhan

When I joined the Holkar College in 1922 as the Professor of Physics, the institution was a small one having about 200 students. The college offered courses only in a few subjects in the faculties of Arts and Science, upto the degree level. The science classes had only a few students. There were about 40 students in Interscience classes and about 12 students doing B.Sc. I was the only teacher in Physics and I took all the theory classes and the B.Sc. practicals. Mr. Shintre was a demonstrator who assisted me and used to take the Interscience practical classes. The college was then affiliated to the Allahabad University as the Agra University did not come into existence till 1928. As the numbers were small the teachers got into close personal touch with students and lasting relationships often developed. The college was maintained by the Holkar State of which Maharaja Tukoji Rao was then the ruler. Life in the college was generally uneventful except for the annual functions. The Principal of the College was Dr. Sukhtankar.

One day there was a prize-distribution ceremony in the college and Maharaja Tukojirao was invited to give away the prizes. After the function was over the Maharaja called some students aside and inquired if they were happy or had any grievances. The students told him that their request to participate in a Football tournament outside the state had been declined by the minister as there was no budgetary provision. The Maharaja immediately ordered that the team should be sent and sanctioned the necessary funds for it.

Another incident of this kind involved two poor but bright students who were awarded prizes in their school. The Maharaja was to distribute the prizes but was unable to come for the function. These two boys refused to receive the prize from anyone other than the Maharaja. When the Maharaja came to know about this, he called them to the palace and inquired why they had declined the prize. When he was told that they wanted to receive it only from his hands, he was so touched that he ordered the cost of the entire education of the boys to be borne by the state.

Dr. Sukhtankar was succeeded by Mr. F.G. Pearce who stayed as the Principal for only a few years. He was succeeded in turn by Dr. P. Basu who stayed as Principal for nearly 14 years upto 1940. During this period the college expanded very considerably and the number of students, teachers and subjects all increased. The college was then affiliated to the Agra University of which Dr. Basu became the Honourary Vice-Chancellor for at least 2 terms. At that time the college enjoyed a high status in the university. Dr. Basu's principalship was unfortunately terminated abruptly for certain political reasons and a young Englishman named Mr. Richardson was appointed in his place. After two years Mr. Richardson became education minister and he appointed Mr. J.B. Raju as the Principal in 1942.

Mr. Raju was an eloquent speaker and had a great reputation as a debater. He was known for convincingly arguing on both sides of the topic in a debate. He was extremely democratic in his behaviour and would address all members of the staff including the clerks as 'Sir'. He was a devout Christian (Catholic) and on Christmas day he and his family used to invite all their domestic servants including the sweeper for the christmas party. They were all treated as equals and he would sit with them in the same row in the grass lawn of the Principal's bungalow for the party. He also had deep sympathy for the students. In 1942 during the Quit India Movement the students went on strike for a prolonged period. In order that they may not fall short of 75% attendance he would collect all the attendance registers and marked everybody present. When the British minister made inquiries about the situation in the college he reported that everything was normal.

Mr. Raju also left after a short stay of 2 years, handing over charge to Dr. S.S. Deshpande. Dr. Deshpande's main interest in life was his work in the chemistry laboratory. He used to be in the laboratory from early in the morning till late in the evening. He was uncomfortable in the post of Principal as the work was almost entirely administrative. He therefore gave it up after 1 year and became a Professor again in Agra college at Agra. I succeeded Dr. Deshpande in 1945 and remained as the Principal till my retirement in 1952 to take up the Membership of the Madhya Bharat Public Service Commission.

During my service of over 30 years in the Holkar College I had several interesting experiences, a few of which I would like to narrate. When I was the Principal, Mr. P.C. Gangrade Professor of Mathematics, fell seriously ill and was unable to attend to his duties to his full satisfaction. His assistants offered to take up the additional burden of his work so that he may not have to take sick leave on half-pay. The time-table

महाराजा तुकोजीराव होलकर - प्राचार्य पद्मनाभन तथा प्राध्यापकों एवम् विद्यार्थियों के साथ

was recast so that Mr. Gangrade had very light work. As he was a very conscientious worker he sent an application to the Government through proper channel asking them to reduce his pay as he could not fully discharge his duties. When the application reached me I was taken aback. I called Mr. Gangrade and persuaded him to withdraw the application. It is difficult to find another example of an officer asking for a reduction in his pay for conscientious reasons.

Another very conscientious colleague of mine Prof. D.M. Borgaonkar, who was a Professor of English in Holkar college, was for a time appointed Principal of Madhav College at Ujjain. During his tenure there, a theft took place in the College. Mr. Borgaonkar went on a hunger fast till the student who committed the theft came and confessed his guilt and was forgiven. He would impose fines on defaulting students and then pay it himself when the student apologised. He too, like Dr. Deshpande, felt uncomfortable as a Principal and reverted to the Professorship at Holkar college.

I have cited these two examples to indicate the type of atmosphere and idealism which prevailed in the college in those days. When I left, the college had nearly 2000 students and four faculties. Post-graduate teaching had also commenced in several subjects. I felt very sad to leave the institution in 1952 after such a long association. I have not been much in touch with the college after my retirement and I hope that the college has continued to maintain its high traditions.

□□

डॉ. कैलाशनाथ काटजू का उद्घाटन-भाषण

हीरक जयन्ती का उद्घाटन भारत सरकार के गृह और विधि मंत्री तथा उत्सव के सम्माननीय अतिथि डॉ. कैलाशनाथ काटजू ने किया. डॉ. काटजू ने अपने उद्घाटन-भाषण में विविध राजनैतिक और शैक्षणिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थियों को परामर्श दिया कि वे मस्तिष्क, विचार और शरीर के संयमन द्वारा स्वास्थ्य (शरीर-निर्माण) के प्रति पूर्ण सतर्क रहें ताकि संतप्त स्थितियों के बीच गुजर रहे देश को स्थिरता और अपनी समस्याओं के समाधान का सामर्थ्य प्राप्त हो सके.

किशोरवस्था में प्राय: हो जाने वाले दिशा-भ्रम की ओर संकेत करते हुए डॉ. काटजू ने कहा कि 'किशोर-वयस् (Adolescence) बड़ी खतरनाक उम्र है. तनिक इधर-उधर बिखरे कि स्वास्थ्य मिट्टी में मिला. अत: विद्यार्थी को मानसिक और आत्मिक संतुलन के साथ अपनी स्वास्थ्य-रक्षा करना चाहिये.

दूसरी बात जिस ओर डॉ. काटजू का विशेष संकेत रहा वह थी - अनुशासन. आपने कहा कि आज के विद्यार्थी को अनुशस्त और सुशील होकर जीवन व्यतीत करना चाहिये. इसी प्रसंग में आपने एक और सलाह दी कि विद्यार्थी स्वतंत्र देश के उत्थान में कटिबद्ध सैनिक की तरह योग दें.

अंत में डॉ. काटजू ने कॉलेज के वर्तमान और भूतपूर्व विद्यार्थियों से 'हीरक-होस्टल' की स्थापना में आर्थिक सहयोग देकर पितृ, राष्ट्र और गुरू ऋण से उऋण होने की मार्मिक अपील की.

- होलकर महाविद्यालय पत्रिका - 1951-52 से

From Prof. S.N. Dhar

MEMOIRS OF MY CAREER AT HOLKAR COLLEGE

Sailendra Nath Dhar

Calcutta
28.11.88

In August 1923 aged 26, I joined Holkar College as Professor. In accordance with the then practice, I was appointed Professor of History and English, and actually I taught the two subjects for two years and I was then posted as Professor of History, and can claim that I was the first person to be Professor of History in the College. The College was then affiliated to Allahabad University. In 1927, it was transferred to the newly constituted University of Agra. When I joined the college, it was a small institution, with only about 350 students on the rolls teaching only a few subjects. At my appointment, Dr. V.E. [illegible] was the Principal of the College, and a young Englishman, Mr. F.C. Pearce was appointed to officiate. A year later he was shunted out of the College, and Dr. P.C. Basu was appointed Principal. He resigned in 1936, and continued at the post. [illegible] was appointed at the post. A year later he was made permanent, and continued [illegible] when he was retired, and a young Canadian, named H.B. Richardson, was appointed Principal. Under and during Dr. Basu's administration, the College progressed greatly, the number of students vastly increased, and the College was regarded as among the best, if not the best, institution under Agra University. M.A. and M.Sc. classes were started in a few subjects, including History. Compulsory games was introduced and continued for some time. I was appointed to be in charge of football, and myself took part in the games. Our team was a formidable one, and won many trophies at many tournaments held at Indore and outside. Once we invited H.H. the Maharaja to a match to be played on our grounds between his and our teams. He graciously agreed, himself played as goal-keeper, while Mr. [illegible] Naidu was the captain of their team. We won by 2-1 goals. Thereafter our players crowded round him and insisted on a whole holiday for the College, on account of the fact that it was the first time in the history of the State that a Maharaja of Indore had come to the College for play. He granted holidays for two days and our students thanked him heartily speaking about other things. I was appointed Professor in charge of the College library. I classified the books according to the Dewey system and wrote a catalogue in my own hand. I also contributed an article to every issue of the magazine of the College writing on subjects of general interest and various translations of Tagore's poems and Sarat Chandra Chatterjee, which were appreciated by the readers. In 1936, the Indian Science Congress held its session at Indore, and I was requested to write a brief account of Indore to be given to the delegates. Accordingly I wrote a booklet which was to be my first published work named Indore City and its Vicinity. I wrote it to serve the purpose of a mere guide-book, but was amazed to hear that later it was considered as an original work on the history of Indore. At about this time I was appointed by the University to be Supervisor and Internal Examiner of the thesis of a distinguished student of mine, Prof. K.L. Srivastava. The thesis was accepted by the University.

Coming now to speak about Mr. Richardson's administration, he made sincere effort to improve the work of the College but he had difficulties. The Second World War had begun and he had to face the fact that the students of the College had been greatly affected by the freedom struggle going on in British India. Communal trouble had begun, and the students of the College were divided in their allegiance. Mr. Richardson, it was believed, favoured the Muslim students of the College. In 1945, he.

of the College, being appointed Education minister of the State. He appointed me to be the station delegate at the Indian Historical Records Commission in 1942. As such I attended its sessions at Trivandrum, Dalhousie. When the Commission held its session at Indore, I was appointed to be the head of the Reception Committee.

In 1950, I was appointed Secretary, Board of Secondary Education, and left Holkar College and Indore for good.

ہولکر کالج میگزین

حصہ اردو! ایڈیٹر - شوکت حسین مہتاب ([illegible])

نقوش

آہ! وہ ماضی کے گذشتہ ایام
جو سنہرے تھے اور نہ تھا جن میں نفاق کا رنگ!
مگر
کیا وہ پیارے دن کبھی لوٹ کر آ سکیں گے؟
اب یہ تنازعات ہیں
اور جھگڑے کھوکھلی بنیادوں کے!
طبیعتوں کے اختلاف
اور اعمال کے تصادم
یہ انسانوں کی پست ذہنیتیں
تسلیم سامانیوں سے بے رغبتی آخر کب تک؟
کیوں یہ ایک ہی منزل کے دو مسافر
ایک ہی راہ اختیار نہیں کر لیتے!
راہ پر خطر ہے اور منزل دور
ہر دو راہ کی کسی رہزن نابکار کا پوشیدہ کمیں ہے
گران راہ نوردگان غفلت شعار کو
کیوں احساس نہیں!
کیوں نہیں آ جاتے وہ ایک دوسرے کے قریب
دل کے قریب روح کے قریب!
قربت میں حفاظت ہے۔
قربت میں محبت کی افزائش!
جو سنہرے تھے اور نہ تھا جن میں نفاق کا رنگ
آہ! وہ ماضی کے گذشتہ ایام

My Student Days at College

-Prof. Satyavrata Ghosh

Born at Barisal (now in Bangladesh) on the 31st of May 1914, Satyavrata Ghosh was externed from Bengal because of his revolutionary activities. He joined Holkar College in 1932 and passed his Intermediate Examination in 1934. After which he was forced to move to Banaras where he did his B.A. and M.A. Here he gives an account of two years of his college life.

It was almost exactly two years that I spent at the Holkar College, Indore, way back in early thirties. To be exact, I entered the city on the 22nd January 1932 in the evening and left on a date easior to remember if written in figure, 1-2-34, also in the evening. Actually, I had to leave under police instructions. There was no formal order. This was done in deference to the position and status that my brother-in-law enjoyed at Indore.

I joined my classes two days later. I was a student of Science-Physics, Chemistry and Mathematics. Physics was taught by Prof. N. Padmanabhan, Chemistry by Dr. S.S. Deshpande and Mathematics by Prof. V.G. Gole. There was, however, another professor of Mathematics, Mr. G.E. Cornelious.

My first impression at the college is difficult to describe. The earlier life was of extremist in politics of Bengal in the years between 1929 and 1931. Life of those who belonged to the revolutionary group was always on the palm of their hands, to be just sacrificed at a moment's notice. Some of my very close friends did it. We were inspired.

In far off Indore, an Indian state (called native state those days), though otherwise progressive, it was politically very different. Indore was almost a non-political city by our definition. I was, however, an object of all round curiosity. The brother-in-law of Principal Basu, a pucca Westerner in his habits and manners, I was a typical Bengali Babu though just attired in western clothes stitched over night. The only thing which helped me get along in an otherwise unusual environment was my power to converse in a common language, English. Even in this I suffered from an initial handicap. We had hardly any common topic. I had been brought up differently in a far off East Bengal town of Barisal and as a young revolutionary.

Very soon I developed some thing common with some. It was Tennis. Dr. Basu was very fond of it and very regular to attend the Tennis Court. We tried just to imitate. There were some 'Tennis stars' in the college, notably, the kaul brothers, M.K. and J.K. Though I could never come near them, in the game. I learnt a great lesson from a book suggested by Jaggi (as J.K. Kaul was affectionately called). It was a book on Tennis by Tilden, the world champion of his times. Among other things, the aspirants for good Tennis were advised to keep their body-weight under control. He explained the matter almost arithmetically, as to how many extra ounces of energy one has to spend to carry a pound of extra weight in a normal set of the game. I learnt the lesson for life and am mobile even at 77 much to the marvel of many. It is only recently that modern 'experts' like Rekha are advocating the 'body line' theory and youngsters follow them blindly.

I could not achieve much success in Tennis and tried my talents at Cycle polo. It was a plebian edition of the princely polo and had suddenly become very popular at Indore. It got me two friends who were not students of the college but used to play the game with us. One was the famous all round cricketer, Mushtaque Ali and the other, not so famous, was Bala Saheb Jagdale who later married Vimla of the Kaul family.

As a compensation for my inability to make a mark in outdoor games, I acquired a name in Carrom, a very popular indoor pass-time at Indore. Youngsters, both boys and girls, used to pine to be my partners, for, a first prize was sure. Prior to my appearance in the Carrom scene, one Sule was the reigning hero. A.S. Patwardhan (later Speaker of the Assembly) was a good player and became a good friend.

From game to the class room, I do not have much to record. As I joined my class very late and in an entirely strange environment, I could not much concentrate on what I was actually sent for to do at Indore, to carry on studies in Science. I somehow managed to scrape through and qualify for the next step. I had already discovered the science was not my cup of tea. I would take up Arts.

But there was something quite unexpected in store for me. I had to suddenly leave Indore. The state police gradually found that I was a liability for them. To look after me was a thankless job, a risky one also. If I did something politically wrong in the eyes of British police (under A.G.G.) the State

would be held responsible.

As for the political activities of the type I was used to, there was not much scope. In the first place, revolutionary movement had not spread its tentacles to the Indian states. They were backward politically. There was certainly some nationalist movement demanding some concessions to the people. It was like the early days of the Congress in British India, days of prayers and petitions. Praja Mandal was the mouth-piece in place of the Congress. Sarwates, father and sons, were its leaders. The son was a good carrom player and became very close to me. When I returned to Indore, as a professor, he was the Speaker of the Assembly.

Even though I could not be directly associated with any active revolutionary groups, some were keen to cultivate my friendship, may be out of curiosity or to share my experience gathered in a wider field. Later, however, I learnt that some of them were active in the Dhar Dacoity Case. My association and guidance were suspected. One of them became a close friend when I was the prof. of political science, at T.R.S. College, Rewa. He was Mahavir Singh, the Registrar of Co-Operatives. His daughter was my student in the M.A. Class.

My undoing at Indore, however, came in a different way. Though far away from Bengal, some of my political friends were still not behind the bars. They used to send me secret instructions through a code-system. It was in a sort of printed matter, something like a pamphlet or book-let. The message sent in code was inscribed by dots on the printed matter. None other than the sender or its recipient could decipher. They came to the address of a class-fellow of mine, the top student but poor in social and financial status. Normally, he was not likely to receive printed matter and so frequently. The state police kept an eye on him but could make no head or tail of what these really contained. One day they called him to their office. The poor boy, Durga Prasad Sadhu, became so nervous that he innocently told them the whole story. The police put 2 and 2 together and suspected some high level conspiracy behind it. It was like the last straw to break the back of police consideration for my highly placed brother-in-law.

One afternoon, about 3 p.m. I was called to the drawing room. To my shock, I found the D.I.G. Brahma Swarup Bhatnagar, a trembling Durga Prasad and Dr. Basu already seated. The D.I.G. did not mince matters. He asked me what the printed matters, already in his hand, contained. I posed utter ignorance and refuted the story given by Durga Prasad to the police. The poor boy could not utter a syllable. I pleaded that it was a police story made up to implicate me. But it did not cut much ice. I was asked to go out of the room.

Between D.I.G. Brahma Swarup Bhatnagar and Dr. Basu it was decided that I should be made to move out of Indore. A high level communication was sent to my elder brother, Principal Deva Prasad Ghosh, (Later President of Jana Sangha many times) in Calcutta at whose initiative and instance I had come to Indore.

A chapter of a chequered life, somewhat insipid, suddenly came to an end. As per his telegraphic instructions I left for Benares (spelt as Varanasi now). W.V. Oak, one year my senior and a very brilliant student, accompanied me upto Choral, by the evening train to Khandwa. His 'reward' was rustication from the college for a year. it was the first of February 1934 (1-2-1934). I next met him accidentally at the Allahabad University, ten years later. He was studying M.Sc. in Physics.

I had nothing outstanding to my credit as a student, but I can cite the names of some of my friends who attained eminence in various fields. In academic life, L.C. Gupta, W.V. Oak, L.O. Joshi were the top ones. They all joined Holkar State Civil Service introduced by Dr. Basu. On India achieving independence they were all absorbed in the I.A.S. cadre. R.N. Nagu was not the academic type but was good at Tennis. He joined his father's profession and became finally the I.G. of M.P. police. In sports Mohammed Hussain was outstanding and he ended his career in the preistigious Daly College. In Tennis J.K. Kaul had attained an all India name. He retired as an I.A.S. officer. The elder brother, M.K., also a Tennis player, a music lover and above all, a debonair, became the Registrar of High Court. The college produced a galaxy of successful officers, much to be proud of.

With a third class ticket in my pocket and with a scanty luggage I reached Khandwa by a metre gauge train. It was past midnight. I shifted to the main platform and waited all alone in the wide open space. The mind naturally went back to days gone bye and to days ahead. The past was known. Every detail was clear in the mind. There was no regret of any sort. But the future was uncertain as it always is. But in my case it proved to be more gloomy than I could think of.

I only knew that I had to reach the holy city of Vishwanath where my elder brother would be waiting for me. I knew nothing beyond it. On reaching Benares Cant. Station. I found my never-failing elder brother. On reaching my host's home I was told that there were great problems about my admission to any college in north India. My brother a well-known educationist himself, had made enquiries and had a polite but negative reply from everywhere. This was in view of my political past and the police report about it.

His last hope was at the Hindu University, with a stalwart among Indian nationalist as the founder vice-chanceller. The next morning we both went to Pandit Madan Mohan Malviya who know my brother- well. Both were Hindu Maha Sabha leaders of all India eminence. But that did not solve the problem of my admission.

The logic was simple. If I were admitted, policemen would be keeping a watch on me within the university and the boys would beat them. On that plea and pretex the government would stop the grant for which it was itching. We could not be so selfish as to look to a personal favour at the cost of the University's future.

We came back with a heavy heart and my brother left for Calcutta, probably with a heavior heart. But I was fortunate enough to get admission a few days later, thanks to the kind effort of Dr. Bhagwandas, a saintly zaminder. With my brother I had gone to pay him a courtesy call only after our failure with Pandit Malviya. Dr. Bhagwandas was almost furious. He took me personally in his victoria (Baggi) and almost 'ordered' Panditji to admit me whatever the consequence. I came back a different young man. I hope I have done justice to Dr. Bhagwandas's kindness. Today, I stand as someone in the country in my own field, a speaker and a writer on our freedom struggle.

SONNET

How fleet o'er fifty years have sped and wrought
Many a change as I am getting old
And wrinkles on my wan face do unfold
Their tale, though I have always fought
The feeling of age. What a joy it is
To look back on the years which I have spent
At Arts' feet worshipping whom my soul was bent!
I worshipped her for years, though vagaries
Of cruel life forced parting in later years.
Haply that was but brief. Law's deadly spell
Is broken and again now I shall roam
In lovely bowers and groves without fears
And feel that through Art I shall reach my home
And shall in peace and tranquility dwell.

- M.D. Kirtane, Retd. Addl. District Judge
(Former student and teacher in the
Department of English, Holkar College Indore).

- From Holkar Science College Bulletin, 1968-69.

FOND MEMORIES

- Bimalendu Dhar

To go back in time sixty years.

I joined the Holkar College, Indore, at the beginning of the academic session 1930-31, migrating from the Calcutta University. I passed the B.A. Examination of the Agra University from the Holkar College in 1932. I had the good fortune of standing first in English in the University for which I was awarded the T.C. Jones Gold Medal.

I retain very pleasant memories of the time I spent at the Holkar College, Indore. Nobody could fail to be captivated by the charm of the College after being in it even for a short time. Standing as it did on extensive grounds in wide, open space at some distance from the heart of the city, its stately buildings, open spaces, flowergardens, well-mown lawns, the daily concourse of several hundred students and dedicated teachers and other staff, its well-ordered courses of instruction in various disciplines, its sports, debates and other extracurricular activities - all combined to lend the institution a colour and an ambience of its own.

I have a fairly vivid recollection of many of my teachers in the College. Prof. C.A. Dobson, Vice-Principal (I think) of the College, taught us English. He wore thick glasses, spoke in soft voices, and could make the most abstruse and difficult ideas unfold their mysteries and stand but crystal clear. He was all humanity and gentleness. Prof. Harijiban Ghosh and Prof. Borgaonkar, also of the English Department, gave us vigorous and stimulating lectures. Prof. Bordia, who also gave us lessons in English, was rather shy, having joined the College, so far as I remember, only recently. But he was a very good teacher and his instruction was a great help to us all. Principal Prafullachandra Basu, who took some of our classes in Economics, was full of energy and life, and so were his lectures. His picturesque account of the activities of bulls and bears in the speculative market still rings in my ears. Prof. Dhariwal, who also taught us Economics, was a most charming and graceful personality. His flowing language and perfect diction, combining sound and sense, were indeed a treat. Prof. Srikhande taught us philosophy. The subject was solemn, and somewhat forbidding, but the man behind was the opposite - a friend, philosopher and guide to young learners.

I can also recollect the names of some distinguished students of the College during my time, mostly my seniors, whom also I admired from a distance. Among them I may mention Rungnekar who later distinguished himself as an economist, A.L. Srivastava who later became (I think) Principal of Bhopal College and S.P. Varma who later joined the Rajasthan University and won, as I heard, international recognition for his contribution to Political Science. Among my own class-mates, I particularly remember two, Nanderkar and Tiwari. I send my greeting to all Holkar College staff and students. May all success and glory crown the Celebrations.

अनुत्तर योगी - चाँद का मुँह टेढ़ा है

– प्रो. महेश दुबे

मुक्तिबोध की एक कहानी है - जलना. एक स्थान पर इस कहानी का नायक जो एक साधारण औसत आदमी है; अपने बच्चों के बारे में सोचता है : ''उसके बच्चे बड़े होंगे. कॉलेज ऐजूकेशन तो क्या ले सकेंगे. इतना पैसा ही नहीं कि उनके लिये किताबें खरीदें. लेकिन हाँ, मैं अपने सारे विचार मेरी अपनी सारी कल्पनाएँ और धारणाएँ उन्हें बता दूँगा. उनका बिलकुल सिस्टेमैटिकली अध्ययन करा दूँगा. मैं उन्हें बड़े आदमियों की बैठक से दूर रखूँगा और इस तरह छुट्टी दूँगा कि वे उनके तौर तरीकों से घृणा करें, कि अपने जैसे गरीबों में ही रहें और उन्हें लिखाएँ-पढ़ाएँ उन्हें नये-नये विचार दें, उनकी भविष्य कल्पना तीव्र कर दें, उनकी जगत्-चेतना को विस्तृत और यथार्थवादी बना दें और उनमें मरें और जिएँ. मैं उन्हें क्रांतिकारी बनाऊँगा, मैं उन्हें समाज की तलछट बनने के लिये प्रेरित करूँगा, वे वहाँ बैठे-बैठे किताबें लिखेंगे, पैम्पलेट छापेंगे और जो मिलेगा उसके सबके साथ खाकर उन सब भड़कीले दम्भों से घृणा करेंगे जो शिक्षा और संस्कृति के नाम पर चलते हैं...''

- पूर्व ग्रह (39-40) से

मुक्तिबोध- साधारण जन की - साथ-साथ जीने और मरने की संस्कृति के प्रबल पक्षधर हैं. चमक-दमक की संस्कृति से वे कोसों दूर हैं. वे मानव-सम्भावनाओं के विस्तार के समीकरणों को बुनते हैं - और सतह पर पहुँचकर अपने संघर्षों के आत्मीय स्पर्श से इन समीकरणों के हलों को जीवन्त कर देते हैं. फिर वे -अपनी कविताओं में, कहानियों में - फैन्टेसी के सहारे एक रहस्य लोक की सृष्टि करते हैं - जिसमें जिज्ञासा है, तलाश है!

मुक्त होने की इसी बैचेनी को वीरेन्द्र कुमार जैन ने अभिव्यक्ति देते हुए लिखा था -

मुझे पहचानो
मुझे प्रसव करो, मुक्त करो
ओ यातना माँ,
तुम्हारे गर्भ में चिर-बंदी,
मैं, मानव के आगामी मन्वन्तर का
अनिर्वार सूरज हूँ!

आज, यह जानना आश्चर्यजनक रूप से सुखद होगा कि संघर्षों और काव्यात्मक समृद्धि के लम्बे सफ़र के इन दोनों कवियों की जुगलबंदी -लगभग 56-57 वर्ष पूर्व यहीं होलकर कॉलेज में प्रारंभ हुई थी. मुक्तिबोध ने उज्जैन से इण्टर पास करके 1935 में होलकर कॉलेज में बी.ए. में प्रवेश लिया तथा वीरेन्द्र कुमार जैन ने 1933 से 1937 के वर्षों में यहीं से इण्टर और बी.ए. किया.

स्व. प्रभाकर माचवे तक, यहीं क्रिश्चियन कॉलेज (1931-1935) में पढ़ रहे थे. हिन्दी कविता में नये स्वरों के नये प्रयोगों का प्रारंभिक प्रारूप इस त्रयी ने यहीं तैयार किया होगा - इसमें संदेह नहीं.

17 - जुलाई - 1915 को जन्में गजानन माधव मुक्तिबोध ने - 16 जुलाई 1935 को होलकर कॉलेज में - तृतीय वर्ष या बी.ए. प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया. 1937 में वे बी.ए. के अंतिम वर्ष की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए और अगले वर्ष - अर्थात् 1938 में उन्होने द्वितीय श्रेणी में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर - 12 जुलाई 1938 को कॉलेज छोड़ा. कॉलेज में हिन्दी और दर्शन उनके विषय थे. कॉलेज में उनका पता था - द्वारा भागूबाई देउसकर, नर्स, एम.टी. हॉस्पिटल, इन्दौर.

वीरेन्द्र कुमार जैन का जन्म 15 - अक्टूबर - 1916 को शिवना नदी के तट पर मंदसौर में हुआ था - शायद इसीलिये नदी ही उनका व्यक्तित्व और स्वभाव बन गयी है. उनके स्वयं के शब्दों में -

''अपने को नदी ही पाता हूँ और किसी महासमुद्र से मिलने को आकुल हैं मेरे प्राण और मन की सारी प्रवृत्तियाँ.''

1933 में इन्दौर के तिलोक चन्द जैन हाई स्कूल से मैट्रिक उत्तीर्ण कर उन्होंने होलकर कॉलेज में प्रवेश लिया और 1937 में यहाँ से बी.ए. पास किया. कॉलेज का स्मरण करते हुए, वे लिखते हैं -

''निश्चय ही होलकर कॉलेज ही मेरा कॉलेज रहा. उसके ऊपर के टॉवरों में खड़े होकर दूर-दूर के दृश्यों को देखते हुए मेरे रोमानी कवि का जन्म हुआ. उसकी लाइब्रेरी की गैलरियों में किताबें टटोलते हुए मैंने बहुत कुछ पढ़ा, खासकर इंग्लैंड के रोमानी कवि. उनके जीवन-चरित्र और दुर्लभ इतिहास ग्रंथ. कई समकालीन अंग्रेजी उपन्यासकारों को भी यहीं से पढ़ा. मेरे सहपाठी और काव्य-सहचर रहे स्व. ग.मा. मुक्तिबोध.''

९ मई - १९९१ का उनका पत्र.

वे लिखते हैं -

''होलकर कॉलेज के जीवन में मेरी अपनी मानसिकता, प्रवृत्ति, वेश-भूषा और पूरे व्यवहार तथा व्यक्तित्व में मैंने एक रोमानी कवि को अपने भीतर रूपायमान होते देखा. इस काल में मेरे कवि को सबसे पहला उत्थान और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ पं. माखनलाल चतुर्वेदी से. सन् १९३८ में मेरी कुल छह कहानियाँ प्रकाशित होने पर ही, स्व. प्रेमचन्द्र ने अपनी जीवन की संध्या में एक दस्तावेजी लेख - 'हिन्दी में भविष्य किनका?' में, मुझे भी श्री जैनेन्द्रकुमार के बाद हिन्दी के तीन अग्रणी कहानीकारों के बीच स्वीकृति प्रदान की थी. इस प्रकार प्रेमचन्द मेरे साहित्यिक जनक हुए. तब मेरे साथ मानों वह उक्ति चरितार्थ हुई : 'एक सुबह मैं उठा और मैंने पाया कि मैं प्रसिद्ध हो गया हूँ.' कॉलेज के अंतिम बरस में और फिर बाद के तीन-चार बरसों में डॉ. शांति प्रसाद वर्मा की अग्राज स्नेह-छाया तले मेरा बौद्धिक संस्कार - परिष्कार हुआ. शांति भाई साहब ने ही मेरे भीतर आदर्शवाद और अहिंसक गाँधीवादी जीवन-नीति के पहले बीज डाले.

इन्दौर के कॉलेज-काल में और बाद में मेरे दो अभिन्न साहित्य-सहचर, थे - स्व. मुक्तिबोध और डॉ. प्रभाकर माचवे. हम तीनों ने हिन्दी कविता में सर्व-प्रथम नये प्रयोग किये. हिन्दी की प्रयोगवादी धारा का जन्म मालवे में उक्त तीन कवियों की गोष्ठी में ही हुआ था, यह बात बहुत कम लोग जानते हैं.''

– १६ सितम्बर १९९१ को भेजे अपने 'आत्म-परिचय' में से
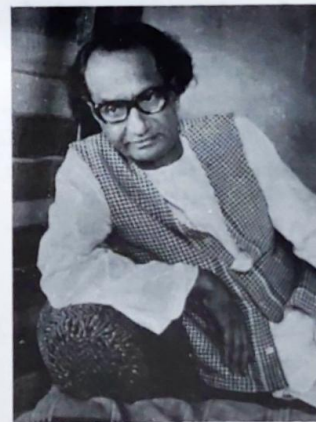
बाद के वर्षों में तार-सप्तक से 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और 'भूरी-भूरी खाक धूल' तक गजानन माधव मुक्तिबोध की साहित्यिक यात्रा अपने समकालीन जीवन के दारुण संत्रास की सशक्त अभिव्यक्ति के साथ-साथ अपनी अटूट करुणा, विश्वास और वैचारिक प्रतिबद्धता की दृष्टि से अद्वितीय और अप्रतिम है.

श्री वीरेन्द्र कुमार जैन - धर्मयुग, भारती और नवनीत के सम्पादन से सम्बद्ध रहे. उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं - जिनमें प्रमुख हैं -कविता संग्रह: यातना का सूर्य पुरूष, अनागता की आँखे, शून्य-पुरुष और वस्तुएँ और चार खण्डों में प्रकाशित महाकाव्यात्मक उपन्यास : अनुत्तर योगी -जो तीर्थंकर महावीर के जीवन पर केन्द्रित है.

श्री वीरेन्द्र कुमार जैन स्थायी रूप से बम्बई में रह रहे हैं. गम्भीर रूप से अस्वस्थ्य होने के कारण वे अपने संस्मरण हमें नहीं भेज सके हैं.

१९३६ की कॉलेज पत्रिका में उनकी एक कविता हमें प्राप्त हुई है. इस अवसर पर उसे पुन: प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है. कवि की दीर्घ साहित्यिक यात्रा के प्रारंभिक स्वर, हमारे पाठकों को इस कविता में सुनाई देंगे - ऐसा विश्वास है.

– प्रो. महेश दुबे

जाते-जाते

वीरेन्द्र कुमार जैन

ओ प्राणों के प्राण आज
जाते-जाते जी भर मिलनें!

(१)

प्राण-प्राण से ही दुलरालें,
साँसों से साँसे सुहलालें,
जी से जी की कसक मिटालें,
आज दीप-बेला जीवन की,
पहला आँसू-दीप जलालें।।

(२)

चुनें समाधी अरमानों की,
ईंटों से सुम बलिदानों की,
धधके आग तृषित प्राणों की,
त्याग-साध के धूपायन में-
हम जीवन की धूप चढालें।।

(३)

दृग-प्याले आँसू से भरलें,
सूनी स्मित की रोली घोलें,
उस कुंकुम् से ललाट भरलें,

प्राण, सिसकियों के मङ्गल-स्वर-
में ही आज विदा हम होलें।।

(४)

आज मोह की गाँठें खोलें,
मोहिनि के डोरे सुलझालें,
अपने दुख बँटकर सुख होलें,
एक दूसरे के आँसू हम-
आँखें भरभर आज देखलें!!

(५)

मोह भरे अञ्चल में रोलें,
आज परस्पर नयन पोंछलें,
आँसू से सम्मोहन धोलें,
आज दूर होने की साधों से
हम और निकट ही होलें!!!

(६)

पीड़ाओं की निधियाँ खोलें,
मीले स्वर में मौन तोड़लें,
कभी न बोले आज बोललें,
दो बोलों में विकल रुदन-
युग-युग के प्राण सफल तो होलें!!

(७)

पलकों की छवि-काजल धोलें,
आज भूलना सीख सिखालें,
भोलेपन के मधु-दिन भूलें,
प्राण, भूलने के प्रयत्न कर-
और अधिक हम परिचित होलें!!!

(८)

देवि प्यारके फूल वनोंपर,
चिर-विछोह के काँटे छाकर,
'प्यार' मिटा 'निष्ठुरता' लिखकर,
जग-कपोल पीड़ा-काजल-
से, 'इति' के अक्षर लिख डालें।।

(९)

आज समय की पग-डण्डी पर,
आँसू का अमृत छिड़का कर,
सूने-नीलम-नभ-कूलों पर,
देवि! मृत्यु को आज चुनौती-
देकर हम-तुम पीठ फेर लें!!!

नारायण श्रीधर बेन्द्रे (१९१०-१९९२) शीर्षस्थ चित्रकार और कलाकार थे. महाराजा शिवाजीराव हाईस्कूल से मेट्रिक करने के उपरांत, १९२९ में उन्होंने होलकर कॉलेज में प्रवेश लिया और १९३४ में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की. वे इन्दौर स्कूल ऑफ आर्ट्स के सशक्त प्रतिनिधि कलाकार थे. वे एक उच्चकोटि के शिक्षक और कलाकार थे. वे अपनी कलाकृतियों के माध्यम से बोलते थे. अपने चित्रों में रंगीय संयोजन के परे-रूपांकन और गढ़न में आडम्बरहीन सरलता और पारम्परिक शुचिता के लिये वे विशेष रूप से जाने जाते हैं.

अपने ५ सितम्बर १९९१ के पत्र में कॉलेज का स्मरण करते हुए उन्होंने लिखा था-

Dear Prof. Dube,

I had received your letter on behalf of Holkar College Centenary Celebrations committee some time back, which unfortunately I have misplaced and could not find out while I am writing this letter. Please excuse for the delay.

I was a student of Holkar College from 1929 to 1933 or so. I am glad that the institution has completed 100 years & all along my study there I was a back bencher and an insignificant student. However I have to admit the usefulness of the Library there. I also remember Dr. Basu, Dr. Dobson, Dr. Padmanabhan, Dr. Borgaonkar and Prof. Shrikande as my good professors.

Yours
Sincerely
[signature]
N. S. Bendre

A Peep into the Past

- Mrs. Sumati Bagchi

Mrs. Sumati Bagchi (then Miss Bhandarkar) was a student of this college in the years 1931-33. She did M.A. in English securing first position in the Agra University. For two years (1934-36) she was lecturer in English in our college and has the distinction of being the first lady lecturer to be appointed at Holkar College. After marriage she moved to Dehradoon where she continues to live happily-occasionally reminiscing her days at Indore.

Maheshji

At your persistent knocking on doors long fallen into disuse, they are being opened today. I wish, for your sake, that some hidden treasures behind the doors could come to light and make your request a worth while one, but alas! that is not to be. I can write about nothing spectacular or very interesting, as no such experiences came to us. My student life in Holkar College had a tenure of two years. I can compare it only to the movement of a quietly flowing stream, no strong waves, no cataracts, no violence of speed.

But even at that level of gentleness of life, there was excitement!

Exactly sixty years ago I joined Holkar College for postgraduation in English Literature. I had done my B.A. from the Isabella Thoburn College, Lucknow, an institute for women. My father was of the opinion that under the then existing social conditions girls could have a chance of an all round development only in a girl's college. Coeducation meant repression for girls; they could pocket degrees but were bereft of all other chances of self-development, said he. I enjoyed my college life in lucknow, but as my two year's sojourn in Lucknow had made me miserably thing according to my grandmother, she wanted me to stay at home and whatever studies I had to undertake were to be from home. Thus I entered Holkar College, where my grandfather had taught Chemistry in 1893. I was the first in my family to join Holkar College, the previous generation having bagged their degrees from Bombay, Poona and Allahabad.

As Holkar College was far away from the city, most girls in those days preferred to study in the centrally situated Christian College. When I joined Holkar College, we were only five girl students - two Wagle sisters Kusum and Mohini, in the First Year, Maitreyi Padmanabhan in the Second, Rukmini Kripalani in the Fourth and Sumati Bhandarkar in the Fifth!

The Department of English was then headed by Prof. Dobson. Prof. Harijiban Ghosh and Prof. D.M. Borgaonkar and of course Prof. Dobson were my teachers in M.A. I was very fortunate in receiving great affection from them, not only in my student life but also later. Prof. Ghosh and Borgaonkar both have given "the dust of their feet" to my humble "Nandadeep" in Dehra Dun.

I think we really enjoyed our life in Holkar College. Because of our small number we received an undue amount of attention and importance. We were solicited to take part in tennis and badminton matches, for writing articles in the College magazines and for dramatics. We were not allowed to say "No" and this brought us to some supremely awkward situations. I remember the embarrassing experience of a tennis match I had to play. In spite of my protests that I was not good player, Manga Kripalani, later on in the R.A.F., insisted on my partnering him in the Mixed Doubles. A crowd of students collected to watch the match. We were playing against Maitreyi and her partner. Manga was a good player,

Mrs. Sumati Bagchi

one of the best in College at that time, but I in my nervousness sent all the balls I touched in the net or beyond the lines, getting more and more nervous with each stroke. I don't think poor Manga had anticipated this exhibition! I was grateful to the spectators, because instead of jeering, they all quietly disappeared from the scene in twos and threes, leaving us to face our debacle by ourselves.

But I fared better in my literary activities, my story being judged the best article in the College magazine. The leather bound Omar Khayyam which was the reward is still with me, a prized possession.

And, one day, Prof. Borgaonkar came to speak to me. "Miss Bhandarkar, I want you to take part in Bernard Show's Dark Lady of the Sonnets that we are staging at the Annual gathering." Act on the stage? I? In front of the dreaded (male) student community? It is no exaggeration to say that I sank in the soles of my chappals through nervousness. The idea of refusing to do what the teacher wanted us to do was absolutely foreign to our upbringing. But so was the idea of ascending the stage, facing hordes of students whose capacity to hoot was to us more formidable than their capacity to appreciate. Perhaps I could tell Prof. Borgaonkar that my guardians said "no"? My parents were away in England at that time. They would have not said no, I was certain about that. The only authority I could quote to Prof. Borgaonkar was my grandmother. I hesitatingly told my grandmother about Prof. Borgaonkar's request and she almost literally pulled away the ground under my feet when she said, "Why not if Borgaonkar is asking you?" And so, under the Professor's direction we climbed on to the stage, Maitreyi Padmanabhan as Queen Elizabeth and I as the Dark Lady. The success of our play was beyond our expectations; we didn't suffer from stage fright, thank God! The boys who were our coactors, Jaggi Kaul and Jeevan Nagu are no longer on this earth, but Maitreyi and I share the memory of those days.

It was my good luck to stand first in the M.A. exam, incidentally it being the first First Division in English in the Agra University. That year all the first and second positions in the University exams were from Holkar College. Principal Basu, naturally very proud of his College had a photograph of all of us taken with him in the centre. When he heard that one of my fellow students "X" had maliciously remarked that I had been "given" a first division only because of my "looks", his retort was "In that case the examiners should have failed "X" completely instead of giving him a second division!" Boys in those days also did not look upon the achievements of girls without envy and if I may say so, tried to be little them whenever an opportunity arose.

But I must say that I was treated with great affection and respect when I had the privilege to work for a year and a half as Asstt. Prof., in the Dept. of English in the Holkar College. Being the first lady teacher I had certain advantages, but also corresponding disadvantages. I owe a deep debt of gratitude to the staff of the College. The senior teachers were encouraging and the younger ones helpful and friendly. Death has cut into the relationships formed in those days; Dr. Basu, Prof. Dobson, Prof. Ghosh, Prof. Borgaonkar, Prof. Gole are no more, and from our younger group Yarde and Desai have left to join the seniors. Thankfully Prof. Dhar is still going strong amongst the seniors, at ninety plus. Prof. Bordia is still busy at his academic work at eighty five plus and Shanti Varma, Deshpande and I are the babies of the group in the neighbourhood of eighty! I am the only one among them who has had no academic achievements!

I must mention a couple of experiences of my teaching life. Once a first year boy was found sitting in class holding a baby goat on a rope. The other boys were, I think, waiting expectantly to see and enjoy the young teacher's angry reaction. Sensing this, I smilingly congratulated the boy on his new class friend, telling him that although I was sure that both of them had an identical IQ and the same learning ability, the Principal who was taking his round just then, might insist upon both of them going out to share a meal. In suppressed laughter of the class, the goat was taken out, but much to my surprise, the boy came back and sat down quietly. He was a naughty but lovable boy. I hear he is no more.

My reminiscences are dotted with the refrain "no more", but with almost eight decades stretched out behind me, what else can be expected! The incident that I am going to tell you now, however, makes me feel very small as I remember how I had received the news of the death of a very sweet and lovable person, not with grief but with great relief merging almost into pleasure.

As a teacher I was put incharge of a girls variety entertainment in the Annual gathering celebrations. By this time the number of girl students had increased and all of us prepared with great enthusiasm for the festive evening. In those days we called such activities simply "entertainments" and not "cultural shows" as in modern parlance. We had three items: the inevitable Saraswati Vandana, then a tableau-Pandora's Box-where the evils let loose in the world were to be symbolized by smoke coming out of the box for which we were going to burn two whole packets of incense sticks - our modest efforts at stage effects! Our prize item, as I thought was the recitation of some Omar Khayyam verses with action on the stage with costumes and scenery. One M.A. English student had accepted the Omar Khayyam role and had been given the responsibility of getting her costume -- a decent dressing gown disguised with embellishments as a robe, and a fur cap. As she had accepted, there was no need to worry on that score. We had the flask of wine, the loaf of bread and also "thou" in a suitably glamorous outfit, all ready for the first scene. Just as the Show was to begin, our Omar Khayyam burst upon us in a frock and balefully announced that she/he had no brought her costume! I was struck dumb and she, considering attack to be the best method of defence, began shouting at me! As I was not her teacher and both of us were the same age, I suppose she did not think that any respect was due to me. Literally screaming she said, "You think too much of yourself because you happen to be a teacher. Why couldn't you arrange for the costum? From where do you think I would be able to procure it?" and so on. I couldn't put in a word edgewise to remind her that she herself had taken the responsibility. We all were totally unprepared for such unwarranted rudeness, but at that moment the only thought uppermost in my mind was where I could get anything like a costume, with the city so far away and the time so short. And even if we sent her on the stage with a kurta pyjama borrowed from a hosteller - a thing unheard of - would she have in that state of mind the capacity to recite "Here with a loaf of bread beneath the bough" and similar gems?

We managed to start. The musical inauguration and Pandora's Box went off according to plan with the incense smoke gustily filling the stage. With the enthusiastic clapping ringing in my ears, I wondered whether I would be able to face the audience and announce the untimely end of the girls' entertainment - a humiliation for the girl students as well as a personal humiliation tome. But just then (heaven sent) teacher stole in behind the curtains and whispered dramatically, "The show has to stop! The princess is dead!" And as I heard the announcement on the stage that because of the death half an hour ago of Princess Manoramaraje all the Gathering activities had to be brought to a close, a flood of relief gushed through my taut nerves. I had known the princess personally. She was a very friendly and lovable girl. She had been ill for a, long time and been cut off in the prime of her youth. But no such thought nor any sorrow struck my one track mind at that moment. The grief I would have normally felt at the happening was substituted by a criminal relief for which I felt ashamed of myself. Fifty six years have passed since, but I can still feel the intensity of that experience. Our potential Omar Khayyam suffered from a nervous breakdown and died two years later. I wonder if her hysterical outburst was an indication of her unbalanced state of mind to follow.

In the fiftyfive years since I left College and Indore, I have been to Holkar College only twice, once in 1944 in company of shri D.D. Sathe (I.C.S.) my student/friend and Prof. Gole's nephew, who wanted once again to visit the old haunts, and then again when Prof. Yarde proudly took me to show me the new impressive looking buildings across the road-the Art and Commerce College and the Library. It was lovely to see the expansion and the progress, the extended educational opportunities to the young. But I feel nostalgic for the old red dilapidated buildings only which meant our Holkar College half a century back.

In spite of the small number of visits to Holkar College (mainly because almost all the new people were strangers) my links with the College were never rusty and the relationship never broken. I have been fortunate in having received, in my home in Dehra Dun, quite a number of my Holkar College associates-my teachers and students. Every time somebody came it was a joyful thrill, a fresh breeze from home. But as I realise that now most of these friends had departed, I remember that simple but poignant line of Charles Lamb,

"All all are gone, the old familiar faces."

What I have written may be insipid, signifying only the garrulity of old age. But I must say I have enjoyed writing it. I must thank you, Maheshji, for compelling me to take this trip into the past. Momentarily I stood on the threshold of youth, my white hair turned into black. Once again I was Sumati Bhandarkar after being Sumati Bagchee for fiftysix years. Vanished faces came alive, one by one, out of the dimness which had encircled them for so long. The present was made to release its pressure and to stand aside, making room for the bygone days to peep out with their load of joys and sorrows, hopes and despair, blame and appreciation, blessings, rewards falling into undeserving hands-a seemingly neverending list of commas to be completed only when the final fullstop comes. The eight decades have been richly loaded and now with a full heart I can say at eighty which I could not say at twenty - Thank God for everything! (and most of all, for the white hair)!

होलकर कॉलेज

वे दिन, वे बातें

– अक्षय कुमार जैन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जब मुझे टायफाइड हो गया और पिताजी ने स्पष्ट इंकार कर दिया कि अब वहाँ अध्ययन जारी नहीं रह सकता तो मैंने अपनी बड़ी बहिन को पत्र लिखा कि वे माँ से कहकर मुझे अपने पास इन्दौर बुला लें. मेरे इस प्रस्ताव से वे बड़ी प्रसन्न हुई. इस प्रकार अगस्त १९३४ में मैं इन्दौर पहुँचा.

मालवा के संबंध में यही सुना था कि जिस प्रकार बनारस की सुबह और अवध की शाम सुप्रसिद्ध है उसी प्रकार मालवा की रातें मशहूर हैं. और सचमुच मैंने देखा कि वहाँ की रातें मधुर और सुखद हैं. इन्दौर में उन दिनों लू नहीं चलती थी और न ठिठुराने वाली सर्दी ही पड़ती थी. वहाँ का मौसम ऐसा था कि देवताओं का भी मन वहाँ रम जाय, मैं तो युवा हृदय था.

होलकर कॉलेज में मुझे प्रवेश मिल गया और इस प्रकार इन्दौर प्रवास के अगले तीन वर्ष जीवन के मधुरतम वर्ष सिद्ध हुए.

इन्दौर का पहला साल बड़े श्रम और कशमकश का रहा. नई जगह, नया वातावरण. काशी विश्वविद्यालय और होलकर कॉलेज में असमानताएँ होते हुए भी कुछ समानताएँ भी थीं. यहाँ का वातावरण हिन्दीमय और साहित्यिक था. सांस्कृतिक कार्यक्रमों की कमी न थी. संगीत और नृत्य, कवि-सम्मेलन और नाटक बड़े लोकप्रिय थे. इस प्रकार एक वर्ष में मेरा मन यहाँ इतना रम गया कि जब बी.ए. की परीक्षा देकर १९३७ में लौटने लगा तो हृदय इतना भारी था कि मैं उसे आज तक नहीं भूल पाया. बरबस कुछ समय बाद ही कुछ महीनों के लिए मैं फिर भाग कर इन्दौर पहुँचा था.

इन्दौर और मध्य-प्रदेश की पुरानी स्मृतियाँ इतनी मीठी, रोमांचक और सरस हैं कि हृद्रोग के बाद वर्षों ट्रैंकुलाइजर लेते रहने के बाद भी वे मन-मस्तिष्क पर वैसी की वैसी जमी हुई हैं.

उसी जमाने में हुए कुछ सम्मेलनों का ध्यान बरबस हो रहा है. ऐतिहासिक अधिवेशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन का हुआ था. गांधीजी उसकी अध्यक्षता करने आये थे, और स्वागताध्यक्ष थे सेठ हुकमचन्द. अधिवेशन कई कारणों से स्मरणीय कहा जायेगा. गांधीजी की अध्यक्षता तो थी ही, वहाँ के बाद से ही हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रश्न सामने आया था. और राजर्षि पुरषोत्तम दास टण्डन ने महात्मा गांधी की भाषा नीति का विरोध खुलकर किया था. और इस प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यक्षेत्र में एक नये आयाम का सूत्रपात हुआ था. महीनों तक हमारे और क्रिश्चियन कॉलेज में वाद-विवाद का विषय भी प्राय: यही रहा था.

फिर मुझे याद आ रहा है अखिल भारतीय विज्ञान कांग्रेस का इन्दौर अधिवेशन. उसकी अध्यक्षता करने बंगाल से प्रो. प्रफुल्लचन्द राय आये थे. हमारे प्रिंसिपल बसु बड़े ही रिजर्व प्रकार के व्यक्ति थे. विद्यार्थियों से बहुत निकट सम्पर्क वे नहीं रखते थे. किन्तु उस अवसर पर उनकी गतिशीलता बढ़ गयी थी और विद्यार्थी संपर्क भी स्पष्ट दिखाई देने लगा था. उनकी कन्या कुमारी कल्याणी मेरी सहपाठिनी थी. हम दोनों की ड्यूटी विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष की सेवा में लगी थी. नाम मेरा कुछ ऐसा है कि प्रो. राय ने मुझे बंगाली समझ लिया. कल्याणी तो उनके साथ उन्मुक्त रूप से बांगला में बातचीत कर लेती थी किन्तु मैं असमर्थ था. उनकी वह झिड़की मैं आज तक नहीं भूला कि ''तुम्हें लज्जा आनी चाहिए, तुम अपनी भाषा में बोल भी नहीं सकते, अंग्रेजी में बोलते हो.''

अगले वर्ष क्वेटा में भयंकर भूकंप आया था. भूकंप पीड़ितों की सहायता के लिए हम कुछ युवाओं ने एक नाटक मंचित करके कुछ धनराशि वहाँ भेजने की योजना बनाई. नाटक के रिहर्सलों का प्रबंध तो हो गया किन्तु टिकट इतने भी न बिके जिससे थियेटर आदि का खर्चा निकल जाता. हम सब चिंता में थे कि तभी किसी ने बतलाया कि इन्दौर के भूतपूर्व महाराजा तुकोजीराव उन दिनों वहाँ हैं उनसे हमें मिलना चाहिए. हम तीन-चार मित्र

महाराजा के पास गये और उनसे एक अच्छी राशि प्राप्त हो गई. ये घटना इसलिए नहीं भूला कि महाराजा तुकोजीराव ने हमारे सम्मान की रक्षार्थ दान न देकर अपने लिए हाल में आगे की दो पंक्तियाँ ही रिजर्व करने की बात कही थी. अभिनय से दो दिन पूर्व उनके कार्यालय से यह सूचना आई कि बच्चें उन सीटों के लिए भी टिकट बेंच दें और उससे जो आय हो उसे भी भूकंप पीड़ितों को भेज दें. आगे की सीटों की टिकट बेचना हमारे लिये सरल था. इस प्रकार हमारी समस्या हल हो गई.

१९३५ में कांग्रेस की स्वर्ण-जयंती के अवसर पर राष्ट्रीय विचारों के हम कुछ विद्यार्थियों की गतिविधियाँ उस ओर बढ़ गई. उसी अवसर पर श्री सूरजमल जैन और श्री मिश्रीलालजी गंगवाल (दोनों अब दिवंगत) के संपर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ था. जिस राष्ट्रभाव का बीजारोपण काशी विश्वविद्यालय में हुआ था, उस पर जल उसी समय पड़ा तो बाद को पल्लवित हुआ.

मैं स्नेहलतागंज के जिस मकान में रहता था उसी के एक भाग में एक सेठ रहते थे. जिनका मुख्य कार्य सट्टा था. मुझे यह इस प्रकार पता चला कि हमारे घर टाइम्स ऑफ इंडिया अंग्रेजी का पत्र आता था. एक प्रति उसकी उन सेठ साहब के यहाँ भी आती थी. मैं यह जानता था कि वे अंग्रेजी बिल्कुल नहीं जानते. पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे उस पत्र में जो व्यंग्य चित्र ''पॉप'' आता था उसी को देखने के लिए पत्र खरीदते थे. जब मैंने उनसे अपने पत्र के उस छोटे से अंश को काट लेने की बात कही तो वे बहुत प्रसन्न हुए. दरअसल वे उसे देखकर सट्टे के अंक का अनुमान लगाया करते थे. ये बात उन्होंने स्वयं मुझे बताई थी.

उन्होंने ही मुझे यह बतलाया था कि कुछ समय पहले स्वनाम धन्य क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह तथा अन्य, अंग्रेज सरकार की निगाह से बचने के लिए उसी मकान में आकर रहे थे, जिसमें अब वह और मै और मेरी बहन-बहनोई रह रहे थे. उन्होंने कितनी ही घटनाएँ उस समय की सुनाई थी. उनमें से एक मैं नहीं भूला हूँ. झाबुआ के एक नवयुवक को अपने दल में दीक्षित करने के लिए जब जलती मोमबत्ती पर हथेली रखवाई जा रही थी तभी वे सेठ वहाँ पहुँच गये थे. और उसके अगले ही दिन आधे दर्जन के लगभग वे क्रांतिकारी इन्दौर छोड़कर कहीं अन्यत्र चले गये थे.

हमारे कॉलेज में उन दिनों कुछ हस्तियाँ और भी थीं. डॉ. प्रफुलचन्द्र बसु के अलावा प्रो. इमेरिटस चैस. ए. डॉबसन, प्रो. बोरगाँवकर, डॉ. एस. देशपांडे, प्रो. हरजीवन घोष, एस.एन. घर, प्रो. धारीवाल, प्रो. पद्मनाभन, पं. चतुर्वेदी तथा प्रो. कमलाकांत मिश्र को मैं कभी नहीं भूल सकता. उनका पितृतुल्य स्नेह कोई कैसे भूल जाये? पर प्रो. केसरीलाल बोर्डिया का हम छात्रों के साथ मित्रवत व्यवहार तो हमारी धरोहर बन गया था. नाटकों के सफल अभिनय उन्हीं की देख-रेख में होते थे. और राष्ट्रीय तथा सामाजिक कार्यों में भी अंग्रेजी अध्ययन के अलावा उनका दिशा निर्देश सदा रहता था.

उस समय की एक दु:खद घटना भी मैं नहीं भूल पाया हूँ. हम से दो वर्ष आगे था एक छात्र इन्द्रभूषण दास. बहुत प्यारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में सहयोग करने वाला. जाने क्या हुआ कि एक दिन जब मैं कॉलेज पहुँचा तो हमारे मित्र वर्ग को दु:ख में डूबा पाया. सब मेरी प्रतीक्षा कर रहे

– अक्षयकुमार जैन

सुप्रसिद्ध पत्रकार और लेखक श्री अक्षयकुमार जैन १९३४ से १९३८ तक होलकर कॉलेज के विद्यार्थी थे. बाद के वर्षों में नवभारत टाइम्स के प्रधान-सम्पादक, समाचार-भारती के अध्यक्ष एवं प्रेस-कॉसिल के सदस्य के रूप में तथा पत्रकारिता और साहित्य के अनेकों संगठनों से जुड़े रहकर अपने प्रभावी कार्यों से उन्होंने सम्मान और प्रतिष्ठा अर्जित की. हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता के लिये, उनकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिये १९६७ में उन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया परंतु सरकार की भाषाई नीतियों के विरोध में उन्होंने यह सम्मान अगले वर्ष लौटा दिया.

इस संस्मरणात्मक लेख में उन्होंने होलकर कॉलेज के अपने विद्यार्थी जीवन के ४ वर्षों को आत्मीय स्नेह से याद किया है.

थे. मालूम हुआ कि पिछली शाम दास ने विष खाकर आत्महत्या कर ली. कारण क्या हुआ? कुछ समझ में नहीं आया. हमारे कॉलेज में सह-शिक्षा थी, कुछ लोग उसे एकतरफा प्रेम का मामला बताते थे. तो दूसरे पारिवारिक परिस्थितियों का. जो भी रहा हो इन्द्रभूषण की स्मृति मानस पर आज भी अंकित है.

समय का अंतराल हुआ. १९६५ में ३० वर्ष बाद मध्यप्रदेश फिर जाना हुआ. इस बार अखिल भारतीय समाचार-पत्र सम्पादक सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में मैं पचमढ़ी गया जहाँ अधिवेशन हुआ था. पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र उन दिनों वहाँ मुख्यमंत्री थे और एक और (पूर्व मुख्यमंत्री) श्री अर्जुनसिंह भी मंत्रिमंडल के सदस्य थे. नवयुवक और सुदर्शन अर्जुनसिंहजी का दो दिन वहाँ साथ रहा और मैं उनकी योग्यता, कार्यकुशलता तथा सौजन्य का कायल हुआ. लौट कर मैंने उनके सहयोग के लिए धन्यवाद का पत्र भी लिखा था. उस समय मध्यप्रदेश के कुछ प्रमुख दर्शनीय स्थलों की यात्रा भी हमारे साथियों के साथ करने का सुयोग हुआ था. तभी कान्हा अभयारण्य देखा था और तभी जबलपुर की नर्मदा नदी का भेड़ा घाट और संगमरमर की चट्टानें भी देखी थी. खजुराहो भी उसी यात्रा में गया था. उसके बाद भी मध्यप्रदेश खूब घूमा हूँ और उसे अपना घर मानता हूँ, जहाँ मैं शिक्षित हुआ, जहाँ मैंने तरुणाई और जवानी देखी उस मध्यप्रदेश को कैसे भूल जाऊँ.

उस समय के अपने कुछ साथियों को भी कभी नहीं भुला सकता. महेन्द्रनाथ नागर, जो बाद में राज्य के सूचना निदेशक पद पर रहे. मदन मोहन खार, जिन्होंने राज्य में गृहमंत्री का पद संभाला. सहपाठी कवि मुक्तिबोध और वीरेन्द्र कुमार, उमाकांत त्रिवेदी, प्रो. विष्णु प्रसाद श्रीवास्तव, प्रो. श्याम नारायण बाजपेयी के नाम मेरे दिल में बसे हुए हैं. मनोहरसिंह मेहता जो मुझसे सीनियर थे किन्तु मित्र थे, बाद में तो वे संबंधी भी बन गये. राजकुमार सिंह तथा देवकुमार सिंह कासलीवाल एवं उज्जैन घराने के सेठ भंवरलाल सेठी के दो पुत्र अपने सौजन्य के कारण मन पर छांये हैं.

होलकर कॉलेज में ग्वालियर के भूतपूर्व महाराजा के साथ टेनिस खेलने का सुअवसर मिला था. उनकी पत्नी राजमाता सिंधिया तथा पुत्र माधवराव सिंधिया अब राजनीति में दो अलग-अलग दलों के नेता हैं. उन दिनों शायद अंग्रेज सरकार की किसी बात पर नाराजगी के कारण महाराजा को इन्दौर में रहना पड़ा था. ७६ वर्ष की आयु में अब पुरानी यादे धुंधली पड़ती जा रही हैं. पर मित्रों के साथ पाताल पानी (जहाँ तात्या टोपे रहे थे) की यात्रा और महू जाकर अंग्रेज़ी फिल्में देखने जाने की बात भूली नहीं है. कितने साथी चले गये, कुछ ही शेष हैं पर उस समय की हम लोगों की अभिन्नता, आज ढूंढे भी न मिलेगी.

अब जिन बहिन शांताबाई और बहनोई नेमीचन्द जी के साथ रहा था. वे भी नहीं रहे.

साहित्य के क्षेत्र में मध्य भारत साहित्य समिति और वहाँ से प्रकाशित होने वाली पत्रिका ''वीणा'' और उसके सम्पादक कुसुमाकरजी को कैसे भूल जाऊँ? जिन्होंने मेरी अनेक कहानियाँ और गद्य काव्य छापे थे. कुसुमाकरजी तो पत्रकारिता में बाद में हमारे सहयोगी ही रहे और अब वे भी नहीं रहे.

श्रद्धेय दादा माखनलाल चतुर्वेदी के प्रथम दर्शन इन्दौर में ही हुए थे. बाद को उनके आशीर्वाद के पत्र बराबर मिलते रहे.

कविवर बच्चनजी को हमने इन्दौर आमंत्रित किया था. उनसे पूर्व लखनऊ के दुलारेलाल भार्गव भी पधारे थे. तब कविता पाठ की धूम सी मच गई थी.

खेल के मैदान की भी याद आती है तो मेजर सी.के. नायडू, सी.एस. नायडू, मुश्ताक अली, जगदाले और अन्य अनेक साथियों के चित्र सामने आ जाते हैं. टेनिस का खेल भी बहुत लोकप्रिय था जिसमें अलग-अलग कोर्टों में हम सब खेलते थे.

हॉकी का ध्यान आते ही तत्कालीन मुस्लिम वार्डन डीन साहब का ध्यान आना स्वाभाविक है. वे जब कार्यवाहक प्रिंसिपल होते थे तो शेरवानी के नीचे टाई अवश्य दृष्टिगोचर होती थी. हम उस समय की प्रतीक्षा करते थे क्योंकि हर प्रार्थना ''ना-ना'' करते हुए वे मंजूर कर लेते थे. वे प्रायः हॉकी के बड़े मैचों के रेफरी हुआ करते थे.

हिन्दी तथा मराठी साहित्य सभाएँ भी थी. और सब में अधिक गहमागहमी हमारी ड्रामैटिक सोसायटी में रहती थी.

उस समय होलकर कॉलेज में साहित्यिक, सांस्कृतिक और क्रीड़ा जगत सभी अपना विशेष महत्व रखते थे. आज उस समय की यादें बड़ी मधुर और स्मरणीय हैं. क्रिश्चियन कॉलेज में प्रो. डेविड थे और साथी प्रभाकर माचवे तो आज भी जब मिल जाते हैं तो उस समय की बातें याद आ जाती हैं.

सहशिक्षा के कारण वातावरण बड़ा शालीन और गरिमामय था. कभी कोई ऐसी घटना नहीं हुई जिसे दुर्घटना कहा जा सके.

अपने जीवन के होलकर कॉलेज के वे दिन कभी भुलाये नहीं जा सकते. सच तो यह है कि जब तरूणाई में भी बचपना था अब बुढ़ापे में जवानी जाने-कहाँ चली गई, उर्दू का यह शेर याद आता है.

तिफ्ली गई व आलमें पीरी अयां हुई,
हम मुन्तज़िर ही रह गये अहले शबाब के।

□□

अभिनव स्वयंवर

– प्रो. डी.एम्. बोरगाँवकर

देश देश के शासक आए
'यूनो'-निर्मित मण्डप में।
शांति-सुंदरी स्वयंवरा बन
आई ले माला कर में॥
जनकपुरी में यथा जानकी
आई थीं ले वरमाला।
लोभ स्वर्ण-दक्षिण का तजकर
उत्तर को मन दे डाला॥
लेकिन अब तो नहीं रहा है
अन्तर उत्तर-दक्खिन का।
यदि अन्तर है तो पूरब-
पश्चिम के जीवन-दर्शन का॥

यंत्र-जाल, विज्ञान-चमत्कृति
पश्चिम-सज्रित अणुबम् से।
पर पूरब दिखता पूरित है
शोषक-शोषित संगम से॥
नभ-चुंबी प्रासाद! बना है
पश्चिम रावण की लंका!
''पंच वटी'' प्रासाद पूर्व का
घहरा मानवता-डंका!॥
'सीटो' - 'नेटो' - 'व्हीटो' की
चीखों में पश्चिम डूब गया।
पर पूरब देता है जग को
''पंचशील'' का मंत्र नया॥

नीति-तुला पर तौल लिया,
क्षण को न हुई विचलित बाला-
भारत-हृद्--सम्राट--सम्मुखी
नत-वदना बोली विमला-
''एक नारि-व्रत राम-सदृश तुम!
स्वीकारो यह वरमाला।
पुनर्जन्म लेकर आई मैं
जन्म-जन्म संगिनि कमला!''
पुष्प-वृष्टि 'बांडुंग' -दिशा से,
देख जिसे ''सीटो'' झल्लाई।
अणुबम् की ज्वालाएँ निकलीं,
वर-माला न तनिक मुरझाई!॥

– होलकर कॉलेज टाइम्स – १९ नवम्बर – १९५६ से

Speech of Pandit Malaviya at Holkar College, Indore

Ladies and Gentlemen,

I am very very thankful to your Principal for having set a very good example in a short speech. I can do no better than that. I have been running about from early morning but I could not go back from Indore without paying a visit to your College.

Now, what for are you educated? I do not know whether many of you have already considered the matter and decided in your mind what lines you are going to follow, what you are educated for, because it is no use going on without any purpose or definite ideas. It has been going on for a long time past but it has not borne good results. Every student now who enters a College ought to be making up his mind as early as practicable whether he wants to be a lawyer, which many of you would not like because the bars are over-crowded, or he wants to be a scientist.

The world is situated differently to-day. In the countries of the West they have got different governmet. You find vocational guidance being given to students to help them to decide what course they should follow. And every care. is taken to see that by the time a student goes to school he should know definitely what he wants to join, some vocation, some craft, some trade or any thing like that. Those who wish to go up for higher school or advanced study go forward to the university, but even there care is taken to see that every student there should receive such education which should fit him for life. After twenty-five years of school and college education many of our young men are unable to find a living. What could be more tragic, distressing?

Now, possibly, why should I say possibly, probably I know that some gentlemen have resolved not to marry in despair. This sort of thing will not do. It is laid down that every young man and woman must marry in good time, and that has enabled us to live as a nation. But the question arises with what should we support our families. Government service can in no country accommodate more than one or two percent of the population. It was not more than 2% some time ago. I do not remember the exact percentage now, but it cannot be more than 2%. 98% of the people are supported outside Government service. So you cannot expect that every man will find Government service. Therefore, you must pick up some occupation which will give you chance. The medical profession can accommodate a large number. The number is growing but not so much as it ought to.

Less than 75 years ago, the Japanese were in a very unhappy condition. Ricardo was given all the powers of

The staff and students of Holkar College had an opportunity to listen to Pandit Madan Mohan Malviyaji in 1936. The interesting and instructive lecture delivered by Malviyaji is being reproduced here from the college Magazine of that year.

emperor. From that time patriotism began to be preached as the religion of the people and Japanese young men and women have turned out as practical patriots. They have got patriotism as their religion. That is their moral code, and they work and grow for the nation.

Now, I do not know whether many of you have, I hope you have, and you must have some thing to inspire you to lead you to action, enthusiastic action and there is nothing I can think of to-day which will inspire you better as the sense of your love for your country. You are happily in a State where you have Swaraj, and the civic sense can be much better developed here than anywhere else. I hope you are developing this civic sense, the right that you belong to this State and to this College, that you are ever anxious to promote the welfare of your College, a centre where young men are trained for many vocations of life. If you select your point of view with that kind of consciousness, your selection will be very different. To-day there is a great rush for certain subjects. But think what will they bring to you and to the country. And unless you are able to answer such a question you have not discharged your duty to your country and yourself. There is a great need just now to inspire you to think in that light. That sense of patriotism has perished and India is as much open to every citizen of the world.

Take any country. Englishmen are proud of their country. You will not find any Englishman unpatriotic. He uses his own country's products. An Englishman would hardly wear foreign cloth. He wants to promote the goods of his countrymen. If he purchases cloths from other countries he is not helping his country. He has that sense of patriotism. So also any other material. He is proud of his schools Think of Harrow and Eton. Generations go after one another to the same College and School. They will do any thing to keep up the honour of the School and the College. They are proud of their Universities, Oxford, and Cambridge. And the best men have come from Oxford and Cambridge. "I am an Oxonian," they will say. Have you the same ideals? I should like to know that. I hope you have the same developing sense of patriotic feeling for your State and your country. "My State is the best of all, my college is the best of all, my country is the best of all." That is the sort of feeling which helps the Englishmen to help themselves.

Then take the Japanese. How are they competing with other countries like Great Britain, U.S.A., and others which have had a long period of advantage in industrial progress. For small remunerations they are competing with other nations in the open field in matter of industry. How do they do it? They do not ask for high salaries. Salaries are comparatively very low.

When Tokyo University was established, a lot of people used to go to law. But then they found that law did not produce national wealth. It only divides the national wealth which has been produced. Your aim should be to produce more national wealth, to take up some profession which will make you add some thing good. Every profession is honourable, every profession deserves to be respected. It may not get you high remuneration. Take up professions where there is room for work.

In this respect, we educationists hae failed, I am sorry to tell you. We ought to organise the whole system of education so as to be sure that every matriculate will be able to earn a living some how or other. He must know where he is going to earn his living. But then every student cannot select one and the same profession. See what suits you most. You should study science, and I am glad that there is a great interest for science in your College. You should be inclined to take up some manual labour and do it as a service done to the country. Wherever good honest work is found, there the students of Holkar College should be found willing. Shouldn't they?

I am glad to see your bright faces, but I wish still good developed physique. You have to render an account of your College before the bar of the student world. And you will be asked to show how you have been benefited by this fine Holkar College situated in one of the best climates, in Malwa. When I came here before, there were only 150, and now there are 750 students. There should be 7000 students in Indore and a University should be established. Your College is lovely, playgrounds are lovely, and no student is justified if he does not make himself a fine athelete. Now, gentlemen, this is a serious business. The question is, I want to ask yourself whether you are giving yourself the best chance of physical development in your College. If there are not proper arrangements, ask for better arrangements. Now I shall give you a small couplet and take it as a service from me;

सत्येन ब्रहाचर्येण, व्यायामेन च विद्यया।
देशभक्तयात्मत्यागेन, सम्मानार्हः सदाभव॥

These qualities of truthfulness, continence, physical development, love of knowledge, patriotism, and spirit of selfsacrifice, I want you to cultivate every one of you. There is no religion higher than truth. Think truth, speak truth, live truth. Your life should be a life of truthfulness and therefore, ''सत्येन'' come first. ''ब्रहाचर्य परोव्रत: etc'' - you should remember that the ancient Rishis in this country divided a man's life into four parts, ''ब्रहाचर्य'' for 25 years. Normal life of man was supposed to be of 100 years, and I was glad to hear from my friend, Mr. Ramagyan Dwivedi of Dhar, that his father lived up to the end of 130 years. A life of 100 years, therefore, should not be regarded as an unattainable ideal. May all live a hundred year. May I see for a hundred years. May I hear for a hundred years. May I speak for a hundred years. May I be prosperous and strong for a hundred years. Therefore, ''ब्रहाचर्य'' will give you strength and longevity.

You must take exercise, both girls and boys. ''सूर्यनमस्कार'' must be practised. There are other exercise also. Then comes patriotism. Without this these qualities are of no use. Take the examples and story of Sharmistha. For the sake of my community I must expect this position. For the sake of the country, or the community, the princess accepted the position of the slave girl. That is the ideal which existed in ancient India, and I wish you to cultivate that ideal. That is all that I have to say.

Adopted by Moolchand Joshi.

अथ कॉलेज-कथासार: प्रारंभ:

- कु. कृष्णा खांडेकर

श्रीगणेशायनम:

आधि वंदितों कॉलेजास। जें अनेक चमत्कारनिवास।
जेथली प्रत्येक गोष्ट बुद्धिस। नाविन्यपूर्ण भासते ॥१॥

नंतर वंदू प्रोफेसर। जयांस न कोणाची सर।
नातरी कॉलेजचे ईश्वर। ह्मणोनि तरी वंदावें॥२॥

विचारिलास प्रश्न गंभीर। कैसें वर्तावें कॉलेजकन्यांसमोर।
जाणाया तयाचें उत्तर। सावधान होईजे॥३॥

जाण रे मित्रा कर्म गहन। समजणें कॉलेजकन्या-लक्षण।
दृष्टी असे जरि विचक्षण। समजें तरी थोडेंसे॥४॥

जेव्हा कॉलेजकंन्या जवळी। कांही करूं नये ते वेळी।
स्वस्थहि रहाणें ये काळीं। दोषास्पद ठरतें रे॥५॥

गोष्ट लहान वा मोठी। असो खरी अथवा खोटी।
त्या समजति त्यांचियेसाठीं। स्टुडेंटानें केली ती॥६॥

सायकलवर फास्ट जाल। शान दाखविणारे ठराल।
स्लो जातां शब्द 'खट्याल'। कानावरी पडेल तैं॥७॥

ह्मणोनि सायकलवर बसावें। परी कॉलेज-कन्या-मार्गे न जावें।
नातरी उपहासा पात्र व्हावे। मार्ग तिसरा नाहीं बा॥८॥

दोन दिवस लागोपाठ। कॉलेज-कन्येची पडली गांठ।
फिरण्याचा मोडणें परिपाठ। भाग मग पडतसें॥९॥

जात असाना फिरण्यास। दहा वर्षे त्याचि रस्त्यास।
जर न सोडाल तयास। 'वात्रटपणा' पदरीं कीं॥१०॥

जेव्हां कॉलेजकन्या आसपास। बंदी मोठ्यानें बोलण्यास।
हा नियम उल्लंघिल्यास। शब्द खालिल ऐकावें॥११॥

''आमुच्या कानावर पडण्यास। हा एवढा घेतसे त्रास।
म्हणून कींव येतसे आम्हांस। व्यर्थ! व्यर्थ!! बिचारा!!!''॥१२॥

जाल जर त्यांच्या मदतीस। त्या करितील उपहास।
न जाल तर स्त्री दाक्षिण्यास। कलंक व्यर्थ लाविती॥१३॥

मित्र असाना पंधरा सोळा। घरीं जाण्या होऊं नका गोळा।
लेडी स्टुडंटांना मार्ग मोकळा। सदा सर्वदा ठेवावा॥१४॥

कॉलेज-कन्या सायकलवरी। जरी कां ॲक्सिडेंटा करी।
दोष येईल तुमच्यावरी। म्हणोनि सदा जपावें॥१५॥

कॉलेजकन्या असतां वर्गात। डिफीकल्टीज नसाव्या जास्त।
नातरि बसे अग्नि नेत्रांत। थंड तुम्हां करिल तो॥१६॥

हीच येथलीं असे ब्यूटी। अग्नि करी हिवाची ड्यूटी।
मानावी खरी अथवा खोटी। 'फॅक्ट' म्यां सांगितली॥१७॥

कॉलेजकन्या हुषार नसतां। मार्क जास्त तिनें मिळवितां।
विचार त्यावरी न करितां। स्वस्थ बसणें उचित पै॥१८॥

ज्यास वाटतें कीर्ति व्हावी। कॉलेज-कन्येशीं ओळख ठेवावी।
येतां जातां नमस्कारावी। कॉलेज-कन्या; तत्व हें॥१९॥

आहेत गोष्टी अगणित। परी ग्रंथ-विस्तार होत।
म्हणोनी न सांगणें उचित। ये वेळीं वाटतें कीं॥२०॥

ऐशी ही कथा सुंदर। जरी म्यां वर्णिली साचार।
तरी उरी धडकी फार। 'कॉलेज-कन्या भीतीनें॥२१॥

म्यां कथा सांगितली जरी। अनुभवली नाहीं गोष्ट खरी।
वर्तनीं पाहिली दुज्याच्या परी। चौतिसाव्या सालांत॥२२॥

इतिश्री कॉलेज-लीला ग्रंथ। असे सदा शिष्टांना संमत।
म्हणोनिया श्रोते परिसोत। प्रथमोध्याया गोड हा॥२३॥
॥ श्री कॉलेज-कन्यार्पणमस्तु॥

- होलकर कॉलेज-पत्रिका १९३६ से

Marathi Literary Association

The association is working vigorously with Mr. S.K. Nirkhe as its secretary. Lectures by Prof. Altekar, Prof. Chaphekar and Mr. J.S. Karandikar, were organised. Mr. S.K. Nirkhe edited the ''Seva'' which has been published in manuscript and kept in the Literary Exhibition of the All India 20th Marathi Sahitya Sammelan. The Association is proud that our College has sent two of its members, Messers S.K. Nirkhe and B.N. Pendharkar, as delegates to the 20th Marathi Sahitya, Sammelan.

- 1936

Science

Congress at Indore in 1936

The Twenty-third Session of the Indian Science Congress was opened on Thursday, January 2nd, 1936 at 5.30 p.m. by His Highness the Maharaja of Indore in the King Edward Hall, Indore City, in the presence of a large gathering of delegates and visitors. The Chairman of the Local Reception Committee, Dr. P. Basu, welcomed the delegates and visitors in a speech as follows :-

'Your Highnesses, Ladies, And Gentlemen,

As Chairman of the Reception Committee of the Twenty-third Session of the Indian Science Congress it gives me great pleasure to extend a hearty welcome to the delegates of the Congress assembled here to-night. They represent the best men of science in India, many of whom have achieved distinction in helping to extend the bounds of knowledge in various branches of scientific study and several of whom have established for themselves worldwide reputation for original research. I should not miss this opportunity of letting them know that Indore justly feels proud of having the honour of welcoming such distinguished scientists and providing a forum for them to discuss important scientific discoveries to which they have so ably contributed.

Ladies and gentlemen, when I talk of scientific discoveries I wonder how many of us present here fully realize the astonishing and bewildering changes which science has introduced into our ideas about the nature and structure of the universe of which we form a part. I am not a scientist nor even a student of science. But as average laymen we cannot but have an interest in what is going on around us. Scientific discoveries react upon the laymen whose ideas may not be quite accurate but which have or ought to have an interest even for the technical man. Science has made many things familiar to us and introduced vast changes in our ways of living. The exact nature of these things is yet unknown and their ultimate structure is yet the engrossing subject of research. But science has been grappling with these problems with greater success and ever increasing zest. Although the achievement of science has been extra-ordinarily great in the present century yet the final mystery has so far eluded its grasp. Pandora's box is being attacked with increasing success and new wonders are being revealed to us almost every day. To the ordinary man unacquainted alike with the highly specialized subjects of scientific study and with the evolution of the extremely delicate technique which is involved in scientific experiments the conclusions of physical sciences would appear to be incredible but for the wide and numerous confirmations by their practical application in the affairs of daily life. The practical results of conversion of sound into electricity and its reflection back from the ionosphere as seen in broadcasting, of ultra-violet and infra-red rays for therapeutic and photographic purposes, and of radium in various medical uses as also in accurately estimating the age of the earth from the helium and lead content of deposits have immense value to all human beings.

Physics with its complex mathematical formula has transported us to a stage where the new idea regarding the universe and its constituent factors is utterly strange to the traditional picture of the universe as it appears to the senses. On the one hand it has discovered the operation of the basic forces of the universe and tells us that it is finite but expanding in space, if space has been left with any meaning now, and that yet in the geodesic revolutions it is infinite. It informs us that we are being continuously bombarded by the mysterious cosmic rays, the source, origin and nature of which are as yet only hazily comprehended but which obviously have tremendous influence on the life and conditions on earth. Daring but fruitful experiments have been successfully carried out by which, in quest of nature's secrets, man has ascended fourteen miles above the surface of the earth. The imaginative stories of H.G. Wells which delighted us in our childhood no longer appear as fiction but threaten to be less romantic than the proven facts of the physicist.

Looking, on the other hand, to the structure of the constituent element of the universe physics tells us that matter is nothing but frozen energy and that the much familiar yet mysterious ray is probably the basic factor of which the universe is composed. It is yet a moot point whether this basic factor is merely a wave or a particle or both. The old philosophical question whether we exist in the ultimate sense is raised again by the work of the scientist and we are no nearer the end of our perplexity when we are told that what we see are probably point events in a geometrical configuration, mere depressions in a vortex of energy.

For long we knew matter as composed of elements and the elements as composed ultimately of atoms which were

indivisible. Lockyer's experiments with variations in the spectra of heavenly bodies and the law of periodicity raised doubts and indicated a more complex constitution of atoms. Even to-day the largest atom remains invisible even under the most powerful microscope. But it has been split up into parts which are a fraction in several thousands of the lightest atom. These are of course invisible but the ingenuity of the scientist has had photographs of the passage of electron and revealed its behaviour as electricity by photographic picture of its deflection under the magnet. Without understanding the technical arguments one can read with pleasure the romance proton, electron, and photon and wonder with the scientist whether we have yet reached the core of the originally indivisible atom.

In biology no less wonders have been achieved although they are less widely known. Darwinian theory of evolution has undergone considerable modification. Heredity and environment have been studied in greater detail with reference to variation in the species. A new science of ecology has grown, the application of which is bound to revolutionize man's existence on earth. Whether in studying the extension, modification, or disappearance of species in plant or animal life ecology must form the basic study in future. Its practical application in many of the south sea islands has helped man to live more comfortably over wide areas.

In heredity the old traditional idea of the mixture of blood has long been exploded and now we are right in the midst of the intricacies of hereditary transmission of characteristics as the scientist has passed from microscopic chromosomes to ultramicroscopic genes. They not only remain constant for the species but determine, the minutest details of what are transmitted from the parent to the offspring. Now we understand the reason why the great improvement in medical science has been unable to deal with hereditary diseases and has had to content itself mostly with what may be called contact diseases. Nature's protective measure for genes has remained unpenetrated although its working through the principle of dominant and recessive characteristics has been revealed. The progress of the science of eugenics is based wholly on the understanding and application of this principle.

Another momentous discovery of biology is the function of the ductless glands. As a boy I read in my text-book that these were remnants of organs which in the course of evolution had lost their functions and had thus been reduced to mere accretions. To-day it is known as a certainty that hormones have a dominating influence on the whole life including mental temperament and character. Besides the gonad and adrenal glands the importance of the thyroid gland has been studied with some detail. But the pituitary gland which is just below the brain is suspected to be the most important of all glands, determining and co-ordinating the working of the body as a whole. Indeed it is probable that we shall soon start saying that the pituitary gland is life itself. One hundred experts from seventeen countries met at London last month specially to study this particular gland. There is no doubt that medical treatment will undergo a revolution if the exact functions of these glands can be properly understood and their working controlled. In a sense the discovery of insulin hs made man independent of the islets of Langerhans.

The borderland of physiology and psychology is being successfully attacked, and mental phenomena are being scientifically studied as manifestations of the individual as a whole. Psycho-analysis has studied more deeply than any other science the working of human mind as manifested in types of thought and conduct. The explosive effect of the subconscious mind has for the first time explained the impulsive aspect of human conduct. As in Darwinian theory of evolution so in Freudian theory of libido, too much emphasis is found to have been given to one aspect of the cause. Inhibition by repression in general rather than of one particular type is now known to be the dominating force in the subconscious mind. The main problem which now remains to be solved is the development of the technique of interpreting the manifestation of the subconscious mind as this expression is in terms of the cruder symbols by which the individual had been used to think or express himself in his childhood. The manifestation naturally varies according to the individual and more according to the social atmosphere through which he passed in his childhood. But he problem is being successfully attacked where details of the individual's early history are well known. There is no doubt that in course of time our ideas both of education and of treatment of the delinquent and the criminal will undergo fundamental changes.

The so-called spiritual phenomena are being studied experimentally and have, in several cases, been found to be mental reactions to the environment in conjunction with the subconscious mind. The simple psychological reactions of man in conditioning, de-conditioning, and re-conditioning of reflexes have all been demonstrated in animals in the famous experiments of Pavlov. Similar experiments by Watson have been successfully performed with the human child and the simpler phenomena of the child mind have been found to be very similar to those of Pavlov's dogs. We need not yet trouble ourselves with the more distant implications of behaviourism or impressionism which as a side issue has recently attacked the domain of man's aesthetic expressions. But there is no doubt that psycho-analysis has progressed so far that it expects soon to be set up as a more or less exact science. The implication of this to man's life is indeed great, much greater than even the scientist realizes. It can be found in some modern tendencis which appear to be somewhat pretentious as can be seen from the clinic of psychoanalysis, in one of the reputed centres of Europe, which purports to cure a woman of the mental disease called jealousy.

It is not necessary for me further to pursue the picture which is growing in the mind of the average layman as a result of

recent scientific discoveries. In less than a century conditions of human living have entirely changed. The means of locomotion differed only in degree and not in kind when Napoleon overran Europe and when Alexander or Caesar had marched out before him. The means of warfare in Napoleon's time did not differ in kind from those at the disposal of Charles V. The man of middle nineteenth century consumed mainly what his neighbourhood could produce. To-day the aspect of things is entirely changed. Mechanization of industries has immensely increased the materials at the disposal of man. The old means of locomotion have been largely displaced by the machine. Electricity and oil have introduced vast changes. Distance by land, air, and sea has been killed and the world has been knit together more closely than what neighbouring places used to be half a century ago. Life has been made more comfortable and the peasant to-day lives in greater affluence than the king of the middle ages. Amenities of life are continually growing. Human life is being saved in scores of millions through corporate measures for health and hygiene. In the applied sciences like industries, engineering, and medicine tremendous progress has been made. Life to-day is healthier, more efficient and more comfortable.

In ordinary social life the increased amenities of life, rapid means of communication, economic factors of a novel type, and the charm and dignity of life in its material plane have been introduced with the application of scientific principles of the affairs of daily life. The net result is that the old machinery of social life has been suddenly thrown out of gear and a new one has not been set up. There is thus a maladjustment in human personality which is yet to find its level and adjust itself to its new environment.

There is a subtle aspect in which the social dissolution has been inaugurated by science. The proverb that the old order changeth yielding place to new was an euphemism before, for man's social organization was conservative to a high degree. Certain social factors have appeared to break down this conservatism. But more in this direction has been the work of scientific discoveries than that of any other single force. Up to the nineteenth century science battled with religion and was the worse off in the affray. After Huxley, science gave up the battle in order to pursue more serious things but scientific method and scientific ideas have demolished the old religious and moral ideas dominated by a personal god. In this respect religion has failed to develop and fill the gap left by science. Copernican conception of the universe dislodged our earth from the central position which it had occupied under the Ptolemic system. In spiritual matters man still remains the Ptolemic outlook and thinks himself to be the pivot of the universe. Thus he allows himself to remain the central point of interest and care at the hands of a beneficent god. This is due to man's vanity in considering himself as the most important item of creation. Science has proved that earth is a minor factor in the solar universe, the solar universe an ordinary part of the galactic system, and the galactic system is only one of millions and millions of such systems. Science has also proved that the emergence of planets from a star is due to a conjucture of exceptional circumstances, the freak emergence of life a still rarer exception, and the earth is only a dead spec of dust out of the ashes. If there is a god watching in his laboratory, is he anxious for the little ant that gads about in the discarded ash? Is not life only a bye-product in that laboratory? Religion has failed to rationalize itself in this direction.

For long scientific ideas have been isolated from religion by habit, tradition, and inertia. But scientific method is proving more potent than even scientific facts. The method of doubt and of conviction by positive proof, which science has borrowed from philosophy and the technique of which it has so well developed, was irreverently thrust into spiritual matters and has penetrated every branch of thought. Thus the strongest factor, which held society together, compelled man to behave toward himself, to his fellow-men and even to the animal kingdom, which modelled thought, directed emotions, and controlled action, has been considerably weakened, leaving social expediency as the only guide to action and social decorum the only restraint on emotional expression.

Beyond and above social adjustment there is another and a more subtle adjustment which remains to be made. Such an adjustment was never achieved in the past except in rare individual cases. This is the balance of human personality. If this is ever achieved it will be by science itself as well as its method when applied to the study of human psychology and human emotions. Biology, experimental psychology, and psycho-analysis will all be requisitioned in the service. Knowledge of the laws of human mind must be applied in order to develop this equilibrium. Human mind in its existing conflict between the conscious and the subconscious as also in its more elemental forces vaguely called instincts must be analysed and co-ordinated. If there is such a thing as an urge in human life, what the great philosopher calls the *elan vital*, the application of the laws of the relevant sciences must be in accord with and in the same direction as life's urge. Although this urge may be fundamentally the same in all men, indeed in all life, yet its natural lines of development cannot be the same for all. Its extent and direction are bound to vary at least with heredity and environment if not with every individual unit. This must be properly studied and scientific measures adapted to each type. In order to be able to do so a condition precedent is that life and its subtler forces must be studied by the same dispassionate and objective method which science has applied to the study of the external world. This is more difficult than in the physical sciences, for here the researcher will have to battle with human passions and emotions which do not intrude into scientific studies and the existence of which acts as an obstacle to the application of scientific method. But if the science of life is to develop into a real science where forces are to be studied as they are in the physical sciences like physics or chemistry and if the

application of conclusions is to be as deliberate as in the applied science like medicine or engineering, the equilibrium in the developed human personality can only be achieved by patient work pursuing objective laws and eleminating all subjective aberrtions. This is vital to man's future, for in the absence of such adjustment leading to intellectual and emotional balance he, like Faust, may win the world and yet be damned. Biology and psychology seem to have already started on the way. Their conclusions must be applied by medical science and education, of which the latter is hardly conscious of its function in this direction.

One point must be emphasized before it is possible to develop a real science of life. All human knowledge is progressing by specialization. This is necessary as a sort of division of labour; also for concentrating attention along particular lines. The product of man's intellectual labour has immensely multiplied as a result of high specialization. Now it seems impossible that any one man will ever know the various branches and subdivisions of human knowledge. The days of encyclopaedists appear to have gone for ever and no body tries to gain a comprehensive insight into all the branches of human knowledge. But if a real science of life is to be developed and fruitfully applied toward efficient living the present state of leaving matters to chance must be replaced by deliberate planning. This can be done only when the preliminary work of co-ordinating and dovetailing the conclusions of the large variety of specialized study has been successfully attempted. My impression is that this has not only not been tried but its importance for the future of man has not been realized. This is not the work of the scientist nor, as it was once supposed, that of the philosopher. But this is a desideratum without which the application of scientific discoveries to human life must to a great extent remain ineffectual.

The scientist pursues knowledge for its own sake. There is no doubt that this is a high ideal, one of the highest that humanity has ever attempted to realize. But his work has also a practical bearing both from the cultural point of view and from that of greater efficiency. Without this the leisure, expenses, and facilities which must be provided to the scientist in an increasing measure cannot be guaranteed. Also as a pragmatic end the welfare of man, both material and cultural, is not a negligible objective to be pursued. I hope that attention will be directed to this aspect of the question and that the necessary technique for developing a comprehensive science of knowledge and its successful application for the betterment of the human species will be worked out in the same way as specialization has been pursued in all branches of human knowledge. This cannot be undertaken by the layman but must be done by men who have been highly trained in the scientific method. At present the whole work is left to private enterprise working for personal profit. This is not only insufficient but dangerous to society. In any case it leads to great wastage of men and materials and does not utilize the opportunities as well as they might have been. I believe that the spirit of adventure found in the pursuit of knowledge for its own sake will find equally wide scope in the pursuit of co-ordinating this variety of knowledge into one whole and applying it for the benefit of humanity.

There is a general feeling that the layman does not fully appreciate the work of the technical man of science and tries always to calculate things in terms of practical result. This is no doubt true but only to a limited extent. It is human nature to be more interested in what directly concerns it. Yet the opportunities which society offers to the scientist for carrying on his work have materially helped him in the pursuit of knowledge. To rouse further the layman's interest and make him offer greater opportunities to the scientist for carrying on his work little has been done by the scientist himself. For half a century after Huxley scientists have done little to popularize their discoveries and make them available in forms which will be understood by the average layman and which will interest him. In fact, even the expert in one specialized branch cannot always follow the work of another specialist in an allied branch of science. In recent years the work has again been taken up by men like Jeans and Eddington.

Ladies and gentlemen, I am not a scientist but I claim to be an average layman. I remember that for years I tried in vain to get at some popular exposition of Einstein's theory of relativity and what it meant. For more than ten years I failed to get at any popular literature on the subject which would help me to pursue the topic a little beyond the most elementary stage. A large sum of money was given as a prize in America to the author who would write the best book on the theory of relativity which would be understood by a man who had read no mathematics or any other technical science. I got that book but was out of my depths within the first ten pages. Then Eddington delivered that lecture which is so familiar to the layman and which is so dear to him as an introduction. Since then he others have written more technical things which can be followed with the help of that introduction book. The point that I want to make is that the scientist has a duty in popularizing his work in order to spread both culture and interest in his work. This can be done by the scientist alone and by no body else. My humble request to the great body of scientists assembled here to-night is that they may give some thought to us and help us occasionally to light our small lamps from dazzling torches which they carry about with them. We are not presumptuous to aspire to enter the highly ionized sphere of the scientist's activity but let him permit us to receive a few rays of his light of knowledge penetrating into the dense atmosphere in which it is our lot to live and move and have our being.

Ladies and gentlemen, I fear that I have now exhausted your patience. But I hope that I have not bored you more than what it is customary for a chairman of the Reception Committee. He seems to be the only man who, on an occasion like this, has the privilege of giving expression to the layman's

feelings before the technical experts. I have now only one pleasant duty to perform. His Highness the Maharaja Holkar has kindly consented to open the Twenty-third Session of the Indian Science Congress. We know the number of social engagements which he has got to keep and in which he plays a gracious part. We are, therefore, grateful to him for agreeing to come here to-night. I now request His Highness to declare this Congress open.'

His Highness the Maharaja of Indore, as Patron of the Congress, then addressed the meeting as follows:-

'LADIES AND GENTLEMEN,

A group of distinguished scientists have assembled here to discuss the work they have been doing during the past year and I need scarcely say how much pleasure it gives me to greet them in my Capital. I am a layman in scientific matters and I know that you will not expect me to make a show of an erudition that I do not possess; but I am also the Ruler of a State, placed by destiny in charge of the welfare of lakhs of people, and any thing that furthers the welfare of mankind naturally arouses my keenest interest. It is, therefore, in the practical results of scientific research and their application to the improvement of man's everyday life that I find to-day my greatest enthusiasm.

All the numerous branches of scientific activity medicine, agriculture, veterinary work, psychology, psycho-analysis, metallurgy, mathematics-which we label together under the general term "science" can and should have this common meetingplace, the betterment of human life. Science can do so much to render men and women happier and healthier and I would like to remark upon a few of the ways open to us by which we can take advantage of modern scientific discoveries. India's greatest problem is her poverty; add to this the vast size of the Indian continent and the fact that it is still, despite the industrialization of a few centres, almost entirely an agricultural nation, and one at once realizes how greatly the application of modern methods, of the results, in short, of scientific research and discovery, can help us in the solutin of that problem. The difficulties of distribution have largely been removed by the railway and the lorry; it is rather the problems of increasing the yield of the soil and of using our vast natural mineral resources that demand the most strenuous efforts of our scientists and the application of the results of their labours. For the proper tilling of the soil, the sowing of scientifically tested seed, and the thorough exploitation of the wealth lying beneath the ground can and one day ought to change India from a poor country to one of the richest countries in the world. Our scientific experts are not yet organized as they might be to this end and one thing which will, I think, have to be done before we can rely upon an adequate supply of trained men to fill gaps and to carry on an ever-expanding propaganda is to raise the standard of our university degrees to parity with those of London and of other famous places of learning. We have a great many famous scientists-Sir Jagadish Chandra Bose, Sir C.V. Raman, our President here to-day, to mention but a few-but are our young men receiving such training as will enable them to take the place of these great scientists when they have passed on?

To return to the problems before us, in many places including, I am happy to say, Indore - efforts are being made to improve agriculture, to improve not only the Kisans' implements but more especially the quality of the crops he sows; and our scientists have made some notable contributions to man's knowledge of plant life. Moreover, science has rendered possible a health and hygiene on the part of the common people that was unthought-of fifty years ago. Medicine, both preventive and curative, has advanced rapidly, and in general the scientific study of economics and social behaviour has improved almost beyond belief the possibility of our one day seeing a whole nation of healthy men and women. It is not, Ladies and Gentlemen, lack of knowledge from which we suffer; our problem lies mainly in the dissemination of the knowledge we have. India is so vast, the habits of its people so conservative, and their poverty so heart-breaking, that it is extremely difficult for the few that have the necessary knowledge to pass it on, whether they are the scientists themselves, or governments, or publicspirited individuals. The Co-operative Movement, in which I take a keen interest in Indore, is capable, when properly developed, of being used as an instrument for the education of the people in scientific matters and also as an instrument for the supply and distribution of scientifically prepared seeds and implements-as I understand is being done in Mysore; while for the dissemination of knowledge itself the U.P. Government have been trying out a scheme which greatly interest me-I refer to that Government's efforts to educate the peasant not only in agricultural matters and methods but also in hygiene and in elementary medical attention by means of a cinema which, accompanied by experts, tours the villages on a lorry. In the Punjab, I believe, some progress is being made in the education of the villager by means of wireless. All these are examples of the application of modern scientific discoveries to the improvement of man's lot, and I feel sure that this practical side of science is one that you realize as much as I do, for I see that your President this year is Sir Upendranath Brahmachari, who is not only a distinguished medical practitioner of long experience but also a research worker of no mean attainments. In this same field of practical science I must add a word of welcome to the National Institute of Science-an All India organization of which we have stood for long in great need. I am more than glad that at last it has come into existence and I am delighted that its first meeting should be held here in my Capital. Moreover, it is fortunate in having as its first President Sir Lewis Fermor, who is in charge of the Geological Survey of India, a Department of the greatest practical importance in extending knowledge of our natural resources.

You may perhaps feel that I have over-stressed the practical side of scientific work; but that side, Ladies and Gentlemen, from the points of view both of the peasantry and of the Ruler of a state, must always take pride of place. Nevertheless, the practical application of scientific discoveries is two-edged; while men of goodwill are straining every nerve of science in the cause of humanity, others are degrading the great achievements of that same science to the destruction of their fellowmen. The numerous armed conflicts at present raging in many parts of the world are essentially a battle between destructive science and an uneducated peasantry. This is a problem for which, I confess, I see no solution; yet for the salvation of mankind it is essential that science should be an instrument of construction and of peace, and its lethal, destructive potentialities should be controlled and checked in the interests of humanity.

Finally, I see a danger to which we in India are exposed; we are in danger of losing our own great heritage in this newer science that we have taken from the West. We have an Ayurvedic system of medicine which should be studied in the light of modern scientific principles. Up to the present, except for a few isolated workers, the scientific world has held rather disdainfully aloof from India's indigenous medicine. This is a great pity; why should scientists not keep what is good in it and reject only those parts which are proven bad or faulty? I commend this point to your attention, Ladies and Gentlemen. Moreover, medicine apart, India has a philosophy and a metaphysics of her own. For centuries she has enriched herself in philosophy, in the development of the mind and the soul; to-day she is beginning to enrich herself scientifically, in the development of the intellect. Now there are things that so far have proved incapable of intellectual explanation, of scientific test, even perhaps, of intellectual or scientific comprehension. India's practical combination of psychology and physiology in what is known as the practice of Yog has been proved to be capable of results in improving the strength of the body to say nothing of the spiritual achievements to which it lays claim. Surely this can be rescued from ignorant hands and be scientifically examined. It was a practical thing centuries before the West began playing with hypnotism and allied phenomena of the sub-conscious mind. Yet these things exist and the greatest scientists of the West are beginning to find that something more that "pure" science is required to explain them; it is said, indeed, that the West is turning to the East for help in these matters. And may it not be that the explanation is to be found for these curious phenomena of the mind and spirit in our own Indian philosophy? Ought we not to combine our enormous heritage of philosophy and metaphysics with this comparatively new science that we have taken from the West? I fear that, as the 19th century in Europe lost God in the laboratory-if I may put it in that way-so we may lose all that is good in our ancient heritage owing to our over enthusiasm for the new. In a combination, on truly scientific lines, of the good of both I see a meeting-ground common to all humanity, standing whereon it will no longer be possible for men to say that "East is East and West is West and never the twain shall meet."

Ladies and Gentlemen, I now have great pleasure in declaring this Congress open and in wishing it all success in the great work it has undertaken.'

उपरोक्त पद कवीन्द्र रवीन्द्र ने श्री जगदीश चन्द्र बसु की हीरक जयन्ती पर पढा था!
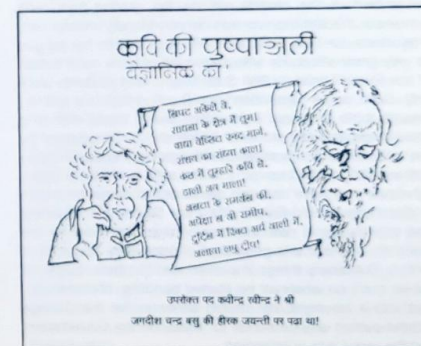
The Roll Call of Honour

- C.N. Desai, M.A., Ph.D.

Next in importance to Principal Cholomondeley comes Dr. P.C. Basu, who had taken over for a brief period of time and was later on appointed as Principal of Holkar College in 1927. I say that he is next in importance, for the plain reason that no other person except Mr. Cholomondeley was in charge of the helm of affairs for such a long time, about 14 years. He had enough opportunities to build up some traditions if he wanted to, and Dr. Basu used this to some very great advantage for the College. He was a strong person as a Principal and in the early days was almost unbending (so the students thought!) and in the first year or so, kept himself rather aloof from the mass of students. But as years passed, he mellowed into an affectionate Principal, who did so much for the College.

I remember the day he took over as Principal. We had assembled in the central hall on the ground floor, and somehow, that atmosphere was not very friendly towards him. Prejudices die hard and Dame Rumour wields her tongue to very great effect. He was supposed to have been a man of the Prime Minister, Shri S.M. Bapna and students were prejudiced, as he came after men like Shri Gokhale and Mr. Pearce, both of whom held rather liberal ideas regarding attitude towards the students which should be adopted by the authorities. Dr. Basu felt that things were in a bad shape and wanted to build up on a more solid and stable basis. Whatever may have been his desire at that stage, his action in dissolving the old Gymkhana - the Students' Parliament and substituting a new constitution was not liked by the students. There was a good deal of opposition and a lot of friction. But slowly things improved and Dr. Basu began to set his mark on whatever he started handling. Methodically, and with a foresight, he started schemes for the College without putting any demands for these on the Government and the result was outstanding.

I refer to the scheme of compulsory games for students. Every student had to play at least three times a week any game of his choice. None could escape. If a student defaulted, his name appeared next day in the morning on the notice board with a fine of annnas eight mentioned against him. The boy could escape it only by producing a certificate from any professor or lecturer in charge of any batch of any game, that he has played an extra turn and then was exempted. The College fields were humming with activities after 3.30. There were six volleyball courts, two hockey fields, two football fields, six tennis courts and two nets for cricket practice-but these last were not for all. It was a sight to see the college grounds after 3.30 p.m. All members of the teaching staff had their duties allotted to them to supervise these games, which was counted towards the total number of periods which a person had to take. Not all were interested in this scheme, but Dr. Basu persisted and the rewards were great. The College was humming like a beehive. We produced some very great players, in whom Dr. Basu took personal interest. In tennis, we had the green Chummanlal, who humbled Japanese Chaup, the great Kaul brothers, 'Maharaj' and 'Juggi' (as they were affectionately known) who played, in All-India Tennis, in which Juggi was ranked sixth at one time. Then there was Jiwan Nagu - the present D.I.G. Police at Bhopal - (it is so difficult to remember the real names of these stars of the College that I should be excused if refer them by these names), and Kedar Nath Kakkar and his brother D.N.Kakkar. In Hockey, we had Murari Zutshi, who later on built up the famous Tikamgarh Team with an All-India reputation. In cricket, we had the famous Jagdale, Bala as he was affectionately called, R. Subramaniam (the son of C. Ramiah of the Agricultural Institute in Indore) and Yusuf Ali, who played in Ranji Tournaments. I forget names, but look back over that period as period of some fulfilment. Dr. Basu was himself a good player of cricket - I have some faint idea that he was in the first eleven of his College in Calcutta, but I may be mistaken and always played in the Staff vs Students match, played each year. He would come for some practice on the previous day at the nets. Members of the staff who were genuinely interested numbered quite a few. Professors Borgaonkar, Yarday, Paramsukh Mathur, Kaushal, and the then Dean of the College, Syed Sagir Ali, Padmanabhan - these were a few of the many. Later on Professor S.N. Dhar was for years incharge of football and refereed a number of matches in Indore.

Another scheme was the tutorial scheme, which our College was the first to implement in the Agra University. Batches of students between 6 to 8 had to have a tutorial per week in each subject. It forced the students to read. When I once complained to Dr. Basu that it meant a great strain on us, for we younger members had to examine about thirty to forty scripts per week, he smiled and said 'You fool, who asked you to examine the answer books? It is meant for the boys so that they work. Just check a few, keep in touch with the good boys and exempt the best from any such work and ask them to read and guide them.' I remember a very interesting incident in which I was concerned. Mr. Owen, Director of Education, Jodhpur State, came as an inspector to our College, and at that time, I was taking tutorials in History in addition to English, and the students had answered a question on the achievements of Cromwell. Dr. Basu and Mr. Owen came to my room, and Dr. Basu introducing me spoke to Mr. Owen. 'Here is my young lecturer. Have you the courage to examine his work?' Mr. Owen took the challenge and asked me to handover some copies. He was shocked that the boys had praised the achievements of Cromwell. 'But this is nonsense. Cromwell was a regicide!' I told him that since the time of Carlyle, opinion has changed and English Historians have now accepted Cromwell's greatness. I also showed him the Books prescribed for study - Warner and Martin's Groundwork of English History. He was not reconciled. But Dr. Basu intervened. "Oh Owen, you have forgotten your history! And remember, this is Holkar College. We have only first class men on the staff." This may not be very true but this faith in us and pride in his own college went a long way in endearing him to his colleagues.

Dr. Basu was an exceptionally good teacher, who had the knack of making even the most difficult economic matters appear easy. I was never a student of Economics, but reports from all were of this nature. He had developed a method. He never went to the class-even if it were First Year Intermediate-without preparation. He lectured in public also, but here too he was systematic, going through some relevant books before he opened his mouth. Thus he always knew what he wanted to say. He was a very strict disciplinarian, which irked some people. I do not remember his having not taken a class, if he was in station - this, even if he had come to Indore by the morning 9.30 train! Naturally, he expected the same sincerity from us, at least from younger members of the staff. When I went to see him after my appointment, he gave me this advice. "Remember, my boy, don't go to the class unprepared, don't leave the class before time, and don't go to it after time. All this will upset discipline. If you have finished your topic and there is some time, keep the boys engaged, by asking them questions or making them write. But your leaving the Class early would disturb the other colleagues". I may make bold to say that I have tried to follow this advice during the 34 years of my teaching activity. His easy and happy way of lecturing was amply seen by people when he came to Indore almost after eighteen years, to address the Convocation. He had been forced to accept the invitation by Dr. W.V. Bhagwat, when they met in Agra. Dr. Bhagwat was not prepared to listen to any excuses or arguments and even Dr. Basu, when he saw the sincerity and feeling behind the demand, consented.

This brings me to the most important incident in the history of the College. During the "Quit India" agitation, students had boycotted the College. The then Prime Minister of Indore, Col. Dina Nath, asked Dr. Basu to report the names of the students who were absent, so that they could be rusticated. Dr. Basu refused, saying that students could remain absent for 25 p.c. of the working days, and hence it was desirable that the matter be not tackled in the manner wanted by the P.M. This resulted in the Govt. suddenly retiring Dr. Basu prematurely. Col. Dina Nath was never very popular as an administrator and was very much disliked by the Praja Samiti - the Congress organisational body in the States. The students were incensed and Dr. Basu rose to a height of popularity which even he had never expected. He was a man of principles and left the Principal's Bungalow almost the next day, shifting into the Dawk Bungalow and putting out his furniture to auction. He would not stay a minute longer than was absolutely necessary, and when he left Indore, the street from the Dawk Bungalow to the station was literally strewn with petals! No Principal got such a send-off and when after eighteen years, Dr. Bhagwat almost coerced him to visit Indore, on reaching the railway sttion, he broke down with feelings - as he rarely did. He embraced me and other members of the staff, and was visibly moved. When he came to the College, he wanted to feel the ground with his own feet, walked all the field over, inspite of Dr. Bhagwat's request that since a carwas ready and he was an old man could move in the car. But Dr. Basu would not listen to such a suggestion. Though his stay was scheduled for three days, at the request of many friends, he was prevailed upon to stay for fifteen days, - due largely to Dr. Bhagwat's clever persuasion. Dr. Basu almost re-lived his past life during those memorable days, and seemed to have grown younger by twenty years! Such was the man who built up this College during the fourteen years that he was incharge. He was three times the Vice Chancellor of Agra University and twice the Chairman of Ajmer Board, in both of which the College began to occupy a very significant place.

Another scheme of his was the introduction of General Knowledge as a compulsory subject for all students. We arranged talks on subject s of general interest. The curriculum was notified well in advance, and the scheme produced an intellectual awakening among the student community, but created awkward situations. 'What was the capital of Australia?' Even Dr. Basu hesitatingly asked Prof. Dhar whether it was Canberra. 'What are the names of the planets?' 'Which is nearest the earth?' 'How does a cycle pump work?' 'What is a thermometer, a barometer, a thermos flask?' 'Who were Pasteur. Lister, Sadi, Firdausi, Bana, Bhavabhuti, Saratchandra Chattopadhya, Jenner! "What is a serum and what is incubation period?" Explain the terms, L.B.W., Foot-fault, double fault, penalty corner, sticks, penalty bully, offside, hat trick, googly, leg trap, centre half, throw in cricket and such things. It sometimes tested the knowledge of the teachers also who had to hunt out the necessary information! But it was a welcome innovation and later on, the Ajmer Board introduced a special paper of such a type for its Intermediate Examination.

The students used to stage dramas every year-in Hindi and in Marathi in alternate years-for the benefit of the Poor Students Library. We used to collect contributions from our old and present students, and the rich contributed liberally Sohanlal Sanghi, Sethi brothers of Manik Bhawan, Rajkumar Singh, D.K. Kasliwal, K.M. Bapna and Seth Hiralal-all gave willingly and happily. Dr. Basu was very solicitous about the actors. He attended the performance, and after the first act, would go into the green room, compliment the boys on their fine performance and insisted upon seeing what arrangement was made for their meals after the drama was over. And then, he would insist upon giving a very good tea-party to all those who assisted in the performance! His loyalty was also fixed. As long as he was the Principal, all photographic work must go to Prataprao Jadhav. The Staff Club would have dinner every two months, and the contract must go to Damuanna-this was his clear instruction to me as secretary.

He is now old-perhaps past eighty five-and leads a quiet life in Calcutta, which he richly deserved. Students of the two College into which this great Institution has been split by the wisdom-or otherwise! - of the Government would be failing in their duties to their own Alma Mater if they forget such a personality.

- From Holkar Science College Bulletin (1971-72)

Holkar College, Indore.

Statement showing the figures of actual expenditure on

Baddal Mushahira grant for the year 1924-25.

Head	Amount.	Remarks.
Budgetted salaries including savings.	49343-1-5	
Special	9800-0-0	
Dearness Allowance	677-4-5	
~~[illegible]~~ Cabinet Reserve	957-0-0	
General Reserve.	424-4-0	
Total	61201-9-10	

Rupees sixty one thousand two hundred and one, Annas nine and Pies ten only.

[signature] Hd. Clerk

[signature]

PRINCIPAL

Dr. Basu, my Brother-in-law.

- Prof. Satya Vrata Ghosh

I was spending my days at Behrampur Detention Camp in the midst of hundreds of like minded young men of Bengal, all suspected of revolutionary activities. Though the government had no evidence to charge us in the court of law, a committee of high court judges examined our cases on the basis of police reports. They held that we could be put behind bars for an indefinite period. We, thus, had an uncertain future.

It was mid-January 1932. I was one day called to the Camp office and was served with the government order of externment. It read thus; "The said Babu Satyabarta Ghosh, alias Runu, shall not enter in, remain in and reside in any are within the presidency of Bengal." At the bottom I wrote; "I shall proceed to Indore." That was the understanding reached between my elder brother, Principal Devaprasad Ghosh (later president of Bharatiya jana Sangh) and the government of Bengal. The order was served on me by Girija Bhushan Datta, the father of now famous filmman, Utpal Datta, They were my neighbours in the home-town of Barisal (Bangla Desh).

I started for Indore and reached the well-known Holkar State on the 22nd January 1932 at 5 p.m. The escort consisted of an inspector of Intelligence Branch, Sudhanshu Gupta, and six constables. At the station I found Dr. Prafulla Chandra Basu and his only child and my young and beautiful niece, Kalyani, known at home as Dolly. With the tripartite formalities over (the parties were the police of the Holkar State and of British India and my brother-in-law), we drove home in a Fiat car (Italian make) driven by Sardar Arjun Singh. He was a very dependable member of our 'household'.

My elder sister, Prem Nalini Basu, came down to receive me most warmly. She used to be always bed-ridden and could not go to the station to receive her youngest brother. But that never made her love any less warm. In a small family of three I was the fourth member.

From our childhood days, we at Barisal, used to regard not only Indore as a distant place but also Dr. Basu a distant entity. Even the young 'Jor Ju ka bhai' could not feel intimate. But Dr. Basu was internally not only affectionate but also very attentive to our all round needs and developments. In a few days I realised it. And he also realised that a 'Dhoti-clad' Bengali Babu would be a misfit in his highly westernised aristocrate household. Within almost minutes of my arrival, S.B. Akolekar (physical instructor at the college and a manager of our household) was summoned. I was taken to the family tailor in the Chhaoni area who was asked to stitch a few pairs of trousers and shirts within 24 hours. Woollens would take a few days more. Dr. Basu 'fiat' had its imperium. The next evening I had the rehearsal of the newly stitched attire. My niece gave me an o.k. Thus dressed I was taken to the college by Akolekar and was introduced to G.K. Yarde, the head clerk. He was almost an institution. My admission was just a formality.

I was taken from one class to another. Chemistry was headed by Dr. S.S. Deshpande, physics by Prof. N. Padmanabhan, Prof. V.G. Gole taught me Mathematics though there was another professor, I.J. Cornelius, Prof. Harijeeban Ghosh was the head of the English department with Prof. D.M. Bhorgaonkar as a next man. Later I had the good fortune of working under professor Padmanabhan, Ghosh and Borgaonkar as principals. Though I was an unknown entity, my arrivals was already known to every one. I was warmly welcomed.

In the college, I felt the presence of Dr. Basu every where and in every thing, more so in the matter of discipline and punctuality. All items were properly organised and done on time. Even on the tennis courts one would feel his unseen presence. But he never took advantage in the classificationof tennis players in various 'courts'. The best 4/5 players constituted the 'Tennis Four'. J.K Kaul, M.K. Kaul, M.G. Kriplani, R.N. Nagu were there. But a player from a lower court could challenge a player of the higher court and occupy his place. 'A' court had Dr. Basu (not by courtesy but by his quality of tennis), Prof. N. Padmanabhan, Prof. Borgaonkar, K.N. Kakkar and others. We, the beginners, started with 'C' court and gradually went up to 'B' and 'A'. This hierarchy had the imprint of Dr. Basu's impartial attitude and action.

Back to our domestic life which was not very different. There was not much of a home life as is commonly understood. My sister was out of the scene. The 'Master of Ceremony' was all alert and efficient. He was always busy but his eyes did not miss a single item in the household. Yet, he would hardly speak out and never shout. Every one knew what was to be done and when. None failed. There was thus no need for the show of lungs power.

The most outstanding single item was his emphasis on punctuality and thoroughness. All the room were provided with an alarm clock. The dining hall had a large hanging clock. It would loudly announce the time when we should take to the table-break-fast at 8.30 a.m.; lunch at 1 p.m. and dinner at 8 p.m. in winter and 8.30 in summer. It was all western style where hot meals were much better relished. If any one was late, he or she should have to be satisfied with cold meal. Even Dr. Basu was no exception and, therefore, we could not express our displeasure in taking cold meals. During my two years of stay, he was late only twice - once at break-fast when his train from Agra reached late at Ratlam. On many occasions he would skip over the break-fast and go straight to the M.A. Class exactly at 9 a.m. This tought us, me in particular, a great lesson in life. Punctuality helps every one concerned.

People were mortally afraid of him to be late. Once Holkar College was hosting a meeting of the Executive Council of the Agra University. Dr. Basu was the Vice Chancellor. Some members, mainly ladies, had gone to the city for shoping.' They got late and returned all panting just on time for the meeting. The Vice-Chanceller, their boss, had a hearty laughter and remarked; "I am not tiger though coming from Bengal. You need not be so afraid of me. Be afraid of your own folly, to be unpunctual". A great lesson so lightly told.

On another day he had invited a few top Bengali friends for lunch. The arrangement was that they would arrive at 12 noon, have lunch at 1 p.m. and leave at 2. Half an hour later, his steno, Mulchand Joshi, would come. They would work together till 4.30 and take tea, also together. At 5 p.m. he will leave for the tennis court. His guest however, did not arrive by 1.30 p.m. when Dr. Basu finished his lunch and went up. His friends arrived at 2 p.m. Mrs. Basu, Dolly and I were to do the hosting. The guests ate their meals but with sullen face. later, they accused Dr. Basu of being swollen headed. The caustic remarks reached him through a common friend. His retort was; "For the pleasure of my friends to come leisurely, late by two hours, I cannot make my steno wait just because he is a paid boy." Look at the consideration of an employer to his employee. Do we have it today?

Dr. Basu also know how to relax. On the tennis courts he would freely cut jokes and enjoy the game. Others would enjoy the atmosphere of freedom. On the way back he would be invariably accompanied by friends, usually Prof. L.C. Dhariwal, K.M. and P.S. Bapna. They would all sit on the terrace and be almost boisterous till the dinner time. On most days they would sit through the dinner but not partake. We were non-vegetarian while they were strictly vegetarian (Marwari Jainis)

Another sense of humour. For the college exams he had made general knowlede a compulsory subject. All had to sit for the exams, and pass it to go to the higher class. An outstanding sportsman, a Muslim boy, thrice applied for exemption from the general knowledge paper on the ground that his father had just died. He was summoned by the principal who was a 'terror'. The boy appeared almost trembling. Quick and loud came the question; "How many fathers do you have?" The boy was fumbling and somehow said, 'only one, sir'. The second 'shot' came." Is it then that your father is coward, for, only the coward die many times before their death." When I meet that friend even now we remember the joke and have a hearty laughter. On that occasion, however, he was in no such position. He just ran out and had to take his general knowledge exam.

Turning to something serious, let me recount an incident which has taught me a great lesson in life. I transmit it to others today. After lunch, every day, Dr. Basu used to find time for smoking a Hukka with a long Nawab-like pipe. He used to appear fully relaxed. At that time he would also play 'patience' with a packet of cards. My impression was that patience is played by people who have nothing to do and have to kill time in a pleasant way. With the half an hour over, he would sit with the Steno and plunge into serious work till he broke for tea and tennis.

One day I gathered courage and asked him; "you have so much work in hand, how do you find time for patience. It is an idlers' pass-time?" He was somewhat surprised at this candid question. The simple answer was; "I have time also for patience because I have so much work in hand, as you say". I was somewhat confused and asked for a clarification. Pat came his explanation. "I am certainly not the busiest man in the world. But he also has a day of 24 hours and manages all his work within that frame work of time. It is only a matter of organising the time in the right way." At that time Dr. Basu was the Vice-Chanceller of the far-flung Agra University and the Chairman of equally far-flung Ajmer Board of Education, the Chairman of the newly started Holkar State Civil Service which was his brain child. He was the advisor to the administration in financial matter. Yet, he had time for tennis, friendly talks after the game and also for 'patience' and Hukka. I learnt another great lesson from him, a small but significant sentence, often repeated: "if you want to maintain contact, reply to letter promptly. Otherwise, you may not over reply". How true. I realise it now and practise it also.

Such occasions when we talked so freely were rare. But as time passed and my mind became more and more mature, I used to muse over the days passed at Indore with Dr. Basu. He never tried to teach me anything but I learnt much. I keenly observed his activities. They have taught me, every action, a lesson which I have tried to practise in life. Success has come to me to a degree as a consequence. We have only to follow a few set examples and do it steadfastly. Success will be ours. At a distant date, 60 years later, I recall them with reverence and recognise him as a right guide at my right age, adolescene. □□

– मनोहर महादेव केळकर –

श्री मनोहर महादेव केळकर मराठी के एक प्रसिद्ध लेखक, प्रकाशक और सम्पादक के रूप में जाने जाते हैं. उनके आत्म-चरित्र - 'स्वभावाला औषध नाही आणि दैवा पुढे गती नाही' में से उनके छात्र-जीवन (1931-33) के संस्मरणों के अंश दिये जा रहे हैं.

1931 मी इंदूरला आलो आणि होळकर कॉलेजांत ज्यूनियर इंटरला नाव घालून वसतिगृहात जागाही मिळविली. पण प्रथम आलो तो सरदार किबे यांच्याकडे उतरलो. किबे आणि केळकर कुटुंबांचा परिचय जुना होता. पण घनिष्ठ संबंध नव्हते आणि तसे यायचे कारणही नव्हते. माझ्या मातोश्री गिरिजाबाई केळकर ह्या त्याकाळच्या नामांकित लेखिका आणि गाजलेल्या व्याख्यात्या होत्या. कमलाबाई किबे ह्यांनी फारसे लेखन केले नाही पण त्या व्याख्याने मात्र उत्तम देत. त्यांची वाणी अत्यंत मधुर होती आणि त्या व्यासपीठावर उभ्या राहून अस्खलितपणे हवा तेवढा वेळ बोलू शकत. या दोघी विदुषींची सभासम्मेलनांतून गाठ पडे. त्यामुळे अर्थातच त्यांच्यात स्नेह निर्माण झाला. सभासभारंभांची अध्यक्ष म्हणून आई दोन-तीनदा इंदूरला गेली तेव्हा ती किब्यांच्याकडेच उतरली होती. माझ्या वडिलांना चांगला पगार होता व ते अधिकारी असल्याने शिपाई, प्यादी पुष्कळ असत. आमचा राहता बंगला खूप मोठा आणि मोठ्या आवारात होता. आमच्या आईला शिवण-टिपण, विणणे-भरणे आणि टापटीप यांची आवड होती आणि सार्वजनिक जीवनात नावलौकिक मिळाल्यामुळे तिला अनेक थोरामोठ्यांच्या घरची निमंत्रणे येत व उलट ती मंडळीही घरी भेटायला येत. अशा वेळी तिने मोठ्या खुबीने घरात ठिकठिकाणी काटकसर केली तरी बाहेरचा देखावा फार उत्तम ठेवला होता. हाताशी नोकरमाणसे असल्यामुळे आणि स्वत: कर्तृत्ववान असून लौकिकातल्या मोठेपणाची हौस असल्यामुळे तिने हे सर्व उत्तम रीतीने सांभाळले होते. समाजात ती गिरिजाबाईसाहेब केळकर व त्या कमलाबाई साहेब किबे असल्यामुळे दोघींच्यामध्ये बहिणी बहिणीचे नाते निर्माण झाले. त्यांची मुले आमच्या आईला मावशी म्हणत व त्यांचे घरी गेल्यानंतर मीही त्यांना मावशी म्हणू लागलो. त्यांचा वाडा 'सरस्वती निकेतन' आमच्या घराच्या मानाने खूपच मोठा असून, तो त्यांच्या वाडवडिलांनी फार पूर्वी बांधला असावा. बाहेरील रंगरंगोटी मात्र आधुनिक होती. बंगल्यासमोर सुरेख गोल बगीचा होता आणि भोवती मोटार किंवा बग्गी जाऊ शकेल एवढा रस्ता होता. मागच्या बाजूला जुनी पागा मोडून नोकरलोकांच्याकरिता व आश्रितांकरिता एकदोन बैठ्या चाळी होत्या.

मी किब्यांच्याकडे आलो आणि माझे तेथे अतिशय कौतुकपूर्ण स्वागत झाले. होस्टेल सुरू व्हायला 4-5 दिवस अवकाश होता आणि तोवर मी किब्यांच्याच घरी राहात होतो. कॉलेज सुरू व्हायच्या अगदी आदल्या दिवशी मी होस्टेलवर गेलो तर तेथे सगळाच आनंद होता. कॉलेज गावापासून खूप दूर एखाद्या माळावर वसल्यासारखे होते. कॉलेजच्या मुख्य इमारतीच्या मागच्या बाजूला 3-4 दुमजली ब्लॉक्स होते. तेथे प्रत्येकाला स्वतंत्र खोली होती. मला पहिल्या होस्टेलमध्ये जागा मिळाली होती. माझ्या खोलीत बल्ब नव्हता. आणि जिन्याखाली व्हरांड्याच्या दिव्याचा स्विच होता त्यावरचे झाकण कोणीतरी काढून टाकले होते. होस्टेलपासून माझ्या खोलीसमोर सुमारे 2-3 फर्लांग लांब आणि तितकेच रूंद असे मैदान पसरले होते. होस्टेलवर फारशी मुलेही आलेली नव्हती. मी तेथून निघालो ते होस्टेलच्या दुसऱ्या बाजूला बऱ्याच अंतरावर असलेल्या रेक्टरच्या बंगल्यावर गेलो. रेक्टरसाहेब प्रोफेसर शगीरअली हे संस्थानी आमदानीतले 'सब आराम' अशा वृत्तीचे गृहस्थ दिसले व पुढेही ते तसेच असल्याचा अनुभव आला. त्यांना मी माझी अडचण सांगताच ते शांतपणे म्हणाले, 'Go to the Bazar and buy a Hurri-cane lantern.' तेव्हा मी तर हबकलोच. कारण परत दोन मैल चालत जाऊन एक कंदील आणण्याची माझ्यात ताकद नव्हती. आणि त्या एकाकी अंधाऱ्या खोलीत समोरच्या भयाण एकांतात रात्री झोपण्याचीही भीती वाटत होती. लहानपणापासून दहा माणसांत वाढलेला मी, प्रकृतीने अशक्त, पुष्कळदा आजारी असल्यामुळे घरातही सगळ्यांकडून अतिरिक्त जपलेला आणि चार शिपाई दिमतीला अशा घरातून, इंदूरसारख्या गावात आपणहून होस्टेलवर राहयला आलो हे विशेषच होते.

मी काही न बोलता संध्याकाळी परत किब्यांच्या घरी गेलो आणि पपांना म्हणजे किबे साहेबांना माझी सगळी हालत सांगितली. किबेसाहेब पिढीजात सरदार तर होतेच पण त्यावेळी संस्थानचे डेप्यूटी प्राइममिनिस्टरही होते. त्यांनी थोरल्या चिरंजीवांना सांगितले, 'भाऊ साहेब, तुम्ही यांना घेऊन शगीरअलींच्या कडे जा आणि त्यांच्याशी बोला.' भाऊ साहेबांनी आपला सूट चढविला, पाईप घेतला आणि गाडीतून मला घेऊन शगीरअलींच्याकडे आले. आता वातावरण एकदम बदलले होते. सरदार किब्यांचे चिरंजीव भेटायला आले म्हटल्यावर शगीरअलीसाहेब 'आइये, तशरीफ लाइये' करत अदबीने पुढे आले. आम्ही आत येऊन खुर्च्यांवर स्थानापन्न झालो. भाऊसाहेबांनी सांगितले, 'Mr. Kelkar is my ward and he has left his home for the first time. He is still very raw. So let him stay with me for 4-5 days and then he will come to the hostel.'

इंदूरला मी दोन वर्षे राहिलो. हॉस्टेलमध्येच होतो. पण तिथल्या जीवनक्रमाशी मी कधीच समरस झालो नाही. त्यावेळी स्वस्ताई खूपच होती. किंबहुना अतीव मंदीमुळे सरकारी नोकरांच्या पगारात 20% कपात केली गेली होती असेही मला आठवते. बहुसंख्य महाराष्ट्रीयन मुले असलेल्या क्लबाचा मी मेंबर होतो. जेवणही खूप स्वस्त होते. महिना 13 ते 15 रु. आकार होई. जेवणाबद्दल फारशी कधी कोणी तक्रार करीत नसे. पण मी मात्र अगदी वैतागलो. भाताच्या तपेल्यावर फडके बांधून ते मोरीत पालथे टाकून ठेवीत त्यामुळे सगळी पेज निघून जाऊन फडफडीत बेचव भात पानात पडे. फुलक्या चांगल्या असत. पण भाजी स्वस्तात स्वस्त असेल ती 8-10 दिवस पुरेल अशी सेक्रेटरी आणून टाकायचा. हिवाळ्यात कॉलीफ्लॉवर, आणा-दीडआणा शेर इतका स्वस्त असे. आणि बहुधा रोज त्याची भाजी असे. तेवढे दिवस माझे बरे जात. पण एकदा कद्दु म्हणजे लाल भोपळा सुरू झाला की माझे हाल सुरू होत. रोज तक्रारी सुरू झाल्या. मी म्हटले, 'मला रोज गोड पाहिजे. तुम्हाला परवडत नसेल तर मी तूपसाखर घेऊन येत जाईन.' पण तेही नियमात बसेना. अखेर मला लागल्यास गूळ वाढावा अशी तडजोड झाली.

तरीपण मला चैन पडेना, बरे वाटेना. मी घरी तक्रारीची पत्रे लिहिली. वडिलांचे तर म्हणणे होते की, मी धुळ्यास राहून हायकोर्ट परीक्षेचा अभ्यास करावा. माझी प्रकृती लहानपणापासून अशक्त व मी अगदी लहानपणी एकदोन मोठ्या आजारातून उठलो होतो. म्हणून त्यांना व आईला काळजी वाटू लागली. मग त्यांनी आमचे एक दूरचे नातलग पण जिव्हाळ्याचे स्नेही अण्णासाहेब नातू यांना पत्र पाठवून माझी चौकशी करावयास कळविले व जरूर तर मला धुळ्यास परत पाठवून द्यावे असेही काळविले. अण्णासाहेबांची पत्नी आऊताई या माझी लांबच्या नात्याने मावस बहीण लागत होत्या. पण मी या पुस्तकाच्या प्रारंभीच्या प्रकरणात म्हटल्याप्रमाणे त्याकाळी थोड्याशा धाग्यानेही जोडलेली नाती सख्ख्यापेक्षाही अधिक आस्थेने जपली जात. अण्णासाहेबांनी वामनदादाला म्हणजे त्यांच्या थोरल्या मुलाला होस्टेलवर पाठविले आणि मला ते बदरख्याच्या वॉटरवर्क्सवरील त्यांच्या बंगल्यावर घेऊन गेले आणि त्यांनी वडिलांना कळविले की, 'मनोहरला काही झालेले नाही; तो Home Sick झालेला आहे. त्याला मी अधूनमधून सुटीत माझ्याकडे नेत जाईन आणि सर्व काही ठीक होईल. काळजी करू नये.'

आमचे होळकर कॉलेज आणि होस्टेल यासंबंधीही काही गमती सांगायला हव्यात. कॉलेजमधली बहुसंख्य मुलें हिंदीत बोलत. आमच्या सारखी बाहेरून आलेली मराठी मुले आपापसात आणि तेथल्या मराठी मुलांशी मराठीत बोलत. इंदूरची मराठी भाषा ही हिंदीने ग्रासलेली होती. 'व्याख्यानाला अफाट गर्दी होती' असे आपण म्हणतो पण तेथला मुलगा म्हणे 'काय यार, सर्वदूर भीड लागून राहिली होती.' 'देवाकरांचे मराठी' अधिक हिन्दी मिश्रित होते तर 'धारकरांचे मराठी' त मराठी शब्द फक्त औषधाला सापडत, बाकी सगळे हिंदीच असे. या सगळ्या हिंदीच्या वावटळीने, आधीच वैतागलेला मी जास्तच बावचळून गेलो. क्लबमधल्या जेवणाबद्दल मी काही तक्रार केली की ती मुले हसू लागत. कारण माझे जेवण जेमतेम दोन-तीन फुलक्यांचे तर त्यांचे जेवण बारा-बारा, चौदा-चौदा फुलक्यांचे असे. मी रागावलो की मला न समजणाऱ्या धावत्या हिंदीत माझी आणखी 'खिल्ली' करीत. पण लवकरच विष्णु वाणी म्हणून एका एरंडोलच्या खानदेशी मुलाशी माझी दोस्ती जमली. अहिराणी भाषेतील इरसाल शिव्या त्याला मुखोद्गत होत्या. तो जेवायला माझ्या शेजारी बसू लागला आणि मग तो त्या हिन्दी मुलांना, चेहऱ्यावर बावळट भाव धारण करून अहिराणीत प्रश्नावर प्रश्न विचारू लागला.

'तू कसाकरता तेले हासस? तूले काय दिसस?' त्यांना काहीच न समजल्यामुळे ती भांबावून जात की लगेच तो माझ्याकडे वळून त्यांना उद्देशून शिव्यांची खैरात सुरू करी आणि आम्ही दोघे खदखदा हसत असू. वाणीने त्यांना बजावून सांगितले की जर तुम्ही गैरफायदा घेऊन वेडेवाकडे बोलाल तर, 'तुम्हले उचलीसन पूलनाखाले फेकी देसू. मजा देखना वही तर चा मन्हाबरोबर. कुसली घालीसन उचली लेसू अन् खालेच फेकी देसू!' असा तोडीस तोड भेटल्यानंतर त्या मुलांची टिंगल-टवाळी थांबली. 'गवार कहीं के' वगैरे म्हणणे त्यांनी बंद केले. एवढेच नव्हे तर त्यातले बरेचसे आमचे दोस्त झाले.

इंदूरच्या मित्रांपैकी देवासचे कवी गोविंद झोकरकर, बडोद्याचे द.दा. दीक्षित वगैरेंची अजूनही अधूनमधून पत्रे येतात. त्यांत इतरांचा उल्लेख असतो. मोरेश्वर पाटणकर व विष्णु वाणी माझ्याबरोबरच पुण्यात आले. आज पाटणकर हयात नाही. वाणी सेवानिवृत्त झाल्यावर पुण्यातच छोटासा बंगला बांधून स्थायिक झाला आहे.

श्री बा.ना. तथा बाळा साहेब पेंढरकर आणि प्रा.ना.ल. वैद्य हे दोघे इंदूरचे आणखी दोन मित्र आजही माझ्या निकट संपर्कात आहेत. पेंढरकर न्यायखात्यात उच्च पदापर्यंत जाऊन सेवानिवृत्त झाले आहेत. आणि वैद्य शिक्षण खात्यात नोकरी करून सेवानिवृत्त झाले आहेत. दोघांचीही नोकरी मध्यप्रदेशात झाली असून दोघेही स्वत:चे घर करून भोपाळला स्थायिक झाले आहेत. पेंढरकरांचा एक कवितासंग्रह मी पूर्वी प्रसिद्ध केला. आणि नुकताच त्यांच्या दिवंगत पत्नीचा कथासंग्रह मी प्रसिद्ध केला आहे.

वैद्यांची व माझी अरे-तुरेची जवळीक आहे. नारायण मध्यंतरी काही वर्षे आफ्रिकेत गडप झाला होता. नंतर तो इंग्लंडमध्ये गेला. 62-63 च्या सुमारास तो परत आला आणि त्याचे आणि माझे सूत्र जमले एवढेच नव्हे तर ते बळकटही झाले. त्याचा एक कथासंग्रहही मी प्रसिद्ध केला आहे. पण नंतर तीन वर्षांपूर्वी त्याचे 'लंडनची पत्रे' हे पुस्तक मी प्रसिद्ध केले आणि ते मनोहर - ग्रंथमालेच्या भूषणास्पद प्रकाशनांपैकी एक आहे असे मी मानतो. वयोमान, प्रकृती आणि पुणे भोपाळमधील अंतर या मुळे आमची गाठ आता फारशी पडत नाही. पण पत्र-व्यवहार सतत चालू असतो.

आमच्या होस्टेलमधील विद्यार्थ्यांसाठी दोन थातुरमातुर हॉटेल होती. त्या हॉटेलात ॲल्युमिनियमचे ग्लास व तसल्याच प्रकारच्या काहीतरी वाट्या किंवा ताटल्या असत. बहुतांशी मिठाईच तेथे मिळे. सरसकट 1 रु शेर. मग पेढा घ्या, गुलाबजांब घ्या, मख्खनवडा घ्या किंवा रबडी घ्या. तिखट जिन्नस म्हणजे चिवडा किंवा कचोरी. एका हॉटेलवाल्याचे नाव होते कुंवरजी व दुसऱ्याचे ओंकारप्रसाद. होस्टेलमध्ये नवीन राहायला गेल्यानंतर चारपाच दिवसांनी मी प्रथम कुंवरजीच्या हॉटेलात गेलो आणि एका बाकड्यावर बसलो. ऑर्डर दिली. जिन्नस खाऊन झाले आणि पैशासाठी खिशात हात घातला तेव्हा पाकीट खोलीवर विसरल्याचे लक्षात आले. मी थोडा गांगरलो आणि म्हणालो, 'कुंवरजी, मैं पैसा लानेको भूल गया, फिर भी तुम्हारा पैसा नहीं चुकाऊंगा!' तो हसला आणि म्हणाला, 'क्यों बाबूजी, आप हमारा पैसा नहीं चुकाएंगे?' मी पुन्हा म्हटले, 'नहीं चुकाऊंगा!' त्याबरोबर तो मोठ्यांदा हसला आणि भोवतालची इतर मुलेही हसली. कारण त्यांना त्यातला विनोद कळला होता. मग एका मुलाने मला सांगितले, 'अरे, नहीं चुकाऊंगा, याचा अर्थ चुकते करणार नाही-देणार नाही असा होतो.'

आम्हाला अकोलकर म्हणून एक पी.टी. इन्स्ट्रक्टर होते. ते रोज पहाटे शिटी वाजवीत. पाच-दहा मिनिटांनी पुन्हा वाजवीत. तोपर्यंत होस्टेलमधल्या आम्हा सर्वांना ड्रिलसाठी एका ओळीत उभे रहावे लागे. मग हजेरी होई. जास्त वेळा गैरहजेरी लागली तर दंड होई. कॉलेजचें बंगाली प्रिन्सिपॉल डॉ. बसू हे भयंकर कडक होते. त्यांनी कॉलेज म्हणजे शाळा करून टाकली होती. सकाळी 10॥ ते 4॥ कॉलेज असे आणि आठ पिरिअड्सपैकी आपापल्या विषयांप्रमाणे कुठलेतरी चार पिरिअड्स् प्रत्येकाला असत. पण त्यामुळे प्रत्येकजण दिवसभर जखडलेला असे. त्याशिवाय टेनिस खेळणाऱ्यांखेरीज इतरांना दुसरा कुठलातरी खेळ सक्तीचा असे. त्यामुळे मनाला उसंत अशी नसेच. पण हे कॉलेजजीवन तेथल्या मुलांच्या अंगवळणी पडलेले होते. गुंड मुले किंवा बडे बाप के बेटे मात्र पुष्कळदा ही शिस्त धुडकावून लावीत आणि मग त्यातून कसातरी मार्ग काढीत.

आमचे पी.टी. इंस्ट्रक्टर तर फार उत्साही होते. स्वत: शिकलेले नसले तरी अधिकारपरत्वे ते आम्हा अंडर ग्रॅज्युएटस वर 'रुबाब कसत' असत;

आमच्या बॅचपूर्वी एका विद्यार्थ्याने त्यांना म्हणे गयावया करून म्हटले, 'सर, मला सकाळी मुळीच जाग येत नाही. तुम्ही मला उठवाल का?' त्यांना या मुलाच्या अगत्याचे खूप कौतुक वाटले. दोन-चार दिवस त्यांनी त्याला उठवले. त्यानंतर एक दिवस त्यांनी त्याच्या अंगावरचे पांघरूण दूर करताच, तो जसा जन्मला होता तसा तो त्यांना आढळला. ते प्रथम खजिल झाले आणि मग खूप संतापले. तेव्हा गयावया करून तो म्हणाला, 'सर, माफ करा. रात्री फार उकडायला लागले म्हणून कपडे काढून टाकले व फक्त एक चादर अंगावर ठेवली.' तेव्हापासून बहुधा कुणालाही अगत्याने उठवायचे अकोलकरांनी सोडून दिले असावे.

कॉलेजच्या शिक्षणाबद्दल सांगायचे म्हणजे डॉब्सन, घोष, बोरगावकर असे काही प्रोफेसर्स इंग्रजी अतिशय उत्तम शिकवीत असत. त्या तोडीचे इंग्रजी पुण्यास आल्यावर फर्ग्युसनमध्ये प्रो. गोकाकांचे ऐकले आणि माझे बी.ए. चे वर्ष संपत आले तेव्हा लीला वागळे म्हणून एक इंग्रजी लेक्चरर आमच्या परशुरामभाऊ कॉलेजात आल्या तेव्हा त्यांचे ऐकले.

मी इंदूरला परत आलो आणि इंटरमीजिएटच्या परीक्षेच्या तयारीला लागलो. इंटरमिजिएटचा कोर्स दोन वर्षाचा असे आणि परीक्षा अजमेर बोर्ड घेत असे. कॉलेजमध्ये दर तिमाहीस एक अशा दोन वर्षांत पाच परीक्षा होत. या पाचही परीक्षा मिळून प्रत्येक विषयात एकूण मार्क मिळवून पहिला येणारास बक्षीस मिळत असे. मला मराठीचे बक्षीस मिळाले होते. त्यामुळे एरवी इंदूरचे वास्तव्य फारसे सुखावह झाले नसले तरी त्यावेळी तरी मी आनंदात होतो. महाराज यशवंतराव होळकर यांचे अध्यक्षतेखाली बक्षीस समारंभ झाला आणि राणीसाहेबांच्या हस्ते बक्षिसे दिली गेली. पाहुण्यांचेबरोबरच विजेत्या विद्यार्थ्यांना उद्यानोपाहाराचे आमंत्रण होते. आणि आमच्या आग्रहावरून प्रिन्सिपॉल बसूंनी राजा-राणीला विजेत्या विद्यार्थ्यांचेकडे आणले आणि सर्वांचे अभिवादन हसतमुखाने स्वीकारून पाच-चार मिनिटे आमच्यासमवेत घालवून राजा-राणी निघून गेली. अगदी खरे सांगायचे तर आम्हाला हरिणीसारखे काळेभोर डोळे असलेल्या राणीला जवळून पाहायचे होते आणि तो हेतू साध्य झाला होता.

मराठीच्या माझ्या पाचव्या पेपरवर 73 मार्क होते. पण प्रो ऊर्ध्वरेषे यांचा शेरा होता, 'तुझे अक्षर वाचणार कोण?' आणि या अक्षरापायी माझे ज्ञान कितीतरी वेळा वाया गेले आहे. खरे तर हा दोष सर्वस्वी माझा नाही. वयाच्या नवव्या वर्षी झालेल्या विषमज्वरात माझ्या उजव्या हातावर व पायावर परिणाम झाला त्यामुळेही सलग चांगले अक्षर येत नाही. आपण लिहिलेले आपल्यालाच वाचता येत नाही आणि 'आप लिखे और खुदा बाचे' अशी स्थिति होते. आणि त्यामुळे लिहिण्याचाही कंटाळा येतो. या दोषावर मला मात करता आली नसती असे नाही, पण तो वेगळा विषय आहे. परिणाम मात्र व्हायचा तोच झाला आणि पुढल्या परीक्षांत मी मागे पडत गेलो.

इंदूरच्या कॉलेजातील आणखी दोन आठवणी आवर्जून सांगायला हव्यात. त्या दिवसांत कॅरम या खेळाचे फार बंड होते. आमच्या कॉलेजातला सुळे नावाचा मुलगा कॅरम खेळण्यात फार निष्णात होता. सुळे दिसायलाही गोरागोमटा आणि नाजूक होता. आणि त्याचा खेळही तसाच नाजूक असे. सुळेबरोबर कोणी खेळायला बसला तर सुळे त्याला खेळवतो आहे असे म्हणत. एक दिवस सुळे होस्टेलवर कुणाबरोबर तरी खेळत होता आणि बरीच मुले तो खेळ पहात होती. त्या मुलांमध्ये त्या दिवशी एक नवीन बंगाली मुलगा येऊन बसला होता. अंगात एक काळी बंडी, सोगा सोडलेले धोतर व डोळ्यांवर जाड भिंगांचा चष्मा असा त्याचा अवतार होता. दिसायलाही नवागताप्रमाणे बुजरा दिसत होता. त्याचे नाव घोष. एक गेम झाल्यावर त्याने विचारले, 'May I play?' सुळे त्याला म्हणाला, 'Yes come on!' खेळ सुरू झाला आणि अहो आश्चर्यम्! घोषने बाऊण्ड्स आणि रिबाऊण्ड्स यांचा असा दणका लावला की दोन मिनिटात बोर्ड साफ आणि सगळ्या सोंगट्या घरात. कोण जिंकला याला महत्त्व नाही पण घोषने सुळेची त्या दिवशी झोप उडवली असणार. कारण बध्या मुलांचा आता तो हीरो बनला होता आणि ती सुळेची हुर्यो करत होती.

आणखी एक आठवण, परवा कविवर्य ना. घ. देशपांडे यांचा अमृत महोत्सव झाला तेव्हा, एकदम उफाळून आली. होस्टेलमध्ये मी पाऊल ठेवल्यापासून, 'राना रानात गेली बाई शीळ' या गाण्याने सर्वांच्या मनाचा कब्जा घेतलेला दिसला. ग्रामोफोनवर जी.एन. जोशींची रेकॉर्ड सतत लागलेली असायची आणि मुले ते गुणगुणत असायची किंवा बसल्या जागी ठेका तरी धरायची.

इंदूरात येताना मी जेवढा खुषीत होतो तेवढा परत,जाताना नव्हतो. पेपर चांगले गेले होते,परीक्षेत यश नक्की मिळणार होते, पण अनुभवांची गोळाबेरीज केली तर तोंडाला चव कडवट होती. तरी सुद्धा होस्टेल सोडताना मला फार वाईट वाटले. आजपर्यंत ज्या ज्या वास्तूत मी वास्तव्य केले ती ती वास्तू सोडताना मला नेहमीच वाईट वाटत आले आहे. प्रत्येक वास्तूशी माझे, अजाणता अनुबंध निर्माण होतात आणि ते सहज सुटत नाहीत, तुटतात; आणि त्याच्या वेदना मनाला जाणवतात. असे का व्हावे हे मला कधीही कळले नाही!

□□

Sakalle Balvant 16/11 Brah. s/o Krishnarao S.
Zamindar Khandwa. Khandwa H.S. All. Mat. II '17
Work fair. Passed I.A. III 1919. Seems a good fellow. Some
brains. Improved 1920; very good work. Won first prize in
English and History; Shivajirao Medal for 1921.

Prof. Ramprasad Kaushal (1911-1983)
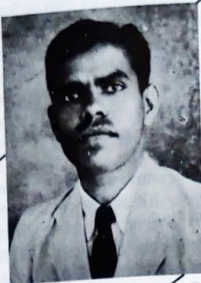
- Dr.K.K. Chaturvedi

Born at a small town, Sehore, of the old Bhopal state on 29th March, 1911, Prof. Kaushal received his early education in the same town where his name still appears on the merit board. He later joined Holkar College, Indore, from where he got his B.Sc. in 1932 and M.Sc. (organic chemistry) in 1934. Being a first class scholar throughout, he was offered a lecturership by the Holkar state to enable him to undertake research work. He joined the Chemistry department of Holkar College in its infancy and started working on.

"Hydroxymethylene Compounds and Pyrones" under the guidance of late prof. S.S. Deshpande. In 1941 he was awarded a D.Sc. by Agra University in recognition of his research work and had the honour of being the first scholor to get this degree from Holkar College. Alongwith his teaching assignment he continued his research work and in 1946 got from the Holkar State the coveted State scholarship and joined the Institute of Technology, Manchester (England) where he workd with Prof. T.K. Walker on "Synthesis of polysaccharides by Acetic Acid Bacteria'. He was awarded a Ph.D. by the University of Manchester for this work in 1948. In 1948-49 he worked as Research Chemist at Bleachers 'Association. Bromely cross, Manchester in order to solve the problem of utilisation of kier liquor and starch mixings for the production of *aceto bacter actigenum* and cellulose thereof. In recognition of his work he was made Chartered Chemist and later elected fellow of the Royal Society of Chemists (London)

On his return in 1949 he was made Reader in Holkar College. In 1953 he was selected as Chief organic Chemist for the Government penicillin Factory and went to Rome as a W.H.O. Scholar to work on penicillin Technology under late Prof. Chain. From 1954 to 1958 he worked as chief organic chemist at the Hindustan Antibiotics, Pimperi (Poone) and on completion of this assignment, his dedication to teaching and research brought him back to the newly formed Madhya Bharat. In 1958, he was made professor and Head of the Department of Chemistry at the Government Post-graduate Science College, Gwalior.

In 1962 he was given a more challenging job of starting Applied Chemistry in Engineering colleges. He was the first professor and Head of Department of Applied Chemistry at the Government Engineering College, Jabalpur and was appointed Chairman of the Board of Studies by Jabalpur university. It was here that he retired in 1968 and returned to his Holkar College. From 1968 to 1973 worked under the UGC scheme of Retired Teachers at Holkar Science College, Indore, where he started M.Sc. in Bio-Chemistry and active research guidance by taking K.K. Chaturvedi as his first research student at this centre. Since his return from Poone till he breathed his last, he devoted himself completely to teaching and research. He had published over 80 research papers in the various Journals and guided 21 research scholars who got their doctorate from various universities. The work of his students unfolds the multi-dimensional personality of prof. Kaushal. His earlier work had established him as a theoretical organic chemist but his work at the penicillin Factory added new dimension. He was drawn towards the applied aspect of chemistry resulting in the search for and presentation of organic compounds essential for the welfare of the human race as well as towards instrumentation which put him in the select band of pioneers in the field of industrial chemistry. Prof. Kaushal also contributed a lot to the field of inorganic chemistry by combining inorganic metals salts of therapeutic value with therapeutically established organic legends like sulpha drugs, anti-malarials, antidiabetic agents etc. and established that these combinations are more useful as compared to the parentdrugs. He was in addition a dedicated and skilful teacher and his students had good reason to be grateful for the warmth of the hospitality of the kaushals. □□

कस्मै देवाय?

(गुरूवर प्रोफेसर डी.एम. बोरगाँवकर सा. की स्मृति में)

- एल.एन. भट्ट, एम.ए., एलएल.बी., एल.टी.

एक बार आदिगुरू श्री मच्छंकराचार्य के मन-मानस में एकाधिक प्रश्न आलोडित-विलोड़ित होने लगे और वे ही स्वकल्पनाभूत प्रश्नों का अकाट्य तर्क-सम्मत बुद्धि से उत्तर देने लगे. इन प्रश्नों में एक प्रश्न बड़ा जटिल था, वह था -''को गुरू:?'' आदिगुरू इसका सहज उत्तर देते हैं -''शिष्य हितायोद्यत: सततम्.'' इस उत्तर की सहज परिसीमा में एक विरल किन्तु सरल व्यक्तित्व, गुरू की भव्य कल्पना को साकार करता हुआ मानस-पटल पर कौंध जाता है और परिणाम स्वरूप हमारे समक्ष सहज-संयतभाव से मिश्री-सी मुस्कुराहट युक्त आंग्ल साहित्य के अधिकारी प्रोफेसर डी एम. बोरगाँवकर सा. का ऋषितुल्य भाव-भंगिमावान सुमुख, प्रत्यक्ष रूप से विगत स्मृति को कुहासे को चीरता हुआ, आलोकित हो उठता है.

गुरूणाम् गुरू: बोरगाँवकर सा. वैसे तो मेरे कॉलेज जीवन में मेरे परमाराध्य अध्यापक रहे परंतु उन्हें और निकट से जानने का अवसर तब मिला जब वे मेरे होस्टल के डीन बने. पूर्व में श्रद्धेय पद्मनाभन सा. डीन थे. उनके उपप्राचार्य के पद पर पदोन्नत होने पर उनके स्थान पर बोरगाँवकर सा. डीन हो गये. कुछ समय पश्चात बोरगाँवकर सा. ने मुझे होस्टल का प्रिफेक्ट नामांकित किया. इस अवधि में मुझे उनके सघन संपर्क में आने का अवसर मिला. मैंने पाया कि वे केवल एक आदर्श शिक्षक ही नहीं, अपितु अपने आप में एक संस्था थे. उनका भव्य व्यक्तित्व, उनका कृतित्व, उनका सामाजिक परिवेश एक विराट व्यक्तित्व की झलक भर दे जाते हैं. उनकी भलमनसाहत, मानवतावादी दृष्टिकोण, परोपकारी भावना, छात्र-कल्याणार्थ सततोद्यता, सौम्यता, सौजन्य, खेल-भावना आदि अनेकानेक सद्गुणों ने उनको छात्र-जगत में अत्यधिक लोक-प्रिय बना दिया. अध्यापन के साथ-साथ उनकी आंग्ल साहित्यिक रचनाएँ भी उनको अविस्मरणीयता प्रदानं कर गई हैं. निद्रा-हीनता इंसोमनिया) रोग से ग्रस्त होते हुए भी उनकी सामाजिकता एवं साहित्यिकता में कोई रिक्तता नहीं आई. वे शिव शंकर के समान इस रोग रूपी गरल को अपने आप में समाहित कर लोकाभिमुखी व्यक्तित्व को सँवारते रहे.

प्रोफेसर सा. के बहुआयामी व्यक्तित्व की संपूर्ण झलक एक छोटे से लेख में दे पाना एक दुष्कर कार्य है परंतु फिर भी उनके यश-सागर से कुछ मुक्ता-शुक्तियाँ अवश्य ही प्राप्त की जा सकती हैं और उन्हें प्रस्तुत किया जा सकता है.

अध्यापक के नाते उनकी सरस एवं सरल शैली एक दार्शनिकता के अंदाज़ के साथ उनके अध्यापन में चार चाँद लगा देती थी. मंत्र-मुग्ध एवं ठगे से छात्र उनका भोला-भाला मुखारविंद निहारते रहते थे. कई बार तो ऐसा लगता कि पीरियड ही समाप्त न हो तो कैसा रहे! वे एक सफल अध्यापक थे और इसकी पृष्ठभूमि में उनकी साहित्यिक सतत साधना थी. ख्यात आंग्ल नाट्यकार शेक्स पियर पर तो उनका असाधारण अधिकार था. Tears and Laughter (Tragedy and Comedy) श्रृंखला इसका अनुपम निदर्शन है. वे निरे एक सफल अध्यापक ही नहीं, एक सफल साहित्यकार भी थे. उनका साहित्यकार उनके अध्यापन पर भी सदैव हावी रहता था और यही तत्व उनकी अध्यापकीय सिद्धि का बीज मंत्र था. उनकी सभी रचनाएँ सरल, सरस, सुबोध और मनोहारी थीं और हैं. उनकी रचना-धर्मिता की दिव्यता फिनिक्स (Phoenix) पक्षी से मेलखाती हैं, जिसके पाँव कभी पंकिल पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते. उनकी निबंध-रचना भी बेमिसाल थी. "All for your delight" निबंध संग्रह अपनी अनोखी शैली के कारण बहुत लोक-प्रिय हुआ. शेक्सपीयर ट्रेजेडी पर भी लिखी गई पुस्तिका छात्रहित में बहूपयोगी सिद्ध हुई. आलोचना का क्षेत्र भी उनकी कलम से अछूता नहीं रहा. उनके द्वारा रचे गये एकांकी नाटक (One act plays) भी आंग्ल साहित्य प्रेमियों द्वारा सराहे गये. मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'वीणा' में क्रमश: उनके एकांकियों का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ. उनकी रचना-प्रतिभा अपने आप में एक अनोखापन लिये होती थी. निबंधों को पढ़ते समय कहीं कहीं चार्ल्सलैंब बतियाते प्रतीत होते थे.

वे छात्र-वत्सला गुरू होने के साथ-साथ स्वयं अतिशय श्रद्धावान छात्र भी थे. तथा अपने गुरू चार्ल्स डॉबसन सा. का अत्यधिक समादर करते और यदा-कदा अपनी सेवाएँ उन्हें अर्पित कर गुरू-भक्ति का परिचय भी देते थे.

उनका क्रीड़ा प्रेम भी निराला था.इस क्रीड़ा-प्रियता की अहमियत और भी अधिक तब बढ़ जाती है जब वे निद्रा हीनता के रोग को इस पर हावी नहीं होने देते. वे टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे और प्रतिदिन इसमें आनंद लेते थे. वैसे तो क्रिकेट आदि सभी खेलों में उनकी रुचि थी परंतु टेनिस तथा ब्रिज एवं टहलना उनकी दिनचर्या के अभिन्न अंग थे. वे होलकर राज्य के ब्रिज के एक ख्यातनाम एवं स्थापित खिलाड़ी थे. होलकर राज्य के भूतपूर्व नरेश महाराजा यशवंतराव होलकर जब कभी ब्रिज खेलते, वे प्रोफेसर सा. को आमंत्रित करना कभी भी नहीं भूलते थे. उनकी उपस्थिति खेल को रुचिपूर्ण बना देती थी. इसी संदर्भ में प्रोफेसर सा. ने महाराजा सा. की उदारता एवं सौमनस्यता दर्शाते हुए एक घटना सुनाई थी. एक रात

महाराजा सा., डॉ. रोशनसिंहजी भंडारी, प्रोफेसर सा. एवं.फिरोजुद्दीन चौधरी सा. ब्रिज खेलने बैठे. काफी देर तक महाराजा सा. एवं साथी बोरगाँवकर सा. के विरूद्ध जीतते रहे. काफी देर रात हो चुकी थी, महाराजा सा. को विश्राम की आवश्यकता थी प्रोफेसर बोरगाँवकर सा. ने निवेदन किया कि खेल समाप्त किया जाय. परंतु आश्चर्य रूप से खेल निरंतर रखते हुए महाराजा सा. ने प्रोफेसर सा. से कहा "Let's continue, its your turn to win now." इस प्रकार की सदाशयता का परिवेश सदा से ही प्रोफेसर सा. के सदाशिव व्यक्तित्व के साथ जुड़ा रहा है.

वे अतिशय सरल एवं सौम्य व्यक्तित्व के धनी थे. परोपकार की भावना उनकी रग-रग में समाई हुई थी. मुझे अच्छी तरह वे कडुवे प्रसंग याद हैं जब उन्हें अपने इन सद्गुणों की बहुत बड़ी कीमत चुकाना पड़ी है. अच्छा है इन प्रसंगों को हम यहीं भूल जावें. कडुवे प्रसंगों को त्यागकर मीठे प्रसंगों का उल्लेख, सचमुच ही उनके मधुर व्यक्तित्व की अमिट छाप मानस पटल पर अंकित कर अविस्मरणीय बन जाता है. एक घटना उन दिनों की याद आती है - जब मैं बी.ए. के अंतिम वर्ष का छात्र था. परीक्षा के समय मैं अस्वस्थ हो गया. अंग्रेजी साहित्य का प्रथम प्रश्नपत्र था, उसकी पूरी तय्यारी नहीं हो पाई थी. मन में अतिशय बेचैनी एवं घबराहट थी. प्रोफेसर सा. भूतपूर्व डीन सगीर अली सा. के बँगले में कॉलेज मेन होस्टल के पास ही रहते थे. मैं उनसे कुछ सहायता लेने पहुँचा परंतु पाया कि वे स्वयं बीमार हैं. मैं उलटे पाँव लौटने लगा परंतु मेरे गुरू तो सदाशिव थे, उन्होंने मुझे जोर से पुकार कर बुलाया और एक डेढ घंटे तक विषय समझाते रहे - अपनी स्वयं की अस्वस्थता के बावजूद.

आजकल कहाँ ऐसे गुरूओं के दर्शन होते हैं. ऐसी अनेकानेक घटनाएँ हैं जो प्रोफेसर सा. को अविस्मरणीय बना देती हैं. बानगी के रूप में मुझे एक और प्रसंग याद आ रहा है - जब प्रोफेसर सा. डीन थे. मेरा एक जैन साथी होस्टेलर सिनेमा देखने का बहुत शौकीन था व सेकंड शो देखकर होस्टल आता था. मेस का रसोइया उसकी थाली मेस में थाली से ढँक मेज पर रखकर चला जाता था ताकि मेरा साथी भोजन पा सके. एक दिन मेरे नॉनवेज मित्र ने दाल में अंडा डाल दिया ताकि वह जैन मित्र का भोजन कर सके क्योंकि जैन मित्र उसे खायेगा नहीं. जैन मित्र इस करतूत को देखकर व्यथित हो उठा और आक्रोश में आकर शिकायत करने डीन सा. के बँगले पर रात के 10 बजे जा धमका. बोरगाँवकर सा. को इंसोमनिया की शिकायत थी, वे सोने की कोशिश कर रहे थे कि जैन साथी के पदचाप सुनकर यकायक बोले, ''कौन?'' - मेरे शिकायती मित्र ने उन्हें घटना सुनायी. इस पर बोरगाँवकर सा. ने श्रीमती बोरगाँवकर को बुलाकर भूखे मित्र को कुछ खाने के लिये देने को कहा. मित्र शर्मिंदा हो उठा, परंतु डीन सा. उसे खिलाकर ही माने. ऐसे सहृदय डीन सा. के दर्शन चिराग लेकर दुनिया में घूम आओ, तब भी नहीं हो सकते.

उनका सरल एवं निष्कपट उदारवादी व्यक्तित्व संकीर्णता को अपने पास कभी फटकने नहीं देता था. वे सचमुच में मानव फिनिक्स (Phoenix) थे. उसी संदर्भ में मुझे एक घटना याद आती है जब उन्हें स्नातकोत्तर माधव महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर पदोन्नत किया गया. वे बड़े परेशान रहने लगे, उन्हें यह जमादारी रास नहीं आई. उनका व्यक्तित्व प्रशासनिक नहीं था. वे रौब-दाब के आदी नहीं थे उन्होंने पदावनति माँगली. एक सीधा-सादा साहित्यकार प्रोफेसर साम, दाम, दंड, भेद की पंकिल भूमि पर कैसे पग धर सकता था.

उस जमाने के आंग्ल साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों में प्रोफेसर सा. की गिनती होती थी. जिस किसी ने उन्हें सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया. निहाल हो गया. उनका वाक् प्रपात झर-झर की संगीतमय ध्वनि निनादित करता हुआ श्रोताओं के मन-मयूर को नृत्यमय कर देता था. मध्यप्रदेश की शैलरानी पंचमढ़ी में आंग्ल भाषा का एक सेमिनार आयोजित हुआ. आयोजन बड़ा भव्य था. सभी व्याख्याता, प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष, सचिव सम्मिलित हुए. इसके समापन के सुअवसर पर तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ. शंकर दयाल जी शर्मा, गवर्नर पाटस्कर सा., मुख्यमंत्री काटजू सा. आदि गणमान्य सज्जन आमंत्रित थे. अन्य अतिथियों में सेमिनार को सफल बनाने के लिये प्रोफेसर बोरगाँवकर सा., डॉ. राजेन्द्र वर्मा तथा ब्रिटिश कौंसिल के सीनियर ऑफीसर मि. स्पेन्सर आदि को भी आमंत्रित किया गया था. समापन समारोह के अवसर पर गुरूवर बोरगाँवकर सा. को भाषण देने के लिये विशेषरूप से कहा गया. उनके शेक्सपियर पर दिये गये विद्वत्तापूर्ण भाषण की सभी ने मुक्त कंठ से सराहना की. मि. स्पेंसर तो यहाँ तक कह गये कि इतना अच्छा तो मैं भी नहीं बोल सकता.

आज श्रद्धेय बोरगाँवकर सा. हमारे बीच में नहीं हैं, परंतु उनकी विद्वत्ता की पताकाएँ आज भी हमारी स्मृतियों में लहरा रही हैं. वे स्मृति शेष रूप सें हमें आज भी आलोकित कर रहे हैं तथा जिनकी जीवन्तता का उद्घोष महाराज भर्तृहरि के इस प्रभावी कथन में समाविष्ट हो गया है -

जयंति ते सुकृतिनो;, रससिद्धा: कवीश्वरा:।
नास्ति येषां यश: काये, जरामरणजं भयम्॥

□□

महाविद्यालय के प्रति

विजयेन्द्र शास्त्री ''साहित्य रत्न'' बी.एससी. पूवार्द्ध - १९५६

उन्नति के मार्ग के ऐ सजग प्रहरी
मौन तुम किस साधना में रत खड़े हो
साधना के साधनों में आज हमको भी जुटा दो।
हिंस्र पशु मानव बना जब युद्ध तांडव कर रहा था
स्वप्नित क्षणों में भावना के तार सारे छेड़ता था।
ज्ञानदाता निस्पृही बस शांत थे तुम सुन रहे थे;
क्षणिक मानव की क्षणिक कुछ भावमय वे बोलियां।
संघर्ष एवं प्रेम के वे विविध अनुभव
आज हमको भी सुना दो।

संयम, नियम, व्यवहारकौशल शौर्य, शक्ति, दक्षता दो,
दृढ़ तपस्वी, मौनसेवक, युगविधायक, युग प्रवर्तक।
सत्य एवं सरल जीवन का सुपथ हमको दिखा दो॥
विज्ञान, विधि, वाणिज्य एवं कला क्रीड़ा
ज्ञान गौरव के शिखर हम राष्ट्र स्तंभों को दिखा दो॥

The Great Virus

- Harijiban Ghosh

opinions. Even your entertainments all filtered through the Hitlerian sieve. You must accept even for your dissipation, for your idle hours, what is supposed to be good for you by the State. Thus the judgement of man is being hourly insulted. You are not supposed to have any conscience or moral notions of your own. The State is the only morality. In a totalitarian State, if you want to prosper materially, you must join the dominant party. By frequent meetings, speeches, parades, excursions, party members are given the illusion that they really control the operation of the State. Party organisations are given special facilities everywhere. They get concessions in railway fares, theatres, operas and concerts. In short, a party member is a preferred citizen. That would be impossible in democracy. A party button on the lapel of your coat is a sure pledge of preferment, even while standing in line at a post office.

Outside the party, if you are extremely cautious and industrious, you can eke out a living for yourself, but you must keep your own counsel at all times, otherwise you cannot stay out of jail or concentration camp for a long time. Living in that sphere, you then begin to think that the Dictators must be right, and something is wrong with you. Slowly you begin to acquiesce in that form of government, and this passive existence is characteristic of the larger part of the population in a totalitarian state. But is not this acquiescence fatal for the growth of the individual and therefore of the nation? Time alone will show.

Dictatorship, if it is to survive, must be always dynamic. Dictators must keep their people for ever busy. If there is no Spain or Abyssinia, there must be at least inflammatory speeches, impressive parades, hysterical gestures.

The highest ideal is sacrifice or death for the party. When

When Pope wrote in one of his Epistles.

For forms of government let fools contest;
Whate'er is best administered is best.

He obviously could not think of totalitarianism as a form of Government. Sir Maurice Gwyer, Chief Justice of India and Vice-Chancellor of the University of Delhi in his address, recently delivered at the convocation of the Punjab University pointed out the principal differences between the two systems of government, democracy and totalitarianism. Apart from respect for law, their rule of law and the liberty of freely expressing one's own opinions and beliefs, a democratic form of government is "one which is based upon the personality of the individual man and woman, whereas the other system is based upon the conception of a state as an organisation apart from and superior to the individual men and women who compose it, demanding from them complete and uncomplaining subjection, the state asserting all rights and conceding none."

If other forms of government do not matter, totalitarianism certainly matters. The transition from monarchy to democracy has been possible in many countries in the past, possibly a reversion from democracy to monarchy is also not unthinkable, but if democracy is replaced anywhere by totalitarianism, it will certainly mean untold misery for millions of people.

Such a thing, however, has very recently happened in Austria. All those, who have recently travelled in Europe, agree in saying that Vienna seemed to them a centre of European culture. The sudden change from democracy to dictatorship had a startling effect. The ordinary people have been depressed, flattened out in the new regime. In Vienna which was a city of political jokes and cartoons, they can no more speak as they like, they can no more do as they like. Constraint has come over those delightful and expansive people of Vienna. The children of Vienna are no more the children of their parents, they are the children of the State which has got absolute authority in the sphere of education. Children returning from their schools talk to their parents in a language, which appears to them strange. Militry drill, mass singing and patriotic devotions have a wonderfully fascinating effect on juvenile minds. It is no use arguing with those children. They may report you at school next day. They are more loyal to the State than to their parents. In the same manner, they are more loyal to the State than to truth or scientific reasoning. Likewise a waiter or a household servant can denounce you as a traitor, as an enemy of the State, which is identified with one party. Thus even among friends, you can only talk about the weather or praise the speeches of Dr. Goebels or Adolf Hitler.

Milton in his famous tractate of "Areopagitica" fought for the liberty of the press. We thought that the battle was won once and for ever. But totalitarianism censors all news, all

Mussolini was exporting poison gas to Abyssinia, no Italian questioned the morality or justice of it. The only thing that agitated Italy was whether she would succeed or if England would intervene.

Totalitarianism so far has succeeded by appealing to the emotions of the young people. It has more glamour, it is more picturesque. With their perpetual celebrations and parades, their mythology of semi-divine heroes, they have made patriotism more enthralling than democracy could ever have done. The effect is very much like that of a naracotic. The question is, how long it will last.

There is another weapon, which is almost invincible in the hands of a totalitarian state. That is falsification of facts, of history. If you tell a lie today, you feel the qualms of your conscience. If you repeat the same mendacious statement to-morrow, it becomes easier for you, your conscience become more slippery. If you can circulate the lie properly and if you can suppress the truth, the lie in course of time will acquire the sanctity of truth. History, as it is taught in the German Schools, public and private, has got the same kind of sanctity. For instance, there is no doubt in modern Germany that the Spanish republic is governed from Moscow. If there had been a European conflagration over Spain, Hitler would have had no difficulty to persuade the German people that it was a war of defence.

Any form of government is after all a machine. The machinery set up by totalitarian states has diabolical form, terrific crushing power, but Man, the supreme creation of God, must rise superior to any machine, which he may have set up.

From Holkar College Magazine, February - 1939

□□

कविता कानन

ये अनजानी चाहें हैं,
जो मुश्किल से जानी जाती हैं,
ये मन-बसंत की कलियाँ हैं,
जो पतझड़ में खोली जाती हैं।

निरेश कुमार खंडेलवाल
तृतीय वर्ष 'कला'

आज शोषित हूँ मगर कल तुमसे दब सकता नहीं,
मार डालो आज पर कल, तुमसे मर सकता नहीं,
भाव जो अंतर में हैं उनको, मिटा सकते नहीं,
है मुझे विश्वास जब तक, तुम डिगा सकते नहीं।

वी. गुप्ता 'पाथेय'
द्वितीय वर्ष 'वाणिज्य'

परिचय साकार बन पाया नहीं
प्यार अधिकार बन पाया नही
भावना के सिन्धु में बहते रहे,
पर प्यार का प्रतिकार मिल पाया नहीं।

उमराव सिंह चौधरी 'नागर'
द्वितीय वर्ष 'विज्ञान'

अंचल धरा का हरित हो चुका है,
बह स्वेह जिससे सरस हो चुका है,
उसी को सुखाने हवा बह रही है,
नया गीत गाने सुबह आ रही है॥

सुरेन्द्र कुमार त्रिवेदी
तृतीय वर्ष 'कला'

टकराते-टकराते कितने युग
बीते मेरे जीवन के
फिर भी लेता रहा हिलोरे
तार-तार करके जीवन के

मनोहरलाल जे. चौहान
चतुर्थ वर्ष 'वाणिज्य'

रजत-प्रास को लोहे से मोड़ दो
समय के बन्धन समय से तोड़ दो
सोना पेट फुलाये बैठा है
मोटी चाँदी ऐठी सी बैठी है
यह हीरा, मोती, लाल और पन्ना सेठी
ये सभी है शोषित शोणी

सुरेन्द्र कुमार सिंह
तृतीय वर्ष 'कला'

होलकर महाविद्यालय पत्रिका - १९५५-५६

छः दशक पूर्व जब प्राचार्य ने ही स्नेह सम्मेलन से बहिर्गमन किया!

- ग.वा. कवीश्वर

कॉलेज के छात्रालय में खादी का केन्द्र :

सन् १९३० की बात है मैं होलकर कॉलेज में (तब यहाँ विज्ञान के साथ 'कला' विभाग भी था) बी.ए. अंतिम वर्ष का विद्यार्थी था, तथा छात्रावास में ही रहता था. इस दरम्यान मेरे वर्गबंधु श्री वि.वा. अयाचित (जो बाद में विधान सभा सदस्य हुए) से मेरी घनिष्ठ मित्रता हुई. वे भी छात्रालय में रहते थे - उज्जैन के तत्कालीन ख्याति प्राप्त देशभक्त श्री पुस्तके वकील की प्रेरणा से अयाचित पूर्ण खादीधारी थे. और श्री अयाचित की प्रेरणा से, मैं तथा खंडवा के श्री अनोखीलाल अरझरे, श्री मारू व हाडके श्री चौधरी आदि छात्रों ने होलकर कॉलेज के छात्रालय में ही (मेरे कमरे में) शुद्ध खादी का बिनालाभ का बिक्री केन्द्र खोला. श्री अरझरे एवं श्री मारू के माध्यम से खंडवा के खादी भंडार से हमें विभिन्न प्रकार की खादी उधार भेजना मान्य किया, जिसका मूल्य खादी बेचने बाद हम भेजते थे. शायद कुछ खादी उज्जैन से भी आई थी.

उस समय इन्दौर में शुद्ध खादी प्राप्त करने का अन्य स्थान नहीं था; तथा शहर से भी कुछ लोग हमारे केन्द्र पर खादी खरीदने आते थे. इसमें भी विशेष बात यह थी कि, हर रविवार को होल्कर कॉलेज के हम उपरोक्त चार पांच विद्यार्थी अपने हाथों से इन्दौर की सड़कों पर एक ठेलागाड़ी चलाकर खादी बेचते थे.

भारत पर अंग्रेजी सत्ता के उन दिनों में एक 'देशी रियासत' के शासकीय महाविद्यालय के छात्रालय में खादी बिक्री का ऐसा केन्द्र चलाना, तथा छात्रों द्वारा उसका शहर में जाहिर प्रचार करना, जनता में बहुत कुतूहल का विषय था; तथा इसकी जानकारी दूर तक प्रसारित हुई. खादी केन्द्र चलाने के अलावा हमने Youth and Truth शीर्षक से एक हस्तलिखित पाक्षिक पत्रिका भी आरंभ की, जिसके प्रथम आवरण पृष्ठ पर No religion is nobler than truth and no followers fitter than the youth यह बोधवाक्य, तथा अंतिम पृष्ठ पर खादी प्रसार का आह्वान छपा था.

प्राचार्य डॉ. बसू :

कॉलेज के प्राचार्य डॉ. प्रफुल्ल चन्द्र बसू थे. वे अर्थशास्त्र के विद्वान प्राध्यापक, एवं कुशल प्रशासक होकर, उनका व्यक्तित्व प्रभावी था. अनुशासन का वे
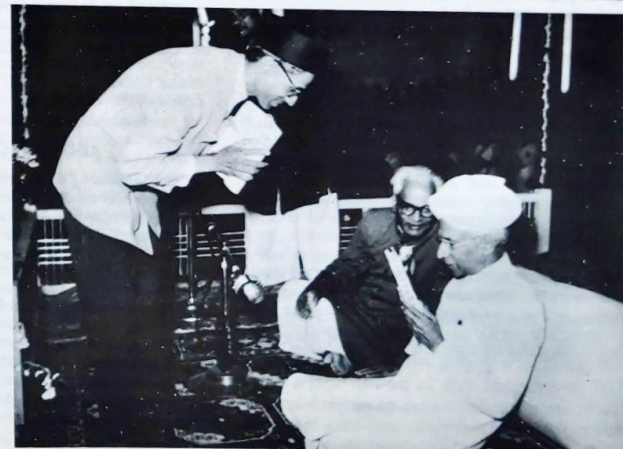
प्रो. कविश्वर,
प्रो. पद्मनाभन
और
डॉ. राधाकृष्णन.

दृढ़ता से पालन करवाते थे. इस महाविद्यालय में कई वर्षों बाद एक भारतीय विद्वान प्राचार्य हुआ था; इसलिये इन्दौर की जनता में भी उनके प्रति विशेष आदर भावना थी.

उस समय की कुल परिस्थिति में स्वाभाविक ही डॉ. बसू को होलकर दरबार का, तथा पास में ही इन्दौर छावनी में स्थित अंग्रेज ए.जी.जी. (Agent to the Governor General) का ख्याल रखना आवश्यक था. फिर भी डॉ. बसू ने हमारे खादी केन्द्र में तनिक भी बाधा नहीं डाली. इतनाही नहीं, एक बार हमने महाविद्यालय में ही खादी का प्रदर्शन आयोजित किया, उसे देखने हमारे अनुरोध पर स्वयं डॉ. बसू आये थे. हमारी हस्तलिखित पाक्षिक पत्रिका भी कॉलेज के वाचनालय में रखने की अनुमति उन्होंने दी.

वार्षिक स्नेह सम्मेलन की सभा :

सन् १९३० के आरंभ में महात्मा गांधी की नमक सत्याग्रह की घोषणा से सारा भारतवर्ष रोमांचित हो उठा, तथा उन्होंने साबरमती से अपनी दांडी यात्रा शुरू की. उस यात्रा में दिनांक २६ जनवरी के दिनांक को विशेष महत्व दिया गया था. आज भी हम उस दिनांक को भारतीय संविधान के आरंभ दिन के रूप में मनाते हैं. संयोगवश उस वर्ष वही दिन होलकर कॉलेज के वार्षिक स्नेह सम्मेलन हेतु निश्चित हुआ. उस अवसर पर स्नेह सम्मेलन की आम सभा में देशभक्ति युक्त भाषण देने की योजना मैंने और मेरे मित्रों ने बनाई. इन्दौर रियासत के तत्कालीन शिक्षा मंत्री के एक पुत्र, जो उस समय कॉलेज के छात्र थे, स्नेह सम्मेलन समिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे.

वर्तमान में जहाँ यशवंत हॉल है, वहाँ खुली जगह पर स्नेहसम्मेलन का विशाल तम्बू लगा था. सुबह का समय था. छात्रों से तम्बू खचाखच भरा था. कुर्सियों पर प्राचार्य के साथ अध्यापकगण, इन्दौर के विशेष निमंत्रित अधिकारी एवं कुछ भूतपूर्व छात्र बैठे थे.

सभा विधिवत आरंभ हुई. स्वागत भाषण एवं कुछ अन्य भाषण के बाद छात्राध्यक्ष ने मुझे भाषण के लिये आमंत्रित किया. उस समय भाषण प्रायः अंग्रेजी में होते थे. शुरू में मैंने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन का, उनकी दांडी यात्रा का, एवं उस संदर्भ में २६ जनवरी, के उस दिन के राष्ट्रीय महत्व का उल्लेख किया, फिर मैं हमारे पढ़े-लिखे लोगों में पाश्चिमात्य संस्कृति का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति कैसी पनप रही है, यह बताने लगा.

प्राचार्य का सभा से बहिर्गमन :

इतने में एक विलक्षण घटना हो गई! मेरा भाषण चालू था उसी दरम्यान प्राचार्य डॉ. बसू एकदम उठकर सभा छोड़कर अपने बँगले चले गये! सारी सभा विस्मयचकित होकर देखने लगी! मैंने जैसा-तैसा मेरा भाषण समाप्त किया, और सभा विसर्जित हो गई. महाविद्यालय परिसर में एकही चर्चा होने लगी कुछ मेरे भाषण की प्रशंसा करते थे, तो कुछ उसे अप्रासंगिक बताने लगे. कुछ अनुमान करने लगे कि अब प्राचार्य मुझे कॉलेज से रस्टिकेट कर देंगे, तथा एक अच्छे विद्यार्थी ने (उसके पूर्व मुझे गुणों के आधार पर शिष्यवृत्ति एवं पारितोषिक प्राप्त हो चुके थे) अपना भविष्य व्यर्थ खतरे में डाला इस पर खेद व्यक्त करने लगे. यह सब सुनकर मुझे भी ऐसी संभावना लगने लगी कि, अपने 'वॉक-आउट' के बाद अब प्राचार्य मुझे महाविद्यालय से 'गेट-आउट' का आदेश देंगे!

किन्तु अन्ततोगत्वा कॉलेज के सूचना-फलक पर ऐसी कोई सूचना नहीं लगी. बाद में मुझे पता चला कि, कुछ आध्यापक प्राचार्य से मिले और उन्होंने इस प्रकरण को अधिक तूल न देने का सुझाव दिया. मुझे यह भी मालूम हुआ कि, प्राचार्य महोदय ने सभा के छात्राध्यक्ष को मेरा भाषण बीच में ही रोकने हेतु संकेत किये थे, किन्तु वे अध्यक्ष के ध्यान में नहीं आये और आखिर प्राचार्य स्वयं उठकर चले गये.

कुछ ही समय बाद मैं श्री अयाचित आदि के साथ प्राचार्य से मिलने उनके बँगले पर गया. मैंने कहा कि, मेरा उद्देश्य किसी को अपमानित करने का न होकर भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एवं भारतीय संस्कृति की महानता की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करना था. प्राचार्य बसू बोले कि, मैं तुम जैसे युवकों की भावना समझता हूँ, किन्तु तुम्हें भी मेरी तथा महाविद्यालय की वर्तमान परिस्थिति ध्यान में रखना चाहिये.

डॉ. बसू की उदारता :

प्राचार्य डॉ. बसू ने उसके बाद मेरे बारे में तनिक भी कटुता न रखते हुए सदैव मुझे मेरे अध्ययन में प्रोत्साहित किया. यदि स्नेह सम्मेलन की उस घटना पर डॉ. बसू विपरीत दृष्टिकोण रखते तो मेरे अध्ययन में कुछ बाधा आ सकती थी. इसके बाद मैं उन्हीं के कार्यकाल में इस महाविद्यालय में दर्शनशास्त्र का प्राध्यापक नियुक्त हुआ. उनकी मुझ पर सदैव पूर्ण कृपा दृष्टि रही. इन्दौर के एक महाविद्यालय के प्राचार्य होते हुए भी, वे सुदूर विशाल आगरा विश्वविद्यालय के एक से अधिक बार निर्वाचित कुलपति रहे और इस महाविद्यालय एवं इन्दौर की प्रतिष्ठा में श्रीवृद्धि की.

स्वर्गीय डॉ. बसू की पावन स्मृति में मेरा विनम्र अभिवादन.

□□

Holkar College Times
February 16, 1959

Appreciation of an Artist

PAINTINGS OF AGASHE

Our Readers know that there was held a one-man-show of some of the paintings of Vasant D. Agashe, in our Arts Exhibition on the occasion of the recent Social Gathering As it attracted a large number of persons, and evoked great appreciation from the Chief Guest

The young artist, Vasant D. Agashe (a student of our Senior B.A. class) began his career as a student of Drawing and Painting under the able guidance of Prof. Chandresh Saxena of the Arts College, Indore. Though he took an all round interest in Painting, landscapes have attracted his special attention.

My Student Days in Holkar College (1937-1941)

- G.R. Ayachit, Pune

I joined Holkar College in 1937 to receive B.Sc. degree in 1941. Dr. P. Basu was the Principal for the first two years and probably in 1939 Mr. Richardson replaced him as Principal.

Dr. Basu was an autocrat and a great disciplinarian. He enforced discipline more through authority than by persuation and love. A general atmosphere of fear prevailed in the college. Very few students dared to approach him and those who took the necessary courage to do so were badly snubbed. We were told that on one such occasion, Mr. W.V. Oak received from him a cutting rebuff - "Go and Speak to the Wall". With his acute presence of mind and sense of humour Mr. Oak smilingly retorted that he was actually doing so. Mr. Oak was a brilliant student and with the courage he exhibited before an autocrat he naturally became a darling of the students.

We, the Science students, were less affected by Dr. Basu's authoritative ways. We had our own Scholastic world with Dr. Deshpande, Prof. Padmanabhan, Prof. Gole as our Heads of Departments ably aided by Dr. Bhagwat, Prof. Gangarade and others. All our Professors had maintained a very close contact with us and were intensely interested not only in our current studies but also in our future. One could easily identify Dr. Deshpande, a keen Scholar, always in a hurry to attend to his research problems. The class of Prof. Padmanabhan always presented a serene atmosphere. He always lectured in a regulated voice, never raising it high nor keeping it too low. We were convinced that in clarity, no one could reach his level. I always liked Prof. Gole's lectures for his novel approach in solving difficult mathematical problems. Dr. Bhagwat always displayed his great enthusiasm throughout. His devotion to his research work and to the welfare of his students was unbounded.

How deeply were our professors involved in our studies is vividly shown by an event that took place when we were in the third year. An inquisitive classmate of ours somehow secured the date of birth of Prof. Gangarade. On that day just before his class he divulged his seret to us. All were joyful. We all wished him a very happy birthday and requested him to call off his lecture in the honour of his birthday. Prof. Gangarade did yield to our entreaties by way of offering us a sum of rupees five to celebrate his birthday but insisted on to take the class. Needless to say that, after the class, we enjoyed a grand party in the College Canteen.

The change over from Dr. Basu to Mr. Richardson was generally welcomed. This was inspite of the fact that those were the days of freedom struggle and he was a foreigner. He was approachable, had pleasing manners and took keen interest in all activities of College. Preparations were afoot for the celebration of the Golden Jubilee of the College in the first quarter of 1941. With great alacrity he tried to organise the function through full cooperation of the students. And here his charming and persuasive ways could not dampen the spirit of freedom struggle imbibed in the students. The students insisted that the function began with the singing of 'Vande Mataram'. He arranged comprehensive discussions on the subject through the meetings of Students Union during nights. But the students did not yield and the celebrations had to be postponed. Our chief spokesman Mr. G.M. Chaphekar became our hero over night. His advocacy of our cause was so effective that authorities could not find a way out. Here were sown the seeds of an eminent advocate.

A little episode that took place during this struggle cannot be forgotten by me. I was a poor student and granted freetuition. My colleagues always guarded my interest and kept me away from all demonstrations taken place in the college in response to freedom struggle. During Jubilee preparations, however, I was elected a member of Students Union and was obliged to attend its meetings. I think Dr. Deshpande felt particularly concerned about my studies. He requested my uncle to bring pressure on me to stop my attending these meetings in view of the fast approach of our final examination. Such was the care we received from our reverred teachers.

In the end, I may be allowed to say that the 1941 B.Sc. batch of Holkar College was possibly the best in that out of 35 students, 6 students were rated in the first class and most of the others stood in the second class.

□□

स्वतंत्रता संग्राम और कॉलेज के वे दिन

आनंद सिंह मेहता

१९३६ में मैने होलकर कॉलेज में प्रवेश लिया और छह वर्षों तक वहाँ अध्ययन किया. १९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन के कारण कॉलेज छोड़ दिया. डॉ. देशपांडे के मार्गदर्शन में प्रारंभ किया शोध कार्य छोड़ना पड़ा. कॉलेज की शिक्षा क्यों ले रहा हूँ, विज्ञान का विषय क्यों चुना है या बाद में शोध कार्य में समय क्यों लगाना चाहता हूँ, इस सब के बारे में मन में कोई स्पष्टता नहीं थी. हाँ, स्कूल के बाद कॉलेज का जीवन ज्यादह दिलचस्प था. लगता था मानों एक छलाँग में ऊँचाई मिल गई है.

छावनी के बाद कॉलेज के मार्ग का शांत वातावरण और आसपास के बड़े बड़े पेड़ों के झुंडों का दृश्य बड़ा मनोहारी लगता था. इस चौड़े मार्ग पर तेज रफ्तार से सायकल चलाने में बहुत मजा आता था. उन दिनों सड़क दुर्घटना का डर नहीं था क्योंकि मार्ग में बस, ट्रक या कार यदाकदा ही दिखती थी.

कॉलेज की इमारत हमें बड़ी शानदार लगती थी. दूर से पेड़ों के बीच इसकी लाल-लाल झलक दिखाई देती तो एक विशेष गर्व का अनुभव होता था. कॉलेज के आहाते में घुसने पर सायकल स्टेंड पर सायकल रखते और कॉलेज के वातावरण से अभिभूत से हो जाते थे. तब डॉ. बसु प्राचार्य पद पर थे. उनका बड़ा दबदबा था. व्यवस्थित और अनुशासित कॉलेज की गतिविधियों का श्रेय उन्हें जाता है. विज्ञान-विभाग के गुरूजनों में डॉ. देशपांडे, डॉ. भागवत, प्रो. माथुर, डॉ. कौशल, प्रो. पदमनाभन्, प्रो. गोले व प्रो. गंगराडे थे. प्रो. घोष, प्रो. बोरगाँवकर, प्रो. मिश्रा, प्रो. श्री खण्डे, प्रो. उर्द्धवरेषे, प्रो. यार्दे, प्रो. वर्मा, प्रो. बोर्डिया, प्रो. देसाई और प्रो. अय्यर याद आ रहे हैं. सभी गुरूजनों के लिये हमारे मन में बड़ा आदर था. नागरिकों से भी उन्हें समुचित आदर मिलता था. सादा जीवन और उच्च विचार उनकी जीवन शैली थी. पैसा कमाने के लिये उचित अनुचित का विचार न कर जो दौड़ भाग आज नजर आती है, तब उसका सर्वथा अभाव था. शिक्षक वर्ग अपनी गरिमा व मर्यादा के प्रति सजग था. कॉलेज के सभी शिक्षकों से मुझे इतना अच्छा व्यवहार मिला कि उसकी याद से आज भी मन सुखद कृतज्ञता से भर जाता है.

होलकर कॉलेज आगरा युनिवर्सिटी का प्रतिष्ठित कॉलेज था. यहाँ अध्यापन-स्तर, खेल-कूद का स्तर, पुस्तकालय का संग्रह व रखरखाव, प्रयोगशाला की सुविधाएँ, छात्रावास व खेल के मैदान, सभी कुछ दूसरे कॉलेजों के मुकाबले में बेहतर थे. इन्दौर के आस-पास के क्षेत्रों के कई विद्यार्थी यहाँ शिक्षा पाने के लिये आते थे. कई मर्तबा दूरस्थ क्षेत्रों के विद्यार्थी भी यहाँ प्रवेश लेते थे. तब स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था कुछ विषयों तक ही सीमित थी तथा शोधकार्य की सुविधा सिर्फ रसायन शास्त्र में थी.

इन्दौर की आबादी चौथे दशक के अंत में करीब दो लाख थी. यह होलकर रियासत की राजधानी थी. भारत के मध्य क्षेत्र का यह सबसे बड़ा और सबसे अधिक प्रगतिशील शहर था. राजा की प्रशासन में दखलंदाजी नहीं थी. प्रशासनिक अधिकारी क्षमतावान थे और विकासोन्मुख दृष्टि रखते थे. शिक्षा, उद्योग, व्यापार व कृषि के अतिरिक्त पूरी होलकर रियासत में ग्राम पंचायतों व नगरपालिकाओं का काम सराहनीय था. इन्दौर शहर की नगरपालिका की व्यवस्था अनुकरणीय मानी जाती थी.

इन्दौर में पहला अंग्रेजी स्कूल १८४१ में स्थापित हुआ. इसके बाद यहाँ तेजी से शिक्षा सुविधाएँ बढ़ती गई. १८७८ में किंग एडवर्ड मेडिकल स्कूल

की स्थापना हुई. १८७९ में इंजिनीअरिंग स्कूल स्थापित हुआ. १८८८ में क्रिश्चियन कॉलेज तथा १८९१ में होलकर कॉलेज स्थापित हुआ. महिला शिक्षा के लिये १९१२ में चंद्रावती महिला विद्यालय व १९२२ में लेडी रीडिंग स्कूल की स्थापना हुई. इसी अवधि में यहाँ आर्ट स्कूल, संगीत विद्यालय, संस्कृत महाविद्यालय, पुरातत्व संग्रहालय, विक्टोरिया लायब्रेरी, जनरल लायब्रेरी, नररत्न मंदिर, हिन्दी साहित्य समिति, व महाराष्ट्र साहित्य समिति की स्थापना हुई. १९२४ में कृषि शोध कार्य के लिये ३०० एकड़ के फार्म के साथ प्लांट इंस्टिटयूट की स्थापना हुई. मूक-बधिर व अंधे बालकों के लिये भी शिक्षा व्यवस्था प्रारंभ की गई. सरकारी प्रयत्नों के साथ शिक्षण संस्थाओं को स्थापित करने के लिये गैर सरकारी प्रयत्न भी काफी मात्रा में रहे. इन्दौर आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज व थियोसॉफिकल समाज की गतिविधियों का भी केन्द्र रहा. इन तमाम संस्थाओं के कारण शैक्षणिक व सांस्कृतिक दृष्टि से इन्दौर अपना महत्व रखता आया है.

हमारी पीढ़ी को बचपन से ही कुछ धार्मिक व सामाजिक सुधारकों के बारें में काफी पढ़ने और सुनने को मिला और हमारे विचारों पर स्पष्ट ही उनका असर हुआ. राजा राममोहन राय व ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने रुढ़िवाद का विरोध कर प्रगतिशील विचारधारा का उन्नीसवीं सदी के अंत में सूत्रपात किया था. बंगाल में ब्रह्म समाज के आंदोलन ने व महाराष्ट्र मे प्रार्थना समाज के आंदोलन ने वर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया. स्वामी विवेकानन्द ने राष्ट्रीय स्वाभिमान देशवासियों में भरा और बताया कि भारत के पास अध्यात्म का अटूट खजाना है. स्वामी दयानन्द ने प्राचीन भारतीय गौरव को जगाया और हिन्दू समाज को शक्ति प्राप्त करने की दिशा दी. ऐनी बेसन्ट के थियासॉफिकल आंदोलन ने विश्व बंधुत्व के लिये प्रेरित किया.

दादाभाई नौरोजी, बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, न्यायमूर्ति रानडे, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल, फिरोज शाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी जैसे महापुरूषों ने गुलामी से होने वाले आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक ह्रास की बात समझाई, स्वतंत्रा प्राप्ति की इच्छा जगाई और स्वतंत्रता आंदोलन के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संगठन को फैलाया व मजबूत किया.

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में महात्मा गांधी ने भारत में अहिंसा के आधार पर लड़े जाने वाले क्रांतिकारी स्वतंत्रता संग्राम को हर भारतवासी से जोडा और साम्प्रदायिक एकता स्थापित की. ब्रिटिश शासन की जड़ों को महात्मा गांधी के अहिंसक आंदोलन ने झकझोर डाला, क्योंकि पहली बार लाखों की संख्या में आंदोलन से संबंध रखने वाली प्रवृत्तियों में लोगों ने भाग लिया और हजारों की संख्या में लोग सत्याग्रह कर जेल गये. गांधीजी ने युगांतरकारी वातावरण बनाया. जनता ने उन्हें श्रद्धा और आदर के साथ अपनाया और उनके नेतृत्व में बड़े से बड़ा त्याग करने की आतुरता बताई. ब्रिटिश शासन ने भी गांधीजी के आंदोलन को कुचलने के लिये कोई कसर न छोड़ी

भारतीय राजनैतिक आंदोलन पर रूसी क्रांति का जबरदस्त प्रभाव पड़ा था. युवकों में विशेषरूप से समाजवाद की विचारधारा के प्रति आकर्षण बढ़ रहा था. इनमें से कुछ की मान्यता थी कि आजादी व समाजवाद को हिंसक क्रांति के मार्ग से ही प्राप्त किया जा सकता है. क्रांतिकारियों के एक दल ने १९२५ में काकोरी रेलवे स्टेशन पर सरकारी खजाना लूट लिया. इससे खूब तहलका मचा. नवजवान सरदार भगतसिंह ने १९२९ में लेजिसलेटिव कौसिल का ध्यान आकर्षित करने के लिये बैठक के दौरान एक बम फैंका जिसके कारण फांसी की सजा दी गई. लोगों के कड़े विरोध के बावजूद १९३१ में उन्हें फांसी पर लटका दिया गया. इस शहादत से सारा राष्ट्र गहरी व्यथा से हिल गया साथ ही भगतसिंह के प्रति प्यार से अभिभूत हो गया व ब्रिटिश शासन के विरूद्ध क्रोध से उद्वेलित हो उठा. जनरल डायर द्वारा किया गया बर्बर हत्याकांड इस समय याद आना स्वाभाविक था. भगतसिंह की बहादुरी व त्याग से अनेक युवकों ने प्रेरणा पाई. इन्दौर के कुछ क्रांतिकारी युवकों ने राजनीतिक उद्देश्य से एक डकेती आयोजित की. धार डकेती-कांड के कुछ युवकों से मेरा भी संपर्क था.

जवाहरलाल नेहरू १९२९ में लाहोर के कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष बनाये गये. इस अधिवेशन में संपूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हुआ और २६ जनवरी १९३० को भारत भर में पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया और इसके बाद से लगातार इस दिवस को मनाया जाने लगा. जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस नवयुवकों के आदर्श थे. इस दशक में अनेक कल्पनाशील युवक राजनीतिक कार्यकर्ता व क्रांतिवाहक या लेखक बनने की तरफ प्रवृत्त हुए.

१९३० में आंदोलन की बागडोर गांधीजी के ही पास थी. उन्होंने दांडी-यात्रा और नमक कानून तोड़ने का कार्यक्रम बनाया. ब्रिटिश शासन ने बडी क्रूरता से आंदोलन कुचलने की कौशिश की परंतु आंदोलन बढता गया. इन्दौर की कांग्रेस शाखा ने भी बडे कडाह में समुद्र का पानी सुखा कर नमक बनाया. मैं भी भीड में दर्शक था और चुटकी भर नमक प्रसाद के रूप में मुझे भी मिला था.

इन दिनों गांधीजी द्वारा सुझाई गई प्रवृत्तियों को देश भर में चलाया जा रहा था. तकली व चर्खे पर सूत कातना हमें बड़ा अच्छा लगता था. इसमें सर्जन का आनन्द था. विदेशी वस्त्रों की होली देखते समय हमें खूब उत्तेजना महसूस होती थी. शराब की दुकानों पर पिकेटिंग चलता. अस्पृष्यता निवारण, प्रौढ़ शिक्षा व बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम भी चलाये जा रहे थे.

१९३७ में प्रांतीय सरकार के गठन के लिये चुनाव हुए. ग्यारह में से आठ प्रांतों में राष्ट्रीय कांग्रेस को बहुमत मिला और यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस ही भारतीयों की प्रतिनिधिक संस्था है. आठ प्रांतों में कांग्रेस सरकार बनी. बाकी तीन में मिली जुली सरकारें बनीं.

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति तेजी से बिगड़ रही थी. इटली ने इथोपिया पर कब्जा कर लिया था. जापान ने चीन पर हमला कर दिया था. १९३८ में जर्मनी ने आस्ट्रिया पर कब्जा कर लिया और इसके तुरंत बाद चेकोस्लोवाकिया को रौंद डाला. इटली में मुसोलिनी और जर्मनी में हिटलर की ताकत के सामने इंग्लैंड व फ्रांस जैसे सशक्त देश किसी भी तरह का प्रतिरोध करने से घबरा रहे थे और छोटे छोटे देशों के निगले जाने पर चुप थे. मुसोलिनी और हिटलर का आक्रामक रूप बढ़ता गया. अन्ततोगत्वा सेप्टेंबर १९३९ में विश्वयुद्ध छिड़ गया. जर्मनी, जापान और इटली के विरोध में इंग्लैंड, फ्रांस, रूस, चीन और अमेरिका खड़े हुए. इंग्लैंड और फ्रांस ने अपने आधिनस्थ देशों को अपना समर्थक घोषित कर दिया और इस तरह भारत को भी युद्ध में शरीक कर लिया गया. भारत की इच्छा मालूम किये बिना इसे युद्ध में घसीट लिया जाना अनैतिक व अपमानजनक था. कांग्रेस स्पष्ट रूप से फासिस्ट ताकतों की विरोधी थी. साथ ही ब्रिटेन के साम्राज्यवादी रूख का भी विरोध करती थी. अतएव प्रांतीय सरकारों से

कांग्रेस ने त्याग-पत्र दे दिया और केन्द्रीय सरकार के साथ सहयोग न करने की घोषणा की. जापान जर्मनी और इटली की विजय-यात्रा जारी थी. १९४० में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के द्वारा संकट स्थिति की गंभीरता को व्यक्त किया.

देशी रियासतों में निरंकुश सत्ता खत्म करने व उत्तरदायी शासन की मांग करने के लिये प्रजामंडल संघठन खड़े करने की कांग्रेस ने सिफारिश की थी. साठ बड़ी रियसतों में प्रजामंडल संघठन काम कर रहे थे. इन्दौर में मजबूत प्रजामंडल था और इसका नेतृत्व तात्या सरवटे, बैजनाथ महोदय व खोड़े जैसे सक्षम व्यक्तियों के हाथों में था. होलकर रियासत के जनप्रिय दीवान श्री बापना की मृत्यु के पश्चात कर्नल दीनानाथ इस पद पर आये, जिन्होंने प्रजामंडल की एकता नष्ट करने के लिये लालच देकर कुछ लोगों को फोड़ा. और इस तरह संघर्ष का वातावरण बनाया.

होलकर कॉलेज के प्राचार्य डॉ. बसु इस समय रिटायर हो गये थे. उनके स्थान पर रिचर्डसन आये. रिचर्डसन ने भी विद्यार्थी एकता को नष्ट करने के लिये वंदे मातरम् गान के लिये दो तीन मुस्लिम विद्यार्थियों के विरोध को महत्व दिया. रिचर्डसन का सोच वही था जो भारत में अंग्रेज प्रशासकों का था.

१९३८ में दिल्ली में अखिल भारतीय स्टूडेंट फेडरेशन का संघठन बनाया गया था. एम. फारूकी तब संघठन के महामंत्री थे. धीरे-धीरे स्टूडेंट फेडरेशन की शाखाएँ स्थान-स्थान पर स्थापित हो रही थीं. फेडरेशन का उद्देश्य आजादी के राष्ट्रीय आंदोलन में विद्यार्थियों की हिस्सेदारी को बढ़ाना था. १९४० में इन्दौर में भी फेडरेशन स्थापित हुआ. इसमें सिर्फ कॉलेज स्तर के विद्यार्थियों को संघटित किया गया. वसंत सरवटे, प्रभाकर उर्द्धरेषे, राजू वैद्य, टेंबे व मेरा फेडरेशन की स्थापना में प्रमुख हिस्सा था. प्रथम कार्यकारिणी में वसंत सरवटे अध्यक्ष और प्रभाकर उर्द्धरेष महामंत्री नियुक्त हुए. दूसरे वर्ष में मुझे अध्यक्ष और शंकर ओझा को महामंत्री बनाया गया. राजू वैद्य, अनंत लागू, चंदन मेहता, नाथूलाल जैन, सरदार रणजीत सिंह, प्रताप सिन्हा, नंदकिशोर भट्ट, गौड, श्याम सुंदर व्यास, डॉ. मल्होत्रा, श्री हरी महोदय, जगमोहन पंवार, इंदु पाटकर, मुक्ता ऋषि, जोहरीलाल झांझरिया, हीरालाल शर्मा, अजित प्रसाद जैन आदि इन्दौर के विद्यार्थी आंदोलन में प्रमुख थे.

रिचर्डसन ने आते ही कॉलेज में विद्यार्थी पार्लियामेंट चालू की. स्टूडेंट फेडरेशन के कार्यकर्ताओं ने पार्लियामेंट में विपक्ष की भूमिका में रहना पसंद किया. उर्द्धरेषे और नाथूलाल जैन अच्छे वक्ता थे. विपक्ष सत्ता पक्ष पर हावी रहता था.

१९४२ में जापानी फौजें बर्मा तक आ गई थीं और भारत पर आक्रमण की संभावना बढ़ गई थी. कांग्रेस ने अंग्रेजों से कहा कि वे भारत छोड़ दें ताकि हम देश की रक्षा की जिम्मेवारी पूरी कर सकें. ८ अगस्त १९४२ को बम्बई में कांग्रेस कमिटी का अधिवेशन हुआ उसमें 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास हुआ. गांधी जी ने देश को आह्वान किया कि 'करो या मरो'. इस महत्वपूर्ण अधिवेशन की कार्यवाही देखने फेडरेशन के चार व्यक्ति बम्बई गये थे. जोहरीलाल झांझरिया, इंदु पाटकर, नाथूलाल जैन और मैं ९ तारिख को गवालिया टेंक मैदान पर जनता को संबोधित करने वाले थे. गांधीजी को आशा थी कि कोई कड़ा कदम उठाने से पहले ब्रिटिश शासन उनसे बातचीत करेगा. परंतु ८ तारिख की रात को ही कांग्रेस के तमाम प्रमुख लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया. जनता नेतृत्व विहीन हो गई. ९ तारिख की सभा को संबोधित करने के लिये कस्तूरबा का नाम तय हुआ. परंतु उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया. हम लोग सभा मैदान में गये तो युद्ध का सा वातावरण मिला. भीड़ पर घोड़े दौड़ाये गये, सारे मैदान पर टीयर गैस के बम फैके गये, फायर हाइड्रेंट से पानी छिड़का गया और लाठियाँ चलाई गई. पूरा बम्बई बंद हो गया. अन्य शहरों के लोगों ने भी शहरों को बंद रखा, टेलीफोन के तार काटे, रेल की पटरियाँ उखाड़ी और इमारतों को नुकसान पहुँचाया. सरकार ने हर जगह के महत्वपूर्ण राजनेताओं को जेल में बंद कर दिया था.

इन्दौर के विद्यार्थी हमारी वापसी का इंतजार कर रहे थे. इस वर्ष जोहरी लाल झांझरिया अध्यक्ष थे. हम लोगों ने १३ तारिख को तमाम संस्थाओं को बंद करने का और जुलूस निकालने का तय किया.

१९४२ में होलकर कॉलेज के प्राचार्य पद पर डॉ. राजू आ गये थे. रिचर्डसन को शिक्षा-मंत्री के पद पर स्थानांतरित किया गया था. डॉ. राजू सरल परंतु कुछ सनकी स्वभाव के थे. वैसे वे अच्छे वक्ता थे और उनकी क्लास में उन्हें सुनने अन्य कक्षाओं के विद्यार्थी भी आते थे. मेरा उनसे संपर्क नहीं आया. १३ अगस्त, को हम कॉलेज में विद्यार्थियों की सभा करना चाहते थे, परंतु इसकी अनुमति नहीं मिली. कॉलेज के बाहर सड़क पर सभा हुई और हड़ताल की पुष्टि की गई. शाम को प्रजामंडल, कॉंग्रेस, स्टूडेंट फेडरेशन व मजदूर संगठन द्वारा एक संयुक्त रैली निकाली गई. पूरे शहर में, कारखानों में व शिक्षण संस्थाओं में हड़ताल थी और वातावरण तनावपूर्ण था. पुलिस ने जुलूस को रोका और तितर-बितर करने के लिये सब तरह के प्रयास किये. अब स्पष्ट था कि सब प्रमुख आंदोलनकारी गिरफ्तार किये जाएँगे. 'आगामी कल' के संपादक प्रभागचंद्र शर्मा मुझे व मेरे कुछ साथियों को भीड़ से निकाल लाये और मुझे अंडरग्राऊंड हो जाने की सलाह दी. मेरे साथियों ने भी इसे ठीक माना. तय हुआ कि नंदकिशोर भट्ट अपने निवास पर मुझे छिपा कर रखेंगे. रात में पुलिस ने मेरे घर पर छापा मारा पर मैं नदारद था. प्रजामंडल पत्रिका को गुप्त रूप से निकालने का काम मेरे बड़े भाई मनोहर सिंह मेहता के पास था. सौं पुलिस की निगाह हमारे घर पर रही और दो दिन बाद फिर से पुलिस ने छापा मारा पर सफलता नहीं मिली. जोहरीलाल झांझरिया व इंदु पाटकर को गिरफ्तार किया जा चुका था. अन्य लोगों के साथ कुछ महिनों तक मैं वेश बदल कर अलग-अलग स्थानों पर रहा. आंदोलन को जीवित रखने के लिये बुलेटिन व गश्ती चिट्ठियाँ तैयार करता व विद्यार्थियों से संपर्क करता. हथियार और विस्फोटक पदार्थ भी एकत्रित किये गये और जंगलों में जाकर उन्हें प्रयोग करने की विधि सीखने का प्रयत्न किया. नेताओं की गिरफ्तारियों के बावजूद आंदोलन की गरमी बनी हुई थी. डॉ. राम मनोहर लोहिया और अरूणा आसफ अली अंडर ग्राऊंड रह कर पूरे भारत के आंदोलन का निर्देशन कर रहे थे. डॉ. केसकर एम.पी. सिन्हा, उषा मेहता जैसे अनेक प्रमुख लोग अंडर ग्राऊंड हो गये थे. जयप्रकाश नारायण जेल से भागने में सफल हो गये थे. सुभाष बोस आजाद हिंद फौज संघटित कर चुके थे और यह फौज भारत सरकार की फौज से मोर्चा ले रही थी. आंदोलन कारी एक रेडियो स्टेशन संचालित करने में भी सफल हो गये थे. फिर भी, १९४२ के अंत तक आंदोलन कई स्थानों पर ठंडा पड़ने लगा था. जेल में १९४३ के प्रारंभ में गांधीजी ने इक्कीस दिनों का अनशन करने का निश्चय किया. अनशन के दौरान गांधीजी की स्थिति बहुत नाजुक थी. सारा देश चिंतित हो गया और आंदोलन में तेजी आई. कस्तूरबा की मृत्यु जेल में हो गई. इस बात से भी लोग काफी उद्वेलित हुए. ५ फरवरी, १९४४ को गांधीजी को रिहा कर दिया गया. दूसरे नेता भी धीरे-धीरे रिहा किये जाने लगे. सबने राहत की साँस ली. अब बागडोर फिर से गांधीजी के हाथों में थी.

युद्ध में अब ब्रिटेन, रूस आदि मित्र राष्ट्रों का पलड़ा भारी होता जा रहा था. जर्मनी जापान और इटली हर मोर्चे पर कमजोर हो रहे थे. युद्ध समाप्ति की ओर था. आखिर १७ मई १९४५ को जर्मनी का पतन हो गया.

ब्रिटेन में लेबर पार्टी जीत गई थी, जो चर्चिल की कन्जर्वेटिव पार्टी के मुकाबले में भारत के प्रति कुछ बेहतर रूख रखती थी. आजाद हिंद फौज के नेताओं के मुकदमें तथा नेवी की बगावत के समय पूरे भारत में जो जोश उभरा उसे देखते हुए भी यह मान्यता बढ़ गई थी कि भारत के स्वशासन के हक को अब टालना कठिन है. परंतु इसी समय भारत में मुस्लिम सांप्रदायिकता का भयानक उत्कर्ष हुआ जिसने चचाओं की सफलता में रुकावट पैदा की. आखिरकार हमारे नेता बँटवारे के लिये तैयार हुए. १५ अगस्त, १९४७ को कटा हुआ भारत आजाद हुआ. गांधीजी के अनुसार कांग्रेस को भंग करना बेहतर होता. उस दिन मैंने अपने को राष्ट्रीय कांग्रेस से अलग कर लिया.

स्वतंत्रता संग्राम से जो लोग जुड़े थे. वे व्यक्तिगत आकांक्षा को लेकर नहीं जुड़े थे. स्वतंत्रता की मंज़िल जब पूरी होने आई तो व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा लोगों पर हावी होने लगी. गांधीजी को भुलाया जाने लगा. त्याग व सेवा का युग समाप्त होने लगा.

□□

होलकर महाविद्यालय के संस्मरण
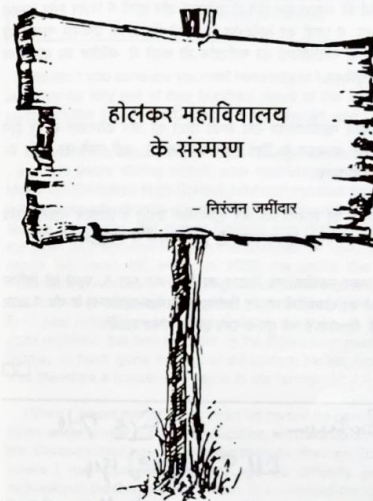
– निरंजन जमींदार

श्री निरंजन जमींदार चालीस के दशक में इस महाविद्यालय के छात्र थे. वे हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी के ख्याति प्राप्त लेखक हैं. इतिहास और राजनीति में उनकी विशेष रुचि है. उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं. 'और क्षिप्रा बहती रही' - उनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है. होलकर कॉलेज का संदर्भ लिये उनके दो उपन्यास 'निर्माल्य' और 'मज़ार के फूल' प्रकाशनाधीन हैं.

होलकर महाविद्यालय का नाम लेते ही संसार के, देश के, राज्य के और जीवन के एक अत्यंत उथल पुथल भरे युगपरिवर्तनकारी दशक का स्मरण हो आता है. सन १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हो गया था और सभी परिवर्तन की दहलीज पर खड़े नए प्रभात के आगमन की बाट जोह रहे थे.

भारत अंग्रेजों की दासता से मुक्त होने का अंतिम निर्णायक संघर्ष में रत था. भूतपूर्व होलकर राज्य में उत्तरदायी शासन और लोकतंत्र की स्थापना के आंदोलन प्रारंभ हो चुके थे. चारों और उथल पुथल थी. चालिस का दशक कई कारणों से अविस्मणीय बन गया था.

होलकर महाविद्यालय में प्रवेश कठिन नहीं था मेट्रिक के बाद उच्च शिक्षण के लालायित विद्यार्थी वहाँ प्रवेश पा सकते थे. विज्ञान में मात्र सीमित स्थान थे. कला संकाय में प्रवेश का कोई बंधन नहीं था. चालिस के दशक में वाणिज्य संकाय प्रारंभ हुआ. नागरिक शास्त्र का नया विषय कला संकाय में जोड़ा गया था. स्नातकोत्तर विषयों में अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, और इतिहास के साथ रसायन शास्त्र में पाठ्यक्रम थे. अन्य विषयों के लिए कोई व्यस्था नहीं थी.

होलकर महाविद्यालय में चालिस के दशक के पूर्व स्व. डॉ. पी.सी. बसू प्राचार्य थे. उनकी विद्वता का दबदबा था. वे एक कठोर अनुशासन प्रिय व्यक्ति माने जाते थे. छात्रों का उन पर प्रेम था. जब वे सेवानिवृत्त हुए तो रेलवे स्टेशन पर इन्दौर के छात्रों और नागरिकों ने उन्हें अविस्मरणीय बिदाई दी. मैं उस बिदाई समारोह में था. छात्रों की आँखों में आँसू बह रहे थे.

प्राचार्य बसु की सेवा-निवृत्ति के बाद महाराजा यशवंतराव होलकर ने अपने मित्र, कनाडा के मिस्टर एच.बी. रिचर्डसन को प्राचार्य बनाया. वे तरूण थे और अंग्रेजी पढ़ाते थे. उन्होंने कॉलेज में होलकर कॉलेज टाईम्स साप्ताहिक प्रकाशित करवाया. छात्रसभा का गठन करवाया. होलकर कॉलेज टाईम्स में मैंने अंग्रेजी संपादक के नाम पत्र लिखना प्रारंभ किए थे. उस समय महाविद्यालय में वह नया प्रयोग था.

उस समय इन्दौर में प्रगतिशील, विशेषकर कम्युनिस्ट विचारों का जोरदार प्रचार हुआ. महाराष्ट्र के कुछ साथी कम्युनिस्ट साहित्य का व्यक्तिगत सम्पर्क

कर प्रचार करते थे. मैंने उसी काल में बहुत सा कम्युनिस्ट साहित्य खरीदा और पढ़ा. कम्युनिस्ट विचारधारा के अध्ययन के लिये समितियाँ थी जिनमें राष्ट्रवाद, गाँधीवाद, कम्युनिज़्म आदि पर खुलकर चर्चाएँ होती थी.

इसी काल में महाराजा के कुछ सलाहकारों के कारण होलकर महाविद्यालय में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का प्रचार हुआ. वंदे मातरम् गीत के विषय में काफी कटु संघर्ष हुए. सम्राट अकबर की जन्मतिथि समारोह पर स्व. सर तेज बहादुर सप्रू पधारे थे. उन्हें छात्रों ने बोलने नहीं दिया. इस अवसर पर प्राचार्य रिचर्डसन शायद पादरी की वेशभूषा में आये थे.

चालिस के दशक में ४२ का आंदोलन प्रारंभ हुआ. उसमें राष्ट्रवादी छात्रों ने भूमिगत होकर पत्रिकाएँ निकाली. बम आदि बनाने के प्रयत्न भी हुए थे. छात्रों का रुझान उस समय समाजवादी विचारधारा की ओर था. वे गाँधीजी की अहिंसा में विश्वास नहीं करते थे.

इसी दशक में इन्दौर के सौभाग्य से नोबल पुरस्कार विजेता स्व. सर सी.व्ही. रमन इन्दौर पधारे थे. उनके अत्यंत रोचक व्याख्यान सुनने का मौका मिला.

होलकर महाविद्यालय में प्रा. रिचर्डसन के बाद प्राचार्य राजू आए. वे दर्शन के प्राध्यापक थे. उनका व्यक्तित्व विचित्र था. हर पांच मिनिट में वे अपनी बातों से मुकर जाते थे. उनके कई लतीफे सुने जा सकते हैं.

महाविद्यालय में सहशिक्षा थी फिर भी छात्राओं की संख्या बीस से अधिक नहीं थी. छात्राओं में आज की तरह चमक दमक नहीं थी. उन्हें अधिकतर 'पढाकू' स्कॉलर माना जाता था. उनसे बात करने में नए छात्रों को बहुत अटपटा लगता था.

होलकर महाविद्यालय के प्राध्यापकों की विद्वता की सभी दूर तक धाक थी. अंग्रेजी में प्रो. घोष, प्रो. बोरगाँवकर, प्रो. बोर्डिया आदि थे. अर्थशास्त्र में प्रो. धारीवाल, प्रो. यारदे, प्रो. सिंहल आदि थे. इतिहास में प्रो. धर, प्रो. वर्मा, प्रो. श्रीवास्तव थे. हिन्दी में प्रो. चतुर्वेदी और प्रो. मिश्र थे. दर्शनशास्त्र में प्रो. कविश्वर थे. विज्ञान संकाय में डॉ. देशपांडे, पूज्य माने जाते थे. वे एक संत वैज्ञानिक थे. प्रो. पदमनाभन, प्रो. गोले, प्रो. माथुर, डॉ. भागवत आदि थे. उनके अध्यापन की ख्याति सारे भारत में थी.

कानून विभाग में प्रो. अय्यर का दबदबा था. इन्दौर के प्रसिद्ध अभिभाषक पार्ट टाईम पढ़ाते थे. सारे मालवा और निमाड़ कें बहुसंख्यक अभिभाषक होलकर कॉलेज से निकले हुए थे.

महाविद्यालय के प्राध्यापक शिक्षण कार्य के सिवा सामाजिक साहित्यिक और जनकल्याण के कार्यों में सक्रिय भाग लेते थे.

प्रो. बोर्डिया स्काउट आंदोलन में थे. प्रो. चतुर्वेदी, प्रो. मिश्र, प्रो. वर्मा मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति में सक्रिय थे प्रो. कविश्वर प्रो. उद्धरेषे, प्रो. डॉ. भागवत महाराष्ट्र साहित्य सभा, इन्दौर जनरल लायब्रेरी में सक्रिय थे. प्रो. यारदे हरिजन सेवक संघ का कार्य करते थे.

छात्रों की संख्या कम होने से प्रोफेसरों और छात्रों में विशेष स्नेह सम्बंध रहता था. वे छात्रों का मार्गदर्शन भी करते थे. अनेक प्रोफेसर गुप्तरूप से राजनीतिक गतिविधियों का मार्गदर्शन भी करते थे. कॉलेज का वातावरण सौहाद्र पूर्ण था.

होलकर महाविद्यालय उस समय छोटा था और कोलाहल से दूर होने के कारण अध्ययन के लिये बहुत उपयुक्त था. वहाँ जाने पर शांति का अनुभव होता था.

मालवा की राजनीतिक और सामाजिक प्रगति में होलकर महाविद्यालय के छात्रों का भरपूर योगदान रहा है, इस निष्कर्ष से सभी सहमत होंगे.

होलकर महाविद्यालय विज्ञान का केन्द्र बन गया है. पहले जो विभिन्न संकायों का संगमतीर्थ था वह विशेषज्ञता (स्पेशलाइझेशन) के दौर में बदल गया है. विश्वास है नये युग के छात्र इसका गौरव बढ़ावेंगे.

□□

Kirajiwale Narayan Govind   Caste Brahman.   Age 17.10.
s. Diwan Kesji. Ind.   CKS   All Subj. (2d) 1914
Joined 1914. A good fellow, who worked well in 1st yr. Went off in 2nd yr. - possibly owing to management of property. Passed F.A. (3d) 1916
Doing fairly well in 1916-17. Intelligent, not always enough work. Partner of S. S. [illegible] as winner of tennis doubles 1918. Sanskrit prize in IV year. 1917-18
Passed B.A. 1918 (III) Shivaji Rao medal 1918. Went to Bombay for M.A.
State employ. Incited our boys agt. Principal, Oct-Nov. 1920.

5^0 YEARS

Mr. Inayat Husain did his Intermediate from Holkar College in 1942. He passed his M.Sc. in Civil Engineering from the University of Tennessee (U.S.A.) in 1948. After Migrating to Pakistan he worked on many high posts like Secretary of Atomic Energy Commission and C.S.I.R. At present he is associated with a firm of Engineering Consultants and Architects at Karachi.

- Inayat Husain

Wouldn't you consider yourself fortunate to have been an alumnus for fifty out of one hundred years of the life of an institution like the Holkar College? Well, I would, and I do!.

My academic association with the College was rather brief - just two years during which, after matriculating from the Maharaja Shivajirao High School, I did Intermediate Science, before proceeding for my engineering education at the Aligarh Muslim University. But Holkar College was nothing new to me even as I enrolled there in the Summer of 1940. I was hardly ten years old when, in 1932, my uncle, the Late Fakhruddin, (Advocate Indore High Court), after matriculation also from the Maharaja Shivajirao High School, joined the First year Arts Class at Holkar College. He was, as far as I can recollect, the first member of the Bohra Community of Indore, to have gone for higher education; Holkar College was therefore a house-hold name in our family.

When I joined the College, I had let myself be persuaded by my uncle to forego science education, and take up commerce. Because I had a good academic record in the High School, where I had studied science, I had no difficulty getting admission in the Commerce Section. But a friend of the family, Professor Chaturvedi (he taught Sanskrit at the College) happened to drop by at our modest establishment (Arms & Ammunitions), and prevailed upon my elders to let me study science and mathematics because, according to him, I was bestined to be an engineer! The very next day I, with my uncle Mr. Fakhruddin, waited upon the Principal, the unforgettable Dr. Prafulla Chandra Basu, at his residence. I remember very clearly the rebuke he gave my uncel for having compelled me to forego science. But he agreed to my changing the subject. I also remember that my roll-number, in a class in which admission was restricted to fifty students, was fifty one. Professor Basu knew that several students would drop out of the science class and there would be no problem of my being accommodated there. By the time we appeared for the intermediate Science Examination, our class had shrunk to only forty students. My roll number in the class however, remained fifty-one.

It is a measure of the great esteem and respect in which Holkar College was held among the institutions affiliated to the Rajputana Board, that in the year 1942 in each of the four subjects viz. English, Mathematics, Physics and Chemistry, at the inter science examination, one out of the two (three in the case of English) papers was set by a member of its faculty. Professor Borgaonkar -the incomparable exponent of Shakespeare, Professor Gole, Professor Padmanabhan and Dr. Deshpande. It is also a measure of the intergrity of these dedicated teachers that merely a student had any inkling of this, until we set down at the examination desk, and realised, from the style of the question papers placed before us, day after day, that Holkar College had the honour of providing no less than four out of the nine examiners.

The Rajputana Board, like our own college, was considered to be the expitome of honesty and integrity, in matters of academic standards; In the year that I completed my Intermediate Science studies, out the forty students who took the final examination eight students passed in the First Division, eight in the Second and four in the Third; the remaining twenty just failed. I was one of the lucky eight in the top bracket.

Dear Old Alma Mater - I respect and revere thee for having enabled me to qualify for admission in the Engineering College at Aligarh. God bless each brick and stone of thy Campus, and may all those who enter thy portals to learn, go forth to serve.

□□

I was in Holkar College from 1940 to 1944 and passed my B.Sc. (Agra University) from there.

The College was situated in quiet, sylvan surroundings, away from the din and bustle of the city. It was a pleasure to bicycle 3½ miles to the College (there were no busses then). Enroute we met friends and classmates and the 20-25 minutes passed in no time at all.

We enjoyed going to the classes. The Professors and Lecturers knew all the students by name, and what's more, the students knew their teachers! College and extra-curricular activities filled the whole day. On "practical" days, many of us went, from the Laboratory, straight to the playgrounds or the Parade Ground (those of us, like me, who joined the "Holkar Cadet Corps). On other days, usually Wednesdays and Saturdays, we had time to bicycle home and come back for sports.

College gathering was an eagerly awaited event, as also the elections and student-parliament sessions. As the freedom-movement was in full swing all over the country, the speeches in the student-parliament were loaded with political overtones, and were full of force and passion, to the great delight of the student community (and some embarrassment to the authorities).

The class-room, the sports-ground, and the Parade-ground brought me across three different cross-sections of the student-community. This experience of group-life was a great thing and stood me in good stead in my life in the Armed Forces.

There was great respect for the teachers-each had his own peculiarities-some stern, some great mixers, some just plain serious, some mischievous, and so on-but all commanded respect. Our Professors - Deshpande, Padmanabhan, Bhagwat, Gole, Gangrade, Chitale, Kaushal, Borgaonkar, Paul, Desai are all etched in my memory deeply, and as I think of them, involuntarily I bow my head in respect.

A number of friendships were formed which lay dormant till the persons met me again-some frequently, some less so, and some I have never met again. But even after 40 years when I meet an old friend, the thread can be instantly picked up again, as if we had parted only yesterday or yester-year. It is only when the events of the lapsed period are talked about, and the extensions of the family-tree are discussed, that the actual span of time that has elapsed strikes us with force. However, the warmth of friendship lingers on.

All in all, when I pause to reflect on those days, the friendships, personal relationships and events of those 4 years come flooding in the mind all at once, so that I can chose which one to bring into greater focus for deliberate thought (the process being perhaps more efficient than even a computer can provide).

As I look back on those 4 years, I find there is a touch of sadness in the mind (that the days are gone for ever) along with the pleasure of happy recollections. I think that is what they call nostalgia.

□□

आज से सौ वर्ष पूर्व होलकर कॉलेज की स्थापना का श्रेय तत्कालीन होलकर राजघराने को है. बीसवीं सदी के प्रारंभ में ब्रिटिश भारत के सदृश ही देशी रियासतों में भी प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उपक्रम हुए. बड़ौदा और ट्रावनकोर रियासतों ने इस दिशा में विशेष प्रयत्न किये. होलकर रियासत भी इस दिशा में पिछड़ी नहीं रही. होलकर रियासत ने १९२५ में निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्ष का बिल स्वीकृत किया. अनिवार्य शिक्षा का इस योजना के अंतर्गत इन्दौर नगर के विभिन्न क्षेत्रों में बारह प्राथमिक शालाएँ इसी वर्ष स्थापित की गई. इनके भवन भी बनाये गये. इन भवनों के अवशेष अभी भी हैं. उन्हें जाफरीवाले स्कूल के नाम से जाना जाता रहा है. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की इन संस्थाओं में छात्र उपस्थिति बढ़ाने के लिए उपस्थिति अधिकारी नियुक्त होते थे. वे निरंतर उपस्थिति पर दृष्टि रखते थे. बालिकाओं की उपस्थिति बढ़ाने के लिए भी स्कूल मदर के नाम से कुछ महिलाएँ कार्यरत रही हैं. इस विवरण का अभिप्राय यही है कि होलकर रियासत शिक्षा के क्षेत्र में - स्कूली ओर महाविद्यालयीन दोनों ही - अग्रणी देशी रियासत रही है.

स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रति होलकर रियासत के लगाव का परिणाम यह होलकर कॉलेज है. वर्ष १८९१ में स्थापित यह कॉलेज इस क्षेत्र में एक मात्र ऐसा कॉलेज था जिसमें विज्ञान, कला, वाणिज्य, विधि आदि सभी संकाय थे. लगभग इसी समय इन्दौर नगर में कला समूह के लिए क्रिश्चियन कॉलेज की भी स्थापना हुई थी. उस कॉलेज का शताब्दी समारोह मनाया जा चुका है. राजपूताना और सी.पी. एंड बरार के मध्य होलकर कॉलेज ही एक मात्र ऐसा कॉलेज था जिसमें विज्ञान के स्नातक और स्नातकोत्तर अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था थी. तात्पर्य यह है कि जब शिक्षा का प्रसार परवान चढ़ रहा था, तब भी होलकर कॉलेज प्रदेश और देश में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता था. आगरा विश्वविद्यालय में होलकर कॉलेज का स्थान निरंतर प्रभावशाली रहा था. चाहे शैक्षणिक अथवा क्रीडा संबंधी गतिविधियाँ रही हों, आगरा विश्वविद्यालय में, ब्रिटिश इंडिया (विशेषकर तत्कालीन संयुक्त प्रांत) के नगरों के कॉलेज सम्बद्ध होने पर भी देशी रियासत के इस कॉलेज का अपना अलग ही महत्वपूर्ण स्थान था.

मैं वर्ष १९४५ से १९४८ तक तीन वर्ष होलकर कॉलेज का छात्र था. पहिले दो वर्ष एम.ए. अंग्रेजी का विद्यार्थी के रूप में और एक वर्ष विधि के छात्र के रूप में. आज की तुलना में जब उस काल का स्मरण आता है, तो बहुत सी बातें अनायास मूर्त हो जाती हैं. यह अनुभव होता है कि उस समय शिक्षा एकांगी नहीं थी. छात्रों का बहुत बड़ा समुदाय खेलों की गतिविधियों में भी सक्रिय भाग लेता था. उस समय डिग्रियों में उच्च श्रेणी प्राप्त करने के लिए साधनों की शुद्धता पर भी उतना ही ध्यान रहता था जितना साध्य प्राप्त करने के लिये परिश्रम पर.

अनेकों परिवर्तन होने पर भी होलकर कॉलेज अपनी पुरानी परम्पराएँ और पुराना गौरव अक्षुण्ण बनाये हुए है. यह ठीक है कि विस्तार के साथ गुणात्मकता पर प्रभाव पड़ना अवश्यभावी है, किन्तु विस्तार की गुणवत्ता में समुचित सामंजस्य का नाम ही तो प्रगति है. कॉलेज की इस ओर प्रगति के लिए मेरी पुरानी पीढ़ी की शुभकामनाएँ हैं.

मेरी मातृ संस्था के शतायु होने पर उसका अभिनंदन है.

□□

होलकर महाविद्यालय पत्रिका १९५५-५६ से
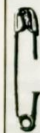
मन का मोती मैं तुम्हें दिये देता हूँ
तुम इसे बेध कर अपना हार बनालो।
हर साध तुम्हारे लिये संजोयी मैंने
तुम इसे लुटाओ या अंतस में साधो,
हर साँस समर्पित तुम्हें किये देता हूँ
तुम इसे बिखेरो या अंचल में बाँधो।
मेरी रसना में रसा रसवती होती
कल की क्या चिंता? देखेंगे तब-कि-तब
अंतर की जलन मुझे बतला देती है
मिट्टी को मिलता स्नेह नहीं बेमतलब।
जाने फिर किस साँचे में ढाला जाऊँ?
तुम मुझे जलाकर दीपावली मनालो।

सबके अंतर के तार बंधे हों जिससे
झंकारों की शृंगार वही वीणा है,
अपने हित जीकर कई जनम खोए हैं
तुममें लय होकर जीना ही जीना है।
वह तो आँखों का दोष कि दूर-दूर भटका
परदा दोनों के बीच बहुत झीना है,
सुर-असुर जिसे पीने से घबराते हैं।
उसको हँस कर पी जाना ही पीना है।
जाने फिर कब पीड़ा में पाला जाऊँ?
संवेदन के छन्नों में अश्रु छना लो।
मन का मोती मैं तुम्हें दिए देता हूँ
तुम इसे बेधकर अपना हार बनालो।

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'

छात्र आंदोलन और इन्दौर

सत्तीस के दशक में - राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों से सक्रियता से जुड़े श्री पी.डी. शर्मा - होलकर कॉलेज के विद्यार्थी थे. उन्होंने इसी संस्था में हिन्दी विभाग में वर्षों तक अध्यापन कार्य भी किया. राजनैतिक गतिविधियों के साथ-साथ अपने छात्र-जीवन से ही श्री शर्मा - खेल-कूद में भी रुचि लेते थे. उन्हें शिवाजीराव पदक भी प्राप्त हुआ था. इन दिनों वे म.भा. हिन्दी साहित्य समिति से सम्बद्ध हैं.

प्रो. पी.डी. शर्मा

तरुणाई ने आवेश को अनुशासित कर जब क्रांति की ओर पग बढ़ाया, तब सफलता ने उसे स्वयं वरण किया और भारत का तरुण आज उन्मुक्त गगन तले स्वच्छन्द विचरण कर रहा है. ऐसे ही वातावरण में अगस्त १९३८ में महाराजा शिवाजीराव विद्यालय के विद्यार्थियों ने अपने प्रधानाध्यापक श्री आर. नाथ. वी. पाई के हिटलरी आदेशों के विरुद्ध चार दिन की सफल हड़ताल की. हड़ताल का प्रत्यक्ष कारण तो विद्यार्थियों पर अनिवार्य रूप से लगाये गये गणवेश के प्रतिबंध थे, जिनमें खादी लेकर, हाफकोट और बिल्ले पहनने तथा बैजेण्डर साथ रखने के आदेश थे, किन्तु मूलकारण तो नगर में चल रहा श्री हजारीलाल जड़िया का सत्ताधारी के विरुद्ध अनशन था. हड़ताल २२ अगस्त १९३८ को प्रारंभ हुई, तो प्रधानाध्यापक ने हमारे अध्यापक रामचन्द्र साहब को बुलाकर डाँट दिया. विद्यार्थी जेलरोड पर जुलूस बनाकर निकले, तो किशनपुरा कोतवाली के सूबेदार श्री अमार खान ने सबको बुलाकर उन्हें पाई साहब के समक्ष खड़ा कर दिया. पाई साहब ने लड़कों को धमकाया और उनके नेताओं के विरुद्ध आइ.जी.पी. श्री तुपारे साहब को शिकायत की. दूसरे दिन अभिभावकों के प्रमुख श्री एन.एन. द्रविड़ की बात नहीं मानी. तारीख ६ अगस्त को जब छात्रों का जुलूस कृष्णपुरा में अनशन कर रहे जड़ियाजी के अनशन-कक्ष के नीचे रुका और नारे लगाता रहा, तब आइ.जी.पी. श्री तुपारे साहब के कहने पर छात्र विद्यालय में चले गये जहाँ प्रधानाध्यापक ने अपने आदेश वापस लेने की घोषणा की तथा आश्वासन दिया कि छात्र-नेताओं का दमन नहीं किया जायगा, किन्तु बाद में सर्वश्री कलमबेलकर, एस.जी. फाटक और परमेश्वरदत्त शर्मा के विरुद्ध पुलिस में शिकायत की गई, कोर्ट में केस चले, जिसमें क्रिमिनल केस क्रमांक १८४/३९ में हम लोग १/३/३९ को ससम्मान दोषमुक्त किये गये. न्यायालय का निर्णय देने, शिक्षा संचालक श्री घोषाल का आदेश प्रस्तुत करने तथा प्रधानमंत्री सर सिरेमल बापना साहब के द्वारा हमारे आवेदन-पत्र अग्रेषित करने पर भी हम तीनों छात्रों को महाराजा शिवाजीराव विद्यालय से निष्कासित ही रहना पड़ा.

स्टुडेन्ट फेडरेशन :-

१ अगस्त १९२९ को तिलक पुण्य-तिथि के शुभ अवसर पर विद्यालयों और महाविद्यालयों के छात्रों का संगठन बना, जिसमें श्री आनन्दसिंह जी मेहता संयोजक बने. श्री खण्डकर और श्री दिवाकरजी की सहायता से विधान बनाया गया, जिसमें प्रत्येक संस्था से प्रतिनिधि लिये गये तथा १५ सदस्यों की कार्यकारिणी बनी. इनमें सर्वश्री आनन्दसिंह मेहता, जौहरीलाल जी झांझरिया, फारूक धोतीवाला, एम.जी. वैद्य, प्रभाकर उर्ध्वरेषे, कलमबेलकर, कुमारी इंदु पाटकर, कुमारी मुक्ता ऋषि, बी.ए. वैद्य, कुमारी मालती सर्वटे, डॉ. जगमोहनसिंह पैंवार, मोहनलाल गर्ग, समद लोदी आजाद, पंडित परमेश्वरदत्त शर्मा और व.अ. कालेले प्रमुख कार्यकर्ता थे. इस संघ ने समय-समय पर विद्यार्थियों की समस्याओं पर विचार-विमर्श किया और होलकर कॉलेज में १९४० से चले 'वंदे मातरम्' प्रकरण पर मध्यस्थता भी की.

डॉ. बसु की आकस्मिक सेवा-निवृत्ति:-

वज़ीर बहादुर डॉ. प्रफुल्लचन्द्र बसु होलकर कॉलेज में १९१७ में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक होकर आये और १९२६ में प्राचार्य बने. वे इतने महत्वपूर्ण थे कि उनको होलकर राज्य के मंत्रिमंडल की प्रत्येक बैठक में बुलाया जाता था. जब २९.७.१९४० की मंत्रिमंडल की बैठक के बाद उनको सेवानिवृत्ति का आदेश दिया गया, तो होलकर कॉलेज के समस्त छात्र और इन्दौर का पूरा प्रबुद्ध वर्ग भौंचक्का सा रह गया. उनके ३१.७.१९४० के मानपत्र में जो बातें छात्रों ने लिखीं, वे तो हृदय की ही बातें थीं, किन्तु १ व २ अगस्त १९४० ई. को होलकर कॉलेज से खण्डवा स्टेशन तक उन्हें जो बिदाई इन्दौर ने दी, वह अभूतपूर्व घटना थी. डॉ. बसु राष्ट्रवादी थे और उन्होंने होलकर राज्य द्वारा द्वितीय महासमर में दिये जाने वाले योगदान का विरोध किया था, जिससे उन्हें हार्टन साहब के कहने पर तत्काल सेवानिवृत्त कर दिया. उन्हें पहुँचाकर खण्डवा से लौटे छात्रों ने अंग्रेजों को पहुँचने वाली प्रत्येक सहायता का विरोध करने की प्रतिज्ञा ली.

'वंदे मातरम्' राष्ट्रगीत का विरोध:-

डॉ. बसु के जाने के बाद अंग्रेज प्रिंसिपाल श्री एच.बी. रिचर्डसन ने कार्यभार सम्हाला. उन्होंने आते ही 'होलकर कॉलेज टाइम्स' नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ करवाया. छात्रों में श्री प्रभाकर ऊर्ध्वरेषे प्रथम सम्पादक बने. इसमें 'वंदे मातरम्' राष्ट्रगीत के प्रत्येक उत्सव के प्रारंभ में गाये जाने के छात्र-परिषद् के प्रस्ताव का विरोध श्री समज आजाद, इब्राहिम लोदी और पी.जी. वैद्य के नाम से छपा. इससे होलकर कॉलेज के छात्रों में साम्प्रदायिकता के आधार पर विभाजन होने की आशंका हो गई. रिचर्डसन साहब तो यह चाहते ही थे. पत्र में 'वंदे मातरम् प्रकरण, में पर्याप्त चर्चा होने लगी. छात्र-परिषद् के पदाधिकारियों और प्राचार्य के मध्य पर्याप्त मतभेद हो गये, जिसमें रिचर्डसन साहब को शिक्षामंत्री बना दिया गया और सीलोन-वंशी श्री जे.बी. राजू प्राचार्य बनकर आये. उन्होंने 'वंदे मातरम्' प्रकरण को और भी उलझा दिया, जिससे कॉलेज की विद्यार्थी राजनीति विषाक्त हो गई, जिसका विस्फोट सर तेज बहादुर सप्रू और जयकर के आतिथ्य में मनने वाले 'अकबर-दिवस' के कार्यक्रम को विद्यार्थियों द्वारा बिगाड़े जाने पर हुआ. बात यह हुई कि जैसे ही कार्य प्रारंभ होने वाला था कि श्री.टी.के. जगदीश नामक छात्र-नेता ने 'वंदे मातरम्' गाने की माँग की, अध्यक्षता कर रहे छात्र श्री शर्मा ने अनुमति दे दी. मुस्लिम विद्यार्थियों ने उत्सव का बहिष्कार करने के लिये बहिर्गमन कर दिया. प्राचार्य श्री जे.बी. राजू ने छात्र अध्यक्ष श्री शर्मा को भरी सभा में चाँटे मारे तथा सर्वश्री टी.के. जगदीश, के.एम. भौरास्कर आदि विद्यार्थियों को धक्के देकर हॉल से निकाल दिया, जिससे हंगामा हो गया और वह उत्सव नहीं हो सका. इस समस्या का निराकरण तब हुआ, जब डॉ. एस.एस. देशपांडे १९४४-४५ में प्राचार्य बने.

''वारफ्रण्ट'' कार्यालय में घुसपैठ :-

सन् १९४१-४२ के मध्य क्रांतिकारी साथियों के निर्देश पर कुछ विद्यार्थी वारफ्रंट कार्यालय में चपरासी और कर्मचारी के रूप में काम करते थे और अंग्रेजी शासन से प्राप्त गुप्त दस्तावेजों की जानकारी भाई नारायणसिंह, प्रो. के. एल. बोर्डिया और प्रो. एस.पी. वर्मा को दिया करते थे. ये महानुभाव क्रांतिकारी गतिविधियों के 'मस्तिष्क' माने जाते थे. सन १९४१ में इन्दौर राज्य की ओर से बिस्को पार्क (नेहरू पार्क) में प्रदर्शनी आयोजित हुई. वहाँ एक दिन महिलाओं के लिए रखा गया, तब शेरी धोतीवाला आततायी पुलिस अधिकारी आतंक मचाने लगा. इन कर्मचारियों ने उसकी खूब पिटाई की और उनके साथियों ने प्रदर्शनी को बिखेर दिया. संदेह में इन विद्यार्थी कर्मचारियों को नौकरी से पृथक कर दिया गया. शेरी धोतीवाला की पिटाई करने वालों में २१ डेंजर सिग्नल्स और १२ ओक्स नामक विद्यार्थी संगठनों का हाथ था.

भारत छोड़ो आंदोलन १९४२ :-

८ अगस्त १९४२ को बम्बई में महात्मागांधी ने अंग्रेजों को 'भारत छोड़ो' और भारतीयों को 'करो या मरो' का आदेश दिया. विद्यार्थियों ने इस आदेश

(बायें से) प्रि. राजू, पी.डी. शर्मा, जी.के. सोनी और प्रो. मिश्रा.

को 'अभी या कभी नहीं' समझा. उन्होंने ९ अगस्त ४२ को ही अपनी संस्थाओं में हड़ताल कराकर बापू के आदेश का पालन किया. १० अगस्त को छात्रसंघ की बैठक जनरल लायब्रेरी में हुई. कतिपय साथियों ने संघर्ष का घोर विरोध किया; किन्तु एक के बहुमत से संघर्ष करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ. हमारे साम्यवादी विचारधारा वाले सभी मित्रराष्ट्रों और धुरी राष्ट्रों के बीच महायुद्ध को 'जनयुद्ध' कहने लगे ते. उन्होंने विरोधी रुख अपनाया; अतः आगामी योजना श्री जोहरीलालजी झांझरिया के जेलरोड स्थित घर पर बनाई गई. वहाँ पुखराज बहन तथा हमारे कॉलेजों की छात्राएँ भी एकत्र हो गई. योजना बनाने तथा डिक्टेटर मनोनीत करने का कार्य सर्वश्री जोहरीलाल झांझरिया, नाथूलाल जैन तथा कु. इंदु पाटकर को सौंपा गया और १० व ११ अगस्त को कॉलेजों व स्कूलों के दरवाजों पर पिकेटिंग करने के हेतु स्वयं सेवक नेता मनोनीत किये गये. स्कूलों और कॉलेजों से अलग-अलग जुलूस निकलने लगे इतने में ही तारीख ११ अगस्त को छत्रीपुरा पुलिस ने जैन हाई स्कूल के पास छात्रनेता श्री इंद्रनारायण पुराणिक को गिरफ्तार कर लिया, जिससे विद्यार्थियों का रुख सख्त हो गया और ११ अगस्त को ही आयोजित घंटा घर की आमसभा में घोषणा की गई कि १२ अगस्त को माणक चौक (सुभाष चौक) में छात्रों की विशाल आमसभा होगी. इसके लिए होलकर कॉलेज के छात्र श्री मोहनलाल गर्ग नेता घोषित हुए. इन्दौर के सभी राष्ट्रवादी छात्र बड़ी संख्या में सुभाष चौक में एकत्र

हुए जहाँ पुलिस ने घेरेबंदी कर रखी थी, किन्तु विद्यार्थियों के छोटे-छोटे दलों ने घुसकर उसे विशाल सभा का रूप दे दिया. फायर ब्रिगेड के सुपरिण्टेण्डेन्ट श्री निवसरकर ने अग्निशामक यंत्रों से सभा पर गरम पानी बरसाया, पुलिस ने लाठी चार्ज किया, फिर भी छात्रों ने सभा का कार्य पूरा किया. श्री मोहनलाल गर्ग गिरफ्तार हुए तथा श्री आनन्द जैन दूसरे नेता घोषित हुए. छात्रों ने फिर छोटे-छोटे दलों में बँटकर पूरे नगर में जुलूस निकाले. पुलिस ने परेशान हो दमनचक्र प्रारंभ कर दिया. अधिकारीगण 'इंकलाब जिन्दाबाद' अंग्रेजों भाग जाओ'' नारे लगाने वाले छोटे छोटे बच्चों को भी डण्डे मारने लगे. १३ व १४ अगस्त के बीच हमारे प्रमुख नेता गिरफ्तार हो गये. डॉ. कु. मालती सर्वटे, कुमारी इंदु पाटकर तथा हमारे अध्यक्ष जौहरी लाल झांझरिया गिरफ्तार हो गये. श्री नाथूलाल जैन तथा अन्ये नेता अण्डर ग्राउण्ड हो गये. १४.८.४२ को नसिया कोने पर जुल्मी पुलिस अधिकारी श्री भगवानदास तिवारी की पिटाई करने के आरोप में पंडित के नाम पर श्री बी.व्ही. दुबे पकड़े गये, जबकि श्री पंडित भाग गये. जब प्रजामण्डल के नेताओं में छात्रों को १६ अगस्त की बैठक में बुलाया, तब श्री के.एम. भौरास्कर, परमेश्वरदत्त शर्मा, प्रभाकर, अडसुले, कु. मुक्ता ऋषि और डॉ. जगमोहनसिंह पँवार उनके पास पहुँचे, किन्तु प्रजामण्डल और छात्रसंघ के आंदोलन चलाने की रीति-नीति में मतभेद होने के कारण विद्यार्थियों ने हिंसक-अहिंसक दोनों रीतियों से आंदोलन चलाने की नीति अपनाने की बात कहीं, जिसे तात्या सर्वटे ने अस्वीकार कर दिया. छात्रों ने प्रजामण्डल के नेताओं के मार्गदर्शन में चलने की बात तो मान ली, किन्तु प्रजामण्डल नेताओं की धीमी नीति के कारण वे अपना आंदोलन अपने अण्डर ग्राउण्ड नेताओं के आदेशों से चलाने लगे. छात्रों ने राज्य भर में आंदोलन को फैलाया और छोटे-छोटे समुदायों में बँटकर दीर्घ समय तक आंदोलन चलाने की योजना बनाई. श्री इंद्रनारायण पुराणिक, श्रीनंदन ठाकुर तथा परमेश्वर दत्त शर्मा दि. २६ अगस्त को गरोठ जिले में पहुँचे. उन्होंने सर्वश्री चंदवासकर, बापूलाल चौधरी और तेलंग वकील साहबों के साथ रामपुरा, भानपुरा, कुकडेश्वर, मनासा, और नारायणगढ़ में जन-जागृति की. वहाँ ये तीनों गिरफ्तार हो गये और कुछ समय बाद होलकर राज्य के रीजेण्ड बने देवास के महाराजा विक्रमसिंह पँवार के विशेष आदेश से छोड़ दिये गये. इसके बाद श्री लालचंद चोरड़िया के गरोठ जिले को बागडोर सम्हाली और उन्होंने अनेक जेल यात्राएँ की. सर्वश्री मदनलाल ओझा व उपाध्यक्ष ने उनको सहयोग दिया. निमाड जिले में श्री जगदीश विद्यार्थी और गजानन सोनी ने पर्याप्त काम किया. मध्यप्रदेश के वर्तमान मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी ने छात्र आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और होलकर कॉलेज से नाम कटने पर उज्जैन चले गये.

आंदोलन में विद्यार्थियों ने लुका-छिपी का खेल खेला. छात्रगण छात्रावासों में रहकर पुलिस की तलाशी के समय टेबल टेनिस कक्षों, ज्वार के खेतों या अन्य छात्रों के कमरों में छिप जाते थे और फिर रेल के तारो को काटते, रेल की पटरियों पर डायनामाइट लगाते, रसायन की प्रयोगशाला से सामग्री ग्रहण करने तथा बम बनाने के प्रयोग करते थे. तोड़-फोड़ की कार्रवाई के विशेषज्ञ थे श्री सुब्रत राय, पंडित, लल्टू राय तथा व्ही.एम.पागनिस. इन्हीं लोगों के सहयोग के कतिपय दुस्साहसी साथियों ने पातलपानी के पास मिलिटरी स्पेशल को दुर्घटना कराई थी.

विद्यार्थी नेताओं मे सर्वश्री जौहरीलाल झांझरिया, डी.के. जगदीश, आनन्द जैन, मोहनलाल गर्ग, जी.के. सोनी, के.एम. भौरास्कर, राहुल बारपुते, परमेश्वरदत्त शर्मा पंडित, बी.व्ही. दुबे, कु. मालती सर्वटे, कु. इंदु पाटकर, कु. मुक्ता ऋषि कु. पद्मा शर्मा, व्ही. एस. स्वामी, जगदीश विद्यार्थी, लालचंद चोरडिया, आनन्दसिंह मेहता, डॉ. जगमोहनसिंह पँवार, अहसान अली, नंदकिशोर भट्ट, वि.स. कुलकर्णी, प्रभाकर अड़सुले, इन्द्रनारायण पुराणिक, नंदन ठाकुर, नाथूलाल शर्मा, टी.एस. सुराणा, सुब्रत राय, व्ही. एम. पागनिस, के. एम. भौरास्कर और बाबूलाल झांझरिया की सेवाएँ उल्लेखनीय रहीं. मार्गदर्शक के रूप में प्रोफेसर के.एल. बोरडिया तथा प्रोफेसर एस.पी. वर्मा ने अगाध देशप्रेम का परिचय दिया. वही कारण है कि इन दोनों आचार्यों को इन्दौर छोड़कर क्रमश: उदयपुर और मेरठ जाना पड़ा.

राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के कारण कतिपय छात्रों को प्राचार्य द्वारा निष्कासित कर दिया गया. उनमें सर्वश्री परमेश्वरदत्त शर्मा, नाथूलाल शर्मा और सुंदरसिंह चौहान को एक वर्ष के लिए तथा श्री गजानन सोनी व श्री प्रकाशचन्द सेठी को ४२-४३ के सत्र के लिए अपने अध्ययन से वंचित रहना पड़ा.

झण्डावंदन और गोली :-

९ नवम्बर १९४३ को होलकर कॉलेज के भवन पर झंडा फहराने का निर्णय विद्यार्थी कौंसिल ने लिया कि अध्यक्ष झंडा फहरायेगा. होलकर कॉलेज की ओर से हुक्म आया कि जो झंडा फहरायेगा उसे गोली से उड़ा दिया जायेगा. प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक और कुमारी मुन्नी गुप्ता होलकर राज्य का झंडा लेकर भवन के ऊपर चढ़े. कुमारी गुप्ता ने तिरंगा झंडा दिया और मैंने उसे तत्काल फहरा दिया. हम पीछे से नीचे उतर आये. जब पुलिस अधिकारी ने प्राचार्य श्री जे.बी. राजू से पूछा कि झंडा किसने फहराया, तो जो जवाब उन्होंने दिया वह अनूठा था. उन्होंने पास में खड़े प्रो. देसाई से कहा कि ''प्रोफेसर देसाई, तुमको तिरंगा झंडा फहराता दिखता है क्या? हमको तो नहीं दिखता, तब सभी लोगों ने कहा हमकों तो नहीं दिखता. बेचारा पुलिस अधिकारी सकपकाकर चला गया.

जुलूस और प्रेरणा :-

सितम्बर के अंतिम सप्ताह मं आंदोलन कुछ शिथिल पड़ने लगा, क्योंकि महाराजा होलकर की अनुपस्थिति में रीजेण्ट बने देवास के महाराजा विक्रमसिंह ने विद्यार्थी नेता दी.के. जगदीश के.एम. भौरास्कर, जी.के. सोनी तथा परमेश्वरदत्त शर्मा से समझौता कर गिरफ्तार छात्रों की आम रिहाई के आदेश दे दिये, जिससे कोतवालियों या इधर-उधर छोटी-छोटी चौकियों एवं जेलों में बंद सभी विद्यार्थी छूट आये. तब आंदोलन में चेतना बनाये रखने की दृष्टि से हर माह की ९ तारीख को जुलूस निकालने की योजना बनी. ९ नवम्बर १९४२ का जुलूस बड़े जोश-खरोश के साथ निकाला गया जो नगर के मध्य से अत्यंत भव्य बन गया था. पुलिस ने इस जुलूस को तितर-बितर करने के लिए लाठियाँ चलाई. किन्तु बिखर-बिखर कर बार-बार यह और विशाल बनता गया, अंत में सुभाष चौक में पहुँचकर गली-गली में फैल गया.

प्रजामण्डल पत्रिका :-

सन् १९४२ के आंदोलन में हमारे नेता श्री मनोहर सिंह मेहता के निर्देशन तथा विद्यार्थी साथी सर्वश्री राहुल बारपुते विमलचंद झाझरी, लालचंद चौरड़िया, के.एम. भौरास्कर, माणकचंद कटारिया, और कु. मुक्ता ऋषि के माध्यम से पत्रिका द्वारा मार्गदर्शन मिलता रहा. जिसमें विद्यार्थियों और प्रजामण्डल के नेताओं का समन्वित दृष्टिकोण मिलता रहता था.

विद्यार्थी कांग्रेस की स्थापना :-

२९ नवम्बर १९४३ में राजनीतिक बंदियों की रिहाई हुई, तब संगठन को सुदृढ बनाने की बात सोची गई. छात्रसंघ के स्थान पर राष्ट्रीय विचार धारा के छात्रों ने श्री जौ.ला. झांझरिया की अध्यक्षता में विद्यार्थी कांग्रेस की स्थापना की जो बाद में इन्दौर राज्य विद्यार्थी कांग्रेस कहलाई. इसकी कार्यकारिणी में सन् १९४७-४८ में श्री वेंकटाचार्य स्वामी अध्यक्ष, पी.डी. शर्मा उपाध्यक्ष, जगदीश विद्यार्थी प्रधानमंत्री तथा सर्वश्री ओ.पी. रावत, जी.एल. ओझा, झेड. ए. हिलाल, विश्वनाथ उपाध्याय, प्रेमनारायण भट्ट, मोहनलाल नीमा और ए.एस. मुर्डिया सदस्य थे. उसके पश्चात इसका विलयन म.भा. विद्यार्थी कांग्रेस में हो गया.

इस प्रकार छात्र आंदोलन विशाल से विशालतम हो गया और इन्दौर राज्य के भारत संघ में विलीन होने पर ही इसने अपने अस्तित्व का विलीनीकरण किया.

□□

Govind Ganesh Apte
Amravati (Maharashtra)

The centenary is surely an occasion of great joy and pride for all those who have had the previledge of being associated with this premier institution of higher learning. I too, had the good fortune of being a student in this institution during those momentous years in our freedom struggle 1940-1944. Though out of sight all those years, it was not out of my mind and the letter from Professor Mahesh Dube, revived many sweet memories of my student days. The letter brought to my mind my class mates whom I have not met since 1944.

As for my reminiscences let me admit at the outset that many events have evaporated from my memory due to a gap of more than four decades. Even then I vividly remember some. The sprawling college campus, very busy during the afternoon, was absolutely silent after the evening as it was far off from the town, separated by nearly 3 miles of uninhabited open space from Juni Indore side where we lived. Not a soul moved after sunset on the Bhawar Kuwa road. Now I hear, the college is surrounded on all sides by residential colonies.

Holkar College was the only Science College in the entire region of central India. The nearst other science college was 350 miles away at Gwalior. There were post graduate classes in only one subject - Chemistry, Biology department was non-existent. B.Sc. junior and senior students came together for Physics and Chemistry theory and B.Sc. and B.A. students came together for English. We knew nearly every student in the Science faculty and many from the other faculties Arts and Commerce. Another reason for this intimacy with all was a novel scheme run by the college. If I remember correctly, it was called students welfere scheme. Each student belonged to a group consisting of a students taken from all standards. One professor was incharge of this group. The purpose of the scheme was to bring students of various standards together and to let the professors come in close contact with them so that they understand their problems. We were privileged to have Dr. S.S. Deshpande to guide us. The scheme worked for a couple of years. Later on due to disturbed political atmosphere it was abandoned. On one occasion our group took an excursion trip on cycles to the waterfall, some 10 to 12 miles away from Indore. Dr. Deshpande also was with us on a cycle.

Holkar College in those days was a scholar's college. It had the most students in the merit list, often the toppers. This perhaps was due to the absence of professional colleges in those days. At present the brilliant students opt for the engineering and medical college and the pure science subjects are starved of good students. We had some exceptional teachers. I especially remember Professor V.G. Gole of mathematics, Dr. S.S. Deshpande and Dr. W.V. Bhagwat of Chemistry, Professor Padmanabhan of Physics and Professor Borgoanker of English.

Annual social gathering at Holkar College in those days always had a Hindusthani classical music recital by some renowned artist. Classical music and present day college annuals never go together. Students had certain problems in our days also. But agitations and stoppages over petty demands were not known to us. The achievement of the present generation in various fields has to be accepted. But it must be realised that a greater amount of dedication and discipline is needed.

In the and I wish the Holkar College a future more glorious than it's past.

□□

स्मरण उन दिनों का

- स्वराज्य लता गोयल (मुन्नी गुप्ता)

(१९४२ के राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियों में कॉलेज की जो छात्राएँ सक्रिय थीं उनमें कुमारी स्वराज्य (मुन्नी गुप्ता) का नाम प्रमुख था. अध्ययनशील निर्भीक और अत्यंत मुखर मुन्नी गुप्ता एक अच्छी खिलाडी भी थीं. उन्होंने कुछ समय तक होलकर कॉलेज के रसायन विभाग में अध्यापन कार्य भी किया. इन दिनों वे मथुरा में हैं और कई सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों से जुडी हैं.)

होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर के गणित के प्रोफेसर महेश दुबे का एक पत्र मुझे मिला. इस महाविद्यालय की छात्रा होने के नाते, इस महाविद्यालय से जुडी मेरी स्मृतियों का उल्लेख प्राप्त करने के लिए जो विनम्र आदेश उन्होंने अपने पत्र में मुझे दिया है, उससे मैं अविभूत हो गयी.

इस महाविद्यालय के दीर्घ जीवन से जुडे मेरे जीवन के मात्र कुछ वर्ष (आठ वर्ष) मेरे आज तक के निजी जीवन की अनुपमतम उपलब्धियों में से एक है. अपने छात्र जीवन की उस अल्प अवधि में बिखरे स्मृति के उन सुखद बिन्दुओं को जोडने जब मैं बैठी हूँ तो लगता है मेरी आयु सिमट कर उन कुछ वर्षों में ही सीमित होकर स्थिर रह गयी है. लगता है, मैं आज भी अपने उस प्यारे महाविद्यालय के किसी न किसी कमरे में अपने अन्य अनेक साथियों सहित बैठी अमुक-अमुक अध्यापकों के लैक्चर सुन रही हूँ और उन्हें नोट कर रही हूँ, कभी फिजिक्स लेब. तो कभी केमिस्ट्री लेब में एक्सपेरीमेंट कर रही हूँ, और इस महाविद्यालय के खेल का वह हरा भरा मैदान तो मेरे उन्मुक्त आनन्द की अनुभूति से मुझे आन्दोलित कर रहा है. लगता है मेरे जीवन में जो कुछ उत्कृष्ट था, अनुपम था, वह मुझे फिर से मिल गया है. मात्र इस सुखद स्मृति में खोकर आज मैं कितनी आनन्दित हूँ, मेरे शब्द उसको व्यक्त कर नहीं सकते. फिर भी कुछ प्रयास भर, कर रही हूँ, देखती हूँ - वर्तमान की इस साँझ में अतीत की उस स्वर्णिम सुबह के कुछ रंग दिखने को मिल जाय. सन १९४२ की जुलाई का पहला दिन था जब मैंने प्रथम वर्ष साइंस में प्रवेश पाने की उत्कृष्ट अभिलाषा लेकर इस महाविद्यालय के तत्कालीन प्रिंसीपल श्री देशपांडे के रूम में उनके समक्ष अपना एडमीशन फार्म प्रस्तुत किया था. प्रिंसीपल श्री देशपांडे ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए मेरा वह फार्म यह कह कर लौटा दिया कि साइंस में कोई सीट खाली नहीं है. यह सुनकर मैं अवाक् रह गयी. एम.एससी. करने और उसके बाद अपने जीवन के संजोये सपनों के टूटने का आभास मुझे एक पलमें ही हो गया. लेकिन दूसरे ही पल साइंस पढ़ने का यह मेरा दृढ सकल्प मेरी वाणी के माध्यम से मुखरित हो उठा. मैं दृढता के साथ श्री देशपांडे से बोली मुझे साइंस में ही एडमीशन चाहिये और मैं यह एडमीशन लेकर ही रहूँगी - यह कहते कहते मेरा चेहरा गुस्से से तमतमा गया. इतने बडे, कॉलेज के प्रिंसिपल के समक्ष इतने कठोर शब्द कहने का दुस्साहस मैं कैसे कर सकी. मुझे पता नहीं. एक प्रिंसीपल के प्रति उस अप्रत्याशित अपराध से मेरा अन्तरतम् आज भी कम्पित हो उठता है. प्रिंसीपल श्री देशपांडे ने भी अपने प्रत्युत्तर में एक चुभता हुआ तीर मेरी ओर छोड दिया. वह बोले - साइंस पढ़ने का इतना ही शौक है तो सरकार से कह कर साइंस का एक नया सैक्सन खुलवा लो.

प्रिंसीपल श्री देशपांडे के इस तीखे शब्द बांण से आहत होकर भी मैं धैर्यपूर्वक उनके कमरे से यह प्रण करके निकली कि मैं इसी कॉलेज में साइंस का नया सेक्सन खुलवाकर रहूंगी और एडमीशन भी यहीं लूंगी. मैंने उसी दिन शिक्षा विभाग के उच्चस्थ अधिकारियों से मिलकर कॉलेज में साइंस का नया सैक्सन खुलवाने की जोरदार मांग, पत्रों के माध्यम से की. प्रयास करना मेरा काम था. मैंने उसे दृढ संकल्प के साथ किया. मुझे इसमें सफलता ही मिलेगी, यह सब कुछ मेरे हाथों में तो नहीं था. लगभग एक माह बाद मेरे पूज्य पिताजी को प्रिंसीपल देशपांडे का एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने लिखा था - आपकी लड़की मुन्नी गुप्ता के प्रयासों के फलस्वरूप

शिक्षा विभाग ने कॉलेज में एक और साइंस सेक्सन खोलने के आदेश प्रदान किये हैं. आप अपनी उस लड़की को जो साइंस ही पढ़ना चाहती है कॉलेज एडमीशन के लिये भेज दें. पिताजी ने वह पत्र मुझे दिखाया तो मैं मारे खुशी के उछल पडी. मुझे खुशी इस बात की विशेष थी कि मेरे साथ मेरे ५० अन्य छात्रों को भी साइंस में एडमीशन मिल जायेगा, जिनके एडमीशन नहीं हुए थे.

होलकर विज्ञान महाविद्यालय में मैंने उस समय प्रवेश लिया था जिस समय महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरूद्ध भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अपनी चरम सीमा पर था. अंग्रेजों, भारत छोडो आंदोलन जन-जन के कण्ठ में गूंज रहा था. सरदार भगतसिंह, राजेन्द्र लाहिडी, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्लाह, ठा. रोशनसिंह जैसे अन्य अनेक क्रांतिकारियों ने अपने इस देश की आजादी को हांसिल करने के लिए हँसते-हँसते फाँसी के फंदे से झूल गये थे. उनका विश्वास था कि उनका यह बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा. उनका यह बलिदान उनके अधूरे काम को पूरा करने के लिए देश के युवा वर्ग में प्राण फूँकता रहेगा. इन सब बलिदानों के बाद भी महात्मा गांधी यह सोचते रहे कि अंग्रेजों को अब भी समझ आ जायेगी और वह भारत छोड़कर चले जायेंगे. लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ. महात्मा गांधी जैसे शांत प्रिय व्यक्ति के भी धैर्य का बांध टूट चुका था. तब उन्होंने भारत के छात्र एवं युवा वर्ग का आह्वान करते हुए ''करो या मरो'' का नारा दे डाला. फिर क्या था, क्रांती की यह चिंगारी जंगल की आग की तरह सम्पूर्ण देश में फैल गयी. विद्यालय और विश्वविद्यालय इस क्रांति के प्रमुख केन्द्र बन गये. इन्दौर का हमारा यह होलकर (विज्ञान) महाविद्यालय स्वतंत्रता प्राप्ति के इस महान यज्ञ की आहुति देने से पीछे कैसे रह सकता था.

यह मेरा सौभाग्य रहा कि मेरे पूज्य पिताजी डॉ. विश्वेश्वर दयाल गुप्ता राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत एक कट्टर गांधी वादी थे. अंग्रेजों के डेली कॉलेज (प्रिंस कॉलेज) में डॉक्टर होने पर भी हमेशा खादी पहनते थे. उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर मैंने भी खादी के वस्त्र पहन कर कॉलेज जाना आरंभ किया. मैंने अपनी साथी छात्राओं को, जिनमें जिनी अंकल-सरिया, अबान गोदरेज, कमल कालेवर, इंदिरा भटनागर, आदि प्रमुख थीं - खादी ही पहनने के निश्चय पर राजी कर लिया था. हम सभी सहेलियाँ खादी के वस्त्र पहनकर बड़े गर्व के साथ कॉलेज जाती थीं. खादी के वस्त्रों को पहनकर अपने देश की खातिर मर मिटने का एक अजीब सा उत्साह हमारे दिलों में हिलोरे मारने लगता था. कभी अकेले तो कभी सामूहिक रूप से खादी और आजादी से जुडा यह तराना गुनगुनाने लगती थी -

अब न हाथ में बजे चूड़ियाँ, और न पलक में पानी,
अबला जीवन अंगारों पर, अंकित अमर कहानी।
कोमल कर में प्रबल अस्त्र हों, मन में धुन आजादी की,
चिनगारी पर चलें गोलियाँ, पहिन चोलियाँ खादी की।

भारत छोडो एवं स्वदेशी आंदोलन के अंतर्गत होलकर कॉलेज के हम अधिकांश छात्र-छात्राओं ने तो विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आरम्भ कर दिया था. लेकिन स्वदेशी के इस आंदोलन में हम कुछ छात्र-छात्राएँ शहर के अन्य व्यक्तियों को भी विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार करने पर राजी करते और उन वस्तुओं की सार्वजनिक स्थानों पर होली जलाते. होली के इस कार्यक्रम में कभी-कभी तो ऐसा भी होता था जब वह लोग भी अपने विदेशी वस्त्र या सामान इसी होली में फैंकने आ जाते थे, जो हमारे लाख समझाने पर भी नहीं समझते थे, और हमारी इन बातों का बकवास मानते थे. इस दृश्य को देख मुझे और मेरे साथियों को सुखद आश्चर्य तो होता ही था, हमें इस कार्य को और बढ़ चढ़ कर करने की प्रेरणा मिलती थी.

अगस्त १९४२ की क्रांती यकायक तूफान की तरह उठेगी लोगों को यह कल्पना नहीं थी. जब महात्मागांधी को अकस्मात गिरफ्तार कर ब्रिटिश सरकार ने जनता को अंधकार में डाल दिया था. उसे पता नहीं चला कि अब किस प्रकार आजादी का युद्ध लड़ा जाये. जनता में गांधीजी की गिरफ्तारी से निराशा थी, क्षोभ एवं बेचैनी थी. देश के अन्य भागों की तरह यहाँ के भी देशप्रेमी तोड़-फोड़ के कार्यों में संलग्न हो गये. यह युवा वर्ग एवं जनता का खुला विद्रोह था. युवा छात्रों एवं नौजवानों की टोलियाँ क्रांति की भावनाओं को फैलाने में तत्परता से लगी हुई थीं. विदेशी सत्ता के विरूद्ध पोस्टर लगाना भी प्रारम्भ कर दिया गया. जिन्होंने इस कार्य में अधिक भाग लिया - श्री पी.डी. शर्मा, श्री मंडलोई, श्री आशाराम भाटी, श्री हरगोविंद, श्री आर.वी. ग्वाल एवं कु. खैर व कु. इंदु पाटकर इत्यादि प्रमुख थे. जो लोग उस समय शहीद हुए थे उनकी स्मृतियाँ हमें आज भी याद आती हैं. उनकी दिवंगत आत्मा के इस संदेश को भावुक हृदयों ने अवश्य सुना होगा और सुन सकते हैं-

सुनो ए साकिनाना बज़्में हस्ती, सदा क्या आ रही, आसमां से।
कि आजादी का एक लमहा है बेहतर, गुलामी की हयाते जाविदां से।
''हे भूमण्डल निवासियों सुनो, आकाशवाणी क्या कह रही है?
स्वतंत्रता का एक क्षण दासता के अमर जीवन में श्रेष्ठ है।''....जोश

९ अगस्त, १९४२ का दिन था. हम लोग अपने कॉलेज के गेट पर ''पिकेटिंग'' कर रहे थे तभी वहाँ पुलिस दो तीन जीपों में आयी और उनकी पकड में हममें से जो भी आया उन्हें जीपों में बिठाकर कोतवाली ले गयी. अपने उन साथियों में से कु. विमल छोडे, मालिनी कालेवार और सुंदरसिंह चौहान, इंदु मेहता आज भी मुझे याद हैं. कोतवाली पहुँचने के बाद मेरे अन्य साथियों को तो एक-एक कर देर-अबेर से उनके अभिभावक अपनी जमानत पर छुडा ले गये. कोतवाली में केवल मैं ही रह गयी थी क्योंकि मेरे घर से मेरी जमानत के लिये कोई पहुँच नहीं पाया था. मुझे वहाँ बहुत देर हो गयी थी. मैंने देखा कि वहाँ कोई एक बडे अधिकारी आये जिन्हें वहाँ के इंसपेक्टर इंचार्ज ने भी सैल्यूट किया. उन अधिकारी ने इंसपेक्टर इंचार्ज से पूछ-ताछ की तो उन्हें बताया गया कि अन्य लडकियों के अभिभावक तो अपनी अपनी लड़कियों को निजी जमानत पर छुडा ले गये. लेकिन इस लड़की का कोई भी अभिभावक अभी तक नहीं आया और यह लड़की भी माफीनामा लिखने को तैयार नहीं. इतना सुनते ही वह अधिकारी मेरे पास आये और मेरी पीठ थपथपा कर बोले. तुम जैसे ही साहसी युवक-युवतियाँ देश को आजाद करा के रहेंगे. इन शब्दों के साथ ही उन्होंने मुझे घर जाने का आदेश दे दिया. मैं उन पुलिस वालों के सामने अपना सीना तान कर घर लौट आई.

हमारे होलकर कॉलेज के भवन पर लगा हुआ यूनियन जैक का झण्डा हमारी गुलामी का प्रतीक था. यह झण्डा मुझे और मेरे अन्य साथियों को कचोटता रहता था.

उस यूनियन जैक के स्थान पर हमने अपना तिरंगा झण्डा लगाने की योजना बनाई. मेरे साथ मेरे सहपाठी सर्वश्री पी.डी. शर्मा, जी.एल. ओझा,

(आप कुछ ही दिन पूर्व सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश पद से रिटायर हुए है) आर.पी. कानूनगो, सुब्रत राय, एल.पी. सिंह, तेजसिंह सुराना आदि थे. हम सबने अनेक स्थानों पर यूनियन जैक उतारकर अपना प्यारा तिरंगा फहराया. इस अपराध में पुलिस जब अपराधियों की तलाश करती थी और जब उसे कोई पता नहीं लगता था तो हमें पुलिस से सामूहिक रूप में लाठी डंडों की मार सहनी पड़ती थी. पुलिस के उस जुल्म में, कष्ट के स्थान पर हमें अपने देश की आजादी नजदीक दिखाई देने लगती थी. यूनियन जैक का फाड़ना और उसकी जगह तिरंगा फहराने की वारदातें हमारे होलकर कॉलेज के हमारे छात्र-छात्राओं द्वारा ही विशेष रूप से की जाती थी. पुलिस प्रशासन हमारी इन हरकतों से भारी परेशान हो चुका था. अंततः अंग्रेज सरकार ने हमारे प्रिंसीपल श्री राजू को बाध्य किया कि ऐसे अपराधी तत्वों के विरूद्ध कठोरतम कार्यवाही करें अन्यथा सरकार प्रिंसीपल के विरूद्ध कठोर कार्यवाही करेगी. प्रिंसीपल राजू को हमारी सभी हरकतों का पता था लेकिन उन्होंने हममें से किसी एक का नाम नहीं बताया और स्वयं ने ही असिस्टेंड गवर्नर जनरल से इसके लिये लिखित माफी मांगी. इसके बाद प्रिंसीपल राजू ने हम सबसे अपनी पढ़ाई पर ध्यान देने की अपील की और हम लोगों ने भी उनकी उदार भावनाओं का आदर करते हुए अपना समय पढ़ाई में भी लगाना आरम्भ कर दिया. प्रिंसीपल राजू द्वारा अपने छात्र-छात्राओं को बचाने की उस आदर्श भूमिका को स्मरण कर मैं आज भी पुलकित हो जाती हूँ.

हमारे उस छात्र जीवन में अंग्रेज सरकार ने 'वंदे मातरम्' गीत का गाना एक संगीन अपराध घोषित कर रखा था. क्योंकि 'वंदे मातरम्' हमारे लिए हमारा जय घोष था तो अंग्रेजों के लिए यह उनकी मृत्यु का पैगाम था. फिर ऐसे भव्य अस्त्र को चलाने में हम क्यों चूकते और अंग्रेज भी उसे कुचलने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते. हमारे कॉलेज की 'स्पोर्टस् मीट' का दिन था. हमने यूनियन जैक के स्थान पर तिरंगा झण्डा फहराया. और वंदे मातरम् का ऊँची-से-ऊँची आवाज में जय घोष किया. पुलिस ने आकर हम छात्र-छात्राओं की जमकर पिटाई की ज्यों-ज्यों पुलिस के डंडे बरसते थे त्यों-त्यों हमारे कण्ठ से वंदे मातरम् का जय घोष तीव्र से तीव्रतर होता जाता है. हमारे गेम्स केप्टन श्री पी.डी शर्मा तथा इंसट्रक्टर (अनुदेशक) अकोलेकर ने बड़ी ही दिलेरी के साथ हम सबका ऐसे समय में मनोबल बढ़ाया.

प्रोफेसर डॉ. भागवत, प्रोफेसर आंटिया और प्रो. माथुर हमें केमिस्ट्री पढ़ाते थे प्रो. गग्राडे और प्रो. गोले हमको गणित पढ़ाते थे तथा श्री पदमनाभन फिजिक्स. जब भी हमारा कोई पीरियड खाली होता, हम कॉलेज के गेट पर जाकर अंग्रेज विरोधी गतिविधियों में सम्मलित हो जाते थे. इन कार्यों में मेरी रूचि कुछ अधिक ही थी. यह देखकर प्रो. माथुर अक्सर मेरे विषय में यह कहा करते थे कि ये लड़की डिवीजन तो क्या, पास मार्क्स भी मुश्किल से प्राप्त कर पायेगी. मैंने भी प्रो. माथुर के इस कथन को चुनौती के रूप में स्वीकार किया. मैं जितना अधिक हिस्सा आजादी की लड़ाई और कॉलेज की एक्स्ट्रा करीकुलर एक्टीविटीज में लेती थी, उतना ही अधिक महत्व मैं अब अपनी पढ़ाई में भी देने लगी उसी का परिणाम यह हुआ कि एम.एससी. (प्रीवियस) में मुझे आगरा विश्वविद्यालय में हाइयेस्ट मार्क्स मिले और एम.एससी. फायनल में मुझे विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान मिला. मेरे इस रिजल्ट को देखकर सबसे अधिक प्रसन्नता श्री प्रो. माथुर को ही हुई.

हमारे कॉलेज की केण्टीन के इंचार्ज देवीसिंह थे. आजादी से सम्बंधित जितनी भी गुप्त योजनाओं की मीटिंग होती थीं वह सब केण्टीन के बराबर वाले देवीसिंह जी के कमरे में ही बना करती थीं. श्री देवीसिंह जी स्वयं राष्ट्रीय विचार धारा के पक्षधर थे. वह स्वयं खादी पहनते थे. और खादी पहनने वालों का भरपूर सम्मान करते थे. जब कभी हम यूनियन जैक के स्थान पर तिरंगा झण्डा लगाने या यूनियन जैक को फाड़कर फैंक आने जैसे साहसिक कार्य करके उनके पास आते थे तो वह हमें पुरस्कार स्वरूप गुलाबजामुन खिलाते, या फिर केसर पड़ा हुआ गर्म दूध पिलाते थे. श्री देवीसिंह जी का वह आत्मीय और प्रेरणाप्रद व्यवहार हम कभी नहीं भूल सकते. आज आजादी के इस स्वच्छंद वातावरण में भी हम श्री देवीसिंह जी के इस दिव्य प्रेम-पाश से मुक्त नहीं हो पाये.

मैं कॉलेज की स्पोर्टस् चैम्पियन थी और मुझे ओजस्वी वक्ता के रूप में जाना जाता था. समय-समय पर विशाल जुलूसों का नेतृत्व करना मेरे लिये मेरी दिनचर्या जैसे बन गयी थी. स्वतंत्रता संग्राम में अपना वर्चस्व झोंक देने की प्रेरणा देने वाले भाषण मेरे साथी मुझसे आग्रह पूर्वक दिलवाया करते थे.

हमारे फिजिक्स डिपार्टमेंट में दो सगे भाई चपरासी का कार्य करते थे. जिनमें से एक का नाम श्री बालकृष्ण था और दूसरे का नाम मुझे याद करने पर भी याद नहीं आ रहा. जब कभी हम अपनी कक्षाएँ छोड़कर इधर-उधर चले जाया करते थे तो इन दोनों भाइयों में से कोई एक सूचित करता था कि कक्षा में सर आ गये है. तो दूसरा हमारी अनुपस्थिति में सर से बहाने बना दिया करता था, कि हम उससे यह कह कर गये हैं हम अभी आ रहे है. हमारे इधर-उधर जाने का उद्देश्य भी आजादी प्राप्त करने का हमारा एक उन्माद ही था. हम कभी 'पिकेटिंग' पर जाते थे तो कभी किसी जुलूस की योजना में तो कभी किसी गुप्त मीटिंगों में.

इस प्रकार होलकर कॉलेज में मेरे विद्यार्थी - जीवन के वर्ष व्यतीत हुए. आज तो उनकी स्मृतियाँ ही शेष रह गयी हैं. 'शताब्दी' के संदर्भ में मिले इस अवसर ने मुझे एक बार फिर उसी समय में पहुँचा दिया. कॉलेज में बिताये वे वर्ष मेरे जीवन के अभिन्न अंग हैं और सदैव ही स्मृतियों में बने रहेंगे. मुझे विश्वास है कि शैक्षणिक उत्कृष्टता, वैचारिक निर्भीकता, साहस और गतिशील जीवन की जिन परम्पराओं में हम लोग पढ़े और बड़े हुए वे आज भी मेरी मातृ-संस्था में मौजूद होगी.

□□

कन्हैयालाल डूंगरवाल

मैं माधव कॉलेज उज्जैन से इण्टर साइंस पास करके तृतीय वर्ष विज्ञान की कक्षा में होलकर कॉलेज में आया. प्रवेश के समय देश में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव था. मैं उससे जुड़ा होने के कारण खादी पहनता था और धोती कमीज, हाफ कोट पहनकर दाखिल हुआ जिस पर दादा लोगों ने फब्तियाँ कसी और मामूली छेड़छाड़ की किन्तु सामना करने पर ज्यादा कुछ नहीं हुआ. उस समय रेगिंग में विकृति नहीं थी. खादी धारी की भी अपनी एक इज्जत थी.

प्रारंभ में इधर-उधर मकान लेकर रहा फिर न्यू होस्टल में जगह मिली और आखिर तक वहीं रहा. उस समय होलकर कॉलेज में तृतीय वर्ष और चतुर्थ वर्ष के साइंस के विद्यार्थियों की एक ही क्लास लगती थी क्योंकि, पढ़ाने वाले कम थे. उस समय होलकर कॉलेज में खेल-कूद इत्यादि की गतिविधियों के अलावा राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियां भी काफी थी. ४२ के आंदोलन के बाद मुख्य नेता जेल में थे. विद्यार्थी संगठन अ.भा. विद्यार्थी फेडरेशन चलता था जिसमें कांग्रेसी, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट सभी शामिल थे. दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन से विमुख, हिन्दू संगठन बनाने में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संगठन का भी विद्यार्थियों पर प्रभाव था. हम लोग विद्यार्थी फेडरेशन की ओर से गतिविधियाँ चलाते थे और राष्ट्रीय आंदोलनकारियों के कार्यक्रम जैसे २६ जनवरी, गांधी जयंति, तिलक जयंति मनाते थे. सभाएँ प्रभातफेरियाँ निकालते थे. विद्यार्थी फेडरेशन में हम लोग, ओमप्रकाश रावल, होमीदाजी, गोवर्धनलाल ओझा, श्यामसुंदर झंवर, टी.के. जगदीश शकुंतला पाटकर, व अन्य कई लोग थे. होलकर राज्य में उस समय प्रजामंडल चलता था. सन् १९४५ में राष्ट्रीय नेता जेल से छूटे तब काफी सक्रियता आई. सन १९४३ में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा. द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेजों के शामिल होने से अनाज कोठों में बंद रहा और बंगाल में जनता को भीषण दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा जिसमें हजारों लोग मर गये. राष्ट्रीय भावनाओं के कारण हमने विद्यार्थी फेडरेशन के मार्फत करीब २-३ हजार रुपया इकट्ठा करके बंगाल के अकाल पीड़ितों की सहायता के लिये भेजा. एक बार मंदसौर में बाढ़ आई उसमें भी विद्यार्थी फेडरेशन के स्वयं सेवक आगे आये. सन् १९४५ में विद्यार्थी फेडरेशन के एक जल्से में श्री नरहरि विष्णु गाडगिल जो एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नेता थे,- आये और उन्होंने सन् ४२ के आंदोलन में कम्युनिस्टों द्वारा शामिल न होने और रूस के शामिल होने से उसे जनयुद्ध करार देने की काफी आलोचना की. इसी संदर्भ में अ.भा. स्तर पर विद्यार्थी कांग्रेस की स्थापना हुई और इन्दौर में भी हम लोगों ने विद्यार्थी फेडरेशन में प्रस्ताव पास करके विद्यार्थी कांग्रेस की स्थापना की. होमीदाजी, शकुंतला पाटकर, तांबे, टी.के. जगदीश आदि विद्यार्थी फेडरेशन में रहे और मैं, ओझा, रावल, श्यामसुंदर झंवर इत्यादि विद्यार्थी कांग्रेस में रहे. सन् १९४६ में अल्फा विद्यार्थी कांग्रेस के अधिवेशन में दिल्ली गये थे, जिसका उद्घाटन जवाहरलाल नेहरू ने किया था. उसमें अरूणा आसफअली और कई नेता आये थे और रामसुमेर शुक्ला अध्यक्ष तथा रवीन्द्र वर्मा मंत्री चुने गये थे. गांधी जी उस समय दिल्ली में नहीं थे. इसी प्रकार बाल्यकाल में साबरमती में भी वे नहीं थे. देशी रियासत में रहने के कारण राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़े रहते भी गांधीजी के दर्शन कभी नहीं कर सका. विद्यार्थी संगठन की ओर से विद्यार्थियों की छोटी-मोटी समस्याओं के लिये लड़ते थे. विद्यार्थियों पर उस समय सुभाषचन्द्र बोस का भी काफी प्रभाव था. द्वितीय महायुद्ध के समय उन्होंने ब्रिटिश सेना में से लोगों को लेकर दक्षिण पूर्व एशिया में आजाद हिन्द फौज का संगठन किया. जापान पर अमरीका ने अणुबम डालकर युद्ध जीत लिया और आजाद हिन्द फौज के कई सैनिक युद्ध अपराधी के रूप में पकड़े गये. उन पर दिल्ली के लाल किले में फौजी अदालत में युद्ध अपराधी का मुकदमा चला जिसमें भूलाभाई देसाई व जवाहर लाल नेहरू ने भी पैरवी

१५ अगस्त १९४७

◀ होलकर कॉलेज के सामने बगीचे में झंडावंदन

प्रिंसीपल एन. पदमनाभन झंडा फहराते हुए
उनके बायीं ओर खड़े लेखक (के.एल. डूंगरवाल)

१९४६-४८ :
लॉ कॉलेज के प्रोफेसर - (बांयें से) -
प्रो. जी.आर. शर्मा, प्रो. अय्यर (प्रिंसिपल)
प्रो. संवत्सर.
(खड़े) - प्रो. सरदार बलवंत सिंह, प्रो. करंजीकर.

की. हमने भी आजाद हिन्द फौज की सहायता के लिये करीब तीन हजार रुपये इन्दौर शहर से इकट्ठा किये.

उस समय इन्दौर बहुत बढ़िया शहर था. सायकल ही मुख्य सवारी थी. कुछ अमीरों, जागीरदारों और महाराजाओं आदि के पास चंद कारें और मोटरसायकले थी. द्वितीय महायुद्ध के बाद जीपें, कारे, स्कूटर मोपेड आये, सिनेमा बहुत सस्ते थे. शहर बहुत सुंदर था. सस्ता भी था. द्वितीय महायुद्ध का प्रभाव बाद में आया था.

मैं १९४५ में बी.एससी. में गणित में फेल हो गया. फिर सन् ४६ में प्रायवेट बैठा और पास हो गया. तृतीय श्रेणी में पास होने पर भी जशन मना और बधाइयाँ मिलीं क्योंकि, क्षेत्र में बहुत कम पढ़े-लिखे लोग थे और गाँव में तो मैं पहला ग्रेज्युएट हुआ था. बाद में १९४६-४८ में मैंने होलकर कॉलेज से ही कानून की शिक्षा प्राप्त कर एल.एल.बी. की डिग्री प्राप्त की.

१५ अगस्त सन् १९४७ को देश आजाद हुआ. कॉलेज में प्रिंसीपल पद्मनाभन ने झंडा वंदन किया.

उस समय कक्षाओं से प्रतिनिधि चुनकर विद्यार्थी परिषद बनती थी और वह अपने में से अध्यक्ष, मंत्री चुनती थी जो साल भर की गतिविधियाँ और स्नेह सम्मेलन आदि का आयोजन करती थी.

मेरे समय देश के बहुत बड़े-बड़े लोग कॉलेज में भाषण देने और स्नेह सम्मेलन में आये. डॉ.सी.बी. रमण, सी. राजगोपालाचारी, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, पृथ्वीराज कपूर, एन.सी. मेहता, इत्यादि, जिनके भाषणों और जीवन का प्रभाव आज भी है.

स्नेह सम्मेलन, खेलकूद, स्वीमिंग पूल जिमनास्टिक, संगीत, नृत्य व अच्छे पढ़ने वाले सभी प्रकार के लोग कॉलेज में थे. लॉ कॉलेज में शाम की कक्षाएँ लगती थी. प्रो. अय्यर एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी स्मृति बहुत तेज थी. उन्हें बरसो पुराने पढ़े हुए विद्यार्थियों को नाम लेकर पुकारने में कोई दिक्कत नहीं होती थी. उनके साथ इन्दौर के मशहूर वकील सर्व श्री संवत्सर, पी.आर. शर्मा, करजींकर, सरदार बलवंतसिंह प्रोफेसर थे. कानून की पढ़ाई के साथ-साथ अक्सर लोग नौकरी या व्यवसाय भी करते थे.

विद्यार्थी परिषद के चुनावों में खर्च प्राय: कुछ नहीं होता था कुछ विद्यार्थी कभी कार्ड छपा लेते थे या कुछ चायपान पर खर्च करते थे. सन ४७-४८ के चुनाव में डी.पी. शर्मा अध्यक्ष और मैं सचिव चुने गये थे बाद में हमने संसदीय प्रणाली के आधार पर कॉलेज का विधान बनाया था जो मंजूर हुआ था. पार्टी सिस्टम पर चुनाव भी हुए थे जिन्हें बाद में झगड़े होने पर समाप्त कर दिया गया. कॉलेज में जब मैं भर्ती हुआ था श्री राजू प्रिंसीपल थे उसके बाद प्रो. देशपांडे फिर श्री एन. पद्मनाभन प्रिंसीपल रहे. कॉलेज में सब विषयों के ख्याति नाम प्रोफेसर थे. प्रो. बोरगाँकर का अंग्रेजी में बहुत नाम था. बी.एससी. में अंग्रेजी ऐच्छिक होते हुए भी मैं उनके पास अंग्रेजी पढ़ने जाता था. पढ़ने में भी कई विद्यार्थी काफी तेज होते थे. उस समय अजमेर और नागपुर के बीच इतना बड़ा कॉलेज इन्दौर में ही था. काफी देशी रियासतें आस-पास थीं. इस कारण दूर दूर से विद्यार्थी यहाँ आते थे. ३० जनवरी, १९४८ को शाम करीब ६ बजे हम लोग कानून की कक्षाओं में पढ़ रहे थे और प्रिंसीपल साहब ने आकर सूचना दी कि, महात्मा गाँधी को दिल्ली में प्रार्थना सभा में जाते समय नाथूराम गौडसे ने गोली मार दी और उनका देहांत हो गया. तत्कार कॉलेज बंद हो गया इन्दौर में सांप्रदायिकता विरोधी दिवस मनाया गया विद्यार्थी कांग्रेस और फेडरेशन ने संयुक्त कार्यक्रम बनाकर सभी कॉलेज स्कूलों में हड़ताल करवाई और करीब १० हजार विद्यार्थियों का जुलूस निकाला और घंटाघर प्रांगण में जोरदार सभा की. उस वर्ष कॉलेज का मेंगजीन भी हमने 'गांधी अंक' के रूप में निकाला था.

इस प्रकार विद्यार्थी जीवन में विद्या अध्ययन के साथ-साथ स्वतंत्रता आंदोलन में भी होलकर कॉलेज के विद्यार्थियों ने आगे बढ़कर भाग लिया था और जीवन के हर क्षेत्र में यहाँ के विद्यार्थियों ने सफलता प्राप्त की. आज भी उस समय की स्मृतियों से मन आनंदित हो जाता है.

□□

Scientist-savant Extraordinary

-Dr. S.K. Gupta
Formerly Professor of Chemistry
Holkar Science College, Indore.

One of the foremost writers of the twentieth Century E.M. Forster of "The Passage to India" fame was for sometime private secretary to H.H. the Maharaja Tukoji Rao Puar of Dewas Senior during 1921. Many years after Maharaja's death he wrote a book entitled, "The Hill of Devi" in which he remembers the H.H. in the following words:

"One of the puzzling things about the dead is that it is impossible to think about them evenly. They all go out of sight and are forgotten, they all go into silence, yet we can not help assigning some of them a tune. Most of those whom I have known leave no sound behind them, I can not evoke them though I would like to. He has the rare quality of evoking himself and I do not believe that he is here doing it for the last time".

I am a fan of E.M. Forster and an admirer of Dr. S.S. Deshpande although as regards their personalities and sphere of work both are poles apart. But why I mention E.M. Forster here is that his remarks about H.H. Dewas Senior aptly describe my mood when reminiscing about Dr. Deshpande. Many of my friends and acquaintances have left this world for their heavenly abode and have totally vanished from my memory. I can not remember their faces or their demeanour. Such is not the case with Dr. Deshpande. I can still draw a vivid mental picture of his personality, his actions, his way of thinking and doing things. And I know most of those who have known him intimately totally agree with me. They all remember him as part and parcel of their intellectual attainments and academic atmosphere of Holkar Science College spanning over a number of years.

What was it that attracted people to him? What were the attributes due to which he is still remembered and will be remembered for a long time to come?

For the sake of record, he was born in 1891 the very year Holkar College was founded at Sanawad a small town, about 80 Km. from Indore. He passed his B.Sc. in first division from Holkar College, and did his M.Sc., in 1915 from muir Central College, Allahabad. In 1916 he joined Holkar College as a demonstrator and after a brief stint of four years was promoted as Professor of Chemistry in 1920. For his Ph.D. which he received in 1922 he went to England and worked with Nobel Laureate Dr. J.F. Thorpe. He returned to Holkar College and when Principal P. Basu, brushing aside administrative obstacle permitted him to start M.Sc., classes in Chemistry in July 1931 he worked hard to make the College a reputed Centre of teaching & research in Chemistry in the whole of Country. He became the College Vice-Principal in 1934 and Principal in 1944. He again went to Europe in 1937 and worked with another Nobel Scientist Prof. Ruziska. After his retirement he joined Agra College, Agra as Professor of Chemistry and after that for a brief period served as Director, Jiwaji Rao Defence Laboratory, Gwalior. In 1957, he returned to Holkar College as Professor Emeritus in which Capacity he served the institution till he breathed his last on September 6, 1975.

Coming from a somewhat rural background Dr. Deshpande retained something of the countryside throughout his life. He believed in simple living and high thinking and was frugal in his habits. He ws a vegetarian and abstained from drinking or smoking. He loved fruits like the guavas and expressed his pleasure on being offered a good tasty variety. Modern science now advocates a vegetarian diet with high fibre content for healthy living and somehow Dr. Deshpande instinctively knew It. He derived his strength from his daily 'Pooja' and went about his chores in the spirit of 'work is worship'. In fact, he valued science as his religion and agreed with eminent world renowned Professor T.R. Seshadri that in a country like ours, religion has all along provided the basic inspiration for all worthwhile progress, revolution and renaissance and if science should make a marked impact, it should derive its strength from religion and should be associated with it in everyway.

My association with Dr. Deshpande dates back to 1959 when I joined the staff of Holkar College. Fair coloured, proportionately built, immaculately dressed in his almond coloured shark-skin suit with a buttoned-up shirt collar and without a tie in his later years he could be seen regularly in rain or sunshine walking briskly from the college gate to the organic chemistry lab at a fixed hour in the morning. Those

Dr. S.S. Deshpande on his eighteeth birthday. Photo taken by the author (SKG) on the college campus itself.

who saw or met him casually remember him for his cheerful disposition, genial smile and good health even in an advanced age.

A hushed silence fell as he entered the portals of the post-graduate cum research laboratory, altough he hardly scolded any one or uttered a harsh word. It was a sort of a silent tribute to his scholarship, wisdom and sagacity by his students and compatriots.

At work he was a hard task master and would expect his students to give their best. Prof. M.M. Mhala a reputed teacher whom Professor Ingold judged as one of the best Indian students to come to him in twenty five years worked under Prof. Deshpande in an underground cellar for almost seven years with extremely poisonous phosgene gas for his Ph.D. Degree, before going to England for his second Ph.D. under Prof. Ingold. Instead of quantity Dr. Deshpande believed in the quality of work.

One thing that certainly endeared him to people from all walks of life was his easy accessibility. Students and teachers, young and old, research workers, men of industry, whenever they had a problem in their respective fields turned to doctor sahib for solutions and he was always willing to help. Instead of direct answers he discussed the problem from the grass--roots and then suggested going to the library for references so that solutions suggested themselves. Whenever anyone entered the Professor's room he came out a wiser man. Members from diverse disciplines of physics, mathematics, biology or earth-sciences would look upon him as their guiding star.

It was not all serious business everytime, however, Wit and humour had their place in the scheme of things. Staff members of the Chemistry department from all branches were eager to join him during the tea-break when mirth and laughter freely flowed and all sorts of subjects under the sun were discussed over a cup of tea. The tea-time would often liven up with ideas and anecdotes when Dr. W.V. Bhagwat, Principal, Holkar Science College would join the assemblage.

Professor Deshpande considered fundamental research as society's soundest investment for the future. He decried the importance given to technological innovations of commercial value at the cost of fundamental research. According to him such an approach was like building a magnificant edifice without laying a strong foundation. Hence, he laid great stress on funds for scientific research being diverted to Colleges and universities where dedicated youth could put in real effort for the progress of science in this country and bring a fresh approach to the solution of problems facing society.

Professor Deshpande had in him the synthesis of Western Science and eastern humanism. Besides being an erudite scholar and scientist he was a humanist. This reminds me of Robert Oppenheimer who headed the secret military project that developed the atomic bomb. The film "The day after Trinity" presents Oppenheimer's life as a tragic conflict between science and humanism Oppenheimer besides being a brilliant scientist was a humanist. When at 5.30 on the morning of July 16, 1945 man exploded the first test nuclear devise he recited a Sanskrit-Shloka from Bhagwat Gita;

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता॥
यदि भा: सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मन:॥

'If a thousand suns were to burst forth in the sky their radiance would hardly match the splendour of the mighty one'.

Appalled by the tragedy of the atomic bomb oppie spent the rest of his life trying to undo or atone what the scientist had done. He tried to stop the development of hydrogen bomb but failed. It is ironic of our times that Oppenheimer's science was such a success, his humanism such a failure. Highly honoured scientist, advisor to the Presidents, when he tried to be humanist oppie was accused of disloyalty, tried in secret before AEC, stripped of all his honours and left to die in disgrace. It was only after a long time that his memory was rehabilitated by the world community.

In India we are fortunate that scientists like Dr. Deshpande who have in them a humanist streak fit into our pattern of thinking. We rever them not only for their science but also for their humanism. In fact, for the survival of humanity we must evolve a synthesis of science and humanism.

Scientist - Savants like Professor Deshpande are a beacon-light to guide us on the path of true science and humanism. During this centenary year of his birth and that of his alma mater, he is evoking himself in the minds of all of us as a servant of science who was also the custodian of moral values. My only hope is that he continues to do so in the times to come. □□

महाविद्यालय के पूर्व छात्र
ले.क. श्री हरिश्चन्द्र
पाठक आठवीं सिख इन्फैन्ट्री से सम्बद्ध थे. आपको पंजाब सेक्टर में भारत-पाक युद्ध के दौरान १९७१ में अद्भुत शौर्य एवं वीरता के लिए ''महावीर चक्र'' से सम्मानित किया गया।

Reminiscences

Shri L.C. Gupta is an 'old' student of this college. He passed his B.Sc. in the year 1933 and won the Agra University's Krishna Kumari Devi Gold Medal. He was also awarded the prestigious Maharaja Shivaji Rao Holkar Gold Medal of the college. After doing M.Sc. in physics, he joined state civil services. He was Education Secretary for the M.P. Govt., and was also vice Chancellor of Jabalpur University.

- L.C. Gupta

Since I am writing this article in connection with the centenary celebrations of my Alma Mater - Holkar College, the narration of events should ordinarily be confined to my student life in the college. But for fuller appreciation of the educational system and academic life of that time, it may be desirabel to make a brief mention of events in school life as well.

I studied upto IVth class in a village primary school. Teachers were simple, but devoted to their duty. Class teaching was so complete and through that no extra work at home was required. Most of the work was done on slate and only three small books of Hindi, Arithmatic and Geography were required. Expenses on school education were negligible. A major part of our time was spent in playing, swimming and roaming about in fields and orchards round about. Teaching was not restricted to text books only, and the teachers entertained us by telling some useful and instructive anecdotes and stories, which had a very wholesome impression on our young minds.

In contrast, the life of the present day school child is far from being enjoyable and educative. It is a common sight these days, particularly in urban areas, that we see a child of 4 or 5 years of age, trudging along with a heavy load of books and copies on his back.. Although he is smartly dressed in school uniform, he presents a pitiable sight. Expenses for books and copies alone are forbiding, leave alone the tuition fees and expenses for uniform and transport. As regards teaching, emphasis is more on quantity than quality. The young brain is stuffed with all sorts of information - relevant and irrelevant much beyond its capacity to absorb. This retards proper development of his basic faculties. The poor child, after returning from school sits down to do heavy homework with the help of parents or tutor. He has little time for play or to relax himself. This is how he enjoys his blessed childhood.

After passing out of primary school, I took 5th, 6th and 7th class examinations privately, as there was no middle school where I stayed. From 8th class onwards, I studied in Maharaja Shivaji Rao High School, Indore for 3 years. It was here that a sound academic and sports foundation was laid, and I enjoyed my student life to full extent in all respects. Teachers were all good and sincere. However, one of them known to all as Panditji, taught us Hindi all the three years. He was more like the ancient Gurus in his personality, learning and behaviour. While explaining couplets from 'Ayodhya Kand' of Ramayana, he not only gave the meaning and sense of the couplet, but explained mythological stories associated with the references made therein. The whole class used to be spell bound and looked to him with great reverence. His teaching and personality instilled all the good values of life in our young minds. Besides teaching, he also encouraged us for wrestling and personally coached us in the evening after school hours. Since there was no 'Akhara' (wrestling ground) in the school, he made us prepare one through 'Shramdan'.

Regarding sports, all the three fields, Hockey, Football and Cricket, used to be full in the evening. Our games teacher Shri Newsarkar used to coach us and play with us. There used to a Central India 'Atheletics and Games' Meet every year in December holidays where all high schools of Central India used to take part. It was a great event which everybody looked forward to. Our games teachers used to coach those who showed interest in taking part in various events, right from the beginning of the session. Selection trials were held sometime in September and intensive training was given to those who were selected to represent the school in various events. Our squad did very well all round and brought laurels to the institution.

Transition from school to college was a sort of landmark in one's life, because seats were limited and everybody could not afford higher education. In this region, there were only two colleges-Holkar College for Science and Arts and Christian College for Arts only. I was lucky to be able to join Holkar College as a science student mainly because I got merit scholarship. Holkar College with its impressive building and extensive playgrounds, located well outside the city limits, impressed the newcomer as an ideal educationl centre where he will live the most important part of his career.

Regular classes started in a business like manner from the very first day without any disturbance or fanfare. Our teachers were Prof. Dr. S.S. Deshpande (Chy), Prof. N. Padmanabhan (Physics), Prof I.J. Cornelius and Prof. Gole (Maths) and Prof. S. Charles A. Dobson, H. Ghosh and D.M. Borgaonkar (English). All of them had brilliant academic career and were outstanding teachers. They took all the classes right from Intermediate to B.Sc. and in English upto M.A.

During the course of our career as we came in closer contact with our teachers, we realised that they were not only good teachers but men of high moral character. Integrity, punctuality, simple living and devotion to duty were their hallmark which necessarily left indelible impression on us. All of them used to be University examiners also. But no one, even their nearest relation or associate, could get slightest inkling of the paper. they taught the subject so thoroughly and covered the entire course so well in time, that there was no need to point out what was important for the examination.

In English, Prof. Borgaonkar used to take down notes from Encyclopaedia Britanica for difficult words and expressions before coming to the class. It was such a pleasure to hear him explain a particular poem or a Shakespear's play with all the references with his characterstic lucidity and clarity.

Prof. Dobson was tall and stocky in build with thick grey flowing moustaches. As he filled the chair, he looked an embodiment of a saintly preacher. HIs sombre and clear voice whistled through his moustaches and fell upon our ears like nectar. We felt as if we were hearing a sermon from the sacred mount. In his slow and measured tone, he explained the main features of English language, giving quotations from various well known authors.

Profs. N. Padmanabhan and Cornelius were impressive for precision, brevity and logical exposition of various theories in their subjects. Prof. Cornelius was known for his witty but pungent remarks even in normal conversation. Once while returning checked answerbooks of terminal examination, he addressed a student sitting high up in the back row; "You Mr. X- there in the House of Lords, you get zero in the paper. You know why? (pause) Because you could not get less."

Now I come to the person who was the very soul of the institution-I mean Prof. P.C. Basu M.A. Ph.D. (London). He remained Principal of the College for 14 years and also held the office of Vice Chancellor of Agra University for 6 years alongwith his Principalship. He was not only an able teacher of Economics but a strict disciplinarian and an efficient administrator. He used to take classes right from Intermediate to M.A. to keep in touch with the students. He was extremely punctual in coming to the class for lecture and other engagements and expected the same from others.

Despite his stern exterior, he was very kind hearted and would do everything in his power for the wellbeing of the students and his colleagues. For instance, when he learnt that I was in difficulty to continue my studies after Intermediate, where I had done very well, due to my father's retirement on a meagre pension, he approached the Prime Minister and got me special scholarship from the state. He also helped another poor student by keeping him in his bunglow. He again helped me financially , to enable me to go to Allahabad to study under Dr. Meghnad Saha F.R.S., after I had passed B.Sc., standing first in the order of merit in Agra University.

He never tolerated any indiscipline or misbehaviour on part of any student irrespective of his merit. Once he imposed a fine of Rs. 400/- on a meritorious student who was in his good books, because he refused to divulge the name of a mischeivous student who set fire to a shamiana put up in connection with annual day celebrtions.

Dr Basu very much encouraged sports activities also. In the evening 5 tennis courts and 3 football, hockey and cricket fields used to be humming with activity. He used to send games teams to play against other colleges outside Indore during Diwali holidays and would reward those who performed well on the tour. In tennis the best four players were allotted a separate court and were given new balls everyday. This improved the standard and our players did very well in various tournaments at national level. Outstanding performance was that of so called Kaul Brother - J.K. Kaul and M.K. Kaul who won several trophies. Mr. J.K. Kaul was ranked 6th in All India Tennis ranking list and later won Men's doubles event in national championships. He was first appointed to Holkar Civil Service and later entered Indian Administrative Service and became Secretary to Govt. Of Madhya Bharat. Mr. M.K. Kaul entered Judicial Service and retired as Distt-Judge in M.P.

In University examinations also, our students did very well, passing various examinations in Merit. 1932-33 batch was exceptionally good. Miss Sumati Bhandarkar topped in M.A. (English). Other toppers were - Mr.Dingankar M.Sc. (Chy), Mr. Bedekar M.Sc. (Prev.Chy), Mr. Desai M.A. (Prev. Eng.), Mr. L.C. Gupta B.Sc., Mr. Balwant Singh LLB, Mr. L.O. Joshi Inter (Arts), Mr. Durga Prasad Inter (Sc).

Hostel life also was very happy and enjoyable. There were four hostel blocks accomodating nearly 100 boys. Prof. Sagir

Ali (Urdu, Persian) was our Dean (Supdt) and Mr. Akolekar was Physical Instructor and Mess Supervisor. Dean Sahib was very strict in maintaining Hostel discipline, but otherwise very kind and affectionate. He used to visit every block at 8pm and call every student by name to ensure none was absent. If anyone was found absent he had to appear before him next morning to get admonition. Mr. Akolekar used to take all the hostelers for jogging for a mile in the morning at 6am. Since I used to study late at night, I was exempted from jogging and used to do gymnastics later for half an hour. Mr. Akolekar was an amiable and conscientious person. He looked after maintenance of tennis courts, games fields and college garden very efficiently.

Our Annual Day celebration was a memorable event and we looked forward to it very eagerly. Besides games and athletics competitions, cultural items like debates, plays (Hindi & English) and music etc. were performed efficiently after good preparation under the guidance of various teachers. The most important item was the prize distribution after the speech by the Principal. Closing address was given by the Chief guest H.H. Maharaja Yeshwant Rao Holkar who adorned the dias along with his Maharani Her Highness Sanyogita bai a very lovely and dignified lady. Principal's speech was a treat to hear. It reviewed all the main activities of the college during the year and its requirements for further development which needed State Govt's cooperation. Dr. Basu's speech was prepared in advance and rehearsed before a mirror to ensure proper gestures and intonations.

My proudest moments were when I was given by the Maharani Holkar the Maharaja Shivaji Rao Medal for being the Best Student of the college for outstanding achievements both in studies and sports, and later when I was awarded the Krishna Kumari Devi gold medal at the 1933 Agra University convocation for general proficiency at B.A. and B.Sc. examinations.

This brings to an end my sweet memories of life in Holkar

College. A critical reader of this article might wonder how is it that I did not notice any dark spot anywhere in my school or college career. Was it that everything was ideal and to perfection? No, some dark spots were there, but they were so few and insignificant that they were eclipsed by the dazzle of the bright ones. One is also likely to observe the contrast between the life in educational institutions then and now. Why is there deterioration all around? Reasons are not far to seek. In a nutshell, the conditions then reflected the state of society and administration prevailing then and the conditions at present do so the state of affairs now. □□

'महावीर' पी. गौतम

होलकर महाविद्यालय के भूतपूर्व छात्र, जिन्हें पाकिस्तानी आक्रमण के विरुद्ध वीरता के लिए 'महावीर-चक्र' प्राप्त हुआ. उन्होंने यह सम्मान दो बार (वर्ष १९६५, १९७१) अर्जित किया.

My memories of Holkar College go back to 1927 when I joined the College as a First Year student. It was then perhaps the only post - graduate college in the whole of Central India and Rajputana Agencies besides the Indore Christian College, run by Christian missionaries. There was also the Daly College, but it was a college only in name - it had no degree or post-graduate classes. It was a kind of public school for the sons of princes and jagirdars belonging to Central India and Rajputana Agencies. Students from all over the Rajputana Agencies, viz. Jaipur, Jodhpur, Udaipur, Bikaner and kota -as well in Central India Agencies, came primarily to Holkar Collge, though some students from outside joined the Indroe christian Collge also.

I was impressed by the faculty that Holkar College possessed. It had some excellent teachers, Professor Ghosh and Professor Borgankar in English, Professor S.N. Dhar in History, Professor Shrinivas Chaturvedi in Hindi and Sanskrit, Professor Shrikhande in Logic and Philosophy, besides having Professor Padmanabhan, Professor Deshpande, Heads of the Departments respectively of Physics and Chemistry. Dr. P. Basu, a distinguished scholar of Economics, was Principal of the College and Professor Charles A. Dobson, an extremely good natured and kind hearted Englishman, an excellent teacher of English was the Vice-Principal and the Head of the Department of English. The Christian College, Indore had a large number of Christian teachers from various parts of India as well as several teachers from abroad, who impressed me by their closer, more informal - relations with the students. I was impressed not only by the quality of the teachers but the interest that they took in the students.

My memories go back particularly to late July 1927 when we were given a monthly test, consisting of one question, by our teacher of History, Professor S.N. Dhar. It was within a fortnight of the start of College. I thought that I had written a very foolish answer when I found Professor Dhar calling me at the time of the distribution of the answer papers. "Who is this Lord Krishna"? he asked. I knew that it was my answer and I also knew that it must have been a very foolish answer. I had started the answer with "What Lord Krishna says in Bhagvad Gita" I was surprised to find that I had got the highest marks in the class - 4 1/2 out of 5 and Professor Dhar asking me to meet him after the class was over in the staff room. As students of the High School we had been used to have a great deal of fear of our teachers. I went ot meet him outside the faculty room. Professor Dhar met me in a very informal, casual way. I still rememer it though 64 years - nearly two-thirds of the century has passed since then. he gave me a couple of books, which he had borrowed from the College library in his own name. I still remember the names of the two books - one was Havell's History of Aryan Rule in India and the other Radha Kumud Mookerji's Fundamental Unity of India. He quietly asked me to read them and give him my impressions. I am sure from the names of the two books, that Professor Dhar might have seen some instinct in me for a certain orientation for a cultural bias of History, which, I think, he had appreciated. I read both the books very carefully and was deeply impressed by their contents. Infact, it was as a result of the study of these books that I developed a cultural bias towards my understanding of history. I had started taking interest in the extra-curricular activities of the College by the time I came to the Third Year class. I also took some interest in organising the elections which were taking place to the students' bodies and proposed the name of one of my friends for the editorship of the College Magazine and an other for the Chief Secretaryship of the annual celebrations in the College with the result that the responsibility of not only editting the Magazine but seeing it through the press ultimately came to me. I remember that we had got it printed at the Sardar Printing Press at Indore - A great deal of responsibility of both, the publication of the College Magazine and the organization of the Annual Function of the College for 1928, thus, fell on my shoulders. I am sure they proved good training grounds for me for developing journalistic instincts and administrative skill.

Among the students of the Final Class who had impressed me at the time of elections in 1929 were Pratap Singh Bapna and Kalyan Mal Bapna, both of them later distinguished themselves in the administrative Services, one of Indore State and the other, first at Udaipur, and later as Chief Secretary in greater Rajasthan. While in the First Year Class, I had also come in contact with Kashinath Narain Trivedi, and ardent Gandhite who wore khadi habitually, which I could appreciate but could not do on account of family circumstances.

Holkar College in those days was full of students' activities, though they were all of a constructive type and strictly in accordance with the constitution of the Students' Union as framed by Dr. P. Basu, the strong man who dominated the College as its Principal. By 1930, when the Civil Disobedience Movement was at its height in national politics. There was some reflection of it in the activities of the College, though it was not with any active support from Dr. Basu, and was often in the absence of Dr. Basu.

On October 2, 1930, some of us thought of organizing a Gandhi Jayanti programme, and since Dr. P. Basu, who was a strict disciplinarian, happened to be away from Indore and Professor Charles A Dobson was acting as the Principal of the College, We approached him to preside over the function. Professor Dobson accepted it gladly, and, rather innocently. I remember I delivered a strong speech on the occasion, which was greatly appreciated by Professor Dobson and the audience. I also read out a long prosa-poem in English which, I understand was sent out ot some activists in Bombay by a friend, who was in touch with them and some ten thousand copies of it were printed and distributed all over the City there. I came to learn later that Professor Dobson had been put to some trouble on account of his innocently agreeing to our proposal to preside over the Gandhi Jayanti celebrations. The Holkar State Government had taken objection to it and Professor Dobson, an innocent Englishman that he was, was asked to offer an explanation. We had also collected a good deal of self-spun Khadi and self woven cloth, which we sent on to some local organization dealing with Khadi.

During my student days at Holkar College in the B.A. Arts classes, I remember, I was quite actively associated with several general activities of the College. We used to have a number of cultural activities, like short-length plays or comics, in which I also participated. Dr. P. Basu, the Principal, had taught us British History when we were in the Intermediate class, but he had known me personally mainly through such activities, and recommended me to the State Government in 1934 when the chance of my appointment as a Lecturer in History came up.

A number of my teachers at the College still remembered me when I had joined the Allahabad University for my M.A. course in History and later, as a research scholar for a year. Whenever I came to Indore, my home town, and it was fairly often, I always met a number of them. I had excellent memories of the Indore Christian College also and my impression was that the teachers there were more sociable than the teachers in the Holkar College. While we had some difficulty in trying to rope in judges for our debates from teachers among Holkar college. I remember, we could persuade some of the teachers at the Christian College, Indore to preside over, or participate in some of those functions.

In October 1934 - after I had done my M.A. in History from Allahabad University and was involved in my research work under the guidance of Sir Shafat Ahmed Khan, I was appointed a lecturer in History at Holkar College. It was a rare opportunity during those days to find a teaching career in any post-graduate college, much more in a University, the number of which was limited in those days. I was, therefore, happy to obtain an appointment in Holkar College, Indore, and everybody congratulated me. This gave me an opportunity of coming even closer to the Holkar college and remaining in close contact with all its social and literary activities for the next nine years from 1934 till 1943. In the meantime, I had developed contacts with some of the most outstanding literary men in Hindi literature and built up a position of my own. That enabled me to play an active role in the literary activities of the College. I had also developed a great interest in dramatics, and could help in organizing a number of plays. It was therefore, with some pain that I shifted to Meerut College in July 1943 in the capacity of an Assistant Professor in Political Science. Further openings appeared to be blocked for me at Holkar College. I had, in the meantime, done my M.A. in political science, standing First class first in the University, with First class marks in each individual paper - a rare academic distinction, and was immediately appointed there. But I badly missed my years at Holkar College.

I had, thus, remained in close contact with Holkar College from 1927-31 as a student and again from 1934-43 as a member of the faculty. This, particularly the one from 1934 onwards, was also the period when I was very deeply involved with the social, particularly literary, activities of Indore. In 1934, I was elected the Sahitya Mantri (literary secretary) of the Hindi Sahitya Samiti, Indore, a well-known public institution of the city, which had the honour of inviting - Mahatma Gandhi to Indore to preside over the annual session of the all India Hindi Sahitya Samiti in 1918. The Samiti was then under the guardianship of the late Pandit Saryu Prasad Tiwari, then one of the leading physicians and public figures of Indore. Indore again had the privilege of inviting Gandhiji, then working for the propagation of Hindi as the link language in India, to preside over annual session. I was also elected as the literary secretary of the All India Hindi Sahitya Sammelan. I had hardly realized at that time that it would enable me to come in close personal contact with Gandhiji at least for the time being. But that is a different story and has hardly anything to do with Holkar College.

In my early years as a teacher at Holkar College, I had set up, with the help of some colleagues, an institution called the Saturday Club, which consisted of 25 or 30 best students of the College who were selected by some of us with great care. We called it the Saturday Club and used to have weekly meetings almost on all the Saturdays, in which we discussed on major topics in History, or politics, national as well international, or Literature or Sciene to which we invited members of the faculty from Holkar College as well as from the Christian College. The Saturday Club continued for years and the students selected as its members every year, distinguishing themselves in later life. Those years from 1934 to 1943 were really highly active years in the life of the College. Holkar College, with Dr. P. Basu as the Principal, (1934-40) I remember distinctly was a highly organised and a well disciplined college. Games used to be compulsory for student in those days and every member of the teaching staff was assigned some responsibilities of supervising the games. Dr. Basu had also introduced the system of weekly seminars which were generally conducted with extreme care. Games were compulsory. In 1935 Dr. Basu returned from a trip to

Europe bubbling with enthusiasm for the discipline that Mussolini had introduced in Italy. We organised a talk by Dr. P. Basu under the auspices of the Saturday Club in which he spoke with great admiration for Mussolini. We could see how deeply the personality of Mussolini had influenced Dr. Basu. Dr. Basu was known for his imposition of dictator like discipline in Holkar College. No teacher was expected to differ from the attitude that Dr. Basu took in matters of the college or in the University of Agra of which he was the Dean of Arts and then the Vice-Chancellor.

I distinctly remember an incident in 1934 which took place immediately after I had joined its faculty. Elections to the University Council from all over the University were held, and fourteen members were to be elected for it. Outstanding citizens of the nation stood for the vacancies in the registered graduates constituency elections had been scrupulously organizsed and nobody was expected, or perhaps could even have the courage to deviate from the line of action that Dr. Basu expected him to take. There were outstanding names on the one side - Hridyanath Kunzroo, Dr. Ishwari Prasad, Dr. Mohan Sinha Mehta and other. But, in the meantime, graduates of the Agra University were repidly being registered as members by the group which was organising elections on behalf of the group controlled by Dr. P. Basu. Membership forms were sent to hundreds of graduates of the University with their membership fees paid by the group 'organising' the elections and they were asked just to sign the form and send it on. So far as members of the teaching faculty at Holkar College was concerned, nobody was expected to deviate from the list of names he was asked to sign a group of 14 chosen by Dr. Basu and his close circle - more or less, unknown and incompetent persons. My teacher, Dr. Ishwari Prasad, one of the most well known teachers in Northern India, known also for his stinginess, used to write post-cards to me at the College address in which he was asking me to secure as many votes for him as possible. When I tried to move about in the matter, I was warned that if I did anything of the type, Dr. Basu would never excuse me. Mr. K.L. Bordia, my teacher and colleague in Holkar College, who had been practically Dr. Mohan Sinha Mehta's creation, told me that he could not ask anybody to vote for Dr. Mohan Sinha Mehta and that if anybody on the faculty of the College did so, he would not be excused for it. I played a rather surreptitious but highly moralistic role in the whole affair. I wrote a long and confidential letter to Dr. Ishwari Prasad, Making everything clear to him. It was a shock to me that while men like Pandit Hridyanath, Dr. M.S. Mehta, Dr. Ishwari Prasad and other were not elected, one of the sub-post-masters at an obscure post office in Indore was elected. I later knew what use Dr. Ishwari Prasad made of my letter. He placed the entire conspiracy before the Governor, and the elections were declared null and void. But Dr. Basu's control over the Holkar College administration and, through his colleagues in the University over the Agra University was almost complete and remained in later years too.

Then a sudden change took place in 1940. Letters began to be received at the address of the Holkar College in the name of H.B. Richardson who had replaced Dr. P. Basu in the wake of large scale changes in the administrative set up of the Indore state subsequent to the supercession of Maharaj Tukoji Rao. Col. Dinanth, and unknown person from Punjab had replaced sir sirey Mal Bapna, who as Prime Minister of the state since 1924 was in fact responsible for modernising the city of Indore, and who had established a first rate hospital and college in the city. H.B. Richardson a lecturer in some Lahore College, was Col. Dinanath's protege, and when Dr. P. Basu's services were dispensed with, Col Dinanth brought Richardson as the Principal of Holkar College. It came almost as a shock for the College. People did not actually love Dr. P. Basu but they were full of admiration for the excellent administration and discipline that he had maintained in the College and unless one went against Dr. Basu's wishes in the matter of College or University administration, one could quietly carry on his teaching work and other extra-curricular activities. In short, as long as one did not come in the way of Dr. Basu, one could treat himself completely free to carry on his College work.

Indore had two late night trains, each leaving at 2 or 3 A.M., one in the direction of Ratlam from where one could either proceed straight in the direction of Ajmer or any major town in Rajasthan or undertake, through a B.B. & C.I. train a journey in the direction of Delhi or Bombay or in the direction of Khandwa where one could get on in the various directions to any place in Central Provinces, U.P., Bihar, Bengal, Madras or Bombay. Being a Bengali, Dr. Basu had his roots in Calcutta. After his dismissal from the post of Principalship he took a night train for Calcutta, and was given a grand farewell by the students and the members of the staff of the College. H.B. Richardson, however, proved to be a well-meaning Englishman and we, the younger members of the faculty, who were almost of the same age as Richardson, felt ourselves elevated in our stature. Richardson was quite respectful towards members of the Faculty, even when they were young and we could discuss matters freely and frankly with him, Richardson seemed to excercise considerable influence in the state's administration, and this explains his sudden elevation to the post of Education Minister within one year of his principalship of the College.

H.B. Richardson's place in the College was taken over by P.T. Raju, a powerful orator, who had been invited, by Richardson, to preside over the preceding year's annual function of the College.

Raju as the Principal of the College found it difficult ot take decisions, and soon became known for his crude behaviour. While he himself was an elderly person he seemed incapable of showing respect to the senior members of the staff. On the other hand, he was quite intimate in his contacts with the younger members of the staff. I remember that a messe-

nger from a local Church had brought a letter for Raju. He was admitted by Raju to the Principal's room and was asked to take a chair, which greatly surprised him and, as he came out of the Principal's office and was passing by the Head Clerks' table, he was heard saying "What a fool! He seemed to have no idea of administration at all." I remember an interesting incident. A conference of patels was called at Indore, on which the young Maharaja was to preside. He talked with Professor Dhar, the Head of the History Department and asked him to suggest what could be done by his department to be brought into prominance on the occasion.

In October 1942 some of us thought that we might celebrate the four hundredth anniversary of Emperor Akbar in the College and since Shri Tej Bahadur Sapru one of the two most outstanding advocates of the country, the other being Jayakar - and they often formed a team and a great scholar of Persian, happened to be at Indore, we decided to invite him to address us on the occasion. Mr. Rashid, who was the Education Minister of Indore state at that time, was invited to preside over the function. The College was going through a great controversy at that time regarding the use of "Vande Matram" the famous song from Bankim Chandra Chatterji's famous novel, Anandmath. The song was regarded as an expression of Hindu religion, tradition and culture by a section of Muslim community, and hence whenevr a functionn started with this song, in the College, the Muslim students used to walk out of the hall, thus creating an atmosphere of communal tension. It happened on this occasion also, and while the audience started dispersing, Sir Tej Bahadur Sapru collected his papers and quietly walked out, with Rashid Sahib walking behind him. Principal Raju was sitting at that time on a bench lying at the front gate of the hall, reading a letter and when I tried to draw his attention to what had happened, he instead of being concerned about the event, appeared to be deeply engrossed in the letter and resented my attempt to disturb him.

I left Holkar College a few months later to join Meerut College in the capacity of an Assistant Professor in Political Science -(in the July of 1943). While at Meerut I generally stayed away from the general activities of th College or the city, confining myself to the writing of critical books in both English and Hindi, on vital national problem - Problem of Democracy in India, In English, to which a foreword was contributed by Dr. Tara Chand, and Hamari Rajnaitik Samasyayen in Hindi, being my major works of the period, besides academic papers produced in the faculty club of the Meeru-t-College, and various meetings of army men staying at Meerut. Meerut being a big centre of the military. From Meerut College I moved in 1946 to M.B. College, Udaipur to take up the position of the Head of the Department of History and Political Science and stayed there till 1957, when I left for Jaipur and spent a number of years, first, in building up the Rajasthan College as one of the most exemplary colleges organised, more or less, on the lines of a public school, set up by Mohanlal Sukhadia, the Chief Minister, and Bhagwant Singh Mehta, the Chief Secretary of Rajasthan, where the teachers were given higher salaries and students were admitted on the basis of a higher percentage of marks in their preceding examinations, and after 1957 in building up the Department of Political Science in the University of Rajasthan. While at Meerut in 1943-46 and at Udaipur in 1946-57, I was invited again and again to Holkar College for presiding over functions or participating in various discussions, and thus, I continued to take a great deal of interest in Holkar College and its activities for a number of years to come. My absorption in the work of the University of Rajasthan after 1957, however, did not leave me with enough time to keep up my contacts with the Holkar College.

For a number of years I had been looking forward to the building up of a University at Indore - my idea being that when a University was built up at Indore, as at Allahabad, it would be in a position to build up a great academic atmosphere in the city, little realizing that the entire conception of a University, had been fast changing - perhaps since a university had been set up at Agra in 1927. In 1947, when Kashinath Narain Trivedi had invited me, in his capacity as the new Education Minister in the Praja Mandal ministry in Indore State, to accept a position of the Directorship of Education in Holkar State, I had expressed my inability to accept it, on the plea that as I was waiting for the day when a University would be set up at Indore and I would be called upon to play a role there. My impression had been that Allahabad had become a distinguished academic town on account of two factors: the establishment of a High Court there and that of a firstrate University. I was expecting that in the same manner the establishment of a University at Indore would be a great help in the intellectual development of the city.

It took a long time for a University to be set up at Indore and by that time the entire concept of associating the intellectual eminence of a city with that of its University had vanished. When Manohar Singh Mehta, who later became the Education Minister of Madhya Bharat, reminded me of my earlier promise and invited me to join the University of Indore, I told him that I had not expected that a University which would be more on the lines of the Agra University would be set up at Indore. I had at that time a great deal of faith in the future of the University of Rajasthan which had been set up, with Three eminent Vice-Chancellors each for two terms of three years, viz., Dr. G.S. Mahajani, G.C. Chatterji and Mohan Sinha Mehta (1947-66). The University of Rajasthan had been developing at a rapid speed and my interest had completely shifted to whatever role I could play in the building up of the University of Rajasthan, in general, and the discipline of Political Science in the University, in particular. I, however, did not anticipate that the University of Rajasthan too, in the way of the other Universities, including the University at Allahabad, would also soon be on the road to disaster, the causes of which are now clear to everybody. □□

My Four years in Holkar College

- G.L. Ojha

From his college student days Shri Ojha is known for his commitment towards social and political reforms. He was an outstanding lawyer and later on retired as the juage of the Supreme Court of India. At present, he is associated with the college in the Capacity of the President of 'Old Holkarians Association'. He studied in this college from 1944 to 1948 - a period of great turmoil and political transformations. He vividly recollects some of the activities of that period.

It was July 1944, when I came to Indore for my admission in B.Sc. (Part I) in the Holkar College. I had already filled in my form and at my place Ujjain, I was informed that the list of persons to be admitted is going to be notified soon. Therefore, I reached here and to my misfortune, I found that I was not one of those candidates who were admitted. On inquiries, I had learnt that after the local candidates (residents of Holkar State) are over, then only outsiders could be considered. But I was told that if I was interested in arts, I could get admission immediately. This compelled me to go to Gwalior as our Madhava College in Ujjain was only intermediate college, and having passed intermediate from there, I had to take admission somewhere. I went to Gwalior and also to Agra. In the meantime, I received information that there are some vacancies in Holkar College and the persons in the waiting list may be called for interview. I rushed back to Indore, as I was in the waiting list.

The Principal of the College then Dr. Deshpande, Vice Principal N. Padmanabhan Shastri and Prof. Gangrade constituted the committee to interview us. Amongst the candidates in the waiting list, I was one who had the highest percentage of marks although second class. I was therefore, called for interveiw. After a few questions, the Principal Dr. Deshpande, told me that although I can be admitted on the basis of merits, but my disadvantage is that I am a foreigner. When he called me a foreigner, I could not resist my temper and I immediately said "Sir you may admit me or not, but please don't abuse me." I am not in the habit of hearing abuses. Dr Deshpande said that he was not abusing me. But I told him that if in my own country, when you call me a foreigner, it is nothing short than abuse. I also told him that under the rules, if I will have to pay double tuition fees, I am prepared to pay. Thereupon, Shri N. Padmanabhan intervened and told the principal that this boy must be admitted as he has the best percentage of marks amongst the candidates in the waiting list. Not only this, but he went on insisting till he got me a chit for admission then and there and so I came to Holkar College, Indore.

In the first year i.e. 1944-45, I got in touch with the college activities in the back ground of my political associations with the Students' Congress, the nationalist organization of All India Students, I was elected as vice president of Indore branch. 1945 started an Era of transition when the Britishers were preparing to withdraw and ultimate success of our freedom struggle was insight accomplished. I started compaigning for a democratically elected students' body which could look after extra curricular and cultural activities of the students in. The college negotiations were on and the year ended. Having passed B.Sc. (Part I) we entered the year 1945-46, where I was a student of B.Sc. (Part II). At about the end of the session Dr. Deshpande retired and Shri Padmanabhan became the principal of the college. In March 1946, near about the time, when our examinations were in the offing, under the chairmanship of Pandit Nehru, an interim Government took over in Delhi as the first step towards transfer of power.

After passing my B.Sc. examination not very well as pre-occupied with my political activities, I had very little time for studies. I joined LL.B. previous in the year 1946-47. Shri Padmanabhan accepted our demand for a democratically elected students' body and asked me to prepare constitution for the same, and it was my first experiment that I prepared a constitution for college parliament where members of parliament were elected from various classes on the basis of number of students in the class, and this parliament had a president, vice president and various secretaries, who were incharge of different extra curricular and cultural activities. The parliament members were elected directly from the classes. The president and various secretaries viz. literary secretary, celebration secretary, sports secretary etc. were elected by the members of the parliament. The first parliament of the college was elected in July 1947, When the date for our declaration of independence was fixed as midnight of 14th August 1947.

On July 1947, I joined LL.B. final and I was elected as one of the members of the college parliament, but it was interesting that inspite of the fact that I was supposed to be popular in the college in the election for the presidentship of the parliament, I was defeated by one vote by the person, who immediately after the declaration of the result became a great friend and continue to be a friend even today - Dr. Shri P.D. Sharma.

Holkar State was one of the native states of India. British Rulers who had decided to walk out of India, had declared that on their withdrawl from Inida, the native states will be

free states and it will be for them to choose as to whether they will or will not join the Indian Union. It will also be open to them to have their own independent states. At this time, Sardar Patel, who was one of the ministers of the interim government, was trying to handle these native states. Most of the states had declared their intention to join the Indian Union but Nizam of Hydrabad, Navab of Bhopal and unfortunately the Maharaja of Indore, had daclared their intention not to join the Indian Union. A document was prepared by the Government of India which was to be signed by the Ruler of the State, who was to join the Indian Union. It was described as an instrument of accession. When Maharaja Holkar declared his intention to remain free, I as the president of the students Congress, launched an agitation against Maharaja. I also tabled a resolution before the college parliament as if Maharaja Holkar does not join the Indian Union, this college will severe its connection with the Holkar State and will be a part of the Indian Union. It was also stated in the resolution that members of the staff including the principal, if want to continue in the college, they must tender their resignation from the Holkar State service, to be effective from the midnight of August 14, 1947; but if they want to continue with the Holkar States service, their service shall stand terminated from the college on the midnight of August 14, 1947. The parliament had a lengthy debate on the resolution and ultimately at about 9 p.m. in the first week of August 1947, the resolution was passed, and a copy of the resolution was sent to the principal. I went back to my hostel room (New hostel where I was residing). At about 10 p.m. an old peon of the college came and asked me that the Principal wants me; So I left for the Principal's residence apprehending hot reception as the principal must have received the resolution by then. Smt. Maitrai Padmanabhan, the wife of the Principal, was very kind to me and treated me always with affection. I therefore, told the peon to take me first to Smt. Padmanabhan and I thought that I will take her with me to the Principal as she will act as my protector. Our principal Shri Padmanabhan was known to be a very strict disciplinarian and a very logical talker. But when I reached his residence, I found him walking in the veranda outside and had no opportunity to seek the protection which I had thought of He immediately asked me as to what I have done and I told him that he must have received the copy of the resolution. He told me that you have terminated my services also, and I told him 'choice is yours'; but then he asked me that if the Holkar State remains independent, what the boys will do in the college to make it a part of the Indian Union? I told him that the first step on the midnight of August 14 will be that our national flag will be hoisted on the building and gates will be closed. Holkar State employees will be asked to get out of the college. Gates will be closed for the authorities of the Holkar State; Hearing this the principal said that the Holkar State Police will walk in the college, tear of your national flag and throw it in the dust. Hearing this I became serious and told the principal 'Sir there is sufficient blood in the veins of the young boys of the college and so long as the last drop of blood is not shed and the whole ground is not red, no one will be permitted to touch our national flag.' On this, the principal embarassed me petting on my back said, 'My boy, I will be with you, and before the blood of my boys flow, mine will flow first.' With these blessings, I came back to the Hostel and went on with my agitation against the ruler demanding his accession to the Indian Union. We surrounded Yeshwant Niwas palace where the ruler resided, declaring that we will not permit anyone to go out and no one to get in. It was a historical march of young people of more than about 10,000 boys and girls from the age group of 6-7 years to 20 to 21 years. We remained around the palace from morning to evening. Ultimately, the Maharaja acceeded to our demand; may be because of the atmoshphere all over and the good sense which he had.

On 14th August 1947, we became free but unfortunately, the country was partitioned into two and with this the blood shed started resulting in virtual transfer of population from the parts of India which became part of Pakistan and from India to Pakistan. The blood shed and the disaster which the country faced was never expected. This went on in themonth of August 1947, and in September 1947. Our college used to have our celebrations (social gatherings with all cultural and sports activities) normally in November or December. Every student along with his tution fee used to pay part of the money as celebration fees and this amount separately collected from all the students, was earmarked for the expenses of the social gathering. This amount in those days used to be to the tune of 20 to 25 thousand rupees. Most of the expenses were in refreshment, dinner and for payment to some professional artists for cultural activities. I felt if all this money is sent to the national relief fund, which was being collected, it will be a part of the expense of lakhs on the refugees who had come from North West of the country. I therefore, tabled a resolution not to have any celebration where money is spent, and all this money be sent to the National Relief Fund. When notice of this resolution was circulated to all the members of the parliament, it aroused all round excitement. Because for some who were interested in cultural activities and shows, it was a great set back as they may or they may not get any opportunity to have all that enjoyments because some of them may pass out of the college before next opportunity arises. I was also one of them who was the student of LL.B. Final. On this, lot of debate outside went on and virtually the members of the parliament looked divided. A group of people mostly coming from distinguished families of Indore - Officers, High class people in our terminology then, who were described as 12 oaks of the college, were canvassing against the resolution and ultimately when we were walking into the parliament (Yeshwant Hall), the leader of this group showed me a paper having signatures of more than 60 to 70 persons claiming to be the members of the parliament against the resolution and he told me that the resolution will be defeated. But if I want a compromise, he may agree to give at the most 25% of the fund for the National

Relief Fund. I told him plainly that I am not a beggar nor I was seeking any favour for me personally and I also told him that if you defeat the resolution, you will put a black page in the history of the college that the boys here want to enjoy when the nation is bleeding with the loss of thousands of brothers and sisters. With this, we entered into parliament hall and the celebration started. After my putting the resolution, it was vigorously and strongly opposed, and also was supported by number of speakers, and every one was in a fix as to what may happen and ultimately I rose to reply to the debate.

I still feel that I could never speak in my life as on that day - sentimental and appealing. I could notice when I was turning to describe as to what was happening in Panjab and frontier, tears were dropping from the eyes of my friends in opposition and after finishing when I came down, from the stage, the leader of the other group who had shown me those 60-70 signatures came and embrassed me and told, he is with me and to every body's surprise, the resolution was unanimousely passed.

□□

1947 : Inter Collegiate debate of colleges affiliated to Agra University held at Meerut.

Winners - Shri G.L. Ojha and P.D. Shastry - of Holkar College, Indore.

BACK TO HOLKAR COLLEGE

- Satya Vrata Ghosh

A revolutionary from his early student days and a student of this college Prof. Ghosh was also on the staff here in the years 1951-54. Reminiscences of his student life appear elsewhere in this issue. In the following pages he remembers the period when he was a Professor in the Department of the Political Science. Prof. Ghosh is a prolific writer and has several articles and books to his credit. Two of his books 'Indian Struggle for Freedom' and 'Decades of Daring Deeds' deal with the freedom movement and the role of the revolutionaries in the struggle.

With the admission impediment over, I entered the university in a spirit of almost a triumph. But an unforeseen obstacle came in the way of a life of peaceful existence. I had to get a shelter over my head and bachelors were not given any accommodation. When I was searching desparately for some, an old man, chewing pan in his toothless mouth, accosted me and asked about my problem of house hunting. I told him the story of woo. He offered me a small room in his single man's household. He was a widower. But I told him also about the police constable in plain clothes who would watch my movements day and night. But he was not afraid. Being a retired railway employee who had drawn his provident fund, he had nothing to fear from the government. This was his patriotism. I for ever remember it with reverence and gratitude.

The University opened its door to me in July 1934. I took up Arts course with English, Bengali, Political Science and Economics as my subjects. I also got busy in a wider field with students from all corners of the country assembling there. My potentiality found an all-round expression. I continued with my carrom and tennis and cultivated writng and speaking which sustain me even today at the age of 77 years.

I also became a sort of a student leader, thanks to my political past. What was a liability at Indore became an asset at Banaras, a centre of nationalist activities. Some of my juniors became all India name in politics. Two of them were Raj Narayan Singh and Govind Narayan Singh. Dwarkanath Kachru was not active during my student days but ultimately became the General secretary of All India States People's Conference. Ultimately, he was the secretary for Kashmir affairs to Pandit Nehru. He died a premature death in a plane crash when he was returning from Kashmir with U.N. Obse-rvers.

I came out of the university with flying colours, topping the list at M.A., but could not get a job even of Rs. 30/- a month. It was such an India when I tried to enter the world of practical life. But the Great War brought a boon of a sort to us, the job seekers. I got one with the government of India but soon lost it owing to earlior political activities and the police report that pursued me. I was on the streets of Delhi. It was at this time that some stalwarts among central M.L. As (present day M.Ps) got me a job as a political secretary to Lala Ram Ratan Gupta, a Kanpur industrialist and a member of the Assembly. I had to prepare his speeches and look after his political activities. It was a sort of a liason officer. I liked my work as such.

But I came in close contact with another aspect of our socio-political life which almost made me a cynic. There was an unseen transfer of power into the hands of the rich class made richer due to the war and also the neo-rich class born of war-contracts. Well-known nationalist leaders were mostly behind bars. Those outside like Gandhiji, Bhulabhai Desai and Sarojini Naidu were the important witness to the process which had culminated over years to today's condition when politics has come to be really' the last resort of the scoundrels.'

In disgust I joined my family profession of teaching. Starting with Rohtak Jat College and Meerut College, I could come to Holkar college again now as a professor of political science. My sub-conscious desire was fulfilled. For, I had always a feeling that I was wrongly treated by the police earlier when I did not really take any active part in politics. It was like the 'return of the prodigal'.

I started with a redoubled energy and devotion. The first 'reception' I received was an invitation from the Police Training Institution. Brahma Swrup Bhatnagar, who once saw me out of Indore, called me to his college to address the cadets on the duties of police under 'the new set-up' (independent India). I was simply thrilled. In summary I said; "the police should never bother as to who rules the country. They should only carry out the orders of the government." Administration should not be politicised, a cry often heard today from many quarters.

I joined the college on Ist July 1951. Prof. Padmanabhan who had once taught me physics in early thirties received me with a wide and affectionate smile, adding that my return to Indore from where I was once exiled shows that India had really achieved independence. L.C. Gupta was my host. Coincidentally, he was staying as a tenant in the house of Brahma Swrup Bhatnagar. I was almost in 'lion's own den', with the lion staying at the police training centre where he was the principal. As a Prof. of Political Science I immediately became the incharge of the student's union.

On the college reopening after Diwali holidays I was one day called to the principal's room. An order of the government was shown to me. I was to represent Madhya Bharat at the All India Political Science Conference at Hyderabad during the coming Christmas. I was elated. I had to read an academic paper which I did with proper preparation. Incidentally, I had an oral battle with a lady delegate from the host university. By a queer coincidence she and I both attended the American Seminar at Darjeeling in the summer vacations that followed. For the succeeding two years also I attended the All India Political Science Conference as the government nominee. It was at Muzzaffarpur and Aligarh universities. These were occasions when I made many academic friends. Our mental horizon also widened. Pure academic gain, if any, can hardly be measured.

In summer 1952 I was deputed for a month to attend a U.S. Education Foundation Seminar at Darjeeling. There were 27 Indian professors, men and women, and 8 American professors who spoke on various aspects of American life. Each would speak for 60 minutes and we would ask questions for 120 minutes. Lunch, a sumptuous one, catering to a variety of India tastes, would be served. Thereafter we would be free to loiter about in the town and its neighbourhood. One day I went near the cottage of Ten Zingh Norkay, the first Indian hero to conquer the Everest. Some of us became a little poetic. Some imitated the American professors thereby trying to win their favour for a Full Bright Scholarship. Those days it was offered and not applied for.

On the other hand I always spoke critically about the various aspects of American life, particularly its foreign policy. Much to the surprise of the 'imitating monkeys', I was the only professor from India who was asked to speak on American foreign policy as 'average Indian' viewed it. I accepted the offer with a pun on the word average, adding that I considered myself above the average. It was conceded and I did pour out my mind and heart and was appreciated, the most so by Dr. N.D. Palmer. I was offered the scholarship. Unfortunately I could not avail myself of the opportunity because of some domestic problem. Another friend, the quiet and scholarly Bimla prasad (presently our ambassador in Nepal) went to America and spent his years at the Jawaharlal Nehru University at Delhi on return.

By this time I had become quite active on the students front and organised meetings of well-known guest speakers. There were some interesting experiences also. One day an M.Sc. Chemistry student, Pathak an RSS activist, came almost in a fighting mood. I asked him the cause of his excitement. Dr. Shyama Prasad Mukherji, with his Jana Sangh just established, had come to Indore. RSS boys had approached the principal for arranging a talk but found Prof. Padmanabhan a little hesitant. That was the cause of their ire, more so because a trade union leader, S.S. Mirajkar, and some not much educated congressmen had also come to the college to address the students.

I took up their cause and went to the principal whose affection I enjoyed right from my student days. I explained and emphasized that the college union was an open forum for various points of view. Though convinced of my logic, he was still hesitant, As a compromise, he wanted me to preside over the function. I said that it would not look decent, more so because Dr. Mukherji was a close friend of my elder brother. We could not belittle a great personality who would come to the college as a guest.

At long last he agreed and I suggested a way out, so that Jana Sangh politics would not be the theme of the speech and the principal's position would not be embarrassed. He was to introduce the honoured guest as a great educationist and the son of a greater educationist, Dr. Ashutosh Mukherji. Shyama Prasad Babu, a top lawyer by profession, began thus; "Mr. Principal, I have been introduced as a great educationist which I am not but my father certainly was. But I take the hint all the same. I am expected to speak on education, not politics. I shall certainly do so. But I shall add only a small word before education and make it Indian Education". He began his harangue in an inimitable style with appropriate ups and downs of voice to make it very dramatic. And his

voice, as always, was thunder- like. With the speech over, we met for tea where the Chief Justice of M.B., P.K. Kaul, made a significant remark; "Dr. Mukherji, you come of a family which has produced many legal luminaries. My only request is that you give up politics and enter the world of law. You will be a matchless lawyer. With every word that one could speak on RSS ideology uttered, I, as the Chief Justice, could not object to any one.'

The speech created such a sensation that other students became enthusiastic to invite well known personalities. Su-resh Seth, the celebration secretary for the year, had many ideas. One of them was to install a bust of Gurudev Tagore and invite Dr. Radha Krishnan to un-veil it. Also to invite some well known singers from Bombay to sing Tagore songs on the occasion. Radha Krishnan's response was ready and warm. Overjoyed,I conveyed it to Suresh from Delhi through a telegram, Over-excited the young secretary rushed to the press and got the news published in Indore Samachar.

This led to a very unexpected and unhappy development. Indore of those days had a gentleman who used to run a philosophic-cum-cultural organisation. He claimed to be mo-nopolist of such activities. His ego was hurt when he found that Dr. Radha Krishnan would come to the college which would steal the lime-light. His mind started working in a dubious way. He approached the government and pointed out the impropriety, from the protocol point of view, of the Vice-President of accepting the invitation of a private indivi-dual, may be from a govt. college and for a noble purpose. His negative efforts succeeded. When everything was ready and the Bombay party almost starting, I received a telegram from the philosopher statesman of India that his programme to Indore was cancelled.

Singers, Anil Biswas, Hemant Kumar and others, came and sang Tagore's songs near the bust still not unveiled. The gathering was unprecedented and went wild with joy. The bombay party came, sang and went away like ceasor's Veni, Vido, vici but my heart remained hurt for ever. Even now when I look at the uncared for bust in the garden in front of the Yeshwant Hall, I am reminded of the ugly incident and the intriguing minds behind it. I took a silent but determined decision, to get it unveiled by none close, may be after a lapse of time.

As a professor of politics I knew the rules of diplomacy and the demands of protocol. I extended a fresh invitation to the Vice President of India and routed it through the official channel. The government could not stop it. I sent a copy to Dr. Radha Krishnan, The government could not stop it either. On a visit to Delhi I orally explained to him the whole episode of the sabotage. He was visibly pained and agreed to perform the unveiling during the next visit to Indore. The bust remained 'veiled' till then. Months rolled by. And Finally, Dr. Radha Krishnan did unveil the statue of a man whom he regarded as his Guru. The book entiltled 'Philosophy of Tagore' bears testimony to his profound knowledge of and respects for Rabindranath Tagore.

Leaders are not necessarily a misfortune. But, like misfortu-ne, they come in a battalion. Dr. Mukherji, Dr. Radha Krishnan were follwed by Vijya Laxmi Pandit and Shaikh Abdullah. We almost got Pandit Nehru also but for a little misunderstanding of his time table at Indore which read; '7 to 7.30 p.m. Principal Holkar College.' we thought that the time was at our disposal while he thought that the principal would meet him and he told me so.

Mrs. Pandit and the Sher-e-Kashmir drew a great gathe-ring. The latter went on speaking impulsively, oblivious of the time. Our principal, Harijeeban Ghosh, was presiding. It was getting 7 and I was getting worried about his meeting with the Prime Minister. I asked to lady-in-white who knew her brother's temper well. She said, "meeting or no meeting, he must meet Bhaiya on time." One Ghosh left the chair under cover of darkness and the younger Ghosh, me, took it over. None observed the change. The meeting was over and my principal was on time with Panditji to discuss English literature, particularly Shakespeare. The Prime Minister was quite a match for the professor of English.

Let me turn to a different tópic. I have always felt that our students should be better equipped in current affairs and general knowlede. An idea came to my mind that we should have some regular lectures on them. If made interesting, students will listen and will be benefited. Once a week, on Saturdays, we would assemble in the Yeshwant Hall, and four of us, all professors, would speak on some topics of current interest. It was soon discovered that we fell short of professor-speakers. We borrowed student talents Ram Krishna Iyer (presently a top officer in L.I.C.) and Satish Kansal, (just retired as an IAS officer) were two of them. The programme was known as News and Views. Many told me later that it had helped them immensely at the time of P.S.C. Interviews.

Very soon Prof. Padmanabhat became a member of the M.P. Public Service Commission (the present Chairman, S.L. Sharma, incidentally, was my student at meerut College). I was rewarded for my interest in general knowledge and was asked to set a paper on the subject at the P.S.C. Exam for the State Administrative Service. Some of those who passed through it reached the highest rung of the administrative level, R.C. Sexana (retired as Divl. Commissioner at Bhopal), S.C. Kansal, retired as the head of many all M.P. bodies), and Ranjit Singh Parmar (retired as the D.I.G. of Police, Sagar), R.K. Sharma, shifted to the I.A.S. soon.

I also had other types of activities in Indore. They were Study Circles and Symposia, mostly conducted at the Chri-stian College and Y.M.C.A. I was always among the partici-pants, though it became somewhat hackneyed. Others were

Mrs. Bryce, the then Principal of Christian College, Prof. Emberee and his wife of the same college, Dr. Rangam of Medical college, Rev, Grant of Y.M.C.A., Homi Daji, the comunist leader. At times, G.L Ojha, then an advocate, used to be with us. Recently, (9th March) I met him in the Principal's room of the college. He has just retired as a judge of Supreme Court. Busy days, about three years in all, passed quickly. I can reasonably claim to have created a new spirit which many concede. At least, I think so and feel proud and happy.

At individual level also I had earned a name. When the All India Radio opened its Indore Station, I was consulted every stage. In English talk I was the first person to go on the AIR. I also arranged for many other talkers, including the world famous cricketer. C.K. Naydu.

The principal Medical College did me the unique honour of hoisting the national flag on the Independence Day. So did the principal of Daly college, Mr. Jack, on the Republic Day. The Rotary Club also used to invite me for occasional talks. I was remembered by almost all cultural organisations. I thought so and felt happy.

But happy days suddenly were cut short in a somewhat unhappy manner. It was the outcome of an ugly 'interigue'. I heard it from the 'mouth' of the concerned 'horse'. It was early July 1954. I had just returned that day from two months' vacation in Bombay. There was a big list of transfers. Prof. Chitale of Physics met me at the college gate and told me about it. I saw the list and was shocked. It was a bolt from the blue. I met the then Secy. of Education who personally knew me well. He assured that the transfer was purely temporary to accommodate some persons. One of them was his colleague. I could not be consulted because I was in Bombay. I was assured that it was only for 2-3 months. I came back somewhat consoled. 3 months passed almost unnoticed. Three months became a life long exile.

I kept my family at Indore and used to daily commute by bus to Ujjain and back, a distance of 84 miles. Tongues began to wag and I came to know many unpalatable things behind the apparently innocuous routine transfer. There were pe-rsons not happy with me and my activities and the position I had earned in a short span of time. They tried and succeeded in getting me displaced from Indore. But my contact with the city continued. I used to go to Ujjain only for my class lectures. For other activities Indore was still my home. To put it differently though Ujjain was my official home for a few hours on a working day, my mind and heart were still at a place which I wanted to make my late life home. I had built a house with borrowed money. But destiny willed it ctherwise. I am permanently in Bombay. Out of evil came a good. English is still the language of the elitist society there. I am easily accepted every where.

□□

Flight Lieutenant (Later on Squadron Leader) - Parminder Paul Singh, Kwatra, was a student of our college in sixties. During operations against Pakistan in Dec' 1971 he was awarded 'Veer chakra' for displaying gallantry, professional skill and devotion to duty of a high order.

यादें

– मालिनी बिसेन

आज देशभर में आतंक छाया हुआ है धर्म, जाति और कौमी झगड़ों के कारण. दोष, किसके मत्थे मढ़े? प्रशासन, साम्प्रदायिकता या देश की राजनीति के? यह मगर सच है कि इन विकराल, निरंतर बढ़ते हुए झगड़ों से निकलता हुआ धुँआ हमारे जीवन में घुटन, बेबसी और नाकमयाबी बनकर छा रहा है. हम सब अपने-अपने चेहरों पर नीरवता लिये हुए एक अनजान अंधेरे में उजाले की चमक तलाशने का प्रयास कर रहे हैं.

मन की इस मायूसी के बावजूद जब भी दृष्टि भूतकाल की तरफ़ मुड़ जाती है तो कुछ ऐसी घटनाएँ याद आ जाती हैं कि मन आनंद-उल्लास से विभोर हो उठता है.

फर्ग्युसन कॉलेज पूना से इंटर पास किया था मैंने. बाद में कुछ पारिवारिक उलझनों के कारण इन्दौर के होलकर कॉलेज में दाखला लेना पड़ा.

कॉलेज जाने के लिए साइकल तो दादाजी ने खरीद दी थी पर रेनकोट लेना बाकी था. कॉलेज जाने का पहला दिन. बारिश की झड़ी लगी हुई थी. साइकल पर सवार होने ही जा रही थी कि अपना भारी-भरकम गर्म कोट लेकर दादाजी पास आये और बोले, आज इसी कोट से काम चला लो. पहन लो इसे, बारिश से बचा लेगा तुम्हे. हाँ, कॉलेज छूटते ही घर आ जाना. रेनकोट खरीदने चलेंगे. गॉड ब्लेस यू.

श्रीमती मालिनी बिसेन (तब कु. कालेवर) ने इस कॉलेज से एम.ए. अंग्रेजी की परीक्षा उत्तीर्ण की. वे अंग्रेजी, हिन्दी और मराठी की सिद्धहस्त लेखिका हैं. उन्होंने स्टीफेन क्रेन की रचनाओं, चेकोव के नाटकों तथा पी.एल. देशपांडे, मामा वरेरकर, जयवंत दलवी आदि मराठी लेखकों की अनेक नाट्यकृतियों का हिन्दी अनुवाद किया है. पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर उनके लेख छपते रहे हैं. वे दूरदर्शन और रेडियो कार्यक्रमों से भी जुड़ी हुई हैं. अपनी साहित्यिक रुचियों के साथ-साथ, सुस्वादु भोजन पकाने की विधियों में भी उनकी रुचि रही है और पाक कला पर भी उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं.

सवा छः फुट ऊँचे, भरपूर बदनवाले दादाजी के उस कोट को देखकर मन हँसने को कर रहा था पर दादाजी की आँखों में ममता-प्यार के भावों को देखकर पहन ही लिया मैंने उस ढीले-ढाले कोट को. पर उसके वजन के नीचे ऐसी दबी जा रही थी कि साइकल भी चलाना भारी लग रहा था. पेडल मारते हुए पहुँच ही गयी जगदाले साहब के घर पर. फिर उस ऐतिहासिक कोट को वहीं छोड़कर, उनकी लड़की कलावती और मैं कॉलेज के लिए चल दिये. कॉलेज से लौटते समय जगदाले साहब के घर पर ही कोट को थोड़ा भिगो दिया ताकि दादाजी को लगे कि मैंने कोट सचमें पहना था. घर पहुँची तो दादाजी और दादीजी दोनो खड़े थे मेरी राह देखते हुए. मेरे हाथ में से कोट लेकर बोले, "काफी गीला हो गया है यह कोट, इसे सुखाना पड़ेगा." दादीजी की तरफ देखते हुए बोले," देखो पहना न इस कोट को मालिनी ने. तुम तो कह रही थीं इतना वजनदार कोट पहनेगी नहीं. अच्छा चलो, कपड़े बदल लो. बाजार चलेंगे. रेनकोट खरीदना है ना?" जरासा बोला हुआ मेरा झूठ, पर दादाजी को कितना सुख-समाधान दे गया. बड़ी खुश हुई मैं.

फर्ग्युसन कॉलेज के मुक्त-स्वच्छंद वातावरण से आदी हो गयी थी मैं, सो होलकर कॉलेज में भी उसी तरह सबसे मिल-जुलकर, हँसी-मजाक करती रहती. लड़कों से भी मैं वैसे ही बातें करती. मेरे लिए लड़के-लड़कियाँ कुछ खास फर्क नहीं रखती. शायद इसलिए भी कि हमारे घर का वातावरण काफी उन्मुक्त सा था. मेरे टेनिस पार्टनर नली के साथ भी मैं कॉलेज के बाद भी खूब प्रेक्टिस करती रहती क्योंकि हमें इंटर-कॉलेज मैचेस में चैम्पियनशिप जीतना थी. खूब खेलते, हँसते और देवीसिंह के होटल में बैठकर गुलाब जामुन और कचोरियों की प्लेटों पर प्लेटे उड़ाते. आश्चर्य आज होता है कि उस समय हम उतना कैसे खा लेते थे. खा तो लेते

ही थे, हजम भी कर लेते थे. पर मेरे उस बातबर्ताव के तरीकों पर शायद मेरे पीठ पीछे मेरी आलोचना होती रही होगी तभी तो एक दिन प्रोफेसर श्रीवास्तव साहब ने मुझे समझाते हुए कहा - 'मालिनी मैं तुम्हारे पापा का बड़ा आदर करता हूँ और इसीलिए तुम्हें आगाह करना चाहता हूँ कि तुम्हारा इतना सबसे फ्री रहना अच्छा नहीं है. यह पूना नहीं इन्दौर है. लोग तुम्हें बदनाम कर रखेंगे और फिर तुम्हारे पापा के इतने बड़े काम को क्षति पहुँचेगी. तुम तो बड़ी होशियार लड़की हो. खेलो-कूदो, सबसे मिलजुलकर बातें भी करो पर हर चीज की एक सीमा रखो. बर्ताव अपना ऐसा रखो, कि खानदान के नाम पर कोई आँच न आने पाये. समझ गयी न मालिनी?'

और उस दिन के बाद से प्रोफेसर श्रीवास्तव मेरे लिए विष्णुभाई बन गये. कदम कदम पर उन्होंने मार्गदर्शन किया. इतने साल गुजर गये पर आज भी वे मेरे लिए मेरे अपने बड़े भाई हैं. मैं जो कुछ भी अपनी जिंदगी में कर पायी हूँ, मुझे विश्वास है कि उस सबने विष्णुभाई मेरा संबल बनकर अपना आशीर्वाद का हाथ उठाये खड़े हैं. उनकी ममता-प्यार मेरे जीवन की बेशकीमत उपलब्धि है.

होलकर कॉलेज में पढ़ते हुए बड़े मजे किये थे हम लोगों ने. तीलमभाई सेहगल का घर जैसे हमारा अपना था. उनकी पत्नी कुंजबाला, कितनी ममतामयी! बड़ा दिलचस्प व्यक्तित्व है उनका. खाना पकाने में तो इतनी माहिर थीं कि उनके हाथ का खाना बहुत ही लाजवाब बनता था और खिलाने में उन्हें इतनी खुशी होती थी कि पूछिये मत. एक दिन लेक्चर रूम में ही चपरासी ने एक चिट्ठी लाकर हाथ में दी. तीलमभाई ने लिखी थी चिट्ठी. ''मालिनी तुरंत चली आओ. कुंजबाला की हालत बहुत सीरियस है.'' सर से इजाज़त लेकर तेज रफ्तार से साइकल चलाती हुई, हाँफती हुई पहुँची तो देखा कुंजबाला बड़े आराम से खड़ी थी और हँस रही थी. मुझे तो गुस्सा आया. ''यह क्या हरकत है? मुझे लेक्चर छोड़कर आना पड़ा.'' वे पास आकर मेरी पीठ थपथपाते हुए बोलीं, ''गुस्सा थूँक भी दे मेरी जान. आज अपने हाथ से बिरयानी पकायी है. तेरे बिना गले के नीचे बिरयानी उतरती क्या?'' फिर एक दूसरे से छेड़खानी करते हुए, हम सभी ने भरपेट बिरयानी खायी. इस तरह कुछ न कुछ बहाना ढूँढकर कुंजबाला मुझे कॉलेज से बुलवा ही लेती थी. कई बार मैं बहुत बिगड़ जाती थी पर वे थी कि अपनी हरकतों से बाज नहीं आती. तीलमभाई भी शामिल रहते कुंजबाला के कारनामों में. उनसे दूर हूँ आज, तो उनका वह लाड़-दुलार बहुत याद आता है.

एम.ए. के इंग्लिश लिटरेचर के लेक्चर के साथ तो घोष साहब का सौम्य, स्नेहभरा चेहरा आँखों के सामने तैर जाता है. जब वे पोएट्री पढ़ाते तो खुद ही उसमें इतने डूब जाते थे कि अपनी कल्पना की उड़ानों के साथ हमें भी इतने ऊँचे उठा ले जाते थे कि हम अपनी सुध-बुध खोकर उन्हीं की रसवंती वाणी को सुनते रहते घंटों यूँ ही बीत जाते. समय का न उनको ख्याल न हमको पर हाँ, लेक्चर समाप्त होने पर घोष सर हम सबको देवीसिंह के होटल से मँगवाकर भरपेट नाश्ता करवाते और चाय कॉफी पिलवाते. ऐसे थे हमारे प्रोफेसर घोष. सच वे भी क्या दिन थे.....

होलकर कॉलेज का वह हर वर्ष होने वाला गॅदरिंग. एक गाँव की सलोनी गोरी की भूमिका अभिनीत करनी थी मुझे, एक नाटक में और बड़ी तारीफ भी हुई मेरे उस अभिनय की. बड़ा ही दिलचस्प माहौल बन गया था उस दिन. अभिनय तो किया ही, गाने भी गाये, खेले भी, खाया भी और इनाम भी पाये. काश! उस गॅदरिंग का वह एक दिन जीवन में फिर कभी आ जाए.

लॉ के इम्तहान देने थे पर कायदे-कानून की शुष्क पढ़ाई से बड़ी कोफ्त होती थी. तब विष्णुभाई ने अपने मनोरमागंज के घर के बड़े हॉल में, अलग-अलग विषयों में पढ़ने वाले ८-१० लड़के-लड़कियों की पढ़ने की व्यवस्था कर दी. विष्णुभाई पढ़ाई में तो सबकी मदद करते ही थे पर बीच-बीच में हम लोगों में ताज़गी लाने के लिए अपने हाथों से चाय बनाकर पिलाते थे. चाय भी कैसी, पोदिना डाली हुई. चुस्ती फौरन आ जाती थी और फिर हम और अधिक मन लगाकर पढ़ते थे. चाय क्या वह तो जैसे संजीवनी बूटी थी. इस चाय की खुशबू आज भी दिलोदिमाग पर छायी हुई है और उसका वह जायका? बस लगता है अभी पी रही हूँ.

खो गयी थी अतीत की उन मीठी-मीठी यादों में कि नौकरने आकर एक चाय की प्याली सामने रख दी. तब मैं सोचने लगी कि क्या ये स्मृतियाँ ही हमें आज का अपना संघर्षपूर्ण जीवन जीने की शक्ति नहीं देतीं? क्या ये यादें हमारे दिल की धड़कनो को छूकर अमृत की बूँदें बनकर हमारे मन - मस्तिष्क का विषाद नहीं धोतीं? यादें! और भी ढ़ेर सारी यादें! जैसे उनकी एक लम्बी कतार लगी हो. इन यादों के साथ जुड़ी हुई अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है मैंने अपनी चार पंक्तियों में :

''यादों के ये चमकते जुगनू,
रात के सूने आँगन में नाचते हैं।
भूले-बिसरे चेहरे जो आँखों में समाये हैं,
हृदय के दर्पण में अपना प्रतिरूप दिखाते हैं।''

□□

तुम हो विद्यार्थी

(होलकर साइन्स कॉलेज बुलेटिन १९६९ से)

तुम हो विद्यार्थी
तुम प्रगति के पत्थर और सीमेंट
तुम हमारे कल और भविष्य
तुम होनहार के शरीर बन्धक
याद रखो!

तुम हो विद्यार्थी
तुम जो भविष्य का बोझ और आशा उठाये हो
क्या मशाल पकड़ोगे?
जीवन की चट्टान पर क्या निशान छोड़ोगे?

हम हैं विद्यार्थी
हम मिट्टी के पुतलों को तोड़ने वाले।
हम संटाडेर और स्टालिनग्राड की लाशें
हम लखनऊ और उज्जैन में खून के निशान
हम याद रखते हैं।

हम हैं विद्यार्थी
हम हैं बच्चे और बेवकूफ जिनको तुमने
मूढ़ मज़ाक में पैदा किया
हम है वह दाग जिसको तुमने इतिहास पर छोड़ा।

– आर.पी. नन्होना, आई.सी.एस.

श्रीमती मालती जोशी हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका हैं. वे इस कॉलेज की विद्यार्थी रह चुकी हैं. स्मारिका के लिये अपनी एक रचना भेजने के हमारे अनुरोध को आत्मीयता से स्वीकार कर मालती जी ने अपनी एक कहानी - 'ढाई आखर प्रेम का' भेजते हुए लिखा -'' इस कहानी का चुनाव मैंने इसलिये किया है कि इसका कथानक कॉलेज के इर्द-गिर्द घूमता है. विद्यार्थी शायद इसमें अपनी झलक देख पायें.''

टन्न! घंटा बजा और शेफाली की धारा प्रवाह वाणी जहाँ की तहाँ रुक गई. ''अमर अकबर एन्थोनी'' की कहानी अपने क्लाइमेक्स पर पहुँच रही थी और इस मरे घंटे को भी बजना था. कीर्ति को इतना ताव आया कि किताबें समेटती शेफाली का हाथ पकड़कर उसने कहा -''ए, पहले कहानी तो पूरी कर.''

''आगे का हाल परदे पर देखिये.'' शेफाली ने चप्पलों में पाँव देते हुए कहा.

''तू सुनाती है तो परदे पर देखने का ही मजा आ जाता है. सच, ऐसा लग रहा है कि हॉल की बिजली एकाएक गुल हो गई हो. जल्दी से शुरू हो जा नहीं तो मैं सीटी मारना शुरू कर दूँगी.'' कीर्ति ने धमकी दी.

''अरे कुछ याद भी है, आज टीपू सुल्तान का पीरियड है. पहले ही तो यह हमसे खार खाये हुए हैं.'' शेफाली ने कहा, पर कीर्ति नहीं मानी. उसे जबर्दस्ती हाथ पकड़कर बिठा ही लिया. हारकर शेफाली को कहानी पूरी करनी ही पड़ी. पर अब उसमें पहले की-सी रवानगी नहीं थी. ''टीपू सुल्तान'' का चेहरा आँखों के आगे नाच रहा था.

''टीपू सुल्तान'' दरअसल इतिहास की प्राध्यापिका मिस शास्त्री का नाम था. एक बार फर्स्ट इयर की छात्राओं को तंग करने के लिए उन्होंने फाइनल की छात्राओं को करारी डाँट पिलाई थी. बस, तभी से उन्हें यह पदवी दे दी गई थी. लड़कियाँ वाकई नाराज हो गयी थीं. जब ''फर्स्ट इयर'' में थीं, तब उन्हें रेगिंग से बचाने कोई नहीं आया था. अब ये अच्छी मिस शास्त्री आ गई हैं. न्यूकमर्स के सामने उनकी किरकिरी कर दी. उनका सारा रोब चौपट हो गया. इसीलिए उनका नामकरण करके लड़कियों ने अपना गुबार उतारा था.

कीर्ति ने इत्मीनान से उठकर, लॉन की घास-फूस कपड़ों से झाड़ते हुए कहा -''अगर पहले से पता होता कि इस बला से पढ़ना पड़ेगा तो कभी हिस्ट्री नहीं लेती. पर अब तो फँस ही गये हैं.''

शेफाली ने कोई जवाब नहीं दिया. कीर्ति का यूँ मजे-मजे से उठना, होले-होले चलना उसके मन में घबराहट उत्पन्न कर रहा था. पीरियड लगभग आधा हो चला था.

कमरे के बाहर से ही मिस शास्त्री की धारदार आवाज सुनाई दे रही थी -''यह बात नहीं कि हुमायूँ में अच्छे शासक के गुण थे ही नहीं, पर उसका दुर्भाग्य यह था कि यह गलत समय में पैदा हुआ था. हालात उस समय कुछ ऐसे थे कि दिल्ली के तख्त को एक ''आयरन मेन'' की, एक लौहपुरूष की जरूरत थी. अपने खूबसूरत नाम के बावजूद हुमायूँ......

''मे आय कम इन मिस!''
''नो.''

यह ''नो'' इतना दबंग और अनपेक्षित था कि सारी कक्षा सकते में आ गई.

कीर्ति तो पहली कतार तक पहुँच भी चुकी थी, बुत बनी वहीं खड़ी रह गई. ''डिड यू हियर मी.'' मिस शास्त्री की सख्त आवाज दोनो को चौंका गई. कीर्ति ने एक बार आँख उठाकर मिस शास्त्री को देखा, फिर सारी क्लास को, और शेफाली का हाथ पकड़कर धीरे-धीरे क्लास से बाहर चली गई. शर्म और अपमान से दोनों भीतर तक लाल हो गई थीं. पर वे स्कूली लड़कियाँ तो थी नहीं कि इस बात पर रोती रहतीं. यह प्रसंग तो उनके उफनते व्यक्तित्व के लिये एक चुनौती भर था.

''बेवकूफ की तरह दरवाजे से ही क्यों चिपकी रह गई.'' कीर्ति ने अपना गुस्सा उतारते हुए कहा -''तुम्हारी वजह से रुक गई, नहीं तो मैं सीधे सीट पर ही जाकर दम लेती. फिर देखती वे कैसे उठातीं.''

शेफाली कुछ नही बोली. उससे कीर्ति की तरह बोल्ड नहीं हुआ जाता था.

दोनों फिर लॉन में आकर बैठ गईं और कीर्ति ने ''रजनी गंधा'' का गीत छेड़ दिया. आगे वाला घंटा भी गीत-संगीत में ही डूब गया.

इकॉनॉमिक्स के पीरियड में सब लोग इकट्ठी हुईं तो मिस शास्त्री की ज्यादती की ही चर्चा चल रही थी. लड़कियाँ उन्हें कोस रही थीं. सिर्फ सुरक्षा ने उनका पक्ष लिया. वह बोली कि कीर्ति और शेफाली अक्सर लॉन में या कैंटीन में बैठी रहती हैं. किसी भी पीरियड में समय से नहीं पहुँचती. आखिर टीचर्स कहाँ तक सब्र करे! वह बेचारी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि ''शेम-शेम'' के नारों ने उसे चुप कर दिया.

मिसेज वर्मा अपनी बिनाका छाप मुस्कराहट बिखेरती कक्षा में न आती तो पता नहीं यह हंगामा और कितनी देर चलता. नई मैडम के साथ नया विषय, नई बातें चल पड़ीं. उनकी नीबू रंग की अमेरिकन जार्जेट कईयों को लुभा गई. कुछ लड़कियाँ उनके जूड़े की वेणियों में उलझ गई, कुछ

हेयर पिंस की जोड बाकी मे डूब गई. पिछली बाते किसी को याद न रही -सिवाय कीर्ति और शेफाली के.

गनीमत थी कि मिस शास्त्री का पीरियड हफ्ते मे सिर्फ दो या तीन बार पड़ता था. उसे एकदम गोल कर देने से भी उपस्थिति मे कोई फर्क नही पड़ता. कीर्ति की यही सलाह थी. पर उसकी तुलना मे शेफाली कुछ दब्बू स्वभाव की थी. फिर प्रिंस्पल मैडम का उसकी बुआ के यहाँ आना-जाना था. उसे अक्सर डर लगा रहता था कि शरारतो की भनक घर तक न पहुँच जाये. परिणाम यह हुआ कि अगली बार जब मिस शास्त्री की क्लास पडी तो दोनों समय से ही कक्षा मे पहुँच गई थी.

रोलकॉल लेने के बाद मिस शास्त्री कुर्सी से उठ आई. टेबल से पीठ लगाकर खडे होते हुये उन्होंने अपने सहज और सधे हुये स्वर मे कहना प्रारंभ किया ''शेरशाह सूरी के संबध मे लिखते हुए सभी इतिहासकार इस बात पर एकमत हैं कि वह एक वीर, प्रतिभा सम्पन्न और राजनीति कुशल शासक था. बाद मे अकबर ने भी उसकी कई नीतियों को ज्यों का त्यों ग्रहण किया. इससे उसकी योग्यता का अंदाजा लगाया जा सकता है. यहं उसका दुर्भाग्य था कि मृत्यु ने इतनी जल्दी उसका वरण कर लिया.

''मे आय कम इन मिस!''

शेरशाह सूरी के शासन काल मे कक्षा एकदम बीसवीं सदी मे लौट आई थी. दरवाजे पर सुरक्षा खडी थी - हाफ्ती हुई, साडी के पल्लू से पसीना पोंछती हुई.

यस, कम इन.'' मीठे स्वर मे उत्तर मिला. पुस्तकें संभालती हुई सुरक्षा अपने स्थान पर आ बैठी. इस अन्याय को देखक शेफाली के मन मे कसमसाहट सी हुई, पर वह जब्त करके रह गई. लेक्चर आगे चल पड़ा था. ''हाँ तो हम देख रहे थे कि''

''मिस!'' कीर्ति एकदम तनकर खडी हो गई - ''दिस इज शीयर पार्शलिटी'' (यह तो सरासर अन्याय है).

''पार्डन!''

''ऑल लेट कमर्स शुड बी ट्रीटेड अलाइक.'' कीर्ति ने रोब से उफनते हुए कहा. मिस शास्त्री कुछ क्षण घूरती रहीं फिर बोली, ''प्लीज, सिट डाउन'' अब शेफाली को जोश आ रहा था.

''एक्स्प्लेन करने के लिए मै बाध्य नही हूँ. बैठ जाओ.'' मिस शास्त्री ने दबंग स्वर में कहा. कीर्ति का मन हुआ, वॉक आउट कर जाये, पर शेफाली का भरोसा नही था, इसलिए चुपचाप बैठ गई.

कक्षा मे बडी देर तक खुसर-फुसर होती रही. जब शोर कुछ थमा तो मिस शास्त्री ने कहा -''सुनो, क्या तुम लोगों मे से कभी कोई लेट नहीं आया? क्या मैं सबको क्लास में अलाऊ नहीं करती? इतना समझने की अक्ल तो मुझमें है कि कौन किस कारण से देर में आता है. यह लड़की है सुरक्षा - इसके घर में माँ बीमार है. चार छोटे-छोटे भाई बहन हैं. घर का सारा काम-काज निपटाकर, सबको खिला-पिला कर तीन मील दूर से साइकिल पर आती है. धौंकनी की तरह चलती हुई उसकी साँस देखो. तुम लोग खुद अन्दाज लगा सकती हो कि समय से पहुँचने के लिए उसने कितना प्रयास किया है. खैर - लेट अस कंटिन्यू.''

उनकी वाणी में फिर धार आई और एक बार फिर शेरशाह सूरी का साम्राज्य कक्षा में छा गया. मिस शास्त्री की आवाज के अतिरिक्त केवल पेन और पेंसिल की सरसराहट ही सुनाई दे रही थी. बाकी सब कुछ शांत था.

कीर्ति और शेफाली के पेन भी चल रहे थे, पर उनके नोट्स में शेरशाह का नाम कहीं भी नहीं था. वे पास-पास बैठी दोनों लिखित वार्तालाप कर रहीं थीं, जिसका रूप कुछ इस प्रकार का था.

''कीर्ति! तुमने सफेद कौआ देखा है?''
''रोज देखती हूँ.''
''काले कौए के मुकाबले में उसकी आवाज कैसी लगती है?''
काला कौआ तो फिर भी सुर में कॉव-कॉव करता है.''
दफ्तर की घड़ी को क्या हो गया! कहीं हार्टफेल तो नहीं हो गया उसका?''

''नहीं, वह टीपू सुल्तान की मय्यत में गई है.''

अपनी धुन में इतनी मगन थी दोनों कि पता ही नहीं चला कब लेक्चर समाप्त हुआ. कब लड़कियों ने अपनी कॉपिया बंद कर दीं. उन दोनों के पेन सर्राटे से चल रहे थे. बड़ी देर बाद उन्हें होश आया. देखा, सारी कक्षा की आँखे उन्हीं पर केंद्रित हैं. हड़-बड़ाहट के साथ उन्होंने अपनी कापियाँ बंद की और आँख उठाकर देखा, सामने अपनी कुर्सी पर बैठी मिस शास्त्री मुस्करा रही थीं.

''सुनो भाई, मैं जरा देखना चाहती हूँ, तुम लोग नोट्स कैसे लेती हो? आज कापियाँ ले जाऊँगी. कल लेती आऊँगी. कल तो पीरियड है ही. वंदना, जरा इकट्ठा करना भाई.'' और वे उसी तरह मुसकराते हुए कक्षा से बाहर निकल गई. घंटे की प्रतीक्षा नहीं की.

दूसरे दिन इतिहास के पीरियड में दोनों बहुत शान से दाखिल हुई. मिस शास्त्री को उन्होंने खूब छकाया था. शेफाली ने कापी में से कागज फाड लिये और कीर्ति ने तो कापी दी ही नहीं थी. अपनी शरारत का लिखित प्रमाण देने में तुक ही क्या थी.

मिस शास्त्री ने आते ही सारी कापियाँ वंदना को सम्हलवा दी. रोलकॉल लिया और फिर सहज भाव से पर्स खोलने लगी. बोली ''पता है न भाई, कल शाम कैसी आंधी आई थी. मैं उस समय तुम लोगों की कापियाँ देख रही थी. सारे कमरे में कापियाँ बिखर गई. उन्हें तो किसी तरह समेट लिया, पर ये अल्लम-गल्लम सामान जो निकला, उनके मालिकों को पहचानना मुश्किल हो गया. यह रहा ए एक स्वेटर का नमूना. जिस किसी का भी हो, मैं इसे उतारकर ही लौटाऊँगी. ये लांड्री की रसीद-विमला शुक्ला की है. ये पोस्टकार्ड-सुरक्षा, तुम्हारा है? याद से पोस्ट कर देना. यह एक गाना लिखा हुआ है -''माई री मैं कासे कहूँ पीर अपने जिया की''.''

रीता सक्सेना ने उठकर हाथ बढ़ा दिया. गाने का कागज उसे थमाते हुए वह बोली -''बहुत प्यारा गीत है. ठीक से याद करके आना तो एक दिन, सुनेंगे. और यह खत किसका है भाई! जन्मदिन की बधाई है शायद.''

एक नीला नोट पेपर उनकी अंगुलियों में झुल रहा ता सारी कक्षा चुप बैठी हुई थी.

''अरे, इसका वारिस कोई नहीं है! देखो इस पर नाम तो नहीं है, पर यह इस तरह शुरू होता है.''

एकाएक शेफाली उठ खड़ी हुई -''मिस, यह मेरी चिट्ठी है.''
''तुम्हारी? किसने लिखी है तुम्हें?''

शेफाली कानों तक लाल हो आई, पर कीर्ति ने उसे उबार लिया. वह हमेशा की तरह तनकर खड़ी हो गई और बोली -''यह खत मैंने लिखा है मिस! कोई एतराज?''

उसका स्वर आक्रामक था, पर मिस शास्त्री उसी स्वाभाविक शांत स्वर में बोलीं, ''अगर तुमने लिखा है, तब तो कोई एतराज नहीं है. मैं तो यही सोचकर परेशान हो रही थी कि यह चवन्नी छाप शायर किसके पल्ले पड गया है. रियली आय वंडर! कीर्ति, ये कोटेशन्स कहाँ से बटोर लाई तुम?''

''मिस, शायद आपको किसी ने अब तक यह नहीं सिखाया कि दूसरो के पत्र पढना असभ्यता है. एटीकेट्स के विरूद्ध है.''कीर्ति की इस स्पष्टोक्ति से सारी क्लास स्तब्ध रह गई. पर मिस शास्त्री जरा भी विचलित नहीं हुई. बोली -''जो कुछ बचपन में नहीं सीख पाई अब तुम लोगों से सीख लूंगी. चिंता मत करो. पर एक बारत याद रखो, तुम लोगों के, अपनी छात्राओं के, पत्र पढने का मुझे पूरा अधिकार है. उतना ही जितना तुम्हारी मम्मी को है. तुम्हारे माता-पिता तुम्हें यहाँ सिर्फ पढ़ने के लिये नहीं भेजते. वह काम तो घर पर भी हो सकता है. वे लोग इतना खर्च उठाकर तुम्हें और भी कुछ सीखने-समझने के लिए, भेजते हैं. तुम्हारी मानसिक गठन के लिये, आचार-व्यवहार के लिए, संस्कारों के लिए हम लोग भी अपने ही उत्तरदायी हैं - इसीलिए औपचारिकताओं के ये नियम हमारे साथ लागू नहीं होते.''

उनके इस स्पष्ट और निर्भीक उत्तर से कक्षा एकदम शांत हो गई थी. कीर्ति भी फूला हुआ मुँह लेकर नीचे बैठ गई थी. मिस शास्त्री ने शांत स्वर में आगे कहा -''देखों कीर्ति, हम जो पढ़ते हैं, जो लिखते हैं, जो बोलते हैं, उसमें हमारे संस्कार परिलक्षित होते हैं. इस बात को कभी मत भूलना.''

घंटे की कर्कश आवाज में उनकी बाकी बात डूब गई. उनके चले जाने के बाद भी उनकी गुरू-गंभीर वाणी छात्राओं के कानों में गूंज रही थी. केवल कीर्ति गुस्से से उफन रही थी. ''चवन्नी छाप'' शायर का खिताब उसे बहुत अपमानित कर गया था. अपने अपमान की आग शांत करने के लिए उसने मेज पर पड़ी चिट्ठी क्लास में उछाल दी -''लो पढ़ों इसे बताओं तो जरा इसमें इतना आब्जक्शनेबल क्या है?''

''टीपू सुलतान को कभी-कभी ताव आ ही जाता है.'' सरिता बोली.

मैं बताऊँ, यह शेरो-शायरी उनके पल्ले नहीं पड़ी होगी. गड़े मुर्दे उखाड़ने का धंधा है बेचारी का.'' बीना ने सहानुभूति प्रकट की.

''अरे, वे तो समझी होंगी, किसी बॉय - फ्रेंड का खत है. बेचारी डाँटने के लिए कुलबुला रही थी. कीर्ति ने सारा मजा किरकिरा कर दिया.'' यह आवाज यास्मीन की थी.

''अच्छा होता जो मैं कह देती कि ब्रदर के दोस्त का पत्र है.'' शेफाली बोली.

''अब आपकी जबान खुली है. उस समय तो ताले पड गये थे. सच कह देती तो बड़ा मजा आता.'' कीर्ति ने हसरत भरे अंदाज में कहा.

''ये लोग जो मिस रह जाती हैं न, प्रेम के नाम से ही चिढ़ने लगती हैं. मेरी एक बुआ हैं, उनका भी यही हाल है.'' विमला ने जानकारी दी.

''इन बेचारी को कोई मिला ही न होगा.'' विद्या को करूणा हो आई.

''अरे मिल भी जाता तो दूसरे ही दिन भागता नजर आता. इस मोर्टार गन के सामने कोई टिक सकता है भला?'' कीर्ति बोली.

''नहीं रे, यह बात नहीं है.'' वंदना के सहानुभूतिपूर्ण स्वर नेसबको चौका दिया, ''पता है, अपने माँ-बाप की अकेली लड़की है. भाई भी नहीं है. पैरेंट्स इतने बूढ़े हैं. पिताजी के तो एक हाथ भी भी नहीं है. इसी से शायद शादी नहीं की है अभी तक.''

तभी तो अपनी परिस्थिति का गुबार हम पर उतारती है.'' शेफाली ने तुनककर कहा.

अगले हफ्ते जब शास्त्री का पीरियड आया, तब लडकियो ने बोर्ड पर यह जुमला देखा :

''हाय कम्बख्त! तूने पी ही नहीं.''
दूसरे दिन:
''पोथी पढ-पढ जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई अक्षर प्रेम का, पढे सो पंडित होय.''
फिर एक दिन:
''काजीजी दुबले क्यों? शहर के अंदेशे से.''
अगली बार:
''इस भरी दुनिया में, कोई भी हमारा न हुआ.''

मतलब यह कि शेफाली हर बार कुछ अच्छा-सा सोचकर आती और कीर्ति अपने खूबसूरत अक्षरों में उसे बोर्ड पर उतार देती. साथ वाली लड़कियों को भी इसमें मजा आने लगा. हर बार उत्सुकता बनी रहती कि इस बार क्या लिखा जायेगा. वे स्वयं भी कोई अच्छा-सा शेर सुझाव के तौर पर ले आती.

किन्तु फिर भी खेल जम नहीं रहा था. जिनके लिए इतनी माथा-पच्ची की जा रही थी, उन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था. वे उसी सहज भाव से कक्षा में आतीं, रोलकॉल लेतीं और लेक्चर शुरू कर देतीं. अगर कोई मानचित्र बाना होता तो डस्टर उठाकर निर्लिप्त भाव से बोर्ड साफ कर देतीं और शुरू हो जाती. उनके चेहरे की रेखाओं में कोई परिवर्तन नहीं आता.

धीरे-धीरे इस शरारती जोडी का जोश ठंडा पड़ चला. एकपक्षीय नोक-झोंक भला कहाँ तक चलती! फिर जैसे-तैसे परीक्षाएँ निकट आतीं जा रहीं थीं, वातावरण अपने-आप गम्भीर हो चला था. पढाई का भूत सबके सिर पर

सवार हो गया था. बेकार की बातों के लिए समय नहीं था.

फिर अचानक एक दिन घोषणा हो गई-फरवरी के प्रथम सप्ताह में वार्षिक स्नेह-सम्मेलन होने जा रहा है.

बस, घोषणा क्या हुई - लड़कियों ने अपनी ओढ़ी हुई गम्भीरता उतार फैंकी और जोर-शोर से उत्सव की तैयारी में जुट गईं. साल भर में यही तो एक अवसर होता है प्रतिभा-प्रदर्शन का, खेल-कूद, वाद-विवाद, निबंध, कविता, गीत, नृत्य, नाटक अपनी-अपनी रुचि के कार्यक्रमों का मंच सबके लिए खुला था. इस बहती गंगा में भी जो सूखी रह जाती थीं, वे दर्शक और श्रोता की भूमिका निभाती थीं.

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी स्नेह-सम्मेलन आनन्द और उल्लास के वातावरण में संपन्न हुआ. अंतिम दिन डिनर का आयोजन हुआ. सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद सबसे ज्यादा आकर्षण इसी का होता था. अध्यापक और छात्राओं के बीच की औपचारिकता की दीवार उस दिन के लिए टूट जाती थी. सब लोग मिलकर गाते थे. दूसरे दिन सब लोगों के नाम पर फरमाइशी रिकॉर्डस् बजते थे. उनसे बहुत मनोरंजन होता था.

इस वर्ष "फरमाइशी प्रोग्राम" का भार कीर्ति और शेफाली ने अपने ऊपर ले लिया था. रिकॉर्डस् का चुनाव शेफाली ने किया था और उन्हें अपने बेलोस अंदाज में प्रस्तुत किया कीर्ति ने. अपनी सूझ-बूझ का परिणाम देखने के लिए शेफाली स्टाप के आस-पास ही मंडरा रही थी.

पहला गीत प्रिंसीपल मैडम के नाम था:
"चल चल चल मेरे साथी, ले चल खटारा खींच के."
गीत के शुरू होते ही हॉल में हँसी का फव्वारा छूट पड़ा.
अपनी दीर्घ काया को हिलाते हुए वे बोली -"तुम लोग कुछ भी कहो, अपनी मॉरिस को मैं छोड़ने वाली नहीं. बेचारी बीस साल से मेरा साथ दे रही है. मेरी ही तरह बूढ़ी और बेडौल है बेचारी."

दूसरा गीत वाइस प्रिंसीपल मिसेज चटर्जी के लिये था:
"यशोमती मैया से बोल नंदलाला
राधा क्यों गोरी, मैं क्यों काला."

मिसेज चटर्जी का एकमात्र पुत्र इसी वर्ष अमेरिका से लौटा था. लौटते हुए एक अमरीकन बहू साथ ले आया था. गीत बजते ही पंडाल तालियों से गूंज उठा. लोगों ने खुलकर दाद दी.

फिर एन.सी.सी. वाली मिस कर्णिक का नंबर था. कैम्प में इस बार कॉलेज का ग्रुप पहले नंबर पर रहा था और मिस कर्णिक ने सबको पिक्चर दिखाने का वादा किया था. उनके लिये गीत बजा :

"जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा."
"याद है, याद है." उन्होंने खड़े होकर सबको आश्वस्त करते हुए कहा.

फिर मिसेज वर्मा की बारी थी:
"पापा को मम्मी से
मम्मी को पापा से प्यार है."

मिसेज वर्मा नई दुल्हन की तरह [illegible] अब भी सुबह-शाम मिस्टर वर्मा स्कूटर लेकर उन्हें लेने और छोड़ने आते रहे हैं. इस फरमाइशी चुटकी का स्टाफ मेंबर्स ने भी लाभ उठाया और मिसेज वर्मा को परेशान कर डाला. बिचारी शालीनता से मुस्कराती रहीं.

एक बार फिर माइक पर कीर्ति की आवाज गूंजी - "और अब देखिये, मिस शास्त्री क्या गा रही हैं - हम सबकी शुभकामनाएँ उनके साथ हैं.

गीत शुरू हुआ:

"आयेगी जरूर चिट्ठी मेरे नाम की तब देखना."
एकदम सन्नाटा-सा खिंच गया. स्टाफ मेंबर्स पसोपेश में पड़ गईं. प्रिंसीपल का चेहरा तमतमा उठा, "यह क्या बदतमीजी है." कहती हुई वे एकदम उठ खड़ी हुईं - पर मिस शास्त्री ने उन्हें हाथ पकड़कर बिठा दिया.

"इट इज ऑलराइट मैडम, लेट देम एनजॉय."
इसके बाद और भी गीत बजे. शेफाली ने बहुत दिमाग खपाकर लिस्ट तैयार की थी. चिड़चिड़े माली बाबा को भी नहीं बख्शा गया था. उनके लिये भी मेरी भैंस को डंडा क्यों मारा गया. पर सर्गों जो एक बार उखड़ा सो उखड़ा ही रहा. सबका मूड उखड़ गया था. एक तिरस्कारभरी उपेक्षा सबके चेहरों पर थी, जिसे शेफाली ने बहुत तीव्रता से अनुभव किया.

और यह तिरस्कार, यह उपेक्षा गेदरिंग के बाद भी उनका पीछा करती रही. कहीं कुछ भूल हो गई थी. उनसे किसी ने प्रत्यक्ष रूप से कुछ कहा तो नहीं, पर वे इसे समझ गई थीं. एक गहरी आत्मग्लानि में दोनों डूब-सी गईं. उनका चहकता व्यक्तित्व कुछ दिनों के लिये एकदम शांत हो गया.

फिर एक दिन नोटिस बोर्ड पर काले चौखाने में यह समाचार पढ़ा गया वी रिग्रेट टू अनाउन्स द सेड डिमाइस ऑफ मिसेज शास्त्री - मदर ऑफ मिस जयंती शास्त्री. इसके साथ ही शोक सभा की सूचना भी थी. और जैसा कि होता है, शोक सभा के बाद कॉलेज की छुट्टी कर दी गई.

कक्षा की सब लड़कियाँ मिलकर मिस शास्त्री के घर जाने की योजना बनाने लगीं. कीर्ति और शेफाली को साथ जाना बड़ा अटपटा लग रहा था पर पीछे छूट जाना और भी बुरा लग रहा था. आखिर उन्होंने सब का साथ देने का ही निर्णय कर लिया.

शाम को सब लोग झुंड बनाकर मिस शास्त्री के घर पहुँच गई. दरवाजे पर ही मिसेज वर्मा दीख गई. उन लोगों को आश्चर्य भी नहीं हुआ. सभी जानती थीं कि मिस शास्त्री और मिसेज वर्मा में गहरी छनती है.

मिसेज वर्मा ने बैठने का संकेत किया तो वे वहीं छोटी-सी दरी पर सिमट कर बैठ गई, ऐसे मौकों पर क्या कहना चाहिए उन्हें कुछ भी पता नहीं था. अपनी सदाबहार मुस्कराहट के अभाव मे मिसेज वर्मा भी बड़ी पराई सी लग रहीं थी. वे भी चुपचाप मोढ़े पर बैठी बुनाई कर रही थीं. थोड़ी देर बाद उन्होंने ही कहा -"जयंती से मिलने आई हो न! पर वह तो बम्बई गई है. दस-बारह दिन बाद लौटेगी."

"बम्बई! इस वक्त!" लड़कियों को आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था.

"उनका सारा परिवार वहीं है. भाई, बहन, पिता - माँ तो और अब नहीं रहीं."

लड़कियाँ असमंजस में पड़ गईं. उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. अभी आते समय फाटक के पास बगीचे में एक बुजुर्ग को देखा था. उनका एक ही हाथ था और वे उसी हाथ से खुरपी चला रहे थे. वंदना ने फुसफुसाकर बताया था -"वे पिताजी हैं."
तभी अंदर से एक बूढ़ी सी काँपती-सी आवाज आई -"कुसुम! कौन आया है?"

मिसेज वर्मा उठकर दरवाजे तक गईं और बोली -"कॉलेज की लड़कियाँ हैं माताजी! जयंती से मिलने आई हैं."

"अच्छा."

उधर तो कौतूहल शांत हो गया, पर लड़कियों के कौतूहल की सीमा नहीं थी. उनकी आँखें बार-बार भीतर के दरवाजे की ओर उठ रही थीं. और आपस में वे लोग खुसर-फुसर कर रही थीं.

आखिर मिसेज वर्मा ने ही उन्हें एक तरह से दफा करते हुए कहा -"अब तुम लोग घर जाओ, अंधेरा हो चला है. मम्मी लोग चिंता करेंगी. कल अपनी क्लास में बातें करेंगे."

आश्चर्य में डूबी हुई सब लोग वहाँ से लौट आईं.

दूसरे दिन मिसेज वर्मा कक्षा में आईं तो सबकी आँखों में झाँकती हुई उत्सुकता को उन्होंने सहज ही पढ़ लिया. मेज पर पेपरवेट गोल-गोल घुमाते हुये वे बड़ी देर तक चुप बैठी रहीं. फिर बोली -"लगता है, आज तुम लोगों की कार्य-प्रणाली के विषय में जानने के मूड में नहीं हो."

"आपने बिलकुल ठीक समझा है मैडम!" सबने एक साथ कहा -"हम आज कुछ और जानने के मूड में हैं."

"मुझे मालूम है, तुम लोग क्या जानना चाहती हो. यह भी मालूम है, तुम लोग मिस शास्त्री के परिवार के विषय में जानना चाहती हो. तो सुनो, उनका पूरा परिवार बम्बई में है. यहाँ जो लोग हैं, वे दलजीत के, जयंती के मंगेतर के माता-पिता हैं."

"जी!"

विस्मय को अगर शब्दों में बाँधा जा सकता है तो वह इस "जी" में साकार हो उठा था.

"मैडम, हमें सारी बात ठीक से समझाइये."

"सारी बात समझाने के लिए मुझे जयंती की पूरी कहानी सुनानी पड़ेगी. और जयंती इसे कभी पसंद नहीं करेगी."

"मैडम, प्ली.....ज!" लड़कियों ने एक स्वर में मनुहार की. उनका अनुरोध टालना मिसेज वर्मा के लिये संभव नहीं हुआ. बहुत धीरे-धीरे उन्होंने कहना शुरू किया. लड़कियाँ एकाग्र होकर सुनने लगीं.

"तुम्हें शायद मालूम न हो, मैं और जयंती हाई स्कूल से साथ-साथ पढ़ते आये हैं. हम लोगों ने साथ ही हाई स्कूल पास किया. साथ ही कॉलेज में दाखिला लिया और एक साथ ही बी.ए. पास किया. एम.ए. में जाकर हमारे विषय बदल गये, पर दोस्ती उसी तरह बरकरार रही. दलजीत भी फर्स्ट इयर से हमारे साथ था, हमारा अच्छा मित्र था. पर जयंती का परिचय मित्रता की सीमा पार कर चुका था. मुझ पर ही सबसे पहले जयंती ने अपना राज खोला था. मैं उन दोनों के बीच की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी उन दिनों.

"विद्यार्थी जीवन में तो इस तरह के प्रेम-संबंधों का अपना मजा होता है, अपना थ्रिल होता है, पर एम.ए. के अंतिम वर्ष में आते-आते दोनों गंभीर हो उठे. इस प्रेम-कहानी का सुखद अंत अर्थात विवाह संभव नहीं हो पा रहा था."

"क्यों मैडम?"

"कारण कोई नया नहीं था, वही कुल-कुलांतर वाला जाति भेद. जयंती का परिवार सम्पन्न नम्बरी ब्राह्मण था तो दलजीत चौहान राजपूत. दोनों पक्ष अपने-अपने कुलशील का हौआ बनाये हुए थे. अपनी जिद से तिलभर भी हटने को तैयार नहीं थे. एम.ए. के बाद और भी दो वर्ष गुरुजनों के स्वीकृति की प्रतीक्षा में बीत गये. तब दलजीत ने कोर्ट मैरिज करने का प्रस्ताव किया, परंतु जयंती ने उसका प्रस्ताव साफ ठुकरा दिया."

"क्यों मैडम?"

"जयंती का कहना था कि लड़की को तो माँ-बाप का घर छोड़ना ही होता है, विवाह चाहे उनकी सम्मति से हो या न हो. पर इस विवाह से दलजीत का घर छूट जाये, यह उसे मंजूर नहीं था. दलजीत माता-पिता की अकेली संतान था. पिता इंडियन आर्मी में सूबेदार थे और एक बाह जर्मनी की भेंट चढ़ा आये थे. एक छोटी-सी पेंशन और दलजीत के अलावा उनके पास कुछ नहीं था. जयंती से विवाह करके दलजीत उन दोनों प्राणियों को असहाय छोड़ दे, यह जयंती को स्वीकार नहीं था.

"इसके बाद कुछ तो निराशा से उबरने के लिये और कुछ अपने राजपूती रक्त के कारण दलजीत सेना में चला गया. जयंती ने भी नौकरी कर ली.

"साल भर बाद पहली छुट्टी में दलजीत घर आया. आते ही उसने अपना प्रस्ताव दोहराया, पर जयंती अपने निश्चय पर अडिग थी. वह उल्टे उससे किसी सजातीय कन्या से विवाह करने का आग्रह करने लगी. उन्हीं दिनों बांग्ला देश का मुक्ति-संग्राम छिड़ गया. छुट्टी के आठ दिन भी नहीं बीते थे और दलजीत को बुलावा आ गया.

"इस बार आलम यह था कि जयंती शादी की जिद पकड़े थी और दलजीत मना कर रहा था. वह जयंती को किसी प्रकार के बंधन में डालना नहीं चाहता था. 'जंग से लौटकर सोचेंगे.'" हर बात के लिये उसका यही उत्तर था.

''लेकिन जंग से दलजीत नहीं लौट सका. लौटा उसका सामान और उसके शहीद होने का समाचार. यह समाचार से जयंती के मन पर जो बीती उसे शब्दों में बाँधना कठिन है. हम लोगों को तो यह डर हो गया था कि कहीं वह पागल न हो जाये. महीने-भर में उसकी शक्ल ऐसी हो गई, जैसे बरसों से बीमार हो.

''अपने दुःख का पहला ज्वार उतरते ही उसे उन दो अभागे प्राणियों का ध्यान आया, जो इस संसार में एकदम अकेले असहाय छूट गये थे. उसने अपने आपको दलजीत के घर को ही समर्पित कर दिया. अपने पिता से उसने कहा -''आपके तो और भी बच्चे हैं, पर इन बेचारों को अब देखने वाला कौन है! मुझे बहू के रूप में नहीं स्वीकार कर सके वे, पर बेटी के रूप में तो अपना ही लेंगे, मुझे विश्वास है.''

''तब से उसका यही घर है, यही माता-पिता हैं. विवाह की बात उठती है तो कह देती है, इन दोनों प्राणियों समेत जो मुझे स्वीकार करेगा, मैं उसकी का वरण करूँगी.'' अब ऐसा त्यागी महात्मा इस देश में तो मिलने से रहा.''

मिसेज वर्मा ने अपनी कहानी समाप्त की. कक्षा में एकदम स्तब्धता थी, जैसे कोई उदात्त और दुखांत फिल्म अभी अभी समाप्त हुइ हो.

थोड़ी देर बाद वंदना ने स्तब्धता भंग की -''मैडम, मिस शास्त्री तो अभी दस-बारह दिन बाहर रहेंगी. फिर यहाँ कौन देखेगा?''

''यहाँ का भार मैंने ले लिया है. तभी तो उसका पाँव यहाँ से निकल सका.''

''आपको तो बहुत परेशानी होती होगी फिर.''

''हाँ, थोड़ी-बहुत तो होती है. पर इतना भी न किया तो दोस्ती किस काम की. दरअसल उसने जो त्याग किया है, कर रही है - उसकी तुलना में हमारी परेशानी है ही कितनी. बस, पप्पू के लिए थोड़ी चिंता होगी है. उसे कभी छोड़ा नहीं है न.'' और यह कहते-कहते मिसेज वर्मा का स्वर थोड़ा काँप सा गया.

''मैडम!'' सबने देखा - कीर्ति हमेशा की तरह तनकर खड़ी हो गई है ''मैडम, घर पर तो मेरे दादाजी हैं, उनका सारा काम मैं करती हूँ. बूढ़े लोगों की सेवा टहल का मुझे अच्छा अनुभव है. आप आज्ञा दें तो मैं आपका हाथ बँटाने आ जाया करूँ?''

''तुम!'' विस्मय से मिसेज वर्मा की आँखे फैल गईं.

''क्या हर्ज है मैडम! तब आप पप्पू को भी साथ रख सकेंगी और काम भी आसानी से होता रहेगा. प्लीज मैडम-लेट मी डू दिस मच.'' उसके स्वर की आर्द्रता से सब चकित थे.

और शेफाली अपने-आप पर भुनभुना रही थी कि ऐन वक्त पर उसे साँप क्यों सूँघ जाता है. जब भी कोई कहने लायक बात होती है, कीर्ति बाजी मार ले जाती है

□□

[शताब्दी - स्मारिका के लिये हमारे अनुरोध को स्वीकार करते हुए श्रीमती मालती जोशी ने अपना वो **गीत** हमें भेजा जिसे उन्होंने **१९५४-५५ में कॉलेज के कवि सम्मेलन में सुनाया था.** तब डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने उन्हें '**मालवा की मीरा**' कहा था. लगभग ३७ वर्ष पुरानी यादों को, सपनों को सहलाते हुए मालती जी ने लिखा -''**वह मीरा तो इतिहास की चीज बन गयी पर गीत हाजिर है.** मैंने जानबूझ कर इसे अपने पूर्व - नाम के साथ उद्धृत किया है, क्योंकि मेरी गीत - सम्पदा पर तो मालती दिघे का ही हक है. मालती जोशी सिर्फ गद्यकार है.'']

गीत

- मालती दिघे

मैं मीरा मतवाली सी हूँ,
तुम मेरे मनमोहन, प्रियतम

कितने ही सुख-प्रासादों ने
मेरे पास बुलावे भेजे
मैं अपना ही पथ चलती हूँ
मन में भोली प्रीत सहेजे

इस अवहेला से सब रूठे
साथी और सनेही छूटे

पर मैं आकर द्वार तुम्हारे
लूँ अब कौन, निमंत्रण प्रियतम।

मेरे हित इस निर्मम जग ने
नित शूलों की सेज बिछाई
शत-शत घावों में छलकी हूँ
मेरे भावों की अरुणाई

पीर लिये भी हँसती हूँ मैं
अलबेली इक मस्ती हूँ मैं

मैं गीतों की रानी, मुझपर
कैसा नीति नियंत्रण प्रियतम।

बाँध-स्वप्न के नूपुर रुनझुन
नाच रही मन के मंदिर में
उपहारों का गरल घोलकर
दिया जगत में मेरे कर में

मैंने यह विषपान किया है
फिर भी अमृत गान किया है।

छोड़ जगत की लाज बनी मैं
अपने पी की जोगन, प्रियतम
तुम मेरे मनमोहन.

SOME REMEMBRANCES

ARUN DATE

I think my great grandfather who went to Indore from Konkan while he was 7 to 8 years' old because of extreme poverty in Konkan and after he had heard about the then Indore Maharaja's goodness in sheltering young boys, looking after them and providing for their education, this period should be somewhere near 1875. My great grandfather after educating himself and entering the legal department of the Holkar State, finally became the High Court Judge. I am sure he must have completed the final years of his education in the recently started Holkar College at that time. After that, my grandfather and father were educated in the same Holkar College and then it was me in the year 1952. So, four generations of my family have spent their youth at this beautiful and wonderful college. I, therefore, do not have only my single attachment to this college but in my case, an ancestral attachment.

I remember the day I entered the college for the first time, a little nervous and expecting some regging from the older students but actually nothing happened. The college was quite modern as compared to today's standard. It had a tennis court, badminton hall, cricket, football and hockey grounds, gymnasium and also a swimming pool, apart from different buildings for the Science, Arts and Commerce students in the same compound. There was also a good canteen giving excellent mava-batti and samosas. Even the Sindhi owner of the canteen had almost become a collegian and a friend to everybody and allowed to take things on credit to most of us.

ofcourse, the atmosphere in the college was very much disciplined and we all had respect and regard for our teachers, who were also very worthy of the same. Principal Padmanaban, Principal Ghosh and Principal Bhagwat were the three principals who changed hands at that time.

Apart from being the Badminton Captain of the College, I was included in the Cricket and Table Tennis teams. We had to cycle down to the College from our respective homes which were about 8 to 10 kms away. during the days of exams, sports or annual functions, we had to make two trips to the college but these were extremely enjoyable as a lot of friends used to pedal down together and the roads were open and free of traffic jams, etc. There was almost no possibility of coming or going back with the girls as the stern, watchful eyes of the principal and professors were on the move all the time. Looking to today's college days, I feel I should have been born 25 to 30 years later, to enjoy this freedom.

Arun Date is the most popular Marathi light music singer of our time. He sings Hindi geets and Urdu gazalas with equal ease. He has several musical cassettes to his credit. A textile technocrate turned into singer, Arun Date Vividly recalls his student days at Holkar College where he represented the fourth generation of his family.

My educational and musical foundations were built at this College. I used to sing at some of the college functions and my music practises started in one of the small tutorial classes where my friends used to encoura- ge me and also used the benches as drums to give me support. I cannot forget how big a role this college had played for my future and I will always be indebted to the time, spirit and togetherness of all, for what I am today. Though after having gone for further educa- tion and furthering my music career to Bombay, the memories of Indore and Holkar College are all the time there and therefore, unless I visit Indore twice a year atleast, I feel completely lost. Even after so many years when I have spent much more time in Bombay than Indore, coming to Indore and Holkar College, is like coming back home.

□□

नदी के तीन टुकड़े

– शरद्चन्द्र जोशी (द्वितीय वर्ष कला)

गहरा नीला आसमान और पेरेशूट से बद्दल!

अभी हाल के ताजे फूटे सूरज की नरम-नरम किरणें मेरे पैर को छूने लगीं. लहरें अपने निश्चित ताल के साथ हिल रहीं थी और नदी बाकायदा धीमी चाल से चली जा रही थी. उस पार के खेतों में गेहूँ के पौधे सिर पर ताज रखे हवा के इशारों पर ठुमक रहे थे मानों आज उनके जीवन का कोई प्यारा त्यौहार हो. मैं इस किनारे खड़ा टुकुर-टुकुर उनकी मस्ती पर नजर लगा रहा था अभी थोड़ी देर पहले कोहरा बरबाद हो चुका था और पहाड़ियाँ ओस की बूँदों में नहाकर सूरज के सामने ठिठुरती हुई खडी थीं. मेरे सेन्डिलों को हरी घास घेरे थी. बायें हाथ स्मशान था. हवा के झोंकों में अधबुझी चिता की राख उड कर करीब के पौंधों और नदी की सतह पर बिछ जाती थी. उसके पास ही दूसरी चिता भमक रही थी. ज्वालाओं का रूख धीमी चाल से बहने वाली नदी की ओर था. पीछे कुछ दूर एक भैरों का मंदिर था और उसके कलश के पास लगी ध्वजा उदास मुँह लटकाये खडी थी. मंदिर के बाहर दो कुत्ते उछल-कूद रहे थे और ऊपर टीले पर एक काले कपडे वाला साधू नई बन रही चिता की ओर एकटक देख रहा था. भमक कर जलने वाली चिता के पास ही करीब पंदरह बीस कदम पर जहाँ कि आग की गरमी मनुष्य की कोमल चमड़ी को नुकसान न पहुँचा सके कुछ लोग एक नई चिता बनाने में जुटे थे. पास ही हरी गीली घाँस पर एक तरकटी पड़ी थी व कफन ओढ़े एक शरीर अपना चेहरा खोले मौन सोया हुआ था. मलमल का कुरता पहने. बदन पर लाल अँगोछा डाले दो व्यक्ति बात कर रहे थे. दोनों की खुसपुसाहट हल्की भर्राई आवाज में हो रही थी.

एक व्यक्ति जिसकी मूँछे नीचे झुकी हुई थीं बोला 'हमने तो शादी तय होते वक्त ही कहा था कि लड़के या लड़की किसी को घात है. ग्रह नहीं मिलते दोनों के. मगर माने नहीं शादी कर ली. यह तो कुछ भाग समझो कि इतने दिन भी जी गई और एक लड़की को जनम दे दिया नहीं तो मुझे गये अषाढ़ ही शक था.' वह एक अनुभवी की तरह बोला मानो वह मौत के आने-जाने के बारे में काफी जानता हो.

दूसरे व्यक्ति ने मुँह टेढ़ा कर कहा -अरे! गई तो कोई हरीचंद के भाग तो ले नहीं गई. देखना छह महीने में नई शादी हो जावेगी.

मैंने आश्चर्य से उन्हें देखा. उनके चेहरे से ऐसा लगता था जैसे अभी तक वे सैकड़ों की लाश जला चुके और सैकड़ों के विवाह रचवा चुके हैं. मैं धीरे-धीरे चिता से कुछ दूर हटकर वह जगह पार कर चुका था. लगता था मानों ये दोनो अभी बैठ कर सूची बनायंगे कि इस समय इनकी जाति में कितनी कुंवारी लड़कियाँ है जो हरीचंद के लिए मिल सकती हैं.

मैं धीरे-धीरे चल रहा था. लोग पास की टाल से लकड़ियाँ ला रहे थे. एक सफेद बालों वाले व्यक्ति ने चिल्ला कर कहा -'बस! काफी है' - और पास खड़े एक लड़के से जो उदास चेहरा लटकाये खड़ा था चुटकी बजा कर कहने लगा-दो मिनट में जल जायगी, दो मिनट में - हवा तेज है, लकड़ियाँ सूखी हैं और मुर्दा कोई भारी नहीं. अभी सब राख हो जायगा.'

फिर उस लड़के की ओर ध्यान से देख कर बोला 'अरे रोता क्या है? ये आना-जाना तो रहता ही है.'

सूरज ऊपर चढ़ रहा था. मेरी सेंडिलों की कीले पैर में चुभ रही थीं. मैंने एक पत्थर उठा लिया और पास की शिला पर ले जाकर कीले ठोंकने लगा. थोड़ी दूर पर तीन आदमी बैठे थे. तीनों के बदन साँवले थे इनमें दो जवान और एक बुड्ढा था.

बुड्ढा कह रहा था - हाथ की चूड़ी, पैर की बिछिया और नाक की नथ ये तो बदन पर ही रहेंगी.'

चेहरा लटकाये जो साँवला जवान खड़ा था, शायद वही मृतक स्त्री का पति था, मुँह उठा कर बोला - पैर की बिछिया तो जाने दो चाँदी की है, मगर नाक की नथ, हाथ की चूड़ी और गले का सूत्र ये सब तो सोने के हैं. यों तो उसका एक दांत भी सोने का है पर छोड़ो - ये जो चीज निकाली जा सकती है, निकाल लो.'

बुड्ढा तुनक गया और बोला - तेरे जी में आवे वही कर - तेरी बहू है. मैंने रीत की बात बता दी कि स्त्री सौभाग्यवती है - पति के जीते मरी है. सुहाग की चीजें उतारी नहीं जातीं. तू जान तेरा काम जाने-चाहे तो उतार ले.' वह चल दिया.

दोनों व्यक्ति चुप हो गये.

मैंने पत्थर फैंक दिया और सेंडिल पहिन ली. चिता बन रही थी. सफेद बाल वाला व्यक्ति कह रहा था. ये मोटा लक्कड़ है - बीच में रखना, बीच में पेट के ऊपर!'

मुर्दा चुपचाप सो रहा था. टाल के पास जाकर मैं खड़ा हो गया. शव जलाने वाले दल का एक आदमी जानकारी दे रहा था. सामने रजिस्टर में खाना पूरी हो रही थी.

'मरने वाले का नाम?'
'सीताबाई'
'उमर?'

'उन्नीस साल.'
'बीमारी थी क्या?'
'हाँ!'
'कौन-सी?'
'सूआ!'

मैं मन में मुस्कुराया - सबसे बड़ी बीमारी (युग की पीस डालने वाली विकृत और वञ्चनापूर्ण व्यवस्था - वही क्यों नहीं लिखवा देते?) टाल पर जिस आदमी की मैं तलाश में था वह मिला नहीं. वापस लौटना पड़ा.

सामने गेहूँ के पौधों का नाचना बंद हो गया. पेरेशूट से बादल उसी तरह चमक रहे थे. अब नदी के पानी से भैंसों का दल उतर कर इस पार से उस पार जा रहा था.

पुलिया के बाद से घाटों का सिल-सिला शुरू हो जाता है. ऊँची-नीची सीढ़ियाँ और कब्रों से कुछ बड़े आकार के चबूतरे कहीं-कहीं लिंगों की छटा नजर आती है. मंदिरों के बाहर 'राम' का नाम लिखा है ताकि बाहर का आदमी आकर पहचान जाय कि वहाँ भगवान रहते हैं छतरियों के नीचे मोटे-मोटे बदन वाले पंडे नजर आ रहे थे. उनके बदन पर इधर-उधर रंग लगा था.

एक पत्थर जिस पर खुदा था कि 'यह घाट सेठ रामजीलाल ने विक्रम के इतने साल में बनवाया था.' मुझे नाम कुछ पहचाना जान पड़ा. एक मिनट बाद खयाल आया कि इन सेठ साहब का नाम अखबार में पढ़ा था कि वे किसी चोर बाजारी के मामले में पकड़े गये थे पर चूंकि वे निर्दोष थे इसलिये पुलिस ने उन्हें छोड़ दिया. मुझे विश्वास है यह सेठ अब इलेक्शन जरूर लड़ेगा क्यों कि अकसर ऐसा होता है कि जो धर्म का नाम करते हैं वे चोर बाजारी की वजह से पकड़ में आ जाते हैं और बाद में निर्दोष साबित होकर अक्सर इलेक्शन लड़ते हैं.

मैं उस धरम के पोस्टर पढ़ने के बाद आगे बढ़ गया मैं गाय-ढोर से दूर बच कर चल रहा था कि कहीं मुझे सींग न मारदे और नदी के पानी में धुले हुए ब्राह्मण और वैष्णव युवतियाँ मुझसे बच कर चल रही थी कि कहीं मैं छू न लूं उन्हें. वैष्णव युवतियाँ हाथ में पानी का लोटा ले तेजी से निकल जाती या छोटी सी धोती पहने पंडों के पास बैठी रहतीं. पंडे बीच-बीच में ईश्वर का नाम लेकर उनसे बाते करते और चंदन लगा देते.

वहीं दूर एक लम्बी पंक्ति भिकारियों की बैठी थी. मैं एक मंदिर के पास पड़ी टूटी मूर्ति को ध्यान से देखने लगा. एक मैले और फटे कपड़े पहिने व्यक्ति ने मेरे पास आकर हाथ फैला दिये. उसका बदन थोड़ा झुका हुआ था.

-'एक पैसा दे दो मालक.' वह गिड़गिड़ाया.

-'नौकरी क्यों नहीं करते?' - मैंने कहा -'हट्टे कट्टे हो, भीख माँगते शरम नहीं आती.'

वह तन कर खड़ा हो गया -'दिलाओ नौकरी. अभी करने को तैयार हूँ. है कहीं जगह?'

मैं चुप खड़ा था, क्या जवाब देता? धीरे से एक आना निकाल कर उसके हाथ पर रख दिया और आगे बढ़ गया. बायें हाथ की ओर नाई बाल मूंड रहे थे.
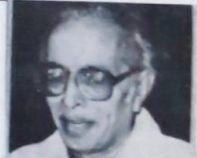
हिन्दी के शीर्षस्थ और लोकप्रिय व्यंग्यकार के रूप में स्व. शरद जोशी का नाम सदा ही आदर के साथ लिया जाता रहेगा. वे होलकर कॉलेज के छात्र थे. निधन के पूर्व अपनी लम्बी और गम्भीर बीमारी के कारण वे अपने संस्मरण हमें नहीं भेज सके. १० जून के कार्यक्रम में शामिल होने का उनका विचार था. उनकी स्मृति में - होलकर कॉलेज की वर्ष १९५१-५२ की पत्रिका में प्रकाशित उनकी एक प्रारंभिक रचना यहाँ दी जा रही है.

अब मुख्य घाट आ गया था.

यहाँ कई धोतियाँ सूख रही थीं. लोग आते जा रहे थे और पानी में डुबकी लगाते जा रहे थे. घाट का पंडा एक पैसे, दो पैसे से लेकर चार आने तक का मंत्र पढ़ता था, जूतों की भी रखवाली करता था और चंदन भी लगाता था. पास के एक लम्बे बरामदे से कर्मकाण्डी ब्राह्मणों की आवाजें आ रही थीं. चाँवल के पिण्ड और नारियल आदि न जाने क्या-क्या सामने रखे थे.

एक सिर घुटा हुआ छोटा-सा लड़का एक मोटे से ब्राह्मण के पास बैठा है. उसका बदन ठंड से ठिठुर रहा है और वह कातर दृष्टि से मंत्र बोल रहे पंडे की ओर देख सब काम निपटा रहा है. वह बारी-बारी से चाँवल के बने पिण्डों की पूजा कर रहा है और पंडा पास खड़े भिखारियों को भगा रहा है. 'जाओ-जाओ यहाँ कर्म-काण्ड की जगह है. अभी काम चल रहा है' कुछ नहीं मिलेगा.

जिन लोगों का कर्म हो जाता वे एक थाली में चाँवल के पिण्ड लेकर नदी में छोड़ आते और बदतमीज भिखारी वहीं खड़े गिड़-गिड़ाया करते.

पंडो के बार-बार घुड़कने से वे लोग हट गये. थोड़ी ही देर बाद एक बुड्ढा-सा भिखारी भागता हुआ आया और ऊपर बरामदे में चढ़ गया. पंडा 'अरे' कह कर जोर से चिल्ला पड़ा पर भिखारी चाँवल के दोनों पिंडों को उठा कर खा गया.

पंडा जोर-जोर से चिल्ला रहा था और आस-पास के घर से बम्मनों के झुण्ड भागते-चिल्लाते चले आ रहे थे.

'क्यों बे, पिण्ड क्यों खा गया.' पंडों ने उसे पकड़ लिया.

'भूख लग रही थी.' वह चिल्लाया.
'तेरे बाप का माल था.'

वह चुप खड़ा था. पंडे उसकी लात-घूँसों से पूजा करने लगे. वह जोर-जोर से चीख रहा था और घुटे सिर का छोटा-सा लड़का आश्चर्य से इस मार-पीट की ओर देख रहा था.

मैं सोचने लगा कि आखिर ये धरम के ठेकेदार, पंडे और पुजारी मनुष्य की भूख से बड़ा नदी के पानी को क्यों समझते हैं? कि वे जहाँ अन्न को बहा सकते हैं. भिखारी चिल्लाते रहें और नदी की राह में दम तोड़ दें और इधर मंत्रों की आवाज निकलती रहे.

मैंने घृणा से मुँह फेर लिया. पथरीले घाटों के रास्ते को मैं पार करने लगा. एक पंडे ने मुझे आवाज देकर कहा -'बाबूजी, स्नान नहीं करोगे?'

'पैसे नहीं हैं.' मैंने पलट कर कहा.
'अरे पैसे की क्या बात है?'

'उसके बिना पुण्य थोड़े ही लगता है.' मैं हंसकर बोला और आगे बढ़ गया.

घाट खत्म हो रहे थे. सूरज काफी ऊपर चढ़ चुका था. उजाले में हर चीज साफ नजर आ रही थी - पानी की काई, घाट के पंडों के घुटे सिर और धरम के पैरों में दबी इंसानियत और पाप का नंगा रूप इसी नदी में नहाता हुआ - इन्हीं लहरों में उछलता हुआ इसी घाट पर चंदन लगाये नजर आ रहा था.

दाहिने हाथ की ओर नदी की लहरें उठ गिर रही थीं. बायें हाथ की धर्मशालाओं का सफेद पीला रंग किसी रोग की तरह भयानक नजर आ रहा था. हवा को चीरता मैं तेजी से चल रहा था धर्म में डूबे घाट पीछे छूट गये थे. अब मादक ठंडा पन और पवित्र मौन सब ओर खिंचा हुआ था. खौंखरे के हरे गोल पत्ते पंखे जैसे हिल रहे थे और घाँस के साथ नन्हें फूल भी झूम रहे थे. सामने फौलाद की तरह काले और गठे हुए बदन के युवक और युवतियों का समूह नजर आ रहा था. जो भी उनकी तीखी-मीठी विचित्र बोली समझ में नहीं आती थी पर बड़ी प्यारी लगती थी. उनके हाथों में और पास धरती पर मछली से भरी टोकरियाँ नजर आ रही थीं. किनारे पर पड़ी मछलियों को छोटे बच्चे उठा कर लाते जा रहे थे और टोकरियों में जमा कर रहे थे. मुझ अजनबी को आते देख वे सब चुप हो गये, 'मछली माँगता बाबूजी.' एक युवती ने पूछा. 'नहीं मछली नहीं माँगता!' मैंने कहा.

मैं चट्टान पर बैठ गया. नाव पर जाल लेकर खड़ा मछुआ सुरीली आवाज में गाये जा रहा था, नदी की लहरे उसके साथ गा रहीं थी और उसकी आवाज पीपल के पत्तों की तालियों में खो जाती थी.

मुझे यह सब बड़ा अच्छा लग रहा था. न यहाँ चिताओं के पास का मौन स्वार्थ था और न घाटों जैसी पण्डों की लूट थी. यहाँ इन खुशनुमा लहरों के पास वाले वातावरण में केवल जिंदगी की मुस्कुराहट और पसीने से सींचे गीत थे. उनके बदन की चमक में मनुष्यता चमकती थी. यह और घाट के पण्डे - मैं सोच रहा था - वे पानी में इंसान के डुबकी मारने पर पैसा कमाते हैं और भगवान का नाम लेते हैं और ये भोजन देते हैं नदियों की लहरों पर मुस्कुराते हुए.

एक साँवला जवान लड़का मेरे पास आया. 'बाबू दो आने लगेंगे, नाव पर सैर करोगे?

'तू चलायगा नाव?' मैंने पूछा 'हाँ'- वह गर्व से बोला.

वह जानता था कि उसके गर्व में इस युग की कमजोर व्यवस्था सिर झुकाये खड़ी थी.

'चल' मैंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया और हम उठती-गिरती लहरों की ओर चल दिये. इकन्नी मेरे बदन को खेने लगी.

पैरेशूट से बद्दल अब सूरज के निकट आ गये थे और आकाश मल्लाहों की नीली वर्दी-सा था. नदी के इस तीसरे टुकड़े की लहरें हमारी नाव के कटती चली जा रही थीं - और कटती चली जा रही थीं.

□□

एक सर्वमंगळ क्षिप्रा

१९२९ साली मी होळकर कॉलेजच्या दुसऱ्या वर्षात प्रवेश केला. या कॉलेजचा सुंदर परिसर, नव्याने येथे जोडलेले मित्र, कॉलेजचे वार्षिक गॅदरिंग व क्रिकेट या साऱ्या गोष्टींमुळे मी कॉलेजमध्ये चांगलाच रमलो.

क्रिकेट हा खेळ मी हायस्कूलमधे असल्यापासून खेळत होतो. या खेळात माझी प्रगती बरी होती. कॉलेजमधे आल्यापासून मी क्रिकेटवर अधिक लक्ष केंद्रित केले व बरीच मेहनत ही केली. माझा खेळ बराच सुधारला. मला कॉलेज टीममधे प्रवेश ही मिळाला. कॉलेजतर्फे मी कांही मॅचेसमधेही खेळलो.

माझ्या खेळात तशी चपळाई नव्हती. माझी जागा विकेटकीपरची व मी ओपनिंग बॅट्समन म्हणून खेळावयास जाई. विकेटसमोर दोन तास खेळूनही माझ्या धावा दहा-पंधरापेक्षा अधिक होत नसत। माझ्या खेळातील ही चिवट वृत्ती प्रेक्षकांना तसेच सहकाऱ्यांना पसंत होती. त्यासंबंधी त्यांची तक्रार नव्हती.

कॉलेजमधील एकूण सारे वातावरण प्रसन्न होते. कॉलेजच्या नवलाईत व तेथील निकोप वातावरणात माझे कॉलेजमधील पहिले वर्ष चांगल्या धामधुमीत निघुन गेले. मी कॉलेजमधील पुढच्या वर्षाकडे हुरूपाने पाहु लागलो.

- हरी विष्णू मोटे

हमारे प्राचार्य

- प्रो. महेश दुबे

डॉ. वासुदेव अनन्त सुखटनकर -'अण्णा'

'अण्णा' सुखटणकर का जन्म १८७३ में कोल्हापुर के एक गाँव में हुआ था. उनकी प्रारंभिक शिक्षा वहीं गाँव के स्कूलों में हुई. उच्च शिक्षा उन्होंने कोल्हापुर और पूना में प्राप्त की. यहीं वे गोपाल कृष्ण गोखले, रानाडे तथा रामकृष्ण भण्डारकर से प्रभावित हुए और लगभग इसी समय वे ब्रह्म समाज के प्रति भी आकर्षित हुए - जिससे वे जीवन भर समर्पित भाव से जुड़े रहे. उन्होंने ऑक्सफोर्ड के मेनचेस्टर कॉलेज में Comparative Religion का उच्च अध्ययन किया और जर्मनी के बोन विश्वविद्यालय से रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत वाद पर लिखे हुए अपने शोध-प्रबंध पर पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की. स्वदेश लौटने पर उन्होंने ब्रह्म-धर्म प्रचारक के रूप में कार्य किया. प्रारंभ से ही वे सामाजिक पुनरुत्थान के कार्यों के प्रति प्रतिबद्ध थे. कुछ समय तक लाहौर के दयालसिंह कॉलेज में अध्यापन कार्य करने के उपरांत वे महाराजा तुकोजीराव के आमंत्रण पर इन्दौर आये. स्त्री-शिक्षा के लिये प्रारंभ हुए चन्द्रावती विद्यालय और अहिल्याश्रम की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने सँभाल ली-

> पण पुढे इंदूर येथे अहल्याश्रमाची स्थापना झाली तेव्हा ते आश्रमाचे प्रमुख म्हणून आले आणि त्यांनी आश्रमला पक्का पाया घालून दिला.
>
> - साठवणी : रा.भि. जोशी

यहीं से वे होलकर कॉलेज में प्राचार्य के रूप में आये. यद्यपि कॉलेज में उन्होंने केवल १६.२.१९२२ से १.१०.१९२४ तक की अवधि में ही कार्य किया परंतु उनकी सात्विक उपस्थिति आज भी इस परिसर को अनुप्रमाणित किये हुए है. अपनी आध्यात्मिक रुचियों, तात्विक ज्ञान एवं सामाजिक उत्थान के लिये अपनी प्रतिबद्धता के कारण वे आज भी हम सबके लिये स्मरणीय हैं, क्यों कि-

> चंदनं टंगर वापि उप्पलं अथ वास्सिकी
> एतेसं गंधजातानं शील गंधो अनुत्तरो
>
> - धम्मपद

अर्थात - चंदन, तगर, उत्पल या वार्षिकी अर्थात् वेला, चमेली सुगंधित हैं, परंतु इनकी गंध से भी बढ़कर अनुत्तर गंध है शील की.

१९२४ में वे Director of Schools नियुक्त किये गये. इस पद पर उन्होंने लगभग ६ वर्षों तक कार्य किया. इस अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों की स्थापना के अपने मुख्य-लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने अथक परिश्रम किया. बैलगाड़ी से यात्रा करते हुए, गाँव के मंदिरों में रात्रि-विश्राम के समय या गाँव-वासियों से अपनी लम्बी वार्त्ताओं के साथ-ग्रामीण परिस्थितियों से उनका परिचय बढ़ता गया. १९३० में सेवा निवृत्ति के बाद वे पाताल पानी स्थित अपने शांति कुंज से गाँव वालों के लिये (विशेषकर भीलों के लिये), ब्रह्म समाज के लिये तथा इन्दौर में सहकारी आंदोलन के लिये कार्य करते रहे.

धर्मानन्द कोशाम्बी से उनकी अंतरंग मित्रता थी और उनके साथ अण्णा ने बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन किया था. १९४१ के लगभग वे इन्दौर

छोड़कर सोलन (हिमाचल प्रदेश) में जा बसे थे. यहीं उन्होंने सिख धर्म का अध्ययन किया था.

अंग्रेजी साहित्य में उनकी विशेष रुचि थी - विशेषकर कविताओं में. धर्मों की तुलनात्मक विवेचना, रामानुज के दर्शन तथा बौद्ध धर्म पर लिखे उनके अनेक सार-गर्भित एवं शोध-परक लेख प्रसिद्ध हुए थे.

श्रीमती सुखटणकर ब्रिटिश-मूल की थीं. स्नेहिल, ममत्वपूर्ण और भारतीय संस्कारों के प्रति आस्थावान श्रीमती सुखटणकर का साहचर्य अण्णा के लिये निश्चित ही प्रेरणास्पद रहा होगा.

३० दिसम्बर १९६० को उनकी मृत्यु हुई. बम्बई में उनकी समाधि पर स्मृति-वाक्य के रूप में तुकाराम की निम्न पंक्तियाँ अंकित हैं जो उनकी बौद्धिक, आध्यात्मिक और कर्म-प्रधान जीवन की सार्थकता को दर्शाती हैं -

जे का रंजले गांजले।
त्यांसि म्हणे जो आपुले।।
तोचि साधु ओळखावा
देव तेथेंचि जाणावा।।

[Know that he who regards as his own, those who are dejected or oppressed, is indeed a saint and it is in him that God has his dwelling place]

कॉलेज में उनके कार्यकाल में तत्कालीन वाइसराय लार्ड रीडिंग ने अपनी इन्दौर यात्रा के समय महाविद्यालय में आकर यहाँ की शैक्षणिक गतिविधियों की जानकारी ली. कॉलेज की कम होती हुई छात्र संख्या के प्रति डॉ. सुखटणकर अत्यंत संवेदनशील थे. उन्होंने इस समस्या पर गम्भीरता से विचार कर - इसके कारणों की विवेचना की. उनके अनुसार -

(१) छात्रावास में सीमित संख्या में स्थान
(२) विज्ञान विषयों में प्रवेश की सीमित संख्या
(३) विज्ञान विषयों में शिक्षण के लिये अधिक विकल्पों का उपलब्ध न होना

इसके कारण थे. उन्होंने सबसे पहले विज्ञान विषयों में उपलब्ध सीमित विकल्पों की ओर ध्यान आकर्षित कर - प्राणिशास्त्र और वनस्पतिशास्त्र विषयों को प्रारंभ करने की अनुशंसा की. उनके अनुसार बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा अपनायी गयी compartment व्यवस्था ने भी अनके छात्रों को आकर्षित किया था. इसके अंतर्गत असफल विद्यार्थी को अगले वर्ष केवल उसी विषय की परीक्षा में सम्मिलित होने की सुविधा थी - जिसमें वह असफल है न कि सभी विषयों में. इससे भी कॉलेज की छात्र-संख्या विपरीत रूप से प्रभावित हुई.

डॉ. सुखटणकर तरूण विद्यार्थियों में समता भाव के अनुशासन के लिये सामूहिक जीवन शैली के प्रबल पक्षधर थे. उनकी मान्यता थी, कि -
'It is the resident students who set in the tune in the various activities of the College and there proportion should be much more that at present. Full advantage of the college library, Reading-Room, gymnasium, games etc can not be taken by students unless they reside in the hostel.'

- College Annual Report - 1923

उनके समय में ही - नीलकंठ पदमनाभन शास्त्री, चार्ल्स डाबसन और शैलेन्द्रनाथ धर जैसे ख्याति प्राप्त विद्वान प्राध्यापक कॉलेज में आये. इन सभी के सरल और सौम्य व्यक्तित्वों ने आने वाले कई वर्षों तक महाविद्यालय को शैक्षणिक गरिमा प्रदान की.

शताब्दी के अवसर पर डॉ. सुखटणकर का स्मरण हम सबके लिये प्रेरणास्पद होगा.

डॉ. वासुदेव अनन्त सुखटणकर का चित्र और विवरण हमें उनकी पुत्री श्रीमती शांता भण्डारकर के सौजन्य से प्राप्त हुआ है.

एफ.जी. पियर्स

एफ.जी. पियर्स (F.G. Pearce) - श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के अनुरोध पर भारत आये थे. वे डाल्टन-पद्धति* के अधिकारी विद्वान थे. यहाँ आने के पूर्व वे सीलोन के जाफना कॉलेज में प्राचार्य थे. होलकर कॉलेज में उन्होंने १९२४ से १९२६ तक कार्य किया. जाफना जाने पे पूर्व वे Madanpalle में एक प्रतिष्ठित स्कूल में भी कार्य कर चुके थे. श्री रामचन्द्र भिकाजी जोशी ने, उनके बारे में लिखा है-

' ते मध्यम वयाचे, उंच, अंगपिंडाने मजबूत, चपळ आणि रुबाबदार होते. पारदर्शक डोळे म्हणजे काय ते त्यांच्या चमकदार निळसर-करड्या डोळ्यांकडे पाहिले म्हणजे कळे. ते थिऑसफिस्ट होते. डॉ. ॲनी बेझंटच्या अंतर्वर्ती मंडळीपैकी होते. आणि होलकर कॉलेजात ते मदनपल्लीच्या ऋषी-व्हॅली स्कूल मधून आले होते. ऋषी व्हॅली स्कूल हे वरच्या थरातल्या थिऑसाफिस्टांचे प्रतिष्ठास्थान असे स्कूल होते. प्रि. पअर्सचा विषय भूगोल होता असे ऐकत होतो, पण ते अम्हांला इंग्लिश शिकवीत. वर्गात बसून शिकवणे त्यांना आवडत नसे. हवा स्वच्छ, प्रसन्न असली तर ते बाहेर बागेतच वर्ग घेत. 'आउट-डोअर्स मॅन' असे त्यांचे वर्णन करता येईल.

प्रि. पिअर्स होळकर संस्थानचे स्काउट-प्रमुखही होते. ते प्रिन्सिपल म्हणून आल्यावर आमच्या कॉलेजातल्या स्काउट-चळवळीत नवीन जोम आला. थंडीच्या दिवसांतसुद्धा साडेपाच वाजता ते ड्रिल घ्यायला यायचे. कॉलेजच्या पोर्चपाशी त्यांची कर्कश शिटी वाजली की दहा मिनिटांच्या आत आम्हांला स्काउटचा पोषाख चढवून रांगेत उभे राहावे लागे. आधी ते थोडेसे झटपट

---

* *डाल्टन पद्धति - बालकों की शिक्षा पर केन्द्रित एक पद्धति. एल्डुअस हक्सले ने अपने निबंध Education - a failure 1927 में इस पद्धति की प्रशंसा की है.*

हालचालीचे व्यायाम करुन घेत आणि मग जवळजवळ मैलभर पळायला लावीत. खोलीतून बाहेर पडताना थंडीने काकडलेले आम्ही परतताना घामाघूम झालेले असू. ते होते तोवर त्यांनी अनेक ठिकाणी आमचे कॅम्प्स घेतले.

प्रि. पिअर्स विद्यार्थ्यांत खूप मिसळत. यूरोपियन पोषाख सहसा करीत नसत. काली अचकन, पांढरी शुभ्र इस्त्री केलेली सुरवार आणि मोतिया किंवा चंदनी रंगाचा साफा असा त्यांचा पोषाख असे. हिंदुस्थान हा त्यांनी आपला देश मानला होता.'

- साठवणी. १९७९

भारत के सामाजिक परिवेश में अपनी गहरी रुचि के कारण विद्यार्थियों से उनके सम्बंध अनौपचारिक और आत्मीय थे. कॉलेज की सभी गतिविधियों से उन्होंने - अपने आपको जोड़ लिया था. उन्होंने कॉलेज के जिमखाना की संचालन पद्धति में मूलभूत परिवर्तन कर उसे पहले से कहीं ज्यादा लोकतंत्रात्मक स्वरूप देने का प्रयास किया.

श्रीमती पियर्स जो (प्रो. ब्रह्मों के द्वारा दी गयी जानकारी के अनुसार एक महाराष्ट्रीयन परिवार से थी - सम्भवतया शादी के पहले वे कुमारी परांजपे थीं) भी कॉलेज की सांस्कृतिक गतिविधियों में रुचि लेती थीं. १९२५ के वार्षिक स्नेह सम्मेलन के अवसर पर टैगोर के नाटक 'Sacrifice' के मंचन में उन्होंने सक्रिय सहयोग दिया था. यह नाटक नंदलालपुरा थियेटर में खेला गया था और इसकी व्यवस्था आदि से जो छात्र सम्बद्ध थे उनमें चतुर्थ वर्ष - कला के डी.एन. हनुमंतराव का नाम प्रमुख है. इसी अवसर पर उनकी प्रेरणा से Holkar College old students Association का संगठन किया गया - जिसमें प्रि. पियर्स के अतिरिक्त न्यायमूर्ति श्री वागले, श्री वाय.जी. आपटे, श्री एस.वी. कानूनगो और डॉ. बसु भी थे.

इन्हीं वर्षों में विश्वविद्यालयों के क्षेत्रों के पुनर्संगठन की योजना के अंतर्गत, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से होलकर कॉलेज की सम्बद्धता समाप्त कर, उसे नये बनने वाले आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया जाना प्रस्तावित किया गया. इन नये परिवर्तनों के अंतर्गत - कलकत्ता, इलाहाबाद और बनारस विश्वविद्यालय के स्वरूप बहुत कुछ स्थानीय और सीमित होने वाले थे. प्रि. पियर्स ने इस नये बदलाव को देखते हुए तथा Asquith commission on the University of London और Sadler commission on the University of Calcutta के प्रतिवेदनों की अनुशंसाओं के आधार पर १९२४ में इन्दौर में आवासी विश्वविद्यालय की स्थापना की योजना प्रस्तुत की. इस विचार को शैक्षणिक परिप्रेक्ष्यों में पहली बार रखने का श्रेय निश्चित ही प्रि. पियर्स को है. उनका यह स्वप्न लगभग ४० वर्षों के बाद साकार हुआ. परंतु इन्दौर में विश्वविद्यालय की स्थापना के समय शायद ही किसी ने उन्हें याद किया हो.

वे होलकर स्टेट के प्रमुख स्काउट कमिश्नर भी थे. उन्होंने स्काउट की गतिविधियों को एक व्यवस्थित रूप दिया. उनके कार्यकाल में ही इन्दौर का एक स्काउट दल, जिसमे कॉलेज के छात्र भी थे, मद्रास में Scout Jamboree में भाग लेने के लिये गया था. दस दिनों के अपने इस प्रवास में दल को देश के विभिन्न भागों से आये हजारों स्काउट छात्रों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ.

शैक्षणिक रुचियों के साथ ही अपने विद्यार्थियों का प्रकृति तथा आसपास के स्थानों से परिचय कराने के उद्देश्य से वे प्रायः कॉलेज के छात्रों के साथ पैदल या साइकलों पर देवास, चोरल, पाताल पानी या निकटस्थ वनों की तरफ निकल पड़ते थे.

वे ऊर्जा से भरे हुए रोमांचक प्रकृति के व्यक्ति थे. भारतीय जीवन मूल्यों में उनकी आस्था ने उनके दृष्टिकोण को नये और व्यापक आयाम दिये थे.
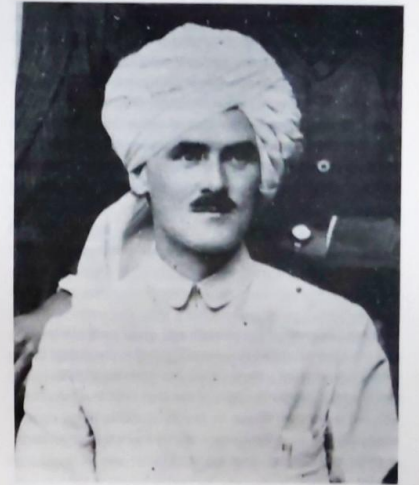
कई अर्थों में वे एक प्रयोगधर्मा प्राचार्य थे. वे एक गहरी शैक्षणिक समझ रखने वाले व्यक्ति थे. उनका मानना था कि मात्र सुविधाएँ ही नहीं, अपितु परिसर और पर्यावरण का आकर्षक होना भी शैक्षिक एकाग्रता के लिये बहुत जरूरी है उन्होंने Reading Room के बारे में विचार करते हुए, लिखा था -
'I am strongly of opinion that there is nothing to equal an attractive reading room, well equipped with constantly renewed periodicals, for arousing initiative and unsuspected talent in students of a literary or scientific turn of mind, and I am anxious to improve the Reading Room, not only by getting a greater variety of periodicals, but also by making the room itself more attractive by providing artistic surroundings, pictures and comfortable reading desks and chairs."

- College Annual Report : 1924

इन शब्दों से उनके सौंदर्य-बोध का भी परिचय मिलता है. वे छात्रों के भीतर की अलौकिक शक्ति, अदम्य उत्साह और अश्रांत परिश्रम के अक्षय

मण्डार से परिचित थे और उसे सुदृढ बनाने की व्यवस्था के लिये प्रतिबद्ध थे. वे भारतीय तपोवन की आध्यात्मिकता और आश्रमों की संस्कार विपुल परम्पराओं से प्रभावित थे जहाँ विद्यार्थी विद्या-अध्ययन करते और ऋषिगण अपने परिवार के साथ जीवन बिताते थे. उनकी मान्यता थी कि हमारे छात्रावास केवल ईंट-पत्थर से बने आवास मात्र होकर न रह जायें अपितु सामूहिक जीवन की वैदिक परम्पराओं को साकार करते हुए विकसित किये जाने चाहिये. अपने विचारों को स्पष्टता देते हुए उन्होंने लिखा था -

'And in my opinion, a sine qua non of improvement in our Hostels is not merely in providing more buildings, but in enabling the students and professors to live together. Only thus can there bemade possible once again the real personal influence of the teacher upon the pupil which was a unique feature of the Indian Universities of olden times. Whatever else may have been lost, this is a feature of the old system which we cannot and must not lose, and if lost, we must restore it in our present system, else it is not worthy the name of education.'

- College Annual Report - 1924

और -

'If we can enalrge the Hostels and more particularly if we can erect the extended Hostels according to the plans I have submitted on what I have called the "ashrama" system, in which one or more members of the staff lives in a bungalow with not more than fifteen or twenty students in his care. I am convinced from experience of this system in other parts of India and Ceylon, that we shall soon see very striking results.'

- College Annual Report - 1925

वे बहुत कम समय के लिये कॉलेज में थे. यदि वे कुछ अधिक वर्षों तक यहाँ रुकते तो निश्चित ही अपने विचारों और योजनाओं को मूर्त कर पाते. परंतु इतने कम समय में भी उन्होंने कॉलेज के विकास की जो सूक्ष्म अंतर्दृष्टि दी - उसने आने वाले कई वर्षों तक - हमारी शैक्षणिक यात्रा को प्रभावित किया.

डॉ. प्रफुल्लचन्द्र बसु

डॉ. प्रफुल्लचन्द्र बसु – का जन्म २१ जून, १८९० को हुआ था. उनके पिता श्री अश्विनी कुमार बसु मल्खानगर (ढाका - बांगला देश) में वकालत करते थे. वे बाद में मुंसिफ बने और १९११ में सेवा निवृत्त हुए. प्रफुल्लचन्द्र ने १९११ में कलकत्ता विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की. कुछ समय तक उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया. १९१५ में उनका विवाह हुआ. १९१६ में उन्होंने इतिहास में एम.ए. किया और विश्वविद्यालय का सर आशुतोष मुखर्जी स्वर्ण पदक प्राप्त किया. इसी वर्ष में लाहौर गये और वहाँ एक वर्ष अध्यापन करने के उपरांत वे १९१७ में इन्दौर होलकर कॉलेज में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए. एल.एल.बी. भी थे. १९२० में उन्होंने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की. होलकर कॉलेज में वे १९२६ से १९४० तक प्राचार्य रहे. सेवा-निवृत्त के बाद वे कलकत्ता चले गये थे. १९४५ से १९४७ तक उन्होंने महाराणा कॉलेज उदयपुर के प्राचार्य के रूप में भी कार्य किया. उसके पश्चात वे मृत्यु पर्यंत कलकत्ता में ही रहे जहाँ ५ अप्रेल १९७५ को उनकी मृत्यु हुई. उनके परिवार में श्रीमती बसु और उनकी पुत्री कल्याणी थी. श्रीमती बसु का निधन २९ जून, १९८१ को हुआ. कु. कल्याणी बसु भी अब इस दुनिया में नहीं हैं. एक दुर्घटना में ७० वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु १९८९ में हुई. कु. कल्याणी ने भी होलकर कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की थी. १९३५ में कु. बसु ने इस संस्था से इण्टर मीडियेट की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी. होलकर कॉलेज के प्राचार्य के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने ९ वर्षों तक आगरा, विश्वविद्यालय के कुलपति के पद को भी सुशोभित किया. वे अजमेर बोर्ड के चेयरमेन भी थे. तत्कालीन होलकर रियासत के प्राइमिनिस्टर श्री बापना के सलाहकार के रूप में उन्होंन १९३५ में जेनेवा में लीग ऑफ नेशन्स की बैठक में भी भाग लिया और यूरोप अफ्रीका तथा एशिया के कई देशों की यात्रा की तथा वहाँ की प्रमुख शिक्षण केन्द्रों को देखा.

वे अत्यंत प्रभावी और प्रखर व्यक्तित्व के धनी थे. व्यवस्था एवं अनुशासन प्रिय डॉ. बसु एक कुशल प्रशासक और संगठक भी थे. कॉलेज के विकास को सुदृढ आधार एवं गति देने का श्रेय डॉ. बसु को है. १४ वर्ष के अपने कार्यकाल में उन्होंने महाविद्यालय के शैक्षणिक आयामों को विस्तार दिया और राष्ट्रीय स्तर पर संस्था को प्रतिष्ठित किया. उनके समय में १९२७ में अंग्रेजी और अर्थशास्त्र में एम.ए. १९२८ में एल.एल.बी., १९३० में रसायन शास्त्र में एम.एस.सी. और १९३७ में इतिहास में स्नातकोत्तर कक्षाएँ प्रारंभ हुई. उनके कार्यकाल में १९३० का वर्ष स्मरणीय रहेगा. इस वर्ष इन्दौर में विज्ञान काँग्रेस का आयोजन हुआ. अखिल भारतीय स्तर के इस आयोजन की सफल व्यवस्था का श्रेय डॉ. बसु और उनके प्राध्यापक सहयोगियों को है. डॉ. बसु स्वागत समिति के अध्यक्ष थे. अपने व्यक्तित्व अभिजात्य जीवन-शैली और प्रभावी सम्पर्कों के कारण महाविद्यालय के छात्रों पर उनका एक प्रकार का आतंक सा था. अपनी योग्यता, संगठन-कुशलता के साथ-साथ अपने इन्हीं प्रभावी सम्पर्कों के कारण ही डॉ. बसु एक लम्बी अवधि तक आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति तथा अजमेरा बोर्ड के चेयरमेन बने रहने में सफल हुए. उनके चारों ओर फैले हुए प्रभा - मंडल को भेद कर उनका सामीप्य सामान्य विद्यार्थियों के लिये सम्भव नहीं था. बहु-संख्यक सामान्य विद्यार्थियों से उनके सम्बंध मात्र औपचारिक भी नहीं थे. इसके विपरीत नगर के कुलीन और श्रेष्ठि वर्ग के छात्रों से उनकी आत्मीय निकटता थी. ये उनकी जीवन - शैली का संस्कार था. होलकर कॉलेज के अपने प्रारंभिक वर्षों में (१९१७ से १९२६) ही उन्होंने एक परिश्रमी और कुशल शिक्षक के रूप में ख्याति अर्जित कर ली थी. बाद के वर्षों में तीन-तीन महत्वपूर्ण दायित्वों के निर्वाह की व्यस्तता के कारण वे अपने शैक्षिक कर्म के प्रति कम समय दे पाते थे. वे अधिकाधिक प्रशासकीय होते चले गये. उनके इस समय के छात्रों को उनका अध्यापन नीरस और यांत्रिक लगा हो तो कोई आश्चर्य नहीं. उनके इन्हीं विशिष्ट गुणों की खट्टी-मीठी यादों के साथ, उनकी चर्चा करते हुए, प्रभाकर ऊर्ध्वरेषे ने लिखा था -

'१९३५ साली मी मॅट्रिक होऊन इंटर सायन्सला प्रवेश घेतला. डॉ बसु हे मुळात अर्थशास्त्राचे प्राध्यापक म्हणून होळकर कॉलेजात आले व त्यांचा साहेबी रुबाब दुष्काळ असला तरी अर्थशास्त्राच्या क्षेत्रात विद्वान किंवा नामवंत वा लोकप्रिय शिक्षक म्हणून त्यांचा लौकिक नव्हता. प्राध्यापक पदावरून प्राचार्य पदावर बढती मिळाल्या-नंतर मात्र त्यांनी होळकर कॉलेजचा व इंदूरचा लौकिक वाढवला व स्वतः ही मोठी अधिकारपदे उपभोगली.

उपभोगली हा शब्द वापरण्याचे एक खास कारण आहे. इंदूर हे आज मध्यप्रदेशातील सर्वात प्रमुख असे औद्योगिक व्यापारी, शैक्षणिक व सांस्कृतिक केन्द्र असले तरी त्याकाळी त्या शहराचे महत्व इतके वाढलेले नव्हते. दळणवळणाचीही साधने फार कमी होती. खांडवा अजमेर या मीटरगेज लाईनच्या दिवसाला एक दोन गाड्या व अगदी मोजक्या गावांना जाणाऱ्या बसेस! मध्य भारत व राजपुताना हा जवळ-जवळ संपूर्ण भाग देशी संस्थानांचा होता व तो ब्रिटिश हिन्दुस्थान पेक्षा ही खूपच मागासलेला होता.

त्यात ग्वाल्हेर, हे सर्वात मोठे व त्याखालोखाल जोधपुर, जयपुर, उदेपुरच्या जोडीचे इंदूरच्या होळकर संस्थानचे स्थान होते. अशा या आडवळणाच्या व ब्रिटिश मुलुखाबाहेरच्या भागास भागात राहून ही डॉ. बसू यांनी त्या काळी अजमेरच्या इंटरमिजिएट बोर्डाचे अध्यक्षपद व आग्रा विद्यापीठाचे कुलगुरूपद अशी दोन्ही पदे सतत नऊ वर्षे स्वतः कडे ठेवली होती, यापैकी अजमेर बोर्डाच्या अध्यक्षपदावरील त्यांची नियुकी ही बहुधा इंग्रज सरकारकडून नेमणुकीच्या पद्धतीने झालेली असावी, परंतु आग्रा विद्यापीठाचे कुलगुरूपद मात्र तिन्ही वेळा निवडणूक लढवूनच त्यांनी जिंकलेले होते व त्याकाळच्या दृष्टीने पाहता उच्च शिक्षणाच्या विश्वातला तो मोठाच पराक्रम होता यात शंका नाही. अशा या मोठ्या विद्यापीठाचे कुलगुरूपद डॉ बसु यांनी मिळवले व तीन वेळा सातत्याने निवडणूक जिंकून नऊ वर्षांपर्यंत इंदुरातल्या दुसऱ्या ठिकाणाहून त्यांनी त्या विद्यापीठावर अधिकार गाजवला. हा अर्थातच त्यांच्या कर्तबगारीचा व संघटनाकौशल्याचा स्पष्ट पुरावा होता, त्यासाठी माणसे जोडणे, गट बनविणे, प्रचारमोहिमा चालविणे, वगैरे आवश्यक असलेल्या गोष्टींचे तंत्र त्यांना उत्तम साधले होते, हे उघड होते.

परंतु अशा प्रकारे डॉ बसु यांचा लौकिक मोठा असला व खुद्द आमच्या कॉलेजात ही त्यांचा दरारा दुष्काळ असला तरी बहुसंख्य विद्यार्थ्यांशी त्यांचे सम्बंध जिव्हाळ्याचे होते असे म्हणता येणार नाही. काही उच्चभ्रू धनिक बाळे आमच्या कॉलेजात होती व त्यांचा एक गट होता. टेनिसक्लब व मोटारीतून भटकणे यात हा गटाचे लोक दंग असत व त्यांचे लाड व कौतुक पुरविणारे काही प्राध्यापकही अर्थातच होते. डॉ. बसु हे याच गटाचे आवडते होते व त्या गटाचे प्राध्यापक व विद्यार्थी यांच्याशी त्यांची जवळीक होती. डॉ. बसु यांचा उत्तम शिक्षक असा ही मोठा लौकिक नव्हता. अजमेर बोर्ड व आग्रा विद्यापीठाच्या अनेक बैठका, समित्या वगैरेंच्या निमित्ताने त्यांचे सतत दौरे सुरु असत त्यामुळे आधी त्यांचे तास फार कमी होत असत. आणि तास होई तेव्हा स्वतःच लिहिलेल्या क्रमिक पुस्तकावरून अत्यंत यांत्रिक व निर्जीव पद्धतीने ते शिकवीत असत. आपण शिकवतो ते विद्यार्थ्यांना समजते आहे कि नाही इकडे त्यांचे लक्ष नसे. आपल्या विषयाची विद्यार्थ्यांना गोडी वाटावी, काही अवांतर वाचन सुचवावे, स्वतंत्र विचारांना चालना द्यावी, असल्या अध्यापनाच्या पद्धती यांच्या गावीही नव्हत्या. किंबहुना विद्यार्थ्यांचे तास घेणे म्हणजे केवळ कर्तव्य पार पाडणे या अगदी रूक्षपणाच्या भूमिकेतून ते वर्गात येत, पाऊण तास बडबड करीत व घंटा झाला की मुलांकडे बघण्याची सुद्धा तसदी न घेता निघून जात. त्यांचा पिंड मुख्यतः महत्वाकांक्षी माणसाचा होता व बोर्ड, विद्यापीठे, सरकारी समित्या, इथे मोठी पद मिळवणे व ती राखण्यासाठी धडपडणे यातच त्यांची बुद्धी, वेळ व शक्ती खर्ची पडत असे.''

– सोबत – दिवाळी अंक, १९८३

इससे यह तो स्पष्ट होता ही है कि डॉ. बसु - एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे. अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये - योग्यता के साथ-साथ आवश्यक साधन जुटा लेने का सामर्थ्य भी उनमें था. और इन्दौर के रियासती वातावरण में भी अपनी शैक्षणिक उपस्थिति के कारण महत्वपूर्ण बने रहने का श्रेय निश्चित ही डॉ. बसु को है. श्री वमले के १२ वर्षों के लम्बे कार्यकाल के बाद डॉ. बसु पहले प्राचार्य थे - जो १४ वर्षों तक सतत इस पद पर रहे. इस लम्बी अवधि में उन्होंने कॉलेज के सर्वांगीण विकास के लिये अथक परिश्रम किया. उनके विद्यार्थी आज भी उन्हें अत्यंत आदर के साथ स्मरण करते हैं और उनकी विशेषताओं की चर्चा करते हुए थकते नहीं. उन्होंने अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी थी. उनकी एक और उल्लेखनीय कृति है - 'The Indo - Aryan Polity.'

सेवा-निवृत्ति के लगभग १७ वर्षों के बाद २५ जनवरी १९५७ को डॉ. बसु होलकर कॉलेज और क्रिश्चियन कॉलेज के संयुक्त दीक्षांत समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. भागवत के अनुरोध पर इन्दौर आये थे. ४-५ दिनों के प्रवास में उन्होंने अपनी पुरानी स्मृतियों को आत्मीय प्रफुल्लता के साथ ताजा किया.

कॉलेज के जीवन पर जितना व्यापक प्रभाव डॉ. बसु के व्यक्तित्व का पड़ा, उतना शायद अन्य किसी का नहीं. यह महाविद्यालय हमेशा ही उन्हें कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करेगा.

प्रो. एच.बी. रिचर्डसन

प्रो. एच.बी. रिचर्डसन – H.B. Richardson. डॉ. बसु के बाद कॉलेज में आये. वे उदार विचारों के ओज तरूण थे. कॉलेज में जब वे आये उस समय २६-२७ वर्ष से अधिक उनकी वय नहीं थी. भारतीय परिस्थितियों से उनका परिचय न तो घनिष्ठ था और न ही उन्हें ज्यादा शैक्षणिक अनुभव था. डॉ. बसु जैसे लोकप्रिय एवं प्रभावी व्यक्तित्व के स्थान पर विषय परिस्थितियों में वे कॉलेज में आये थे. राष्ट्रीय आंदोलन के तीव्र साम्राज्य विरोधी लोक-आक्रोश की पृष्ठभूमि में, ओज होने के कारण भी वे छात्रों के एक वर्ग द्वारा प्रारंभ में स्वीकार नहीं किये गये. यद्यपि, अपने अनौपचारिक और खुले आत्मीय स्वभाव के कारण वे छात्रों के अधिक निकट पहुँचने का प्रयास करते थे. भारतीय सामाजिक वर्जनाओं की परम्परागत बाधाओं का अवरोध उनके स्वतंत्र ब्रिटिश व्यवहार में नहीं था. श्रीमती रिचर्डसन भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय थीं और कॉलेज के जीवन से जुड़ गयी थीं. इसी निकटता के कारण वे - 'हरिभाऊ' रिचर्डसन के नाम से जाने जाते थे.

डॉ. बसु प्रौढ़ वय के भारतीय थे. होलकर कॉलेज के छात्र उन्हें पितृवत आदर से देखते थे. उनके स्थान पर एक तरूण अंग्रेज की नियुक्ति स्वाभाविक रूप से छात्रों द्वारा पसंद नहीं की गयी. इसलिये अपने संक्षिप्त कार्यकाल का प्रारंभिक कुछ भाग श्री रिचर्डसन को अपने आप को स्थापित करने में लगा हो - तो कोई आश्चर्य नहीं. उन्होंने केम्ब्रिज में शिक्षा ग्रहण की थी. इन्दौर आने के पूर्व वे लाहौर तथा देहली के कॉलेजों में पढ़ा चुके थे. अपने सौम्य स्वभाव और उदार लोक-प्रवृत्तियों के कारण वे छात्रों में लोकप्रिय होते गये. उन्होंने छात्र प्रतिनिधि सभा के स्वरूप में परिवर्तन किया और उसमें चुनकर आये हुए छात्रों की संख्या बढ़ाकर, उसे अधिक जन-तांत्रिक बनाया. उन्होंने होलकर कॉलेज टाइम्स नाम से साप्ताहिक-पत्र प्रारंभ किया. इसके प्रकाशन से अंग्रेजी के प्रो. बोरगाँवकर और छात्र प्रतिनिधि प्रभाकर ऊध्वरेषे सम्बद्ध थे. इन्दौर में पत्रकारिता के विकास की दृष्टि से उनका यह प्रयोग ऐतिहासिक कहा जायेगा. इस पत्र के माध्यम से छात्र विभिन्न विषयों पर अपने विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त करते थे. डॉ. भागवत के जेलर के पद पर चयन को लेकर - प्रभाकर ऊध्वरेषे ने 'टीचर्स और नर्सोन्नेटिक' शीर्षक से पत्र लिखा था जो उन दिनों बहुत चर्चित हुआ था और अनेकों प्राध्यापकों ने उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी. वे अंग्रेजी के प्राध्यापक थे. एक शिक्षक के नाते वे विख्यात तो नहीं थे परंतु एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध अध्यापन के लिये वे अवश्य ही याद किये जायेंगे. प्रभाकर ऊध्वरेषे ने उनके बारे में लिखा है -

"मी स्वतःच रिचर्डसन यांच्या 'इंग्लिश लिटरेचर' च्या वर्गाचा विद्यार्थी होतो. एम.ए. च्या दुसऱ्या वर्गात त्यावर्षी तीनच विद्यार्थी होते व रिचर्डसन साहेब त्यांच्या ऑफिसातच आमचे वर्ग घेत. शिक्षक या नात्याने ते फार उत्तम वगैरे नव्हते. पण त्यांच्या शिकवण्यात एक प्रकारचा नेटकेपणा होता. शिवाय वर्गात त्यांनी कधीही चळवळ आंदोलन वगैरे विषय काढले नाहीत. आम्हा थोड्या विद्यार्थ्यांना त्यांनी चहापानासाठी दोन-चार वेळा घरी बोलावून आमचा अधिक परिचय करून घेतला व त्यांच्या पत्नीचीही ओळख करून दिली. पण कधीही शिष्टपणाने व अहंमन्यपणे ते वागले नाहीत. एखाद्या ज्येष्ठ मित्राने बोलावे तसे ते आमच्याशी बोलत. इंग्लंडमधील राजकारण विशेषतः त्यांच्या मजूर पक्षाबद्दल ते सांगत. पण भारताचे स्वातंत्र्य आंदोलन, भारतीय नेते यांच्या विषयी अनादराचे उद्‌गार त्यांनी कधी काढले नाहीत."

- सोबत - दिवाली अंक - १९८३.

वैयक्तिक स्तर पर वैचारिक उदार दृष्टिकोण के साथ ही वे अपने कर्तव्यों के प्रति सतर्क थे. वे जानते थे कि उन्हें क्या करना चाहिये. प्रभाकर ऊध्वरेषे की राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय रुचि के प्रति उनके पिता प्रो. वामनराव ऊध्वरेषे से प्रो. रिचर्डसन ने कहा था:

हे पहा, तुमच्या मुलाविषयी माझी व्यक्तिगत काहीच तक्रार नाही. उलट तो करतोय त्यात कुठेच किंवा अस्वाभाविक काहीच नाही असं मला स्वतःला वाटतं. पण या खुर्चीवर बसल्यामुळे मला नि- ठरलेल्या आदेशा प्रमाणे तुम्हाला इशारा देणं भाग आहे तेवढ्या कर्तव्याचं मी पालन करतोय एवढंच!"

- सोबत - दिवाली अंक - १९८३.

राष्ट्रीय विचारधाराओं से प्रभावित विद्यार्थियों के प्रति उनका दृष्टिकोण प्रतिशोधात्मक कभी नहीं रहा. ऐसे विद्यार्थियों को उन्होंने कॉलेज से कभी निकाला नहीं.

"रिचर्डसन साहेबानी विद्यार्थी पुढाऱ्यांना काढून टाकण्याची धमकी अमलात आणली नाही. त्यांचं आमच्याशी वागणं पूर्वी प्रमाणेच सौजन्याचं व सौम्यपणाचं राहिलं!"

प्रभाकर ऊध्वरेषे - सोबत - १९८३.

इससे उनकी चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं.

श्रीमती रिचर्डसन भी सौम्य और संस्कारशील महिला थीं. कॉलेज के छात्र-छात्राओं में - रेखांकन, चित्रकला और मूर्तिकला के प्रति रुचि विकसित करने के उद्देश्य से और इन विधाओं में उनकी रुचि बढ़ाने के लिये उन्होंने एक Arts club की स्थापना की थी.

श्री रिचर्डसन ने १९४१ में एक मौलिक और अभिनव प्रयोग प्रारंभ किया था. इसके अंतर्गत लगभग ३० बीघा जमीन पर कॉलेज के छात्रों द्वारा कृषि कार्य प्रस्तावित था. उनका विचार था कि इस प्रकार शिक्षित वर्ग में श्रम की महत्ता को प्रतिष्ठित किया जा सकेगा और राष्ट्र की समृद्धि के लिये महत्वपूर्ण कृषि के प्रति स्नातकों की रुचि बनायी रखी जा सकेगी. अभी वे योजना ठीक से प्रारंभ भी नहीं हो पायी थी कि श्री रिचर्डसन रियासत के शिक्षामंत्री के पद पर नियुक्त किये गये और कॉलेज से उनके जाने के बाद किसी ने इस योजना में रुचि नहीं ली.

भारत की आजादी नजदीक ही थी. वे इस कॉलेज के अंतिम 'गोरे' -प्राचार्य थे.

इस समय तक वे विश्वविद्यालय में एक असाधारण छात्र के रूप में पहचाने जाने लगे थे. प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटेन के भाग लेने को न्यायोचित ठहराने सम्बंधी एक वाद विवाद प्रतियोगिता में सुप्रसिद्ध शांतिवादी नेता और विचारक नार्मन ऐन्जल के साथ, भाग लेकर और पुरस्कार प्राप्त कर, उन्होंने पूरे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में सनसनी फैला दी थी.

भारत लौटने पर कुछ समय तक उन्होंने आगरा के सेंट जॉन्स कॉलेज में कार्य किया. यहाँ उन्होंने प्रो. डाबसन और Lionel Curtis (Civitas Dei जैसी महत्वपूर्ण कृति के लेखक) के साथ मिलकर एक Round Table Group की स्थापना की- जो शीघ्र ही सारे देश में भारत की संवैधानिक समस्याओं और अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था सम्बंधी अपने विचारों के कारण जाना जाने लगा था. यह जानना प्रासंगिक होगा कि माँटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों द्वारा लागू द्वि-शासन व्यवस्था की परिकल्पना इसी ग्रुप द्वारा प्रस्तुत की गयी थी. १९३१ में वे राजनीति विज्ञान के उच्च अध्ययन के लिये इंग्लैण्ड गये जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य के संदर्भ में भारतीय राष्ट्र की समस्या पर केन्द्रित उनकी पुस्तक -'The Key to freedom and Security in India' ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने प्रकाशित की. इस पुस्तक में उन्होंने भारत में अल्पसंख्यकों की समस्याओं के निदान तथा ब्रिटिश संघीय संगठन में भारतीय भारत की सम्भावनाओं को विस्तार से प्रस्तुत किया था.

प्रो. जे.बी. राजू

प्रो. जे.बी. राजू – १९४२ से ४४ तक कॉलेज के प्राचार्य थे. वे एक विलक्षण व्यक्ति थे. अपनी शैक्षणिक प्रखरता तथा वाग्मिता के लिये वे सदैव याद किये जायेंगे. उनका कार्यकाल राष्ट्रीय गतिविधियों की सक्रियता से प्रभावित था. ऐसे अस्त-व्यस्त समय में अपने विचित्र व्यवहार एवं निर्णयों के कारण यदि वे विवादास्पद बने हों तो - कोई आश्चर्य नहीं.

उनका सम्बंध श्रीलंका (सीलोन) के राजपरिवार से था और वे केन्डी के अंतिम शासक श्री विक्रमाजीतराजा सिन्हा के वंशज थे. सीलोन में अंग्रेजों के प्रभुत्व के साथ ही उनके पूर्वज आन्ध्र प्रदेश में आकर बस गये थे और इसाई धर्मावलम्बी हो गये थे. उनका जन्म १८८३ में मद्रास में हुआ था. वे मद्रास के पचयप्पा कॉलेज के छात्र थे जहाँ से उन्होंने बी.ए. और एम.ए. (दर्शनशास्त्र) की उपाधि प्राप्त की थी. मद्रास विश्वविद्यालय की किसी भी परीक्षा में वे कभी भी द्वितीय नहीं रहे. कुछ समय तक उन्होंने मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज तथा रावलपिण्डी के गोर्डन कॉलेज में अध्यापन कार्य किया. १९१४ में वे ऑक्सफोर्ड गये जहाँ उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मनोवैज्ञानिक Mc Dougall के साथ प्रायोगिक एवं सामाजिक मनोविज्ञान सम्बंधी अपने असाधारण प्रयोगों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त की. उन्होंने राजनीति विज्ञान एवं तत्वमीमांसा पर भी कार्य किया और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के Litt. Humanioris Great Schools से बी.एससी. की शोध उपाधि अर्जित की.

१९१९ से १९३५ तक वे भारतीय शिक्षा सेवा (आई.इ.एस.) में थे और उन्होंने तत्कालीन सेण्ट्रल प्राविन्स के कई स्थानों पर महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया. अपने कार्यों की सघन व्यस्तता के बावजूद भी वे मौलिक लेखन के लिये समय निकाल लेते थे. उनकी कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम हैं -

* The Ethics of Punishment.
* A Critical Review of the Philosophy of Rabindra Nath Tagore.
* A Critical Study of Non co-operative Movement in India.
* Graded Autonomy for India.

सेवा-निवृत्ति के बाद वे दिल्ली के सेंट स्टीफेंस कॉलेज में दर्शनशास्त्र के विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिये आमंत्रित किये गये. H.B. Richardson उस समय वहीं अंग्रेजी के व्याख्याता के रूप में कार्य कर रहे थे. शीघ्र ही श्री रिचर्डसन-होलकर कॉलेज के प्राचार्य बने और उसके दो वर्ष बाद ही उनके उत्तराधिकारी के रूप में प्रो. राजू इन्दौर आये.

भारत की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, एवं राजनैतिक समस्याओं के प्रति श्री राजू की गहरी रुचि थी. अनेक वैचारिक संगठनों के माध्यम से वे उन्हें उठाया करते थे. श्री रिचर्डसन के साथ मिलकर उन्होंने 'Delhi Adult Education Society' की स्थापना की जो बाद में 'Indian Adult Education Society' के नाम से प्रसिद्ध हुई. प्रो. राजू ने प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया और भारत में प्रौढ़ शिक्षा के आंदोलन का प्रामाणिक इतिहास 'Indian Adult Education Handbook' के माध्यम से उपलब्ध कराया. १९३८ में प्रकाशित इस पुस्तक के सम्पादक रिचर्डसन थे.

१९३९ में उन्हें बम्बई के खालसा कॉलेज को पुनर्व्यवस्थित करने के लिये विशेष रूप से आमंत्रित किया गया. उनके प्रयत्नों से दो ही वर्षों में इस संस्था ने अपने पुराने गौरव को प्राप्त कर लिया. १९४१ में होलकर कॉलेज के जुबली-समारोह में श्री राजू विशेष वक्ता थे. उसके एक वर्ष पश्चात ही वे इस कॉलेज में प्राचार्य के रूप में आये. कॉलेज से अपनी सेवा-निवृत्ति के बाद कुछ समय तक वे इन्दौर में ही रहे. इसके बाद उनके बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी. इन्दौर से जाने के बाद उन्होंने भोपाल के नवाब और फिर हैदराबाद के निजाम के सलाहकार के रूप में भी कार्य किया. वे जब इस कॉलेज में आये उस समय उनकी आयु लगभग ६० वर्ष की थी. जीवन की विसंगतियों एवं पारिवारिक त्रासदियों ने उन्हें शिथिल कर दिया था. उनमें पहले जैसी प्रखरता नहीं थी. अपनी भ्रांत स्मृतियों के अतीत में वे, यहाँ आने के पहले ही कहीं गुम हो चुके थे. कॉलेज में उन दिनों 'वंदेमातरम्' का प्रकरण पूरे जोर पर था. श्री राजू ने उसे और उलझा दिया था. यहाँ तक कि सर तेज बहादुर सप्रू को भी एक कार्यक्रम में बिना बोले जाना पड़ा था. विद्यार्थियों द्वारा कॉलेज भवन पर अनेकों बार तिरंगा फहराये जाने की घटनाएँ हो चुकी थीं. परंतु श्री राजू इन सबसे निर्लिप्त थे. उनकी इसी निर्लिप्तता ने उन्हें अप्रासंगिक और चुटीली वाक्-पटुता ने उन्हें अप्रिय बना दिया था. अधिकांश उन्हें सनकी समझते थे. निर्णय न लेने की अपनी आदत से भी उन्होंने अपने लिये आलोचनाएँ ही अर्जित कीं. यद्यपि वे कभी भी राष्ट्रीय गतिविधियों के पक्षधर नहीं रहे - परंतु फिर भी उन्होंने इससे सक्रिय रूप से जुड़े विद्यार्थियों पर कोई कठोर कार्यवाही कभी भी नहीं की. कई बार तो अपने छात्र-छात्राओं के इस उद्दण्ड आचरण के लिये उन्होंने स्वयं ही प्रशासन से क्षमा माँगली थी. लगता है ऐसे विद्यार्थियों के लिये उनके मन के किसी कोने में अदृश्य मोह अवश्य था और इसी के लिये उनकी प्रशंसा की जाना चाहिये. उनका कार्यकाल किसी विशिष्ट उपलब्धि के लिये स्मरणीय नहीं रहेगा - हाँ, कॉलेज के जीवन के ये दो वर्ष हमेशा उनके नाम के साथ जुड़े रहेंगे और उनकी याद दिलाते रहेंगे. अपनी असफलताओं और तमाम आलोचनाओं के बीच, ऐसा लगता है कि प्रो. राजू धीरे-धीरे जर्मन कवि ग्यूंटर आइष की निम्न पंक्तियों को दुहरा रहे हैं -

व्याकुल मैं सुनता हूँ
संदेश नैराश्य के
संदेश दारिद्र्य के
व संदेश भर्त्सना के
मुझे दुःख है कि इन्हें मेरी ओर भेजा गया है
यद्यपि मैं स्वयं को दोषमुक्त पाता हूँ.
मैं ऊँचे स्वर में कहता हूँ
न वर्षा का भय है, न उसके उपालंभ का
उसका भी नहीं, जो इन्हें मेरे नाम भेजता है
कि, उचित समय पर मैं
बाहर निकल कर उत्तर दूँगा.

- Botschaften des Regens का हिन्दी अनुवाद - 'वर्षा के संदेश' से.

**** प्रो. राजू के बाद क्रमशः प्रो देशपांडे एवं प्रो. पद्मनाभन ने प्राचार्य के पद पर कार्य किया. दोनों के संबंध में स्वतंत्र आलेखों में चर्चा की गयी है.***

***** प्रो. पद्मनाभन के पश्चात प्रो. हरिजीवन घोष कॉलेज के प्राचार्य नियुक्त किये गये. उनके बाद डॉ. भागवत इस पद पर आसीन हुऐ. डॉ. भागवत से संबंधित विस्तृत जानकारी अन्यत्र दी गयी है.***

प्रो. हरिजीवन घोष

हरिजीवन घोष का जन्म १८९९ में बारीसाल (अब बांगला देश में) में हुआ था. वहीं उनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई. उनके पिता श्री भुवनेश्वर घोष अपने समय के प्रख्यात शिक्षक थे. हरिजीवन के कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज से अंग्रेजी में बी.ए. (ऑनर्स) की परीक्षा उत्तीर्ण की और कलकत्ता विश्वविद्यालय से ससम्मान अंग्रेजी-साहित्य में एम.ए. किया. वे अत्यंत मेधावी छात्र थे. प्रारंभ में उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज में अध्यापन कार्य किया. १९२७ में वे होलकर कॉलेज में अंग्रेजी के सहायक प्राध्यापक नियुक्त हुए. लगभग २७-२८ वर्षों तक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य के पदों पर सफलता पूर्वक कार्य करने के उपरांत वे १९५४ में यहीं से सेवा-निवृत्त हुए.

१९५४ के पश्चात उन्होंने कुछ वर्षों तक - शिकोहाबाद और रामकृष्ण मिशन-नरेन्द्रपुर तथा जाधवपुर विश्वविद्यालय में पढ़ाया और फिर स्थायी रूप से कलकत्ता में बस गये जहाँ १४ जनवरी १९६५ को हृदयाघात से ६५ वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ. वे सहृदय और उदार व्यक्ति थे. उनके व्यक्तित्व में काव्यात्मक लालित्य था - जो उनके अध्यापन को प्रभावी बनाता था. होलकर कॉलेज में उनके साथ बीते हुए दिनों की याद करते हुए, श्रीमती हेमापूर्वा घोष लिखती हैं :

"I keep remembering the days at Holkar College, patiently waiting on bedside my husband as he painstakingly made his lecture notes. Playing bridge with the Late Maharaja or having a brisk game of tennis in the evening were things I reminisce now. Cricketing greats of the likes of Late C.K. Naidu and Mustaque Ali graced the fields of Indore. The parties hosted by the Late Maharaja bore eloquent testimony of the culinary expertise of the 'bawarchis' and chefs. I was not a academic at Holkar College but I honestly feel that the College was my 'Alma Mater'."

- श्रीमती घोष का २८ अगस्त १९९१ का पत्र

सांस्कृतिक और शालीन रुचियों के घोष दंपत्ति - कॉलेज के विद्यार्थियों से पुत्रवत स्नेह करते थे. उन्हें संगीत, नाटक, रंगमंच और साहित्य में रुचि थी और वे दोनों इन विधाओं में साधिकार दखल रखते थे.

वे अत्यंत लोकप्रिय प्राध्यापक थे. सेवा-निवृत्ति पर उनके सेवा-काल में वृद्धि की माँग को लेकर जो छात्र-आंदोलन होलकर कॉलेज में हुआ था उसकी स्मृति आज भी बहुतों को है. यह आंदोलन इतना उग्र हो गया था कि इसकी परिणिति गोलीकांड और कर्फ्यू में हुई. जस्टिस वांचू की अध्यक्षता में बने एक कमीशन ने इस घटना की न्यायिक जाँच भी की थी.

प्रो. घोष को उत्तराधिकार में एक सुव्यवस्थित कॉलेज मिला था. जिसकी प्रतिष्ठा को स्थापित होते उन्होंने देखा था. वे इसकी कीर्ति के साक्षी और सहभागी थे. अपने सहयोगियों से लम्बे परिचय और आत्मीयता के कारण, उन्हें अपने कार्यकाल में भरपूर सहयोग मिला. उन्होंने कॉलेज को सफल नेतृत्व दिया.

अंग्रेजी के वे सफल लेखक थे. सम-सामयिक एवं साहित्यिक विषयों पर लिखे हुए उनके लेख The Statesman, Hindustan Standard आदि प्रतिष्ठित पत्रों में प्रकाशित होते थे. अंग्रेजी के कुछ कवियों पर लिखीं उनकी समीक्षात्मक पुस्तकें आज भी पढ़ी जाती हैं. उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'कणिका' में संकलित कविताओं का व अनेकों बंगाली कहानियों का अंग्रेजी अनुवाद किया था.

आज वे हमारे बीच नहीं हैं - परंतु इस कॉलेज में उनकी स्मृतियाँ हमेशा विद्यमान रहेंगी. प्रो. घोष के प्रति हम सबकी भावनाओं को समवेत स्वर देते हुए ही, श्रीमती घोष ने लिखा -

'My husband was very dear to me loving affectionate and understanding - though his physical presence is absent, his thoughts are always with me to cherish'.

- ३०.९.९१ का पत्र

कॉलेज में डॉ. राधाकृष्णन के साथ प्रो. घोष

निस्संदेह वे अपने विचारों में - हमारी स्मृतियों में - संपूर्णता के साथ मौजूद हैं.

सौजन्य एवं आभार -
(१) श्री अमल कांति घोष - कलकत्ता
(२) श्री अरिन्दम घोष दस्तीदार - कलकत्ता
(3) श्रीमती हेमापूर्वा घोष - कलकत्ता

□□

संगीत क्षेत्र में जीत

गत २३ नवम्बर को ग्वालियर में विक्टोरिया महाविद्यालय के तत्वावधान में 'सिन्धिया कल्चरल कान्टेस्ट' आयोजित की गई. हर्ष के साथ हम सूचित करते हैं कि हमारे महाविद्यालय के छात्र रवि दाते को तबला वादन में प्रथम स्थान, एवं शशिकान्त तांबे को सरल संगीत तथा शास्त्रीय संगीत में द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ.

गत १७ दिसम्बर को उज्जैन में माधव महाविद्यालय की ओर से 'मध्यप्रदेशीय संगीत प्रतियोगिता' सम्पन्न हुई. उसमें हमारा विद्यालय शील्डविजेता रहा. सरल संगीत में हमारे विद्यालय की छात्रा कुमारी कुंदा बोकील प्रथम, तथा शास्त्रीय संगीत में शशिकांत तांबे प्रथम रहे.

- होलकर कॉलेज टाइम्स (१० जन. १९५७ से)

पं. नेहरू कॉलेज में

०३ नवम्बर १९५८

मैं शायद यहां ३५ मिनिट वक्त से देर में पहुँचा. उसके लिए माफी (हँसी). हालांकि मैं नहीं समझता कि कसूर मेरा था (हँसी). लेकिन कुछ न कुछ था ही. ऐसा कस्त के प्रोग्राम मेरा बनाया था कि जब से मैं हवाई जहाज के अड्डे पर पहुँचा मुझे (माईक की खराबी होने से रूक गये) कहिये अब कुछ तरक्की हुई? (हँसी). अच्छा. मैं आपसे माफी माँग रहा था देर में आने की. मालूम नहीं आप यहाँ कब से इंतजार कर रहे हैं. मुमकिन है आपमें से बहुत से लोग कुछ भूखें हों, खाने के इंतजार में हों (हँसी). बसूरत मुझे भी बहुत बड़ी भूख लग रही है (हँसी). क्योंकि बहुत सबेरे बड़ोदा से चला और सेहत अच्छी है मेरी (हँसी).

मुझे तो सच बात पूछो तो मालूम ही नहीं था कि यहाँ होलकर कॉलेज में भी एक तकरीर है. लेकिन आपने मुझे बुलाया और - चाहे वह एक जैसा कि शंकरदयालजी ने कहा कि सिर्फ एक बीस लाख रुपयों की इमारत खड़ी करने के लिये काफी नहीं है - मालूम नहीं कि वे मुझे रुपयों से नापते हैं या किस चीज से? (ताली व हँसी). लेकिन दो बातें कहीं हैं. एक तो, यह होलकर कॉलेज इस सारे हिन्दुस्तान के हिस्से में बहुत दिनों से मशहूर है. और इसने एक बड़ा काम किया है, यहाँ बहुत सारे, कई नस्ल, कई जनरेशन्स को सिखाने में पढ़ाने में. दूसरी यह कि, उसको और कॉलेजेस वगैरह को पहले से ज्यादा बड़ा और जरूरी काम, आयन्दा भविष्य मे करना है. चुनांचे, मुझे यहाँ आने में खुशी हुई और खैर, आप सब विद्यार्थियों से मिलकर, देखकर और अपने को दिखाकर, खुशी हुई (हँसी). क्यों कि यह तो, जिसको अंग्रेजी में टू वे ट्राफिक कहते हैं - दो रास्ते दु तरफा. और जब तक कुछ काम करने का सिलसिला हम लोगों का जारी है तो एक दूसरे को पहचानना अच्छा है. कम से कम जान लेना, पहचानना. क्योंकि जो कुछ काम हिन्दुस्तान में उठे हैं, और जो कि जमानों तक चलेंगे, वह कोई परदानशीनों के काम तो नहीं है (हँसी). मेरा मतलब इस वक्त औरत परदानशीन से नहीं था - मर्द पर्दानशीन से था (और हँसी). याने कि छिपकर दफ्तर में काम कर लिया, कुछ कागजों पर दस्तखत कर दिये तो उसको काम समझा. वह जमाना अब नहीं रहा.

अब एक रोजबरोज काम का ढंग है - वह एक दो बात है एक मैदान में और दूसरे लाखों आदमियों के साथ काम करने का ढंग है. ढंग बदलता जाता है, जमाना बदलता है हिन्दुस्तान का. तुम लोग यहाँ बैठे हो. तुम दूसरे जमाने के लोग हो. मेरे जमाने के नहीं. उसके बाद के जमाने के हो. और इसलिये कभी कभी मैं कुछ झिझकता भी हूँ कि खास कुछ कहने के लिये. हालांकि मैं समझता हूँ, कुछ मेरा तजुर्बा, अभ्यास जो कुछ हुआ एक लम्बी जिंदगी में, शायद कुछ सीख सकते हो. वह तो ठीक है, लेकिन उसी के साथ जो सवाल, जिस ढंग से सवाल, तुम लोगों के सामने आये, वह उस ढंग के नहीं थे जो मेरे सामने आये थे जब मैं तुम्हारे उम्र का था. जमाना बदलता है. सवाल बदलते हैं, नये जवाब ढूंढने पड़ते हैं. और इस को ढूंढने में पहली बात तो यह है कि समझें कि जमाने के सवाल क्या हैं. पहले सवाल समझो. यह अजीब बात है कि लोग सवाल नहीं समझने की कोशिश करते हैं और जवाब लेकर हाजिर हो जाते हैं. हर एक नसीहत देगा जवाब की, हर एक बतायेगा क्या करो. लेकिन इस पर बहोत कम लोग गौर करेंगे कि सवाल क्या है जिसका हम जवाब ढूंढ रहे हैं. और मुल्क का सवाल, दुनिया के सवाल बदलते हैं, क्योंकि दुनिया बदलती है-हर चीज बदलती है. तुम बदलते हो, बढ़ते हो, घटते हो, घटते नहीं हो बढ़ते ही हो (हँसी). कोई एक सा नहीं रहता. देखनें में एक से रहते हैं. हमने पुरानी किताबों में देखा. मिसाल है एक नदी की. नदी बहती है. नदी नदी रहती है लेकिन आप जानते हो पानी हर वक्त बदलता है. एक लौ जलती है. लौ दीखती है लेकिन लौ हर वक्त बदलती है. तो इस तरह से हम सब बदलते हैं और एक भी रहते हैं. जमाना बदलता है. तो हर सूरत से, हम आजकल के जमाने में हैं जब कि काफी हिन्दुस्तान बदला है और बदलेगा. तेजी से बदलेगा. क्यों बदलेगा? बहुत सारी बातें हैं; एक तो यह कि बहुत दिन से कुछ उसका बदलना रुक गया था अंग्रेजी जमाने वगैरा में, तो जब वह रुकावट हटी तो ज्यादा तेजी से बदलेगा, बहुत दिनों से जो बातें शायद हम हलके हलके करते थे पिछले १०० वर्षों में उन्हें १० वर्षों में करना है तेजी से; दूसरे, यह कि दुनिया में, खाली हिन्दुस्तान में नहीं, एक अजीब इंकलाबी जमाना आ गया है. उलट पुलट बदलना, सब कुछ. तो हमें और भी चुस्त चालाक होना है, तेजी से आगे बढ़ना है. इस बढ़ने में रोज नये सवाल आते हैं. और अगर हम उनको नहीं समझें तो उनका हम सामना नहीं कर सकते और उनको हल नहीं कर सकते.

तो ऐसी हालत में, मैं तुम्हें सलाह दूं तो क्या दूं? एक तो खैर मामूली बाते हैं; लेकिन मामूली बातें भी बड़ी जरूरी होती हैं. मामूली बातें हर जमाने में चलती हैं, वह नहीं बदलती, कुछ उसूलों की सिद्धांतों की. मैं कहूं तुमसे कि तुम अपने दिमाग को तेज करो, जाहिर है कि कोई भी जमाना हो तेज दिमाग की जरूरत है. मैं कहूं तुमसे कि तुम अपने शरीर को मजबूत करो.

ज़ाहिर है कि कोई भी जमाना हो, मजबूत शरीर, अच्छे दिमाग की आवश्यकता होगी. यह सब बातें मामूली हैं. और मैं कहूँ कि आखिर में मुल्क कैसे बढ़ते हैं? मुल्क बढ़ते हैं भेड़ की गिनती से नहीं; मुल्क बढ़ते हैं, मुल्क की लियाकत से, चरित्र से, केरेक्टर से. याने मुल्क के लोगों के, मुल्क याने कोई एक व्यक्ति नहीं. लोग भूल जाते हैं, हिन्दुस्तान बढ़ेगा तो शोरगुल मचाने से नहीं. बल्कि कितने हिन्दुस्तान में मर्द और औरत क्वालिटी के हैं, दिमाग के हैं, अच्छे चरित्र के हैं, ताकत के हैं, हिम्मत के हैं. ये जो अच्छे गुण गिने जाते हैं ये कितने हैं, उससे बढ़ेगा. और चाहे ४० करोड़ से ६० करोड़ हो जाएं, मगर ऐसी बात नहीं हो तो हम पिछड़े रहेंगे. फिर सवाल हो जाता है कि हम कैसे ऐसे स्त्री-पुरुष क्वालिटी के पैदा करें. पहली बात तो यह है कि हम ज्यादा तैयारी करेंगे अगर लोग कम पैदा हों. यानी बोझा मुल्क पर ज्यादा न बढ़ता जाय. लेकिन क्वालिटी के लोग आम तौर पर शिक्षा से बनाये जाते हैं. और शिक्षा का एक बड़ा जुज जो है घर में उनके ऊपर असर कैसा है, माँ बाप कैसे हैं, घर कैसा है, स्कूल कैसा है, कॉलेज कैसा है; यह बड़े सवाल आते हैं वही लोगों को ढालते हैं, और मौका देते हैं आगे बढ़ने का. हर एक, एक सा तो नहीं होता, लेकिन हर एक को मौका होना चाहिए आगे बढ़ने का. उनमें से एक बहुत आगे बढेगा. बड़े बड़े साइंटिस्ट, बड़े बड़े इंजीनियर हों, बड़े बड़े जो कुछ काम करना हैं वो होंगे और बाकी लोग इतने ऊँचे न जाय. फिर भी कुछ न कुछ अच्छा काम करना सीखेंगे. तो घूमधाम के सवाल आ जाता है, कि हमारे देश में कैसी शिक्षा होती है. इस पर बड़ी बहसें होती हैं और हलके-हलके बहस करके कुछ न कुछ तस्वीर निकलती आती है और आएगी. उनके निस्बत तो मैं नहीं कहता. लेकिन आप लोगों को याद दिलाता हूँ कि तुम समझो कि तुम कैसे जमाने में हो. एक बड़े क्रांतिकारी जमाने में हो. दुनिया, हमारा जमाना, मेरे जमाने के मेरे नस्ल के, जनरेशन्स के लोगों का, जमाना एक था. बहुत कुछ वह खतम हुआ. कुछ सिलसिला थोड़ा सा जारी है. जो कुछ हमने किया इस जमाने में, बुरा या भला, वह करीब करीब भारत के इतिहास का हिस्सा हो गया है, और बाद में लोग पढ़ेंगे उसे, कुछ राय कायम करेंगे, पास से तो राय कायम नहीं हो सकती. लेकिन जो भी कुछ हमने किया, कई बातें हमारे हाथ से हुई. एक तो यह कि खैर एक ऐसे जमाने में हम रहे जबकि भारत में इतना फर्क हुआ, इतनी क्रांति हुई और भारत गुलामी से निकलकर आजाद हुआ. बड़ी बात हुई, खुश नसीबी की हमारी. दूसरे, हम ऐसे जमाने में रहे जबकि एक गैर मामूली बड़ा आदमी हमारे देश का नेता था, गाँधीजी, जो कि भारत के इतिहास के ऋषियों में महापुरूषों में शामिल हुए. लेकिन

हमने उन्हें देखा, छुआ, सुना, उनके नीचे काम किया, और कुछ हम छोटे आदमियों के ऊपर भी उनकी झलक पडी उनका साया पड़ा, तो हमारा भी फर्ज बढ़ गया. तो यह बातें हुई. और पचास गलतियाँ हुई होंगी हमसे इस जमाने में, मैं समझता हूँ, हम कह सकते हैं एक गलती नहीं हुई. कभी हमने भारत की शान के खिलाफ कोई बात नहीं की (ताली). उसकी इज्जत रखी. हिन्दुस्तान की आजादी की मशाल को ऊँचा रखा. अब हमारी बाहें कमजोर होती हैं. तुम्हारे हाथ और बाहों को उस मशाल को उठाना है. तैयार हो उसके लिये? तगडे हैं तुम्हारे बाजू? बताओ, कहो, हाथ से, आवाज से, उठाकर कहो (आवाज, तैयार हैं) क्या खाली लड़कों ही के बाजू उठे हैं, लड़कियों के नहीं? क्या बात है? मैं लड़कियों से पूछता हूँ, बताओ मजबूत हैं तुम्हारे बाजू? (आवाज, तैयार हैं) अच्छी बात है. तो मुबारक हो तुम्हें.

जयहिन्द.

- होलकर कॉलेज टाइम्स, १९५८ से

□□

१९६३-६४ स्नेह सम्मेलन में डॉ. जाकिर हुसैन की शिरकत

□ आगरा विश्वविद्यालय कार्य समिति □

बायें से : बैठे हुए - (चौथे) डॉ. बसु, (छठे) सर सी.वी रमन.
खड़े हुए - (छठे) प्रो. धारीवाल.
चित्र में श्री लियाकतअली को भी पहचाना जा सकता है.

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित और प्रो. घोष

डॉ. राधाकृष्णन - टैगोर प्रतिमा के अनावरण के अवसर पर.

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित और शेख अब्दुल्ला
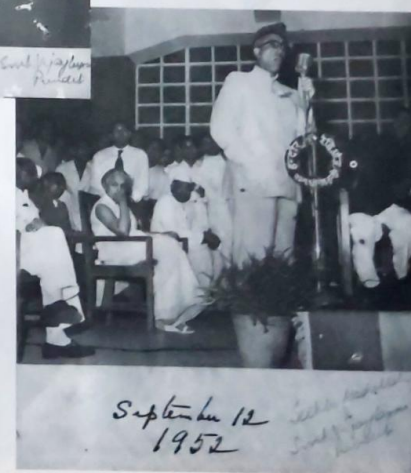
जनरल करिअप्पा कॉलेज में

होलकर कॉलेज क्रीड़ा परिषद् : १९५३-५४

मराठी वाङ्मय मंडळ

नीचे बैठे हुए - वसंत खिरवड़कर, प्रभाकर घाटे. कुर्सी पर बैठे हुए - सुमन वाळंजकर, शंकर वालिंबे, प्राचार्य डॉ. बसु, प्रो. उज्जैनी, गंगाधर जगताप. खड़े हुए - श्रीपाद जोशी, नागेश इंगले, जहागीरदार

एक प्रखर व्यक्तित्व

□ डॉ. दयाशंकर जोशी

होलकर कॉलेज के शताब्दी वर्ष के गरिमामय अवसर पर जब मैं अपनी जीवन-पोथी के उन पृष्ठों को खोलता हूँ, जब मैंने आज से लगभग अर्ध-शताब्दी पूर्व एक विद्यार्थी के रूप में उसमें प्रवेश लिया था, तो दृष्टि पटल पर अनेक घटनाएँ तथा चेहरे उभरने लगते हैं, जो स्मृति में एक अपूर्व मधुरता का संचार करते हैं.

किसी शिक्षण संस्था में उपलब्ध भवन, खेलकूद के मैदान, बाग-बगीचे, पुस्तकालय जैसे भौतिक संसाधन भले ही महत्वपूर्ण हों, किन्तु वे उसके शरीर के मात्र अंग-प्रत्यंग हैं, उसकी आत्मा, उसके प्राण, उसके शिक्षक ही हैं. अतः किसी कॉलेज का इतिहास उसके उन अविस्मरणीय शिक्षकों की जीवनगाथा है, जिन्होंने समर्पण भाव से उसे अपनी कर्मभूमि बनाकर अपने शिष्यों को आवश्यक शैक्षिक योग्यता प्रदान की, तथा अपने जीवंत उदाहरण से उनमें आध्यात्मिक सुगंध भर, अपने जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा प्रदान की.

होलकर कॉलेज का यह स्वर्णिम काल था. उसमें एक से बढ़कर एक प्राणवान शिक्षक थे. अंग्रेजी में प्रो. घोष, प्रो. बोरगाँवकर व प्रो. बोरदिया, अर्थशास्त्र में सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री प्राचार्य डॉ. बसु, हिन्दी में प्रो. कमलाशंकर मिश्र, इतिहास में प्रो. धर तथा प्रो. वर्मा, रसायन शास्त्र में स्वनामधन्य डॉ. देशपांडे व डॉ. भागवत, गणित में प्रो. गोले एवं प्रो. गंगराडे जैसे प्रतिभावान तथा समर्पित शिक्षक कॉलेज की ख्याति को दिग्-दिगंत तक फैला रहे थे. किंतु जिस शिक्षक ने अपनी प्रखर बुद्धिमत्ता तथा आचरण से मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया और जिन्हें मैंने अपने लिए सदा आदर्श माना, वे थे भौतिक शास्त्र के विभागाध्यक्ष प्रो. एन. पद्मनाभन. आज भी मेरे मन में उनके प्रति आदरभाव भक्ति की सीमा को छूता है. इसी प्रकार की भावना वाले अनेक व्यक्तियों को मैं जानता हूँ.

एक मध्यमवर्गीय, सुसंस्कृत तथा आचरणनिष्ठ ब्राह्मण परिवार में प्रो. पद्मनाभन का जन्म आँध्र प्रदेश के कडप्पा जिले के नन्दलूर कस्बे में हुआ, जो उस समय मद्रास प्रेसिडेंसी का भाग था. उनके पिता श्री नीलकण्ठ शास्त्री शासकीय सेवा में इंजिनियर थे. वे संस्कृत के विद्वान थे. उनके पितामह अपने संस्कृत-ज्ञान तथा उच्च संस्कारों के कारण समाज में पूज्य माने जाते थे. उनकी माता शेषम्मा के परिवार में कर्नाटक संगीत तथा तमिल साहित्य के कई विद्वान हुए.

प्रो. पद्मनाभन का परिवार बड़ा था, उनके तीन भाई तथा चार बहिनें थीं. उनके जेष्ठ भ्राता एन. श्रीराम एक महान थियासोफिस्ट के रूप में विश्वविख्यात थे. वे मूलतः शिक्षक एवं पत्रकार थे. श्रीमती एनी बेसेंट का उन पर पुत्रवत् स्नेह था. वे तीन बार थियासोफिकल सोसायटी के अध्यक्ष चुने गए. सन् 1952 से 1973 तक उन्होंने इस पद की शोभा बढ़ाई. इस सोसायटी की शाखाएँ विश्व के प्रत्येक देश में थी. अपने लेखों तथा देश-विदेश में दिए व्याख्यानों के कारण वे श्रद्धा के पात्र थे. प्रो. पद्मनाभन की बड़ी बहिन एन. शिवकामू व्यवसाय से डॉक्टर थीं. वे अत्यंत चरित्रवान, प्रतिभासंपन्न तथा करूणामय महिला थीं. इन गुणों के कारण बीकानेर के महाराजा सर गंगासिंह उनके बड़े प्रशंसक थे तथा जनता ने उन्हें अपार आदर प्रदान किया. उनकी छोटी बहिन श्रीमती रुक्मिणी देवी अरूण्डेल भरत नाट्यम की विश्वविख्यात कलाकार थीं. उन्होंने मद्रास में नाट्यम् कलाक्षेत्र की स्थापना की तथा वे एक अच्छी लेखिका थीं. एक बार उनका नाम भारत के राष्ट्रपति पद के लिए भी उभरा था. वे प्राणि-कल्याण के लिए समर्पित थीं तथा एनिमल वेलफेयर बोर्ड की आजीवन अध्यक्ष रहीं. उनके छोटे भाई एन.वाय. शास्त्री ग्वालियर राज्य तथा बाद में भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में उच्चाधिकारी थे. उनकी छोटी बहिन श्रीमती विशालाक्षी जौहरी मध्यभारत में ग्वालियर में प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त हुईं. वे काँग्रेस के आन्दोलनों से सक्रिय रूप से जुड़ी रहीं. उन्होंने चन्द्रभान जौहरी से विवाह किया, जो भारत छोड़ो आंदोलन में भूमिगत रहे, तथा जो डॉ. बी.वी. केसकर के घनिष्ठ मित्रों में से थे. इस प्रकार प्रो. पद्मनाभन का सारा परिवार ही प्रतिभा की खान था.

सरकारी नौकरी के कारण अपने पिता के बारंबार होने वाले स्थानांतरों के कारण प्रो. पद्मनाभन की पढ़ाई उबड़-खाबड़ चली. चिंगल पेट में उन्होंने प्राथमिक कक्षा में प्रवेश लिया. इसके पश्चात मद्रास के प्रसिद्ध हिंदू हायस्कूल में वे छठी से नवीं कक्षा तक पढ़े. इसी समय वे अपनी बहिन के साथ बनारस चले गए, जहाँ के सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज स्कूल से नवीं कक्षा उत्तीर्ण की. पर वे पुनः मद्रास आ गए. अब चूंकि उनकी आयु 16 वर्ष से कम थी, नियमानुसार उस साल वे हायस्कूल की परीक्षा में बैठ नहीं सकते थे. अतः उनके पिता ने उन्हें फिर से 9 वीं कक्षा में भरती करवा दिया. प्रथम श्रेणी में मेट्रिक पास करने पर उन्होंने मद्रास के प्रतिष्ठित प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया.

इण्टरमीजिएट में उन्होंने भौतिक शास्त्र तथा रसायनशास्त्र के साथ जीव विज्ञान विषय चुना, हालाँकि उनकी विशेष रुचि गणित में थी. उन्होंने यह सोचा कि गणित तो घर पर भी पढ़ा जा सकता है पर जीव विज्ञान के साथ यह सुविधा नहीं है, क्योंकि उसमें प्रयोग करने पड़ते हैं. लेकिन यह चुनाव उन्हें रास नहीं आये. प्राणिशास्त्र से उन्हें विशेष अरुचि हो गई. वे बताते हैं, ''मृत प्राणियों को हाथ में लेने, और उन्हें काटने का काम मुझे सदा बेकार लगा''.

अतः इण्टरमीजिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर उन्होंने जीव विज्ञान छोड़ना उचित समझा. वे बी.ए. आनर्स में उसके स्थान पर गणित लेना चाहते थे. इसके लिए वे भौतिकशास्त्र के प्रोफेसर जोन्स से मिले. तब वे बहुत वृद्ध हो चले थे. एक समय उन्होने प्रो. सी.वी रमन को भी पढ़ाया था. प्रो. जोन्स ने उनके द्वारा इण्टरमिजिएट में गणित न लेने के कारण आनर्स कोर्स में प्रवेश देने से इन्कार कर दिया. इस पर प्रो. पद्मनाभन ने अनुनय करते हुए कहा ''यह सच है कि मैंने परीक्षा के लिए गणित विषय नहीं लिया था, किन्तु मैंने स्वान्त:सुखाय अपने घर में स्वयं गणित पढ़ रखा है. मैंने डायनामिक्स और केलक्युलस का जितना अध्ययन किया, उससे मेरा काम चल जाएगा.'' प्रो. जोन्स इससे संतुष्ट तो न हो पाए, किन्तु उनके भौतिकशास्त्र में लगभग ८०% प्राप्तांकों को देख कुछ पिघले अवश्य. उन्होंने कहा, ''देखो, मैं तुम्हें आनर्स कोर्स में एक शर्त पर प्रवेश दे सकता हूँ कि यदि अगली परीक्षा में गणित में अनुत्तीर्ण रहे, तो तुम्हारा प्रवेश निरस्त कर दूँगा.'' प्रो. पद्मनाभन ने इस चुनौती को सहर्ष स्वीकार किया. अंत में हुआ यह कि अगली परीक्षा में उन्हें गणित विषय में बहुत उच्च अंक मिले, भौतिक शास्त्र के अंकों से भी कहीं अधिक. इस प्रकार उन्होंने सन् १९१९ में बी.ए. आनर्स की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की. इस परीक्षा का पाठ्यक्रम सामान्य बी.ए. से कहीं उच्चतर था. उसमें बैठने वालों को एम.ए. के चार पाँच पेपर लेने पड़ते थे; एम.ए. तथा बी.ए. आनर्स के लिए वे ही पर्चे बाँटे जाते थे. अतः उन्हें स्नातकोत्तर की डिग्री इसके पश्चात स्वयमेव मिल गई. परिस्थितियों पर आत्मविश्वास की विजय हुई.

अपनी पढ़ाई पूरी करने पर उन्होंने कलकत्ता जाकर इण्डियन असोसिएशन फॉर कल्टिवेशन ऑफ सायंस मे भरती ली, ताकि वे सर सी.वी. रमन के साथ शोधकार्य कर सकें. कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस समय देश में इस असोसिएशन का बहुत मान था, तथा श्रेष्ठतम शोधार्थियों का वह आकर्षण बिन्दु था. यहीं पर काम करते हुए प्रो. रमन को नोबेल पुरस्कार मिला था, तथा प्रो. रामदास तथा सर के.एस. कृष्णन एफ.आर.एस. उसी की उपज थे. प्रो पद्मनाभन के शोध का विषय था, **'Polarisation of light diffracted at the edges of metallic substances.''** वे वहाँ लगभग एक वर्ष रहे, पर शोधकार्य ठीक से चल न पाया. इसका मुख्य कारण परिवार की बढ़ती हुई परेशानियाँ थीं, जिनके कारण बारबार अपना काम छोड़कर उन्हें मद्रास जाना पड़ा. उनके रुग्ण पिता की वे तीन-चार महीने सेवा करते रहे, पर उन्हें बचाया न जा सका. पिता के देहान्त से घर की आर्थिक स्थिति शोचनीय हो गई. लगभग इसी समय उनकी बहिन रुक्मिणी ने एक अँग्रेज, जार्ज एस. अरूण्डेल से विवाह कर किया, जो बाद में थियोसोफिकल सोसायटी का प्रेसिडेण्ट निर्वाचित हुए. हालाँकि रुक्मिणी अपने अंतरतम से अत्यंत आस्थावान धार्मिक महिला थीं, परंपरा के विरुद्ध किए गए इस विद्रोह के कारण समाज में भूचाल सा आ गया, उसके विरोध में आन्दोलन हुए और अंततः रूढ़िवादियों ने उनके परिवार को समाज से बहिष्कृत कर दिया. प्रो. पद्मनाभन उन दिनों की याद करते हुए कहते हैं, ''इससे मुझे घोर मानसिक उद्वेग झेलना पड़ा.'' यह बात सन् १९२० की है.

उधर ब्रिटिश सरकार द्वारा पोषित द्रविड़ मुन्नेत्र कषघम की ब्राहाण विरोधी नीति के कारण ब्राह्मणों पर लगातार अत्याचार बढ़ते जा रहे थे. प्रो पद्मनाभन बतलाते हैं, ''हमारा परिवार संस्कृत के विद्वानों का परिवार था. हम जन्म से ब्राह्मण थे. अतः हम लोगों के लिए रोजगार की संभावनाएं अत्यंत क्षीण थीं, क्योंकि अधिकांश नौकरियाँ अब्राह्मणों को दी जाती थीं.'' इन्हीं कारणों से उनके भाई-बहन उत्तराभिमुख हुए. दक्षिण भारत का दुर्भाग्य उत्तर भारत के लिए वरदान बना.

कलकत्ता में अपने शोध-कार्य को छोड़ प्रो. पद्मनाभन लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज में भौतिक शास्त्र के विभागाध्यक्ष पद पर आसीन हुए. इसके लिए उन्होंने कोई आवेदन-पत्र नहीं भेजा, संभवतः प्रो. रमन ने उनकी सहायता की हो. उक्त पद प्रो. गोवर्धनलाल दत्ता के छुट्टी पर जाने के कारण रिक्त हुआ था, जो बाद में विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति हुए. लगभग एक वर्ष के बाद जब प्रो. दत्ता अपनी छुट्टी से वापिस आए, तो प्रो. पद्मनाभन की नौकरी समाप्त हो गई.

इसके बाद लगभग २० दिन वे बेरोजगार रहे. तभी ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज के भौतिकशास्त्र के विभागाध्यक्ष प्रो. ताजुमल हुसैन का देहान्त हुआ. इस रिक्त पद पर प्रो. पद्मनाभन की नियुक्ति सन् १९२१ में हुई. इसके लगभग एक वर्ष पश्चात ही प्रो. डी.बी. देवधर होलकर कॉलेज छोड़, लखनऊ विश्वविद्यालय के लिए प्रस्थान कर गए. प्रो पद्मनाभन ने अपना आवेदन-पत्र भेजा और इस प्रकार वे इन्दौर आ गए. उस समय उनकी आयु २५ वर्ष थी, तथा डॉ. सुखटनकर होलकर कॉलेज के प्राचार्य थे. कॉलेज के शांत, सुखद एवं मैत्रीपूर्ण वातावरण को देख उन्होंने अपना शेष जीवन उसे समर्पित किया. वे २२ वर्षों तक प्रोफेसर रहने के बाद सन् १९४४ में वाइस प्रिंसिपल और उसके एक साल बाद प्रिंसीपल बने तथा सन् १९५२ में कॉलेज की सेवा से निवृत्त हुए.

प्रो. पद्मनाभन एक अपूर्व शिक्षक सिद्ध हुए. उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली. वे अपने असंख्य छात्रों की श्रद्धा के बिन्दु बने. क्लिष्ट से क्लिष्ट विषय वस्तु का सरलतम रूप में अभिव्यक्त करने की उनकी अपार क्षमता तथा उनकी धारावाहिक, निर्दोष व सटीक भाषा विद्यार्थियों के मन को मोहती थी. वे कक्षा में कभी कोई किताब या नोट्स नहीं लाए और न कभी पढ़ाते-पढ़ाते रुके ही. उनसे कहीं अधिक ज्ञानवान् शिक्षकों का विद्यार्थी होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ. इलाहाबाद विश्वविद्यालय में मेरे प्रोफेसर और बाद में मेरे शोध-गुरु डॉ. सर के.एस. कृष्णन, एफ.आर.एस. अत्यंत प्रतिभाशाली शिक्षक थे. पर जब मैं शिक्षक के रूप में ज्ञान संप्रेषण की दृष्टि से उनकी तुलना करने लगता हूं, तो प्रो. पद्मनाभन उनसे बीसे ही बैठते हैं.

पर प्रो. पद्मनाभन की महिमा उनके श्रेष्ठ शिक्षक होने मात्र में समेटी नहीं जा सकती. अध्यापन क्षमता तो एक कला है, जिसका विकास सयत्न किया जा सकता है. उनका सर्वकालिक प्रभाव उनकी वैज्ञानिक चिंतन-शैली तथा आचरण के कारण है और इसी चिंतन का परिणाम है, उनकी नपी-तुली, अकाट्य तर्कयुक्त, संयत, धीमी तथा मृदुवाणी और तटस्थ जीवन-शैली, जो उनकी स्थायी पहचान बन गई है. वे कभी अधीरता से ग्रस्त नहीं हुए. क्रोध करते या ऊँची आवाज में बोलते उन्हें किसी ने देखा नहीं. वे सदा शांत रहे और इसीलिए उनका नैतिक प्रभाव सर्वव्यापी था. फिजिक्स डिपार्टमेंट से जब वे नपे-तुले कदमों से ऑफिस की ओर जाते, तो बीच में बातें या मस्ती करते हुए छात्र उन्हें देख कर एकदम अपने आप सहम कर शांत हो खड़े हो जाते. आर्ट्स के छात्र, जो उनके कभी विद्यार्थी न रहे, भी अपने किसी गलत आचरण के कारण उनकी निगाह से गिरना नहीं चाहते थे.

होलकर कॉलेज के यशवंत हॉल में एल.एल.बी. की परीक्षा चल रही थी. पर्चे बटने को ही थे. परीक्षार्थी आपस में बातें भी कर रहे थे. तब प्रो. पद्मनाभन प्राचार्य थे. उन्हें विश्वविद्यालय से प्राप्त कोई सूचना देनी थी. उन्होंने परीक्षार्थियों को शांत होने का इशारा किया और नोटिस पढ़ दिया. इस पर हॉल के पिछले हिस्से से आवाज आई, **Loudly please"**. उसे सुन प्रो. पद्मनाभन किंचित मुस्कुराए और बोले, **"If you are quiet, you will be able to here me."** और इसके पश्चात ठीक पहिले ही जैसे स्वर में, ताकि आवाज आखिरी सिरे तक पहुँच जाए, उस नोटिस को फिर से पढ़ा.

फिजिक्स लेक्चर थिएटर में जब प्रो. पद्मनाभन प्रवेश करते, कक्षा पूर्णतः शांत हो जाती. कभी उन्हें **"Silence please"** कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी. हाजिरी लेते समय यदि कोई फुसफुसाहट भी होती, तो वे अपनी पेन के निचले सिरे से टेबल पर हल्की सी टक-टक आवाज करते, जिसे सुना जा सकता था. इस पर फुसफुसाहट करने वाले छात्र का उस ओर ध्यान जाता, तथा वह भी पूर्णतः शांत हो जाता. इस प्रकार की स्थिति की कल्पना आज शायद बहुत से लोग न कर पाएँ.

प्रो. पद्मनाभन कभी अकारण बात करते नहीं और बिना भलीभाँति सोचे-विचारे कभी बोलते नहीं. वे किसी की स्वतंत्रता में बाधक नहीं बनते, और न वे चाहते हैं कि कोई अन्य उनके काम में अनावश्यक हस्तक्षेप ही करे. उनका सोचना, विचारना, बोलना, काम करना सब किसी सुविचारित व्यवस्था के अंग प्रतीत होते हैं. वे एअरविंग वाले मकान में रहते थे. वहाँ जाकर देखा कि हॉल के बीचोंबीच लगे पंखे से एक लम्बी सुतली बँधी हुई है, जिसके निचले सिरे पर गुलमोहर के फूलों वाली एक भद्दी सी टहनी लटकी थी. मैं इस नजारे को आश्चर्य से देख ही रहा था कि प्रो. पद्मनाभन बोले, **"My son has done it. I know, it does not look aesthetic, but he thinks otherwise. This hall also belongs to him, and he has a right to decorate it, as he thinks it fit."** अपने बच्चों के प्रति इतना लोकतांत्रिक व तटस्थ चिंतन दुर्लभ है. बच्चों का उनसे अपने काम के लिए कभी पैसे मांगने नहीं पड़ते. अलमारी में रुपए रखे रहते, बच्चे स्वयं उसमें से आवश्यकतानुसार पैसे निकाल लेते. उन्हें हिदायत केवल यही थी कि यदि कोई दस रुपयों से अधिक निकाले, तो उसे वहाँ रखी डायरी में इसका उल्लेख करना पड़ता था. प्रो. पद्मनाभन ने उपने बच्चों की आदर्श परवरिश की, और यही कारण है कि उनका समुचित विकास हुआ और वे अनेक उपलब्धियों के हकदार बने.

जीवन में बहुत कम लोग तार्किक और तटस्थ रह पाते हैं. वे बहुधा अपने मन और भावना के उद्वेगों से ग्रस्त रहते हैं. अतः ऐसे व्यक्ति प्रो. पद्मनाभन जैसे नि:संग व्यक्तियों से भयभीत से रहते हैं. छात्र के रूप में हम लोग भी उन से काफी डरते थे, किन्तु इस डर में संभवतः आदर का अंश ही अधिक था.

और इसी डर की भावना के कारण बहुत से लोग उन्हें नितांत रूखा व्यक्ति समझते है. मैं जब इण्टरमीजिएट कक्षा में था, मेरा विश्वास था कि उन जैसा आत्मकेन्द्रित और भावना शून्य व्यक्ति शायद कहीं मिलेगा नहीं. मैं उनके लिए बहुधा कविवर रवीन्द्रनाथ का वाक्य दुहराता रहता था, **"A mind all logic is a knife all blade. It bleeds the hand of one, who uses it."** पर अब लगता है कि प्रो. पद्मनाभन का जीवन तर्क पर आधारित अवश्य है, किन्तु वे मानवीय भावनाओं से अछूते कदापि नहीं

प्रो. पद्मनाभन
प्राचार्य पद से
सेवा निवृत्ति के दिन
(८ सित. १९५२)

है. हम सभी मनुष्य है. हमें अपने जीवन-दर्शन का विकास करना है. इसके लिए तटस्थता आवश्यक है, ताकि हमारा तर्क सुरक्षित एवं सक्रिय रहे. वे कहते हैं, ''जिस समय मैं संगीत का श्रवण करता हूँ उस समय भी मैं इस बात को भूलता नहीं हूँ. The observer of the observed should remain awake." हाल ही में एक चर्चा के दौरान वे मुझसे बोले, ''यह सच है कि मुझमें भावनात्मकता की अपेक्षा बौद्धिकता अधिक है, किन्तु भावनाओं की कमी मुझमें नहीं है. अत्यंत बौद्धिक होते हुए भी मनुष्य का भावना पक्ष सबल हो सकता है. भावना मुझे तर्क के प्रयोग से प्रतिबंधित नहीं करती. हमारे अपने बच्चों या पत्नी के साथ के भावनात्मक सम्बन्ध कभी तर्क से टकराव नहीं लेते.''

फिर भी प्रो. पद्मनाभन अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में संकोच करते प्रतीत होते हैं, संभवत: इस प्रकार की अभिव्यक्ति की निरर्थकता के कारण. दो बार महावीर चक्र से सम्मानित उनके जेठ पुत्र विंग कमाण्डर श्री गौतम की पूना में वायु-दुर्घटना से अकाल मृत्यु होने पर, वायुसेना के अधिकारी इसकी सूचना उन्हें देना चाहते थे. उन्हें पता लगा कि उस समय प्रो. पद्मनाभन इंदिरा संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ की किसी बैठक में भाग लेने के लिए गये हुए थे. उन्होंने रायपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति जे.सी. दीक्षित को रात्रि में जगा कर सूचित किया कि वे इस जानकारी को प्रो. पद्मनाभन तक पहुँचा दें. उन्होंने तत्काल पता तो लगा लिया कि उस समय प्रो. पद्मनाभन रायपुर के शासकीय विश्रामगृह में ठहरे हुए हैं, किन्तु इस प्राणांतक सूचना को देना, उनके लिए बहुत भारी पड़ रहा था. वे वहाँ के श्रीराम संगीत महाविद्यालय के तत्कालीन प्राचार्य डॉ. अरूण कुमार सेन के घर पहुँचे तथा उन्हें अवलंब हेतु अपने साथ ले लिया. वे जब विश्रामगृह पहुँचे तो प्रात: ५ - ५.३० का समय हो चुका था. उन्हें प्रो. पद्मनाभन वराण्डे में बैठे मिले. उन्होंने घुमा-फिराकर कहा कि उन्हें सूचना प्राप्त हुई है कि गौतम की तबियत एकाएक खराब हो गई है, और उन्हें तुरंत पूना जाना है. इस हेतु माना हवाई पट्टी पर वायुसेना का विमान खड़ा है. प्रो. पद्मनाभन एक क्षण विचलित से लगे. उनकी लुंगी का सिरा उनकी मुट्ठी में भिंच गया, किन्तु वे अपनी समस्त भावनाओं को नियंत्रित कर बोले, "I know what has happened. Come on let us go." उनसे चाय पीने के लिए कहने पर वे बोले ''नहीं'' तथा वैसे ही जाने के लिए उठ खड़े हुए. ऐसा आचरण वर्षों की तपस्या के पश्चात् ही संभव होता है.

एक आवश्यक दूरी रखते हुए वे छात्रों से घुलेमिले रहते थे, उन पर पुत्रवत स्नेह करते थे. होस्टल के डीन के रूप में वे बहुधा मेस में पहुँच कर भोजन चखते, रात्रि के समय गश्त लगाते तथा बच्चों को स्नेह से समझाते. छात्रों के मन में उनके लिए अपार आदर था और इस कारण वे उनकी बातों को आत्मसात करते. वे छात्रों के साथ पातालपानी की सैर पर जाते, उनके साथ तैरते, विनोद करते. छात्रों का वे सदा हितचिंतन करते. न्यू होस्टल के एक विद्यार्थी भैंवरलाल नाहटा, जो बाद में संसद सदस्य बने, एकाएक बहुत बीमार हुए. उनका तापमान १०४° से अधिक था तथा वे सन्निपात की स्थिति में थे. इस बात की खबर देने उनके एक साथी, गोवर्धनलाल ओझा, जो कुछ ही वर्ष पूर्व उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, प्रो. पद्मनाभन के घर गए. पानी पड़ रहा था और रात के लगभग १० बज चुके थे. प्रो. पद्मनाभन ने सारी बाते सुनीं तथा उनसे कहा कि ''अपने कमरे मे जा कर गीले कपड़े बदल लो, तथा मेरा इंतजार करो.'' इसके कुछ ही देर बाद वे अपनी गाड़ी में न्यू होस्टल आए तथा बीमार छात्र को महाराजा तुकोजीराव हॉस्पिटल ले गए. वहाँ पहुँचने पर देखा कि कई डॉक्टर उनकी राह देख रहे थे. इन डॉक्टरों में डॉ. एस.के मुखर्जी भी थे. वे भींगते हुए, छत्री की सहायता से वहाँ पहुँचे थे, क्योंकि ऐन मौके पर उनकी गाड़ी स्टार्ट नहीं हो पाई थी. प्रो. पद्मनाभन ने रवाना होने के पूर्व दूरभाष पर छात्र की बीमारी की सूचना शिक्षा मंत्री तथा स्वास्थ मंत्री को दे दी थी तथा उनसे समुचित व्यवस्था का आग्रह किया था. इतना प्रभाव था उनका. वस्तुत: उस समय होलकर कॉलेज के प्राचार्य का एक विभागाध्यक्ष जैसा रुतबा था. होलकर कॉलेज एक विभाग जैसा ही माना जाता था और उसके प्राचार्य का पद उद्योग या शिक्षा विभागों के संचालकों के समकक्ष था. प्राचार्य काफी हद तक स्वतंत्र थे और आज जैसे दबावों में जीने के लिए बाध्य नहीं थे.

किसी के फटे में व्यर्थ ही पाँव न देने की अपनी स्थाई वृत्ति के बावजूद यदि कभी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना होता, तो वे उससे झिझकते नहीं थे. एक बार पातालपानी से वापसी के अवसर पर प्रो. पद्मनाभन तथा १२-१५ छात्रों के लिए स्टेशन पर रेलगाडी में बैठना असंभव हो गया. गाड़ी में बेहद भीड़ थी, तिल रखने को जगह नहीं थी. इस स्थिति में प्रो. पद्मनाभन ने एक हट्टेकट्टे विद्यार्थी से कहा कि वह कैसे भी करके डिब्बे में चढ़ जाए और चेन खींचे. ऐसा ही करने पर गाड़ी रूक गई. गार्ड ने पूछा, ''रेलगाडी किसने रोकी?'' प्रो. पद्मनाभन ने उत्तर दिया, ''मैंने रोकी. आप लोगों ने हमें टिकिट दिया, अब हमें गाड़ी में बैठने की जगह दो.'' गार्ड बोला, ''हमारे पास अतिरिक्त डिब्बे नहीं है, आप से बने तो गाड़ी में घुस जाओ.'' इस पर प्रो. पद्मनाभन ने कहा, ''हम लोग गाड़ी में चढ़ने में असमर्थ हैं, क्योंकि भीड़ इतनी अधिक है. अब जब तक आप हमारे चढ़ने की व्यवस्था नहीं करते गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी. हम लोग चैन लगातार खींचते रहेंगे.'' यह बहस आधे घंटे से एक घंटे तक चली. आखिर कार एक नए डिब्बे की व्यवस्था की गई. उस समय के ''होलकर टाइम्स'' में इस घटना का विवरण छपा था, तथा यह बात एक लम्बे समय तक लोगों के जबान पर रही.

इन्हीं गुणों के कारण प्रो. पद्मनाभन जहाँ भी रहे, श्रद्धा के पात्र रहे. उनकी वेशभूषा के समान ही उनकी विशेष छबि रही. ऐसे में उनसे किसी प्रकार के गलत काम को करने के लिए कहने का साहस किसी को न होता था. प्राचर्य पद से निवृत्त हो, वे पाँच वर्ष तक लोक सेवा आयोग के सदस्य रहे. यहाँ भी उनकी तटस्थ जीवन शैली उनके कार्य-सम्पादन में सहायक रही.

प्रो. पद्मनाभन का संगीत से सदा लगाव रहा. उनके परिवार में संगीत के संस्कार थे. उनके एक विद्यार्थी थे, पृथ्वीराज शर्मा, जो कालांतर में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने. उनकी संगीत में विशेष गति थी, तथा वे उस जमाने के प्रसिद्ध ध्रुपद गायक उस्ताद नसिरूद्दीन खां के शार्गिद थे. उनके माध्यम से प्रो. पद्मनाभन नसिरूद्दीन खाँ साहब के सम्पर्क में आए. वे उनके गायन से अत्यंत प्रभावित हुए. उन्होंने उस्ताद नसिरूद्दीन खाँ से कहा, ''मुझे भी आपसे संगीत सीखने की इच्छा है. संगीत का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने में मुझे कितना समय लगेगा?'' इस पर उस्ताद बोले, ''देखिए, संगीत में सात स्वर होते हैं. इसमें कम से कम इतने ही वर्ष तो लगेंगे ही.''

इस प्रकार प्रो. पद्मनाभन की संगीत-शिक्षा प्रारंभ हुई, पर शीघ्र ही उस्ताद नसिरूद्दीन खाँ दुनिया से चल बसे. इसके बाद देवास के प्रसिद्ध उस्ताद रजबअली खाँ से उन्होंने शिक्षा पाई. वे कहते हैं कि, ''रूक रूक कर प्राप्त इस शिक्षा से भले ही मैं संगीत में बहुत ऊंचाइयां हासिल न कर पाया, मुझे उसका अच्छा खासा ज्ञान तथा उसकी रसज्ञता मिल गई.'' डॉ. बालकृष्ण केसकर उन्हें संगीत का विद्वान मानते थे. यही कारण था कि वे आल इंडिया रेडियो की ऑडिशन कमिटी तथा एड्वाइजरी कमिटी के बारह वर्षों से अधिक समय तक सम्माननीय सदस्य रहे, जब कि साधारणत: ये सदस्यताएँ केवल दो वर्षों के लिए होती थी. इंदिरा संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ की विभिन्न समितियों में वे लगभग बीस वर्ष रहे.

प्रो. पद्मनाभन की कॉंग्रेस से सदा सहानुभूति रही, किंतु अपनी शासकीय सेवा का अनुशासन इसके लिए अनुकूल न था. अपने इंदौर के आगमन पर राजाजी उनके घर ठहरे. सन् १९४२ के ''भारत छोड़ो'' आंदोलन के समय डॉं. केसकर, जो कॉंग्रेस के महासचिव तथा बाद में सूचना एवं प्रसारण मंत्री बने, भूमिगत थे, तथा उनके घर पर ''हरिनारायण'' के छद्म नाम से कई दिन रहे. डॉं. केसकर की संगीत में विशेष रूचि थी. वे प्रो. पद्मनाभन से विभिन्न रागों तथा संगीत-शैलियों पर चर्चा करते थे.

तब और आज के समय की तुलना करते हुए व्यथित मन से प्रो. पद्मनाभन कहते हैं, ''अब सार्वजनिक जीवन में बिगाड़ आ गया है. उस समय के नेता अत्यंत आदरणीय थे, हमारे जीवन में समरसता थी. पर आजादी के बाद गड़बड़ियाँ बढ़ती गई. सारे राष्ट्र के साथ शिक्षा की भी अधोगति हुई. --- हम अपने बच्चों की सही ढंग से परवरिश नहीं कर रहे हैं. उनके कोई आदर्श नही हैं, और वे पढ़ने में भी रूचि नहीं रखते. सच तो यह है कि अब हमारे नेता बहुत बुरे उदाहरण बन गए हैं. जीवन अब मधुर नहीं रह गया है.''

प्रो. पद्मनाभन का विवाह १९२९ में हुआ. उनकी पत्नी श्रीमती मैथेली पद्मनाभन स्वयं एक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हैं, तथा राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित की गई हैं. वे आज भी सक्रिय हैं. उनके जेठ पुत्र वी. गौतम देश की शान हैं. वे भारत-पाक युद्ध में दो बार महावीर चक्र से सम्मानित हुए. दुर्भाग्यवश सन् १९७२ में उनका वायु-दुर्घटना में देहावसान हो गया. उनके द्वितीय एवं चतुर्थ पुत्र अशोक तथा अजीत वायुसेना में विंग कमाण्डर रह चुके हैं तथा आजकल हिन्दुस्तान ऐरोनॉटिक्स लिमिटेड में उच्चाधिकारी हैं. इन दोनों को अपनी वीरता के कारण दो-दो बार वायुसेना मेडल मिला. उनके तीसरे पुत्र डॉ. वी कृष्ण बनारस विश्वविद्यालय में भौतिकशास्त्र के प्रोफेसर के पद पर रह कर, आजकल जे. कृष्णमूर्ति एजुकेशन फाउन्डेशन बनारस में रेक्टर के पद पर आसीन हैं जहाँ वे शिक्षा के क्षेत्र में अपना अपूर्व योगदान प्रदान कर रहे हैं.

प्रो. पद्मनाभन अपने जीवन के ९४ वर्ष पूरे कर चुके हैं. वे शांत जीवन बिता रहे हैं. उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, किन्तु बौद्धिक दृष्टि से वे आज भी पूरी तरह से सचेत एवं सक्रिय हैं. होलकर कॉलेज के इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर हम सभी कामना करते हैं कि हम छ: वर्ष बाद उनकी भी शताब्दी मनाएँ.

गुरू: साक्षात् परःब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः

□□

श्रीमती हेमापूर्वा घोष का सन्देश

স্নেহের মহেশ,

তোমাদের বিদ্যায়তনের শতবার্ষিকী উৎসবের সাফল্য কামনা করি। [illegible] এবং প্রয়াত [illegible] ঘোষের [illegible] শুভেচ্ছা পাঠাইলাম।

আশীর্বাদিকা—

হেমপূর্বা ঘোষ

সহধর্মিণী, প্রয়াত [illegible] ঘোষ

Dr. D.K. Mansharamani

Holkar College has been as good as my almamater, though, I was never a student in the real sense. I was associated with this college for full 17 years and during this long period, I always felt myself as a student, a learner, a seeker being benefitted every day in the company of learned teachers and experienced Principals. I feel indebted to this institution and feel myself as an integral part of it.

It all started in 1948. I was then only a graduate from Karachi-Bombay University, but I took a chance with an advertisement that appeared in the Holkar State Gazette for the post of a Lecturer in Biology. I was interviewed by Principal Padamnabhan and then by Prof. Gogate and Prof. Kshirsagar. I had Micro-biology as my special subject and assured the Principal that I shall be able to take Zoology theory and practicals in Botany. Prof. Padamnabhan put a blunt question to me - "Will you be able to control the class?" I replied -"Sir, I don't want to blow my own trumpet, but given the opportunity, you will come to know how I do it." After a month I was asked to join immediately. This is how I came to Holkar College.

I was to work from 8 a.m. to 11.30 a.m. College was far away from my residence so I started using my father's car - Austin. This was when the petrol was sold at Rs. 1.50 a gallon (not litre!).

In 1949 I left the job to complete my post graduation at Ajmer. Prof. Padamnabhan was very kind to me. Affectionately he passed few good teaching hints to me, to which I replied "Sir, this you should have told me when I had joined and not now, when I am leaving." He said, "When I appointed you I had a little fear, but when I got good reports about you from professors and students, I was happy." I asked him "Sir, do you get reports from students also?" He said "Since you could scold my son Gautam who was in tears at home, I felt satisfied that I have not made any mistake in appointing you" and then in voice choked with emotion he told me - to pass my M.Sc. and promised an appointment in the college. He kept his words. In 1951 he appointed me again this time in Zoology department. I was given Intermidiate classes to teach. Prof. Gogte asked Prof Raghwachar to sit in the anti room and keep an eye to my first day performance.

As I was not well-versed with Marathi, Gujrati, Muslim and Sikh names so students started enjoying my improper way of calling their names while taking the attendence. After the attendence was over, one Mr. Sapre asked me to introduce myself. I said "I shall be glad to give my introduction provided I have yours. While taking attendance, I could not catch your names. So now each one of you should get up and tell me his or her name or surname and keep standing till the whole class has done that." It was time for my introduction to them. I said, "I am Mansharamani. I was here two years back. The world is facing a great crisis. This includes food and economic crises. We in India are facing a great cultural crisis. This is nothing but a challenge to our national identity and existence of our infant Republic. It is for you, young men and women to accept this challenge and strive to mould the destiny of this ancient land, so that it has honoured place in the community of the nations of the world. But this can not happen, if we are ourselves indisciplined. Indiscipline is the root cause of many of our present day evils. So long as this is not eradicated from our social and political life, our future as an independent nation is in danger. Now a bright future is before us. We have our own constitution, our own President. Who knows one of you may become the Prime Minister of India." Pointing to one sardar student I said - "He many become the Defence Minister (Sardar Baldeo Singh was defence minister then)" and pointing to the girls, I said "One may become the Health Minister (Rajkumari Amrit Kaur was the Health Minister). "This is my introduction." There was a pin-drop silence. My voice was chocked with emotion and there were tears in the eyes of the students. This was my first day in college in 1951. Prof. Gogate got the news from Prof. Raghwachar and happily said, "You have broken the ice to-day and I know thatyou have broken it well."

After Prof Padamnabhan, Prof. H. Ghosh took over as Principal. He was a capable person and a literary scholar. Mrs. Ghosh was a versatile Billiards player and use to join us sometimes in Yeshwant club. In 1954 Dr. Bhagawat became the Principal.

Dr Bhagwat was a strict disciplinarian and a very good teacher. He cared very little about his dress and personal appearences.

In 1960 I was promoted as Asstt. Prof. to Durg. After an year I was again posted to Holkar Science College.

Holkar College with all its different blocks, extensive play grounds, lawns and swimming pool looked like a complete education complex. I was Prof.-in-charge of Badminton and Table Tennis. I used to play after the teaching hours. Students respected all the teachers, irrespective of their faculties. Students of this college have occupied exalted positions in various fields and have dominated the provincial and national scences. Some of them have earned a name at international level also. Many have settled abroad. But I know certainly that all of them are proud of their Almamater. Martin Luther, once said "Prosperity of the country does not depend on the abundance of its revenue, nor on the strength of its fortifications nor on the beauty of the Public buildings but it consists in the number of cultivated citizens, in the men of Education, enlightment and character. Here are to be found its true interest, its chief strrength, its real power" Holkar college has made a small contribution to this end, and is a humble Partner in India Ltd.

The war between India and china in 1962 brought turmoil in the country. An appeal by Pt. Nehru for donation had an immediate response. Dr. Bhagwat fixed the target of Rs. 1 lakh. He called a meeting of all the students teachers and other employee of the college. It was addressed by several speakers. A very touching speech by Late Mr. Mehta of B.Sc. final brought tears to the assembled. A cheque of Rs. 1 lakh was sent to war-fund. This was gratefully acknowledged by the P.M. office through a letter, which was put up on the Notice Board for information to all. Such was the Unity of purpose in 1962.

Dr. Bhagwat - very hard out and soft inside like a coconut, had a row with me on several occasion. He sportingly reversed his decisions after I explained to him the real position. He had great regard for merit and was true to his words. Once he got me elected to Vikram University senate brushing aside opposition from some quarters. At another time I requested

Dr. D.K. Mansharaman

him to relieve me from the charge of Badminton and Table-Tennis. He did not listen to me saying that "There was complaints against you from students, and I thought thatyou are the proper person to look after these indoor game."

Dr. Bhagwat was succeeded by Prof. Narayan Singh. He was a man of great learning, a good teacher and an efficient administrator. He was very punctual. While returning from my B.Sc. final classes, I often use to meet him. Once he said, "I feel so good when I see chalk dust on your pant, with hands streched."

Dr. Ravi Prakash - the next Principal was my teacher at Ajmer. By this time I had completed my Ph.D. and was promoted as Professor at Durg. Thus came an end to my 17 years association with this college. But these years are alive in my memory.

The centenary provides us an opportunity to think and plan to bring all Holkarian at a common plateform. Retired teachers should also be involved in various activities of the college - cementing the bonds between old an new. The old students must be invited in the college to share their experiences with the present generation. This will inspire them to contribute for all round development of this great institution which has completed 100 years of its life.

The buildings, the play-ground, library and lawns are all there but the spirit of dedication of Dr. Basu, Prof. Borgaonkar and Dr. Bhagwat and devotion to duty and descipline of Dr. Deshpande, Prof Gogte and Prof. Padamnabhan is fast dwindling. There has been degradation of moral standards and the virtuous virtues have been fossilized. There is a wide gap between teacher and tanght resulting in indiscipline. "The Saraswati - the Goddess of learning has gone on vacation and Laxmi rules the roast."

Let us hope that the magic of centenary celebrations will prick the conscious of all concerned and restore it to the prestine glory. This is my prayer.

कुछ यादें

कुछ बातें

कुछ दृश्य

□ डॉ. देवकीनंदन मिश्रराज

पुराने सेन्ट्रल इण्डिया (सी.पी. नहीं) के सम्पूर्ण क्षेत्र में उच्च शिक्षा के लिए होलकर कॉलेज इन्दौर की धाक है. दूर-दूर से लोग यहाँ पढ़ने आते हैं. इसमें प्रवेश पाना या शिक्षक नियुक्त होना एक गौरव की बात है. ग्रीष्मावकाश में कोई नवयुवती साइकिल चलाना सीख रही है - निश्चय ही अगली जुलाई में होलकर कॉलेज में प्रवेश लेने का सपना संजो रही है वह.

मेडिकल की पढ़ाई, दिल्ली विश्वविद्यालय और बरेली कॉलेज, बरेली की नौकरी छोड़कर एक पतला-दुबला सा, नितान्त निगेटिव पर्सनालिटी का नौजवान, सत्र ५१-५२ के आरंभ में, लोक सेवा आयोग में सर्व प्रथम आकर, होलकर कॉलेज में नियुक्त हुआ है. विभागाध्यक्ष और प्राचार्य के निजी सहायक जैसे श्री जी.के. दाते की सलाह के बावजूद अपनी जाइनिंग रिपोर्ट प्राचार्य श्री नीलकंठ पद्मनाभन को देने की जिदवश उनके सामने जा पहुंचा है. साथ में अपना बॉयोडेटा भी ले गया है. अत्यधिक मधुर एवं क्लासिकल उच्चारण में "प्लीज सिट डॉउन" के तीन शब्दों से नौजवान एकदम सम्मोहित हो गया.

प्राचार्य ने बॉयोडेटा और जाइनिंग रिपोर्ट देखी. "यंग मैन देअर आर नो मैटिरियल रिवार्ड्स इन दिस प्रोफेशन. दि ऑनली रिवार्ड इज दि ऐक्सप्रेशन ऑफ सेटिस्फेक्शन आन दि फेसेज् ऑफ द स्टूडेन्टस् यू टीच. ट्राई टू वर्क फॉर दैट रिवार्ड." अनोखे पारितोषिक की बात नौजवान के दिल में घर कर गई. उसने सीख गाँठ बांध ली.

सदा की वेश-भूषा - धोती, कुर्ता और लम्बा कोट, पेशावरी सैंडल -पूरे सफेद केशों वाले प्राचार्य श्री पद्मनाभन अपने बंगले से निकल कर, जैविकी ब्लॉक के पीछे से, निकल कर, सीधे अपने कार्यालय जा रहे हैं. लोग अपनी घड़ियां मिला रहे हैं कि ठीक दस बजा है. परिसर में घूमते हुए छात्र श्रद्धायुक्त भय से एक तरफ हट जाते हैं. (कभी किसी ने पद्मनाभन साहब को छात्रों को डांटते नहीं देखा).

सन् १९५१ समाप्त हो रहा है. होलकर कॉलेज की हीरक-जयन्ती मन रही है. सुबह के दस बजे हैं. उत्सव के विशाल पंडाल में मॉक-पार्लियामेन्ट का आयोजन चल रहा है. राष्ट्रपति हैं डाक्टर एन.के. याज्ञिक (भावद प्राचार्य गुजराती कॉलेज), प्रधान मंत्री बने हैं - प्रो. डी. एन. बोरलांवकर और उनके साथ पूरी कैबिनेट है. कम्यूनिस्ट पार्टी का नेतृत्व कर रहे हैं प्रो. हरीश भारतीया (गुजराती कॉलेज), समाजवादी पार्टी के नेता हैं श्री सतीश केसल (बी.एस.सी. फाइनल के छात्र). प्रो. सत्यव्रत घोष ने अवसर वादी पार्टी संगठित की है. प्रश्नोत्तर, व्हिप, पाइंट ऑफ आर्डर, पाइंट ऑफ इन्फर्मेशन, वॉक-आउट, फ्लोर क्रॉसिंग आदि सभी संसदीय औपचारिकताओं का सुरुचिपूर्ण प्रदर्शन होने के बाद विधेयक बहस के लिए प्रस्तुत किया गया "विश्व शांति के हित में विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन पर रोक" आयोजक थे - प्रो. मिश्रराज.

जुलाई १९५१ : सेवा निवृत्ति के मात्र एक वर्ष पूर्व धार हाई स्कूल के गणित के प्रख्यात शिक्षक श्री श्यामाचरण घोष पदोन्नत होकर होलकर कॉलेज में व्याख्याता बन कर आए हैं. लम्बे बाल, लम्बी दाढ़ी, अगर लम्बा चोंगा छोड़ दे तो पूरे रवीन्द्रनाथ टैगौर. कॉलेज की कक्षा में उनका पहला दिन है. लाल बिल्डिंग के कोने वाले कमरे में सेकन्ड ईअर की क्लास में घोष साहब गणित पढ़ाने पहुंचे हैं. नया चेहरा, निराला व्यक्तित्व, छात्र शिक्षक को परेशान करने पर उतारू हैं.

"देखो भाई होम स्कूल से आया है मुँह से डांटने का होमको आदोत नोई है, पोद्मनाभन होमको बेंत लाने को मोना किया. तुम शोरारोत करोगे तो होम हाथों से खोबर लेगा. आज भी होम दो सौ दण्ड बैठक लगाता है."

छात्रों पर इसका क्या असर हो, आगे बैठे एक दादा टाइप छात्र ने मुंह में उंगली देकर सीटी बजाई. फिर क्या था घोष साहब ने उसे शिशु की तरह कन्धे पकड़कर उठाया और खिड़की से बाहर फेंक दिया और गए सीधे प्राचार्य पद्मनाभन के पास. "मि. घोष नाउ यू विल हेव नो ट्रबल इन युअर क्लास, इन फ्यूचर"

और वाकई उसके बाद तो, कुछ इस घटना से और कुछ उनकी निराली एवं आकर्षक शिक्षण पद्धति से, छात्र उनके मुरीद हो गए, उनकी कक्षाएं भरी रहतीं और एकदम सुई पटक सन्नाटा. गनीमत थी कि वह कमरा लाल बिल्डिंग की निचली मंजिल पर था, वरना गया था छात्र दुनिया से.

सत्र १९५२-५३ : आज शनिवार है. आज के दिन हर पीरियड में से पाँच-पाँच मिनिट की कटौती कर ग्यारह बजे से खचाखच भरे दरबार हॉल में एक घण्टे का "न्यूज एण्ड व्यूज" का कार्यक्रम होने वाला है. कभी ब्रेन्स-ट्रस्ट, कभी खेल चर्चा, कभी समाचार मीमांसा और आज भारत की प्रथम रंगीन फिल्म "आन" की शूटिंग यूनिट के साथ आए श्री दिलीप कुमार से, प्रो. डी.एन. बोरलांवकर द्वारा, महाविद्यालय के लिए लिया गया इन्टरव्यू पेश किया जा रहा है.

सितम्बर १९५२ : आज प्राचार्य पद्मनाभन का बिदाई समारोह है. वे लोक सेवा आयोग के सदस्य बन कर जा रहे हैं. काफी लोगों के भाषण हो चुके हैं. सभी पद्मनाभन साहब के उद्गार सुनने को लालायित हैं. अंततः पद्मनाभन साहब बोलने को खड़े हुए -

"माई डियर स्टूडेन्ट्स, व्हेन यू लीव दि कॉलेज आफ्टर ए फ्यू इयर्स यू फील लव एन अटैचमेंट विथ दिस कैम्पस. इमेजिन - आई हेव बीन हियर फॉर सेवरल डिकेड्स...."

पद्मनाभन् साहब का गला भर आया. कुछ देर खड़े रहे फिर बोलने में असमर्थ, सबका अभिवादन करके बैठ गए. सबकी आँखें नम हैं.

दिसम्बर १९५४ : प्रोफेसर सत्यव्रत घोष के सौजन्य से प्रसिद्ध गायक श्री हेमन्त कुमार महाविद्यालय में आए हैं. पेवेलियन में उनका कार्यक्रम हो रहा है. साथ में उनकी बिटिया आरती भी है. श्री हेमन्त कुमार ने गाया "आंचल से क्यों बांध लिया....". उनकी बिटिया ने गाया एक बंगला गीत. फिर हेमन्त कुमार ने एक बंगला गीत गाया और बोले - "अब आप जो कहें वह गीत गाऊं". छात्रों और शिक्षकों की सारी भीड़ चुप (उस समय तक हेमन्त कुमार फिल्मों में नहीं आए थे) प्रोग्राम समाप्त हो गया.

पहली बार कालेज के प्रोफेसर और छात्र मिलकर एक अंग्रेजी नाटक प्रस्तुत कर रहे हैं. अभिनेता हैं डॉ. डी.एस. जोशी, प्रोफेसर विष्णु श्रीवास्तव, प्रो. रामजी शर्मा, प्रो. श्रीमती उषा गुप्ता, छात्र श्री रोचलानी, श्री घाटपाण्डे और श्री खोत. नाटककार प्रो. बोरलांवकर और निर्देशक प्रो. मिश्रराज.

सत्र १९५५-५६ : से नये प्राचार्य डॉ. भागवत का कार्यकाल आरंभ हो गया है. प्राचार्य प्रशासन की बहुत सारी औपचारिकतायें समाप्त हो गई हैं. अनुशासन का एक अनोखा दौर शुरू हुआ है. न्यायपूर्ण बात दो टूक कहने-सुनने, लोगों का मान मर्दन करने, और प्राचार्य के लिये अकल्पनीय लगभग अभद्र वेश-भूषा के शौकीन डॉ. भागवत प्रातः ८ बजे से शाम देर तक महाविद्यालय परिसर में उपलब्ध रहते हैं. उद्दण्ड से उद्दण्ड छात्र निबटने के लिए स्वयं सर्वदा तैयार. प्राचार्य कक्ष में एक कोने में हॉकी स्टिक भी रखी है.

दिसम्बर १९५५ : मुख्य भवन के सामने उद्यान में एक परिचर्चा का आयोजन है. विषय "इनसिग्नीफिकेन्स ऑफ मेन" (मानव की महत्वहीनता). वक्तागण डॉ. स्कॉट (प्राचार्य क्रिश्चियन कॉलेज), डॉ. जेम्स (प्राचार्य डेली कॉलेज), सेवा निवृत्त प्रो. गोले, प्रो. जी.आर. सालुंखे (गुजराती कॉलेज), प्रो. डॉ. रंगम (मेडिकल कॉलेज), प्रो. डी.एन बोरलांवकर और श्री होमीदाजी. दो घंटे से अधिक बीत गये पर श्रोताओं की भीड़ यथावत.

शायद जून १९५७ : बिस्कोपार्क (आज का नेहरू पार्क) में निर्मित तरण-ताल का उद्घाटन-अपेक्षित अपार भीड़ उमड़ी - भारत की तीर्थ तैराक एवं गोताखोर अपना प्रदर्शन करने वाली हैं. अनियंत्रित भीड़ की धक्का मुक्की से डॉ. नजीर नवाब और वायला, श्री उमाकांत आठलेकर (तब कॉलेज के जलक्रीड़ा चैम्पियन एवं आज के डी.आई.जी.) के न्यौते पर दूसरे दिन कॉलेज के तरण-ताल पर आकर दो घंटे तक प्रदर्शन एवं मार्ग दर्शन. जी हाँ कॉलेज का अपना (अपने समय का आलीशान) तरण ताल है. बरसों से फिर, स्वच्छ और हर इतवार को खाली कर पूरी सफाई. पानी में उतरने से पहले अण्डरवीयर बदलना और बाहर बने स्नानागारों में नहाना जरूरी. आपके पास नहीं तो २ पैसे किराये पर धुला अण्डरवीयर उपलब्ध है. नागरिक लालायित रहते, परन्तु सदस्य छात्र, शिक्षक और उनके मेहमान (जिनको किराया देना होता) मात्र इसका उपयोग कर पाते हैं. इसी के बल पर होलकर कॉलेज अपना विश्वविद्यालय में निरन्तर वर्षों तक जल क्रीड़ा चैम्पियन रहा है.

जनवरी १९५८ - प्रातः ११ बजे : एक विधायक प्राचार्य भागवत से मिलने के लिये स्लिप भेजते हैं. अन्दर बुलाये जाते हैं.

"सर एल.एल.बी. प्रीवियस में मेरी अटेन्डेन्स ...."

"ओहो आप छात्र के रूप में आये हैं. छात्रों से मिलने का समय दो से तीन बजे के बीच का है, कृपया तभी आइये."

विधायक महोदय अपना सा मुँह लिये वापस.

फिर किसी दिन दोपहर ३ बजे : होलकर रियासत के ८८ वर्षीय सेवा निवृत्त पुलिस उप महानिरीक्षक प्राचार्य से मिलने के लिये अपना बड़ा सुन्दर सा विजिटिंग कार्ड भेजते हैं. औपचारिकता विरोधी डॉ. भागवत मानमर्दन को तैयार. बुलाया -

"ये विजिटिंग कार्ड की हिपोक्रेसी...."

"माई डियर बॉय ...."

इस निराले अनपेक्षित सम्बोधन मात्र से डॉ. भागवत पानी-पानी.

सत्र १९६१-६२ और उसके बाद : अब होलकर कॉलेज नहीं रहा. उसका विभाजन हो गया है. कला, वाणिज्य और विधि संकाय बोरिये आगरा रोड लांघकर सामने चले गये हैं - "शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय". बचा अंश अब होलकर साइंस कालेज है.

विकास का नया दौर आया. छात्र संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि. नये विषय खुले. कक्षाएं बढ़ीं - स्टाफ रूम में कक्षा, छात्रावास, छात्रावास का रीडिंग रूम, गैराज, जिम्नेज़ियम, गैस प्लांट स्टोर बन्द किये गये. दरबार हॉल के अगल-बगल के बरामदे, हॉल के पीछे, ऑफिस के पीछे, सब दूर कक्षाएं लग रही हैं. न जाने कब, कैसे और कहाँ गुम हो गया तरण ताल. मुख्य भवन के प्रमुख कक्षों ११,१२,१३ और १४ में अब ग्रन्थालय का विस्तार हो गया है.

अब हर दो एक वर्ष में प्राचार्य बदल जाते हैं. प्राचार्य निवास कभी अतिथि गृह, कभी कन्या छात्रावास कभी गणित या भौतिकी के अध्यापन कार्य में आता रहता और कभी कभी वीरान पड़ा रहता है. अब श्रोताओं की भीड़ से भरी परिचर्चाओं का आयोजन नहीं हो पाता. कभी अपने अखिल भारतीय स्वरूप के लिये चर्चित तुकोजीराव ट्रॉफी डिबेट को वक्ता और श्रोता नहीं मिलते.

ये सब देखते, ग्रन्थालय के मुख्य कक्ष में अपने राजसी सिंहासन पर विराजमान, श्रीमंत महाराजा मंद-मंद मुस्कुरा रहे हैं - तुकोजीराव. □□

डॉ. भागवत : एक परिचय

प्रो. महेश दुबे

''भागवत सारखी उमदी माणसें मला आयुष्यात् फार कमी भेटली आहेत. इलाकरिता मन: पूर्वक झटणे, त्यांच्या उपयोगी पडणे, अंगावर घेतलेले काम न करता करणे या गोष्टी भागवतांच्या स्वभावात् होत्या.''

- जीवन-सेतु : सेतु माधवराव पगडी

वासुदेव भागवत का जन्म १० अक्टूबर १९०६ को हातोद में हुआ. उनके पिता श्री विट्ठल भागवत रेवेन्यू विभाग में क्लर्क थे. उनकी प्राथमिक शिक्षा माचलपुर में हुई. १९२३ में उन्होंने महाराजा शिवाजीराव हाईस्कूल से मेट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और होलकर कॉलेज में प्रवेश लिया. यहीं से बी.एससी. करने के उपरान्त राज्य की छात्रवृत्ति पर वे इलाहाबाद गये - जहाँ उन्होंने १९२९ में एम.एससी. की उपाधि प्राप्त की. कुछ समय तक आगरा में अध्यापन करने के उपरान्त वे ०१ नवम्बर १९३३ को होलकर कॉलेज में आये जहाँ उनकी सेवा अवधि का लगभग पूरा भाग व्यतीत हुआ. १९३६ में उन्होंने डी.एससी. प्राप्त की. तीस वर्ष के अपने सक्रिय और यशस्वी सेवा-काल के बाद, डा. भागवत १९६४ में होलकर विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य के पद से सेवा-निवृत्त हुए. इस लम्बी अवधि मे जहाँ वे अपने वैचारिक साहस, उग्र असंतोष, अक्खड़पन, स्पष्टवादिता, निर्भीकता और जुझारू एवम् लड़ाकू-प्रवृत्ति के कारण विवादास्पद बने वहीं अपने ठेठ देसीपन, वेश-भूषा, तथा अपने स्वयं के प्रति लापरवाही एवम् सनकीपन की हद तक के लिए मशहूर अपनी आदतों के कारण बहुचर्चित भी बने रहे.

अपने सेवा-काल में ही एक किंवदन्ती के रूप में प्रसिद्ध हुए डा. भागवत एक समर्पित शोधार्थी, ख्यातिप्राप्त शिक्षक के साथ-साथ अपने फक्कड़ स्वभाव, विनोद-प्रियता, सख्त मिजाजी और अनुशासन प्रियता के लिये भी जाने जाते रहे हैं. उनसे बात करने का अर्थ है - एक पूरे के पूरे युग से साक्षात होना. उन्होंने न केवल यह पूरा युग अपने साथ जिया अपितु उसे भोगा, सार्थक किया और उसे पूरी सम्भावनाओं के साथ जिलाये रखा, जिसे मुक्तिबोध के शब्दों में कहा जा सकता है -

''मैंने चोरी-चोरी भीतर का
रेडियम सँभाल रखा है''

इस शताब्दी की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों, विसंगतियों, जटिलताओं, सन्देहों, शंकाओं, संकल्पों और मूल्यों के प्रति आस्थाओं का समवेत प्रतीक हैं - डा. वासुदेव भागवत का पूरा का पूरा जीवन. जीवन के इस संध्याकाल में भी उनकी सक्रियता, सृजनात्मक लगन और हिन्दी में विज्ञान लेखन के प्रति उनका उत्साह देखकर लगता है मानों पश्चिम क्षितिज पर अस्त होते हुए सूर्य से आकाश के वक्ष पर जो सिन्दूरी अक्षर उकेर दिये हैं, वे डा. भागवत के ८५ वसन्तों की कीर्ति पताकाएँ हैं.

'मेघांचे करि भूर्जपत्र धरूनी अस्ताचल ही प्रत्यही
प्रेमाचे नवलेख कुंकुमरसे ही सांध्य देवी लिही'

उनका परिवार साधारण आर्थिक स्थिति का पारम्परिक रूप से आस्तिक हिन्दू परिवार था. बचपन से ही धार्मिक संस्कारों के अनुशासन में पले वासुदेव को रामायण, महाभारत, गीता और तुकाराम के अभंगों के प्रति रूचि विरासत में मिली. यह ग्रामीण परिवेश और पारिवारिक मान्यताओं का ही प्रभाव था कि बचपन में वासुदेव टोपी में पीपल का पत्ता रखा करता था. खेलकूद, में उसकी रूचि आरम्भ से ही थी. कुश्ती, तैराकी, कबड्डी और लोन-पाटी वासुदेव के प्रिय शौक थे. लोन-पाटी में तो वासुदेव ने अखिल भारतीय स्पर्धाओं में भी भाग लिया था. ठेठ देसी आदमी, देसी रूचियाँ, वैसी ही देशज-लगभग उज्जड़ सी भाषा और देसी संस्कारों के साथ वासुदेव भागवत ने १९३३ में होलकर कॉलेज के नागरिक परिवेश में प्रवेश किया. डा. प्रफुल्ल चन्द्र बसु की आभिजात्य प्रखरता, प्रो. पद्मनाभन शास्त्री की सांस्कृतिक गरिमा, डा. हरिजीवन घोष के शालीन संस्कारों और प्रो. शैलेन्द्रनाथ धर की शैक्षणिक सौम्यता के बीच - डॉ. भागवत की मौलिक उपस्थिति को कभी भी खारिज नहीं किया जा सका. इस श्रेष्ठि वर्ग के मध्य उनकी उपस्थिति ग्राम्य-शीतलता के सुखद एहसास के रूप में मौजूद थी -

संसारे ताप - उताप बड़ो एकटा कम नय,
सेइ ताप - उतापे ग्राम-जीबनेर एकटू शीतलता लागानो दरकार.''

- श्यामल कांति दास

अपनी आजी के साथ बालक वासुदेव - नन्दलालपुरा स्थित दत्त मंदिर में नियमित रूप से कीर्तन सुनने जाता था. अत्यन्त श्रद्धा से वासुदेव कीर्त्तनकार को प्रणाम करता. आज, डा. भागवत बड़े विनोद से कहते है कि ''कीर्तनिया को मैं इसलिए प्रणाम करता था कि इस बहाने, देर से पहुँचने के बाद भी मुझे उसके पास ही आगे बैठने की जगह मिल जाती थी.'' धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के साथ-साथ उनकी रूचि मराठी साहित्य में भी बढ़ती गई. यशवंत, तांबे और बालकवि की रचनाएं उन्हें विशेष प्रिय रही हैं. इलाहाबाद में अक्सर -

'घट् टे माउली बाली तुझ्या वेणीतला गजरा

गुनगुनाते थे. सल पड़े हुए मैले से - जिन्हें कम से कम साफ तो नहीं कहा जा सकता, ऐसे कपड़ों में, बढ़ी हुई दाढ़ी - मिलिट्री कट में कटे हुए छोटे-छोटे बाल, कुर्ते के ऊपर खोंसी हुई पेन्ट या नेकर, बेल्ट की जगह पुरानी सी रस्सी - (जिसे टाई कहा जा सकता है) बांधे तथा देसी चमरौधे की तर्ज पर एड़ी-तले मुड़े हुए जूते पहने - कालेज में घूमते डा. भागवत को देखकर कोई ये कल्पना भी नहीं कर सकता कि पहलवान से दिखने वाले इस व्यक्ति के पास साहित्यिक-विद्वत्ता और काव्य-रसिक हृदय भी है. तांबे की -

ढोळे हे जुल्मि गडे, रव-वधू प्रिया मी बाळते'

कविता को उन्होंने अपने मित्र मुंगेर के साथ - इलाहाबाद के होलकर बाड़े की कितनी ही रातों में गाया है. यही नहीं तांबे की 'रुद्रस्त आवाहन' कविता पर उन्होंने एक सरस आलोचनात्मक लेख भी लिखा था, जो उन दिनों काफी चर्चित हुआ था. भागवत की एक विशेषता यह भी थी कि वे अपने मित्रों को भी साहित्य और काव्य के आनन्द से परिचित कराते थे. सुप्रसिद्ध इतिहास-संशोधक सेतुमाधव राव पगडी, मराठी वाङ्मय में अपनी रुचि की प्रारंभिक प्रेरणा का श्रेय डा. भागवत को ही देते हैं. वे लिखते हैं -

''पुढे हैदराबादेस असतांना मी मराठी वाङ्मयातील कवींच्या काव्याचे परीक्षण करून 'मराठी वाङ्मयातील आधुनिक कविता' हे पुस्तक लिहिले. त्या लेखना मागे भागवतांचे लेखन ही प्रमुख प्रेरणा होती''

- जीवन सेतु

लेखन में डा. भागवत की रूचि १९२७ से विकसित हुई - जो आज तक सतत् और सक्रिय है. इलाहाबाद में ही कार्य करते हुए उन्होंने 'केसरी' में 'रसायनशास्त्रातील महर्षि' शीर्षक से एक लेखमाला प्रकाशित की थी. यहीं वे डा. सत्यप्रकाश के सम्पर्क में आये और हिन्दी में उनका विज्ञान-विषयक लेखन प्रारम्भ हुआ.

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में डा. नील रतन धर के मार्ग-दर्शन में उन्होंने अपना शोध-प्रबंध पूरा किया. उनके प्रकाशित शोध-पत्रों की फेहरिस्त बहुत लम्बी है. अपने गुरु डा. शंकर देशपांडे और डा. धर की शोध परम्परा को डा. भागवत ने आगे बढ़ाया. होलकर कॉलेज के रसायन विभाग को उन्होंने एक सुसंगठित रूप दे कर अखिल भारतीय स्तर पर स्थापित किया.

अपने विद्यार्थी जीवन के अनेकों किस्से उन्हें याद हैं और आज भी वे उन किस्सों को पूरी तन्मयता और नाटकीयता से सुनाते हैं. उनसे उन संस्मरणों का सुनना अपने आप में एक सुखद अनुभव है. किस तरह एक मूल्यवान उपकरण के टूट जाने पर डा. मेघनाथ साहा की डाँट खाते हुए उन्होंने डी.एस. कोठारी के नाम का कवच के रूप में उपयोग किया और इसके पूर्व कि डा. साहा - 'गेट आउट' पूरा कहते वे खिड़की से कूद कर भाग निकले - या १९३० के एक सेमिनार का किस्सा सुनाते सुनाते उनकी आंखों में ६० वर्ष पूर्व की वो ही चपलता और दुस्साहस चमकने लगता है - जब उन्होंने भरी सभा में अपने 'अप्रत्याशित' किन्तु उद्दण्ड उत्तर से डा. साहा को निष्प्रभ और लगभग निरूत्तर सा ही कर दिया था. सेमीनार में भागवत अपना एक शोध-पत्र प्रस्तुत कर रहे थे. श्रोताओं पर प्रभाव जमाने के उद्देश्य से उन्होंने गणितीय प्रविधि को अधिक विस्तार देते हुए स्पष्ट करते हुए प्रस्तुत किया. शोध पत्र में गणित के उपयोग से वे अपने श्रोताओं को काफी हद तक प्रभावित कर चुके थे - तभी प्रथम पंक्ति में बैठे डा. साहा ने टिप्पणी की - "This can be done in one step only" श्रोताओं में कुछ प्रतिक्रिया होती, इसके पूर्व ही भागवत ने चुनौती के स्वर में कहा - "Then come to the board." फिर हँसते हुए डा. भागवत कहते हैं कि - "मैं डा. साहा के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही, सीधा जान बचा कर भागा."

वासुदेव जब ८ वीं कक्षा में था तभी तिलक की मृत्यु हुई. इन्दौर में राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का कार्य इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही होने लगा था. इन गतिविधियों का प्रभाव किशोर वासुदेव पर भी पड़ा. वो राष्ट्रीय आंदोलन के प्रवाह से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ता गया और इसे अपना स्वर देते हुए, उसने गाया -

'बोला बोला सारे राष्ट्रदेव बोला'

इन्दौर से तिलक की चेतना के स्पन्दन को लेकर वासुदेव इलाहाबाद पहुँचा - जो नेहरू परिवार के कारण सारे देश की राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र बन गया था. वहीं होलकर बाड़े और जैन होस्टल में उनका सम्पर्क अनेक क्रान्तिकारियों से आया. भगतसिंह के साथी ललित कुमार मुखर्जी उनके साथ ही रहा करते थे. इन सम्पर्कों का प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ा. उनकी सत्यनिष्ठा, दृढ़ता, कर्त्तव्यपरायणता, राष्ट्रप्रेम और भारतीय विज्ञान के प्रति अन्वेषण की गौरवपूर्ण भावनाओं का उत्स शायद उनके इन्हीं सम्पर्कों में है. अल्फ्रेड पार्क में जब चन्द्रशेखर आजाद को गोली मारी गयी तब समीप के जैन होस्टल से वहाँ पहुँचने वाले वे सबसे पहले व्यक्ति थे.

होलकर कॉलेज में वे १९५४ में प्राचार्य नियुक्त किये गये. छात्र आन्दोलन, गोली कांड और कर्फ्यू की पृष्ठभूमि में उन्होंने कार्यभार लिया. १९६१ में उन्होंने कॉलेज के विभाजन की त्रासदी को देखा. वे अविभाजित होलकर कॉलेज के अंतिम और विभाजन के बाद अस्तित्व में आये होलकर विज्ञान महाविद्यालय के प्रथम प्राचार्य के रूप में हमेशा याद किये जाते रहेंगे. १९५० के बाद का समय शिक्षा में संख्यात्मक प्रसार का था. यह गुणवत्ता के ह्रास का प्रारम्भ था. मूल्यों और आस्थाओं के विघटन के संकेत दिखाई देने लगे थे. शैक्षणिक परिसरों में अनुशासनहीनता अब अजीब सरोकार नहीं रही थी. ऐसी जटिल परिस्थितियों में भी डा. भागवत ने असाधारण धैर्य, विवेक और साहस से स्थापित मूल्यों के साथ कॉलेज को नेतृत्व दिया. इन समस्याओं से वे अपने ही ढंग से निपटते थे. उन्होंने कॉलेज-जीवन में शैक्षिक स्तर को बरकरार रखते हुए - परीक्षण की व्यवस्था उपलब्ध कराई, क्रीड़ा गतिविधियों को खूब बढ़ावा दिया. अध्ययन सुविधाओं में वृद्धि के लिये वे सतत् प्रयत्नशील रहे. शैक्षणेतर गतिविधियों को उन्होंने पूरी शिक्षा के साथ चालू रखा. शैक्षणिक स्तर के प्रति सजग, डा. भागवत अनुशासन बनाये रखने के लिये कटिबद्ध थे.

दरअसल डा. भागवत के व्यक्तित्व में कई रूप हैं और अपने प्रत्येक रूप में वे अनेकों स्तर पर समग्रता के साथ मौजूद हैं. एक रूप में उन्हें ठाकुर देवीसिंह की कैन्टीन में बैठे शर्त पर मावाबाटी की प्लेट-दर-प्लेट खाते देखा जा सकता है, तो एक डा. भागवत को शरारती विद्यार्थी के एक लड़के के पीछे मीलों भागते और उसे गरदन से पकड़कर लाते हुए देखा

जा सकता है. और, वे कौन से डा. भागवत थे, जिन्हें डा. सुमन आदि ने मिलकर पं. नेहरू के कॉलेज आगमन के समय जबरदस्ती नया सूट सिलवाकर पहनाया था. बरसों तक हमने उन्हें उसी सूट में देखा है. और एक डा. भागवत हैं जो राम और कृष्ण के चरित्र के मानवीय पक्षों को स्पष्ट कर रहे हैं - तो एक और भागवत हैं जो पिछले ४० वर्षों से सहकारी गतिविधियों में सक्रिय हैं. इन सबसे अलग है वो भागवत जो प्रयोगशाला में कार्यरत है और रासायनिक समीकरणों का व्याकरण लिख रहा है. यथार्थ में डा. वासुदेव विट्ठल भागवत इन विविध 'भागवतों' की संश्लिष्ट रासायनिक या कीमियाई समष्टि है.

उनके समान बहु-आयामी व्यक्तित्व - अपनी ही उद्विग्नता को केन्द्र में रख कर अपनी ही प्राणशक्ति से विव्हलता से प्यार करता है या लड़ रहा होता है - शायद इसीलिये वो दूसरों से बहुत दूर जा पड़ता है. स्वयं डा. भागवत के शब्दों में "परिस्थिति के कारण मेरा स्वभाव कुछ ऐसा बन गया था कि मेरे मित्र घनिष्ट होते हुए भी मेरे निकट नहीं पहुँचे."

उनका व्यक्तित्व एक बाल-सुलभ जिज्ञासा है - एक समर्पित यात्रा है, जिसमें ठौर-ठौर पर वे जीवन को नये-नये अर्थों में प्रतिष्ठित करते रहे हैं.

उनकी इसी तलाश को कुँवरनारायण के शब्दों में अभिव्यक्ति के साथ मैं उन्हें और उनकी यात्रा को अपने प्रणाम निवेदित करता हूँ :

'एक असन्तुष्ट चेतना जो आवेश में पागलों की तरह/भाषाओं को वस्तु मान तोड़-फोड़ कर/अपने एकान्त में बिखरा लेती है/ और फिर किसी सिसकते बालक की तरह कातर हो/भाषाओं के उन्हीं टुकड़ों का पुनः अपने स्खलित मन में समेटती है, सँजोती है और जीवन को किसी नये अर्थ में प्रतिष्ठित करती है.'

□□

श्री महेशजी, पुणे

सादर नमन.

आपका मई ६, का पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद. कै. हरि विष्णु मोटे १९२८/२९ वर्ष में होलकर कॉलेज के विद्यार्थी रहे. उन्होंने प्रयास करके एक छोटासा आंदोलन करके मराठी भाषा को एक ऐच्छिक भाषा के रूप में पाठ्यक्रम में अंकित करवाया. यह एक मौलिक योगदान था. प्रो. वामनराव उध्कीपे यहाँ पहले मराठी के प्राध्यापक थे. मैंने १९२९ में कॉलेज छोड़ दिया और प्रतिकूल परिस्थितिवश नौकरी की तलाश में लगा. १९५२ से ६० तक मैं सहायक निरीक्षक (स्कूल) के रूप में धार में कार्यरत रहा. बाद में ज्युनियर कॉलेज का प्राचार्य नियुक्त हुआ. जब मैं कॉलेज में था तब गरीब विद्यार्थी सहायता फंड का अध्यक्ष भी चुना गया.

उस समय व्यायाम का परिपाठ प्रचलित था. ज्येष्ठ नागरिक कै. बाबुभैय्या दातेजी के सहयोग से साष्टांग नमस्कार स्पर्धा आयोजित की गई थी. जिसमें केशवदेव (अब पुणे में स्थायिक है), प्रथम पुरस्कार और घाटपांडे (पश्चात म्युनिसीपल इंजिनिअर इन्दौर में) द्वितीय और कै. कर्णिक ने तृतीय पुरस्कार प्राप्त किया. ये पुरस्कार भी बाबुभैय्या की ओर से ही दिए गए थे.

उस समय एक दिन *All India Indian Women University* के प्रवर्तक श्री कर्वे, कॉलेज में आये थे. उन्होंने बहुत स्फूर्तिदायक भाषण दिया. उनके फंड के लिए हमने क्या चंदा दिया, यह याद नहीं.

हम Huts में रहते थे. सूर्योदय और सूर्यास्त की शोभा अवर्णनीय थी. हमें कवि वर्ड्सवर्थ के सृष्टीकाव्य के लिये और मराठी के बालकवि ठोंबरे की कविता के लिए वह एक वस्तुपाठ था. हम - वामन पुरंदरे (इंग्लिश प्राध्यापक) और हरि बारपुते (जो बाद में अमेरिका सपत्नीक गये), तात्या बारपुतेजी के साथ कई बार कालाकुंड और कुशलगढ़ भ्रमण हेतु गए. प्रो बोरगांवकर इंग्लिश के लोकप्रिय शिक्षक थे. उनके उच्चारण हमें सहज समझ में आते थे.

मैंने और मोटे ने १९२९ के ठंड के दिनों में मास्टर कृष्णा (मराठी गायक और गंधर्व कम्पनी के सुप्रसिद्ध नट) की महफिल आयोजित की थी. महफिल क्रीड़ा शिक्षक अकोलेकर के हॉल में सम्पन्न हुई. उसमें प्रोफेसर पद्मनाभन और प्रोफेसर बोरगांवकर भी सम्मिलित थे. स्मरण आता है वह गीत "पियकर बन-बन फिरत फिरे गंजार वाला". प्रतिव्यक्ति ३ रु. चंदा एकत्रित किया था. महफिल बहुत सफल रही. प्रातः ५ बजे तक रंगत आई. प्रातः हॉटल में गुलाब जामुन का मजा कुछ और ही रहा.

कुछ विद्यार्थी राऊ तक दौड़ लगाने जाते थे और फिर लौटकर सेर भर गुलाब जामुन खाते थे. मैं शिवाजी क्लब का सदस्य था. उस समय उच्चश्रेणी का स्वादिष्ट भोजन ८ रु. प्रतिमाह में उपलब्ध था. डीन साग़ीरअली साहब विद्यार्थियों के पालक सरीखे थे. खेल और जिमनेशियम में भी वे लोकप्रिय थे. विद्यार्थी देव ने दो हजार नमस्कार का रिकार्ड स्थापित किया था. हमारे समय में ही बिजली आई और घासलेट के दिए बंद हो गए. दो बार यहाँ से ट्रिप निकाली, एक धार क्षेत्र में और दूसरी चित्तौड़-उदयपुर (राजस्थान). ट्रिप पर केवल एक महिला विद्यार्थी कु. किबे साथ गई थी. मनोरंजन के लिए कभी-कभी पिपल्या-पाला पर भी जाया करते थे.

आपका

ग.रा. खंडकर

श्री जी.आर. खंडकर आज से ६० वर्ष पूर्व इस कॉलेज के विद्यार्थी थे. हमारे अनुरोध पर उन्होंने उस समय की स्मृतियों को लिख भेजा है.

M.R. Patwardhan (Ujjain)

A Tribute to Prof. B.S.Gogate
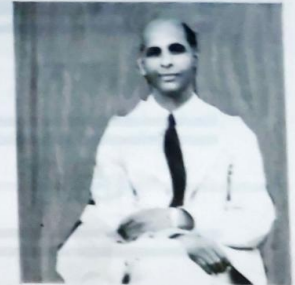
I had a twin opportunity to associated myself with Prof. Gogate. I happened to be his student and also worked with him as a staff-member. This is just an humble tribute to that great soul who was an ideal teacher and a good administrator. He came to Indore from Rangoon via Pune. The story of his flight begins with the Japan's entry into the War arena and opening a front in the far east. With the thick War clouds all around, many Indian families residing in Burma were forced to fleed back to India. Prof. Gogate's family was one of these. His friends helped him to secure a job at Fergusson College, Pune.

In early 40's Holkar college had no biology department. The Principal was in search of a reputed team of teachers who could start and conduct this descipline. This brought Prof. Gogate and Prof. Kshirsagar to Indore.

With a chittapawan brahmin complexion, Burmese cut beard, well-dressed Prof. Gogate had an impressive personality to which his fluent empirical english accents added a new charm. He was a strict disciplinarian and an academician. He was student of Allahabad University where after post gruduation he continued his research in Parasitology. He was in constant touch with a Professor at Rangoon who had a similar research field and at whose initiative he joined Rangoon University. There he served for 14 long years and published several research papers. He had earned a reputation there that of a good teacher and a research worker. The war forced him to start a new chapter of his life.

Slowly, he built up the department with meticulous dedication. He established the Biology department on the right wing of the first floor of the main building. The back verandas were covered and converted into Laboratory. The big class rooms were utilized as Museum, staff room and library. In 1958 the college started post graduate classes. All these years Prof. Gogate continued to enrich the laboratory and the library of the department. He secured import licences, Unesco coupons and added many equipments as donations from Ex-students abroad. The Department had a good number of Audio-visual aids and cinema projector. Films were obtained from the Film Society of which the college was an institutional member.

Apart from being a very good teacher, he was helpful to his students and colleagues. He encouraged staff members to undertake research. Though coordial and gentle, he was very particular about time, work and descipline. Indeed, he was a hard task master.

When college of Nursing was opened at Indore, Prof. Gogate took Biology classes and I was asked to assist in practicals. This reminds me one incident. The Nursing college had promised a certain honorarium per period. but later on the Govt. decided to pay less amount per period. All most all teachers accepted the less amount except Prof Gogate - who refused to accept it. He said that if the Govt. can not keep its promise then he is prepared to donate the amount to Govt. He did'nt budge and nor made any compromises on this issue. He also organised seminars and refresher courses for the Higher Secondary School teachers to prepare them for the new changes in their courses.

Prof Gogate was sincere, honest and a dutiful person. After retiring from Govt. Service he accepted the Principalship of a private college at Barwaha. There he had a heart attack and was on bed rest. Duty conscious Prof. Gogate did'nt care for his own health. He was more concerned about the students. So he called them to his room and taught them. This exertion proved fatal and he breathed his last. But his face was beaming with satisfaction.

□□

लाल फीतों के बीच

□ प्रहलाद तिवारी

गहरी साहित्यिक रुझान वाले प्रहलाद तिवारी १९५७ से १९९० तक इस महाविद्यालय से विद्यार्थी और प्राध्यापक के रूप में सम्बद्ध रहे हैं. अभी तक उनके ४ कविता संग्रह - वर्तमान के खिलाफ, संवाद खत्म होने तक, न होने के बावजूद, प्रतिमंच और ४ उपन्यास - पुल पर ठहरा समय, सर्पयुद्ध, तीसरा प्रहर, कालतंत्र, प्रकाशित हो चुके हैं.

होलकर विज्ञान महाविद्यालय से आन्तरिक संलग्नता और आत्मीय जुड़ाव से वे अपने लेखन के लिये आवश्यक ऊर्जा और ऊष्मा लेते रहे हैं.

आदमी अपने बढ़ते कद के बारे में सोचता है,
सोचता है, कहीं कुछ रुक गया है यंत्रों के बीच
बीमार रिश्तों पर ठहरा
पक्षाघात के बीच देखता है पुन: उसका रंग बदल रहा है
बावजूद प्रशीतन के
वह जानता है संवाद ही तो है जो नहीं बदले हैं
वह जानता है मिट्टी को काटा नहीं जा सकता
उसके भीतर झांकना सेहत के लिए खतरनाक है
वह धीमे-धीमे बदल रहा है
आकार ले रहा है पुल का, बहाव को अनवरत जारी रखने का
यातायात के अनियंत्रण के परे कुछ क्षण ठहरता है
मां की मन्द होती रोशनी और पिता की खांसी में
अंधेरा उसकी आंखों पर ठहरता है जिसे वह नजरअन्दाज करता है
बांध के पानी को एकटक देखता है जो नियंत्रण के बावजूद
बहाव की प्रक्रिया में है
तोड़ना चाहता है अवरोधों को
तोड़ता भी है लेकिन कोई साक्षी नहीं होता
वह सोचता है, काश उसका जैविक संवाद होता
वह सहमता टहल सकता
अब वह मानता है जो कुछ सोचता है वह भटकाव है
वह तो पुर्जा है व्यवस्था का, जंग लगे हाथों का, कमजोर इरादों का
शोषण की परिकल्पना का, न बदलनेवाली मानसिकता का
कच्चे धागों का जो खींच रहे हैं -
हाथों की नसों का
लाल परदों के पार मत देखो -
वहाँ गोपनीय होने की रिहर्सल है
व्यवस्था की आंख को बनाये रखना नागरिक अनिवार्यता है
सभ्य होने की अनिवार्य शर्त है,
सार्वजनिक आचरण है
पकी हुई निष्ठा है
वह फीतों को समूचे दबाव से रोपता है
और घोषणा करता है - मंचन लम्बा चलेगा
न देखना चाहें तो लौट सकते हैं
जरूरी हुआ तो विवश कर देंगे
अब यही सार्थक है, यही प्रासंगिक है
हम तो कालजयी हैं अमरबेल की तरह
रेशम के कीड़ों की तरह रहते हैं
फीतों में गहराई तक.

□□

यथार्थ की सचाई

□ देवीप्रसाद मौर्य

डा. मौर्य ने इस महाविद्यालय से १९६४ में एम.एससी. (गणित) की परीक्षा उत्तीर्ण की. वे यहाँ गणित विभाग में शोध छात्र और प्राध्यापक भी रहे. कवि और चिन्तक डा. मौर्य की, भारतीय समाज के ऐतिहासिक और सामाजिक विश्लेषण पर केन्द्रित एक पुस्तक - ''क्रांति के पहले'' प्रकाशित हुई है. चार्वाक के दर्शन पर उनकी दूसरी कृति प्रकाशनाधीन है.

वात्याचक्रों में ढूंढना है व्यर्थ
स्थिर आकृतियाँ स्थायी स्वरूप
उत्ताल तरंगों पर फेनिल कुहासा
जिस तरह भर देता है आल्हाद से मन को
शब्द स्पर्श रूप रस गंध से
नृत्य करती हैं
अनुभूतियाँ विभिन्न विमाओं में
कैसे उन्हें पकड़ें कैसे उन्हें रोकें
जब पिघलता हो यथार्थ सिमटता हो समय
तब व्यर्थ हो जाते हैं सारे विचार
होता है केवल वही
जो फिसलता जाता है मुट्ठी में रेती सा.
शब्द है केवल सीढ़ियाँ
खिड़कियाँ है प्रतीक
कूद जाते हैं जहाँ सारे अस्तित्व
उफनते हुए महाशून्य में.
पँखुरियाँ प्यारे-प्यारे फूलों की
संगीत ठण्डी बयारों का
लहराते आकाश में पेंगें भरती
डैनों पर नापती
गौरय्या की अमित अभिलाषायें
बदली जा सकती है अवकल समीकरण में
एरोडायनेमिक्स में.
कैसा लगेगा - रसभंग तो हुआ ही
तिरोहित सारा सौन्दर्य शिवआनन्द
हठात् शब्दाघात
छिन्न-भिन्न करता है भावना का कैप्सूल
ला पटकता है कागज पर
लिखे गये मैट्रिक्स आव्यूह

यह है यथार्थ
समीकरणों की सममिती का
समाकलनों के कण्टूर, समाकारिता के प्रति चित्रण
कौन इन्हें कहेगा फूल-कौन इन्हें कहेगा
लहरों का नर्तन
कौन कहेगा इन्हें उड़ते पंछी.
व्हाट इज रियलिटी आफ्टर आल
इज एनीथिंग रियल इन दिस वर्ल्ड?
दार्शनिक बताते हैं -
चित्त का रचा हुआ है यह संसार
आभासी है मन के दर्पण पर
सबकुछ छलना सबकुछ मायाजाल
गॉडेल का तर्क कहता -
सब कुछ अपूर्ण - इनकम्पलीट
बोहर की सम्पूरकता
और बाह्म का आर्डर इम्पलिकेट
सभी करते हैं रुपान्तरित
इस स्थूल जगत को
संरचनाओं में, प्रक्रियाओं में.
तो क्या सचमुच
यह ब्रह्मांड, नक्षत्र, पृथ्वी, वनस्पति
जीवन यह वैश्वानर
नहीं है, कुछ भी नहीं?
रक्त, स्वेद, अश्रु की मोहक यह सृष्टि
जहाँ हम जीते हैं, जहाँ हम मरते हैं
शिराओं में हमारी दौड़ती ऊर्जा जीवन्त
आँखों के स्वप्न
और बातों की रचना अनन्त
क्या सचमुच नहीं है यह यथार्थ?

नहीं, नहीं यह संभव नहीं
यह विपर्यय, यह संशय
अर्द्धसत्यों का उलझाव.
पूर्णता तो है संहारकारी
साझेदारी है द्वन्द्वों की
मानुषी सच है केवल प्रत्यक्षता
साक्षात्कार - साक्षात्कार.
सर्ग प्रति सर्ग पदार्थ प्रति पदार्थ
बिखरता जाता है जो कुछ विज्ञान में
अभिसरित होता वही एकत्व की प्रज्ञा से
जहाँ जहाँ भी होंगी
सत्तायें परस्पर प्रतिरोधी
वहाँ-वहाँ होगा एकत्व
निश्चित ही तादात्म्य
भला बिना तादात्म्य के कैसे सधेगी
संवृत्ति विश्व की?
भला कैसे बनेगी स्थिर
संहति विश्व की?
यह विश्व जो सम्मित है
क्षेत्र है क्रियाओं का
उसमें ही मानुष है एकत्व अभिप्साओं का
सच है यह बच्चों की धमाचौकड़ी
आँखों की मुस्कान
युवामन की उत्तुंग अश्वारोहिणी छलांग
सच है यह सारा प्राणों का वैभव
मानव की इच्छाओं से सर्जित
अनुपम संस्कृतिओं का वितान.
सच है यह उर्जस्वित जीवन
सच यह आशाओं का गान

□□

कहानी

वे तीन-चार घण्टे

- किसलय पंचोली

साहित्यिक अभिरुचिवाली लेखिका इस महाविद्यालय की छात्रा रही हैं. वे वर्तमान में इसी महाविद्यालय के वनस्पतिशास्त्र विभाग में सहायक प्राध्यापिका हैं.

दिनांक दस जून, १९९१ को जैसे ही मैंने अपनी मारुति होलकर कॉलेज के मुख्य द्वार से अंदर ली मुझे गहन आंतरिक सकून मिला. वैसी ही शांति, वैसा ही अपनापन, जो किसी होस्टलर को घर आकर मिलता है, वही तृप्ति जब ब्याहता पहली बार पुन: अपने मायके लौटती है या कोई सैनिक लम्बी पोस्टिंग के बाद अपने नीड़ पर आता है. कोई कॉलेज किसी विद्यार्थी के मानस-पटल पर इतने गहरे पैठ सकता है! इसका खुद मुझे अहसास न था.

पीं ऽऽ पीं ऽऽ पें ऽऽ पें ऽऽ! पीछे से आने वाले वाहनों के लगातार हार्नों ने मेरी तंद्रा तोड़ी. मैं स्वयं से मन ही मन कह उठी-

''अरे! डॉक्टर अग्निहोत्री! यह तुम क्या कर रही हो? होलकर विज्ञान महाविद्यालय के गेट के निकट तो कार पार्किंग नहीं है.''

मैंने तुरंत अपने आप को संभाला. हाथों ने स्टियरिंग पर समुचित हलचल की और कार नियत दिशा में घूमी. पीछे जो हल्का सा ट्रेफिक जाम हुआ था ठीक हो गया. कार पार्क कर मैं यशवंत हॉल की ओर चल पड़ी.

परिसर में मौसम की ठंडक थी दिन में मूसलाधार बारिश जो हुई थी. ढेर सारे पेड़ मानो नहा लिए थे. सरसरा रहे थे जैसे हर आगंतुक का स्वागत करते हों. शताब्दी समारोह के मूक साक्षी. कई बार लगता है भगवान ने बोलने की शक्ति पेड़-पौधों को क्यों नहीं दी? शायद समर्पण व त्याग अबोले ही रह जाते हैं.

काफी लोग आए हुए थे. हर उम्र का प्रतिनिधित्व करते हुए. कई चेहरे पहचाने से लग रहे थे. तभी किसी ने मुझे रोका.

''मुझे पहचाना? तुम स्मिता व्यास थी ना! अब डॉ. स्मिता अग्निहोत्री. मशहूर गाइनिकोलॉजिस्ट. याद आया? अपन दोनों क्लास-मेट थे. फर्स्ट-ईयर बी - २. रूम नम्बर ४ में क्लास लगती थी. तुम्हें हरपर रेवड़ी खाना बहुत पसंद थी और.........''

उसकी तमाम हिंट के बावजूद मुझे उसका नाम याद नहीं आया. अलबत्ता बाकी सभी बातें याद हो आई. ऐसा अक्सर मेरे साथ होता है. फिर भी उसका उत्साह -भंग न हो इसलिए मैंने कुबूल किया कि मैं उसे पहचान गई.

वह कहीं काउण्टर प्रश्न न कर दे मुझे टेस्ट करने के लिए सो मैंने ही पूछा -

''तुम यहाँ कैसे?''

''मैं यहाँ ऑफिस-स्टॉफ में हूँ. पूरा दिन हो गया आज तो. शताब्दी समारोह जो हो रहा है. पता नहीं क्यों इतना लम्बा चौड़ा प्रोग्राम बना देते हैं.''

मैं समझ गई यह जो भी हो इसकी मन-भूमि में भावुकता की नमी नहीं. किसी संस्था से अपनापे की आर्द्रता उससे निकला हर विद्यार्थी अपनी पलकों में सहेजे यह जरूरी नहीं. वैसे भी आज की तेज रफ्तार जिंदगी में ऐसी बातों का औचित्य घटता जा रहा है.

''तुम्हारा क्लिनिक कहाँ है? मुझे कुछ प्राब्लम है. दिखाना चाहती हूँ.'' पहचान लिए जाने पर मतलब की बात पर वह आ गई थी.

मैंने अपने पर्स में से तुरंत विज़िटिंग-कार्ड निकाल कर उसे थमाया और कहा -''कभी भी आ जाना. पर आने के पहले रिंग जरूर कर लेना.''

''अच्छा. फिर मिलेंगे.''

मात्र एक सत्र तो बिताया था मैंने यहाँ. चौदह साल पहले पापा का ट्रांसफर खण्डवा से इन्दौर हो गया था. तभी इस कॉलेज में एडमिशन लिया था. बड़ा नाम व क्रेज़ था इस महाविद्यालय का. वैसा ही पाया था. मेरे पी.एम.टी. में सिलेक्शन का श्रेय कुछ हद तक इस कॉलेज को भी जाता है. शायद यह स्वमान्य तथ्य ही मुझमें सुबह से कुलबुलाहट पैदा कर रहा था आज यहाँ आने के लिए. तभी तो इसकी छाँव तले मैं अपने आप को धन्य महसूस कर रही हूँ. एम.जी.एम. में इससे कहीं ज्यादा समय बिताया है अपने शैक्षणिक जीवन का. किन्तु ऐसी व्यग्रता कभी उसके लिए नहीं उपजी.

यशवंत हॉल में एक कुर्सी पर चुप-चाप जा कर बैठ जाती हूँ. शासकीय महाविद्यालय का पुरातन हॉल अपने समस्त दारिद्र्य के बावजूद जग-मगा रहा है. चमक उठा है. समय की सापेक्षता अनश्वरता का उजास समेटे.

''तुम यहाँ क्यों छिपी बैठी हो डॉ. स्मिता. चलो आगे गेस्ट चेयर्स पर बैठो.'' प्रोफेसर राव मुझे फोर्स कर रहे थे.

''नहीं मैं यहीं ठीक हूँ सर!'' मैंने उठ कर अभिवादन करते हुए कहा.

मुख्य अतिथि वाले यश की तलाश मुझे यहाँ नहीं लाई. मैं तो मेरे अंदर के भूले हुए विद्यार्थीत्व को पुन: स्मृत करने आई हूँ. रोज की भागम भाग, चौइथराम अस्पताल से घर. घर से प्रायवेट नर्सिंग होम. फोन अपाइन्टमेंट. ऊपर से मिसेस डॉ. स्मिता अग्निहोत्री रोटेरियन होने के नाते उसकी मीटिंग्स. इतना सोचने की फुरसत ही कहाँ मिलती है कि हम कभी कहीं पढ़ते थे. जैसे मंदिर में किसी विशेष वार पर अपनी उपस्थिति कई लोगों को दर्ज करवाना शुभ लगता है. वैसे ही आज इन्दौर में होते हुए इस कॉलेज में आना मुझे शुभ लग रहा है. भला लग रहा है.

अब कार्यक्रम शुरू हो गया था. एक अति मधुर स्वर की धनी संचालिका की उद्‌घोषणा के साथ. हिन्दी व अंग्रेजी का खूबसूरत प्रयोग दोनों संचालक कर रहे थे. फिर सस्वर सरस्वती वंदना हुई. कार्यक्रम की अन्य औपचारिकताओं के साथ पूर्व प्राचार्यों के सम्मान व संबोधन की श्रृंखला चल ही रही थी कि पास की खाली कुर्सी पर संजना आ कर बैठ गई. संजना मेरी फास्ट फ्रेण्ड थी. होलकर कॉलेज में उसके साथ जुड़ी सभी यादें मीठी थीं.

तब लगता था हम मित्रता की मिसाल बनाएंगे. पता नहीं ऐसा क्यों होता है कि लड़कियों की मित्रता सतत नहीं रह पाती. ऐसा ही संजना व मेरे साथ भी हुआ. शायद सामाजिक व्यवस्था या प्रोफेशनल डायवर्सिटी इसके कारण रहे हों.

''हाय स्मिता तुम!'' आश्चर्य व खुशी से दोहरी होती वह बस मुझसे गले ही नहीं मिली. कदाचित हॉल की मर्यादा का उल्लंघन न कर पाने की मजबूरी वश.

संजना इसी कॉलेज से पूरी पढ़ाई कर पहले दूर-दूर के महाविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक रही. सालों मिलना नहीं हुआ. पिछले साल अचानक मिली थी तो बताया था उसने होलकर ज्वाइन कर लिया है.

''मुझे उम्मीद थी कि शायद तुम मिलो''. शायद तुम्हारा मोह ही मेरे लिए उत्प्रेरक बना मैंने कहा. -स्मिता मैं चाहती तो आज नहीं भी आती. हमारी वेकेशन चल रही है. और मेरा नाम रोके हुए लोगों में नहीं है. पर पता नहीं क्या है? इस मातृ संस्था में, जो मैं घर पर रुक ही नहीं सकी. मुझे लगा क्या हमारी जिंदगी इतनी कागजी तो नहीं कि लास्ट वर्किंग डे की साईन मुझसे मेरे मन से बड़ी हो जाए? अगर आज कोई ड्यूटी होती तो क्या मैं नहीं आती? मुझे अफसोस इस बात का है कि मैं रैली में शामिल न हो पाई. कुछ घरेलू मजबूरियाँ थी.''

मुझे लगा संजना ने मेरे मुँह की बात छीन ली है. उससे मिल कर मेरे जेहन में यह बात और पुख्ता हो गई कि वह मित्रता जिसका जन्म समान विचार धारा से होता है कभी खत्म नहीं होती. उसकी झंकार कितने ही अंतराल के बाद भी उतनी ही सधी हुई होती है.

फ़िर हम दोनों पूरे कार्यक्रम भर साथ रहे. उसने कुछ लोगों से मुझे मिलवाया.

कुल मिलाकर वे तीन-चार घण्टे जो मैंने १० जून, १९९१ को होलकर कॉलेज में बिताए मुझे इतनी मानसिक ऊर्जा दे गए जो अगर मैं वहाँ नहीं जाती तो कदापि दुनिया का कोई भी नर्सिंग होम, हॉस्पिटल, या मेरा अपना घर भी मुझे नहीं दे सकता था.

धन्यवाद होलकर कॉलेज! मुझे बुलाने और मेरे यहाँ आ पाने के लिए.

□□

ON LAUGHTER

The most utterly lost of all days is that in which you have not once laughed.

- Chamfort.

A laugh, to be joyous, must flow from a joyous heart, for without kindness there can be no true joy.

- Carlyle.

How inevitably does an immoderate laughter end in a sigh!

- South.

A good laugh is sunshine in a house.

- Thackeray.

I like the laughter that opens the lips and the heart, that shows at the same time pearls and the soul.

- Victor Hugo.

IN LIGHTER VEIN

Change anyway!

A successful business man, visiting his former college, came to see his old Economics Professor. In the course of the talk he was shown some current question papers in the subject. Seeing them, he observed : "Why, these are the same old questions!"

"Yes," agreed the Professor, "we do not change them."

"But," objected the old student, "don't you know the students will pass the questions on from class to class?"

"But," came the reply "in Economics, we are constantly changing the answers."

Dignity of office!

"I haven't a pencil or paper" exclaimed the U.T.C. cadet who arrived for his test in a hurry.

"What would you think of a soldier who goes to the battle field without his gun?" asked his instutctor.

"I'd think he was an officer."

From the Holkar College Times, 1st March, 1956.

दुखद इतिहास की पुनरावृत्ति आखिर कब तक ?

- साधना विरेकर

सामाजिक समस्याओं की ओर इंगित करने वाली लेखिका ने इसी महाविद्यालय से वनस्पतिशास्त्र में एम.एससी. परीक्षा उत्तीर्ण की. संप्रति-वानस्पतिकी विभाग से संबद्ध.

आज रविवार है. छुट्टी का दिन ही तो नौकरी पेशा महिलाओं के लिए अति महत्वपूर्ण होता है. थोड़ा आराम से उठना, हफ्ते भर के टाले गए कार्यों को पूर्ण करना, सबकी फरमाइश के अनुसार नाश्ता फिर खाना और फिर से नए सप्ताह की भाग-दौड़ के लिए उर्जा संग्रहित करना. काम तो शायद बाकी दिनों से भी अधिक ही होते हैं लेकिन नहीं होती तो सिर्फ घड़ी की सुइयों के साथ तेज होती जाती दिल की धड़कनें. कभी ७.२० तो कभी ९.३० की कक्षा के लिए महाविद्यालय पहुँचने के पूर्व घर का सारा इंतजाम करना होता है और सभी काम यंत्रवत निपटाने होते हैं. वहीं रविवार को जो निश्चिंतता होती है उसी के लिए ही शायद रविवार का इंतजार रहता है.

सबसे पहले पेपर का इंतजार होता है क्योंकि इस दिन ही सबसे पहले ताजा अखबार देखने व पढ़ने के लिए समय होता है वरना रोज तो शाम या फिर कभी-कभी रात में ही अखबार उठाने के लिए समय मिल पाता है. जैसे ही पेपर उठाया पहिले सरसरी निगाह मुख्य समाचारों पर डाली फिर आराम से बैठकर पढ़ने लगी बाकी सभी 'रंगोली' में व्यस्त थे. लेकिन जैसे ही खबर पढ़ी -''होलकर विज्ञान महाविद्यालय'' के बी.एस.सी. द्वितीय वर्ष के छात्र समीर बिष्ठ का बाम्बे - आगरा रोड पर दुर्घटना में निधन हो गया'' तो दिल काँप उठा, आँखे भर आयीं और मैं सोच में डूब गयी कुछ भी तो नहीं बदला है इन १४ वर्षों में.

मैंने सन् १९७२ में होलकर विज्ञान महाविद्यालय में प्रवेश लिया था. तब साधना रेगे मण्डलेश्वर जैसे छोटे से कस्बे से हायर सेकेण्डरी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने पर सबसे बड़ी तमन्ना थी तो इस महाविद्यालय में पढ़ने की.

सबने घर पर समझाया था कि रामबाग से प्रतिदिन ८ कि.मी. सायकल से आना-जाना ठीक न होगा. फिर कस्बे में सायकल चलाना और बात है, और इस बड़े शहर में और. तब मेरी जिद के आगे पापा हार गए थे और नई सायकल के साथ मैंने इस महाविद्यालय में प्रवेश लिया था उस दिन की खुशी साथ ही नए माहौल में प्रवेश का संकोच आज भी मानस-पट पर अंकित है व हर वर्ष प्रवेश लेनी वाली बी.एस.सी. प्रथम वर्ष की छात्राओं में मैं अपनी ही तलाश करती हूँ.

तीन वर्ष, नियमित प्रेक्टिकल व थ्योरी की कक्षाओं में कहाँ गुजर गए पता ही नहीं चला लेकिन उस समय की खट्टी-मीठी यादें, अलग-अलग प्राध्यापकों की छवी, साथियों का अच्छा बुरा व्यवहार, उन दिनों की उन्मुक्तता याद करके आज भी अपने आप को भुला देने के लिए पर्याप्त होता है. सच में वे दिन शायद किसी की भी जिंदगी में फिर से नहीं लौटते. आज भी लगता है काश! तब कुछ और समझ होती तो उन दिनों की हर घटना को लिख लिया होता तो वही पढ़कर आज उन सभी को कभी भी याद किया जा सकता था जो जिंदगी की राह में अपने-अपने रास्ते निकल गए हैं.

विभिन्न गतिविधियों के साथ-साथ महाविद्यालय में कक्षाएँ नियमित चलती रहती थीं व पढ़ने वालों को कभी निराश नहीं होना पड़ता था.

बी.एससी. होते ही किस विषय में एम.एससी. हेतु प्रवेश लिया जाए, इस पर बहुत विचार विमर्श के बाद मैंने वनस्पति शास्त्र में प्रवेश लिया. तीन वर्ष तक साथ-साथ पढ़ने वाले हम छात्र-छात्राएँ अलग-अलग विभागों में चले गए. अगस्त-सितम्बर तो-एम.एससी में क्या होगा? कौन से पेपर होंगे? कौन क्या पढ़ाएगा? लाइब्रेरी से कौन-सी किताबें लेनी होंगी-इसी में निकल गए.

एक दिन अचानक सभी एम.एससी. के छात्र-छात्राओं को १८ नम्बर कमरे में Physics lecture theater में एकत्रित होने का आदेश प्राचार्य की ओर से हुआ और सभी वहाँ एकत्रित होने लगे. प्राचार्य व वरिष्ठ प्राध्यापकों ने महाविद्यालय की भावी योजनाओं की चर्चा की व हम सभी ने अपने विचार भी रखे. सभा की समाप्ति पर सभी बाहर निकलकर सायकल स्टेण्ड पर आ गए और घर जाने की सोच रहे थे.

तभी हमारा एक साथी बाहर निकला. मेरी सहेली से उसने कुछ बात की और फिर एक ही क्षण में वह भयानक हादसा हुआ. मेरी सहेली के चीखने और रोने की आवाज के साथ सारे छात्र सायकलें धड़ा-धड़ फेंकते हुए बाहर की ओर भागे. भय और दुःख के साथ मैंने अपनी आँखें कुछ क्षणों के लिए बंद कर ली थीं. डरते-डरते आँखें खोलकर जो कुछ देखा था वह आज लगभग १५ वर्ष बाद भी दिल को कँपा देता है व आँखें भर आती हैं. एक पल पूर्व जिसे मुस्कुराते देखा था वही क्षत-विक्षत अवस्था में हमारी आँखों के सामने पड़ा था- बाम्बे - आगरा रोड पर तेजी से जाने वाले ट्रक ने ही उसकी यह हालत की थी और ट्रक वाला भाग खड़ा हुआ था.

इसके बाद औपचारिक तौर पर उसे अस्पताल ले जाया गया लेकिन सब कुछ समाप्त हो चुका था. हम सभी उसके घर गए और सब कुछ भरी आँखों से देखते रहे. जाने वाला तो जा चुका था लेकिन बाद में उसकी माँ व छोटी बहनों का जो हाल देखा वह सब आज भी हृदय पर अंकित है.

बाद में श्रद्धांजलि अर्पित की गयी. दो-तीन दिन छात्रों में आक्रोश रहा. कक्षाओं का बहिष्कार किया, भूख हड़ताल चली और अंत में Speed breaker लग गए और फिर सब कुछ सामान्य हो गया.

फिर मैंने एम.एससी. उत्तीर्ण कर ली. लेक्चरर के पद पर २-३ वर्ष बाहर कार्य करने के बाद मेरी नियुक्ति इसी महाविद्यालय में हो गयी. तब से अब तक हर ४-६ महिने में कोई-न-कोई विद्यार्थी इस मार्ग पर दुर्घटना का शिकार होता रहा है. कोई जान से हाथ धो बैठा है और उसके आत्मीय, जिंदगी भर उसे खोने की पीड़ा भोग रहे हैं या कोई अपने शरीर के अंग खोकर अपंग बना बेबस जिंदगी जीने पर मजबूर है.

हर दुर्घटना के बाद आक्रोश फैलता है, कक्षाओं का बहिष्कार होता है, छात्र-छात्राएँ भूख हड़ताल करते हैं और बाद में कोई न कोई मध्यस्थता करता है और आश्वासन के बाद सब कुछ सामान्य हो जाता है.

लेकिन, नहीं बदलता है तो वह है इस राजमार्ग का रास्ता, न ही थमता है नियति का यह कुचक्र. पता नहीं और कितने व्यक्ति इस राजमार्ग के बली और चढ़ेंगे. कितनी माताएँ अपने जिगर के टुकड़ों को खोयेंगी और न जाने कितने शिक्षक, कब तक अपने छात्रों की मौत पर मन ही मन रोयेंगे?

इस राजमार्ग का रास्ता बदलना इस महानगर की बहुत बड़ी आवश्यकता है, लेकिन पता नहीं कितने बलिदानों के बाद यह आवश्यकता पूर्ण होगी, वरना हर बार श्रद्धांजलि वही होगी सिर्फ बदल जाएगा नाम. कौन लेगा इसका उत्तरदायित्व कि इस दुखद इतिहास की पुनरावृत्ति न हो, इस राजमार्ग पर.....

□□

FROM THE COLLEGE VISITORS BOOK

Pleasure to briefly visit this historic institution — particularly as it is so close to its 100 anniversary. Wish you many centuries of progress. [signature]

Yash Pal

5.1.91 Chairman U.G.C. New Delhi

I was very glad to visit the Holkar Science College and give a talk on the Radical Humanism as developed by M.N. Roy. It was very nice to meet the staff and students of the college. I extend my best wishes for the continued progress in the college. [signature] V.M. Tarkunde 9-2-91

होलकर विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य

□
प्रो. महेश दुबे
□

(१)	डॉ. वासुदेव विट्ठल भागवत	-	१९६१-६४
(२)	प्रो. नारायण सिंह	-	१९६४-६८
(३)	डॉ. रविप्रकाश	-	१९६८-७२
(४)	डॉ. श्रीधर गोविन्द हरमलकर	-	१९७२-७५
(५)	डॉ. दयाशंकर जोशी	-	१९७५-७८
(६)	प्रो. सुरेन्द्र मिश्र	-	१९७८-७९
(७)	डॉ. धर्मवीर शर्मा	-	१९७९-८१
(८)	डॉ. माधव गणेश नेने	-	१९८१-८४
(९)	प्रो. बालकृष्ण निलोसे	-	१९८४-८८
(१०)	डॉ. ओमनारायण माथुर	-	१९८८-९०
(११)	**प्रो. प्रभाकर काले (वर्तमान प्राचार्य)**	-	१९९०

१९६१ में कॉलेज के विभाजन के बाद का डॉ. भागवत का समय उनके सेवा-काल का उत्तरार्ध था. उनका कुछ समय विभाजन की औपचारिकताओं में तथा उसके बाद की व्यवस्थाओं में बीता. इस अवधि में महाविद्यालय को डॉ. जाकिर हुसेन, कृष्ण मेनन, जनरल थिमैया और तारकेश्वर सिन्हा का स्वागत करने का अवसर मिला. १९६२ में ही भारत-चीन युद्ध हुआ. सुरक्षा कोष में कॉलेज की ओर से जिमखाना कोष से १ लाख रुपये दिये गये. इसी समय डॉ. भागवत ने सभी प्राध्यापकों और विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की और फायरिंग का अभ्यास करवाया. इस प्रशिक्षण में डॉ. हरमलकर और डॉ. केमकर ने सक्रिय सहयोग दिया.

डॉ. भागवत के पश्चात आये **प्रो. नारायण सिंह.** वे गणित के प्राध्यापक थे. उत्कृष्ट शिक्षक के रूप में विख्यात प्रो. नारायण सिंह सरल और सात्विक प्रकृति के धार्मिक व्यक्ति थे. वे अपने सिद्धांतों, मान्यताओं और आदर्शों पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति थे. और अपने निजी जीवन में भी अपनी मान्यताओं के साथ जीते थे. अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया था. कक्षा में उनसे पढ़ना - अपने आप में एक सुखद अनुभव होता था. उनके अक्षर स्पष्ट थे. भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था. फलस्वरूप उनके व्याख्यान अपने आप में सम्पूर्ण होते थे. वे स्तरीय और क्लासिकल पाठ्य-पुस्तकों का ही उपयोग करते थे. हॉबसन और विटेकर वाटसन के गणितीय विश्लेषण पर तथा हार्डी की कालजयी कृति Pure Mathematics उन्हें विशेष प्रिय थी. प्रायः वे पढ़ाते-पढ़ाते विद्यार्थियों से जीवन में नैतिक मूल्यों के महत्व पर भी चर्चा करते थे. उनके सोच में, दिनचार्या में और व्यापक रूप से उनके जीवन में एक प्रकार का गणितीय अनुशासन था. निस्संदेह वे इस युग में हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा के सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि थे. इन्दौर से जाने के बाद वे रीवा विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे. डॉ. बसु के बाद इस शैक्षणिक ऊँचाई तक पहुँचने वाले वे इस कॉलेज के दूसरे प्राचार्य थे. महाविद्यालय में चार वर्ष का उनका कार्यकाल शांत और गरिमापूर्ण था.

आज, उनका स्मरण, जातक की इन पंक्तियों को दोहराने जैसा है :

अनवस्सुत चित्तस्य अनन्वाहत चेतसो,
पुञ्ज पापपाहीनस्य नत्थि जागरतो भयं।।

१९६८-१९७२ तक का **डॉ. रविप्रकाश** का कार्यकाल शैक्षणिक विकास के संदर्भ में उल्लेखनीय है. इस अवधि में डॉ. रविप्रकाश के प्रयत्नों से स्नातकोत्तर स्तर पर जीव-विज्ञान, जीव-रसायन तथा स्नातक स्तर पर भौमिकी एवं औषधि विज्ञान के पाठ्यक्रम प्रारंभ हुए. विश्वविद्यालय अनुदान

आयोग की सहायता से विद्यार्थी भवन, और भौतिकी तथा प्राणिकी के स्नातकोत्तर खण्डों का निर्माण सम्भव हुआ. डॉ. रवि प्रकाश रचनात्मक दृष्टि वाले उदारमना और कल्पनाशील व्यक्ति थे. भविष्य की आवश्यकताओं के अनुकूल महाविद्यालय के विकास की योजनाओं और उनके क्रियान्वयन के लिये सार्थक पहल का श्रेय डॉ. रवि प्रकाश को है. मूलतः वे प्राणिकी के प्राध्यापक थे. उनके समय में भौतिकी, रसायन और प्राणिकी में एक से अधिक बार सेमीनार आयोजित किये गये. हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली को विकसित करने सम्बंधी कर्मशालाएं भी उनके प्रयत्नों से महाविद्यालय में सम्पन्न हुईं. महाविद्यालय परिवार से उनके सम्बंध अनौपचारिक और आत्मीय रहे. सुख-दुःख के अवसरों पर शासकीय नियमों को अनदेखा कर मानवीय स्तर पर सहायता एवं सहयोग के लिये वे सदैव तत्पर रहते थे. यही कारण है कि वे आज भी महाविद्यालय परिवार द्वारा याद किये जाते हैं.

> I remember with great pride my tenure as Principal of the prestigious Holkar Science College Indore. Though I went as an outsider but people of Indore in general and the students community in particular accepted me as one very near and dear to them. Due to the mutual goodwill and cooperation I was successful in starting the college graduate classes in Pharmacy and post-graduate classes in Biochemistry. The biggest achievement of the college had been its recognition as nucleus to develop Indore University teaching departments. The University teaching department of Life Sciences started under my headship in the college. The college received handsome grants from U.G.C. under COSIP. The past glory, high traditions and maintenance of institutional dignity and prestige made a deep impression on the then Chandcellor and Rajyapal Shri S.N. Sinha who selected me as Vice-Chancellor of Bhopal University. I owe a great deal to this great college which can not be expressed in words. The college has a great future and so its students and teachers.
>
> **- Ravi Prakash**

डॉ. रविप्रकाश के समय में महाविद्यालय - सांस्कृतिक और खेल-कूद की गतिविधियों में सक्रिय था. अंतमहाविद्यालयीन शतरंज और जलक्रीड़ा प्रतिस्पर्धाओं में कॉलेज ने विजय प्राप्त की थी. सुरेश किबे शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे. जलक्रीड़ा में कवलगीकर और वालिम्बे का नाम था. टेबल टेनिस में रंजन अग्रवाल, प्रदीप वर्मा, विमलेन्दु वाजपेयी, यशवंत शितूत, सुरेश किबे, शशि देशपांडे एवं शोभना पाध्ये ने कॉलेज का प्रतिनिधित्व किया था. बेडमिंटन में - सक्सेना, जगदीप जोहर, यू.सी. अग्रवाल, भटनागर, कुमारी मीना सक्सेना, शोभना पाध्ये ने नाम कमाया था. मोदी, रघुवीरसिंह, इन्दौरीलाल जैसवाल, कुलदीप भल्ला - फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी थे. बासकेट बॉल में चेतन आनन्द और अविनाश आनन्द प्रसिद्ध थे. कबड्डी में विश्वास खरे का नाम था. (श्री खरे के प्रतिभाशाली और सम्भावनाओं वाले जीवन का दुःखद अंत १९७१ में हुई उनके असामयिक निधन में हुआ. कॉलेज से एम.एस.सी. करने के उपरांत वे बेंगलोर में शोधकार्य कर रहे थे.) रवीन्द्रसिंह ने एथलेटिक्स, हॉकी, बासकेटबॉल और कबड्डी में कॉलेज का प्रतिनिधित्व किया था.

डॉ. रविप्रकाश एन.सी.सी. के कार्यक्रम में

डॉ. रवि प्रकाश के कार्यकाल में संस्कृत की विदुषी श्रीमती कमला रत्नम, प्राच्य इतिहास तथा पुरातत्वेत्ता डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, डॉ. डी.एस. कोठारी और डॉ. बाबूराम सक्सेना ने कॉलेज में आकर छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया. अमेरिका के कॉलेजों के अध्यक्षों के एक दल ने - अपनी भारत यात्रा के दौरान महाविद्यालय को भेंट दी. भारत और अमरीका के बीच परस्पर समन्वय और शैक्षणिक सम्भावनाओं की खोज में आये हुए इस दल ने २५ सितम्बर, १९७१ को महाविद्यालय में आकर यहाँ के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों से चर्चा की.

डॉ. रवि प्रकाश होलकर विज्ञान महाविद्यालय से भोपाल विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर नियुक्त कर भेजे गये. इन दिनों वे भोपाल में रह रहे हैं.

श्रीधर गोविंद हरमलकर इसी कॉलेज के छात्र हैं. १ जनवरी, १९१७ को जन्में डॉ. हरमलकर ने १९३४ में इस कॉलेज में प्रवेश लिया और १९४१ में रसायन शास्त्र में एम.एससी. की उपाधि प्राप्त की. व्यापक सांस्कृतिक अभिरुचियों वाले - डॉ. हरमलकर की खेल-कूद में भी गहरी दिलचस्पी रही है. हॉकी के वे अच्छे खिलाड़ी थे. उन्होंने एन.सी.सी. का प्रशिक्षण लिया था और अनेक वर्षों तक कॉलेज में एन.सी.सी. को सुचारु रूप से संचालित करने में सहयोग दिया था. वे महाराष्ट्र साहित्य सभा, परस्पर बैंक, गणेश विद्या मंडल तथा बालनिकेतन जैसी अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं. सभी से उनके सम्बंध अनौपचारिक और मधुर होने के कारण उनके सामाजिक परिचय का दायरा अत्यंत विस्तृत है. फलस्वरूप प्राचार्य के पद पर कार्य करते हुए उन्हें अपने सहयोगियों के साथ-साथ नगर के प्रबुद्ध वर्ग का भी पूरा सहयोग मिला. उनके परिवार में सांस्कृतिक अभिरुचियों की परम्परा को बनाये रखने का श्रेय निश्चित ही स्व. श्रीमती मालिनी हरमलकर के शालीन व्यक्तित्व को है. डॉ. हरमलकर स्वतंत्रता-संग्राम की गतिविधियों से भी जुड़े हुए थे.

उनके समय में ले. जनरल जगजीत सिंह अरोरा, कॉलेज के स्नेह-सम्मेलन के मुख्य अतिथि होकर आये थे. अपने भाषण में उन्होंने

बांगला देश के युद्ध में भारतीय सेना की रणनीति, युद्ध चातुर्य और मोर्चा-बंदी तथा पाकिस्तानी सेना के शस्त्र-समर्पण सम्बंधी विश्लेषणात्मक और रोचक जानकारी दी. एक लम्बे समय तक यह कार्यक्रम श्रोताओं को याद रहा.

राष्ट्रीय विचार धारा से प्रभावित, निष्ठावान - डॉ. हरमलकर का कार्यकाल निर्बाध और आत्मीय रहा. अपने यशस्वी जीवन के ७५ वें वर्ष में आज भी वे तरुण - स्फूर्ति से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं.

डॉ. दयाशंकर जोशी प्रारंभ से ही मेधावी छात्र थे. १९४० में उन्होंने महाराजा शिवाजीराव हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में प्रावीण्य सूची में नाम सहित उत्तीर्ण कर - अमलेन्दु स्वर्ण-पदक और कॉवले स्मृति पुरस्कार प्राप्त किया. १९४० से १९४४ तक वे वर्षों में वे होलकर कॉलेज के छात्र रहे. १९४२ में इण्टरमीजियेट में उन्हें कॉलेज का चमले पुरस्कार मिला. उन्होंने इलाहाबाद से १९४६ में भौतिकी में एम.एससी की परीक्षा उत्तीर्ण कर सी.एस.आई.आर. में दो वर्षों तक कार्य किया और नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला में डॉ. कृष्णन के साथ शोध कार्य किया. वे इस कॉलेज में सहा. प्राध्यापक नियुक्त होकर आये - और यहीं उन्हें विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य करने का अवसर भी मिला. वे एक कुशल शिक्षक थे. विद्यार्थियों में वे आदर के साथ देखे जाते थे. वे एक स्पष्ट वक्ता, दृढ़ निश्चयी और अपनी मान्यताओं पर अडिग रहने वाले प्राचार्य थे. अच्छे शिक्षकों को वे सम्मान देते थे. अपने कार्यकाल में, विशेष रूप से आपातकाल के हटने के बाद छात्रों की बढ़ती हुई अनुशासनहीनता को न तो उन्होंने चुपचाप सहा और न ही उससे टकराव को टाला अपितु दृढ़ता से उसे चुनौती दी.

भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है. वे अच्छी रुचियों वाले, अध्ययनशील और प्रखर शिक्षक एवं प्राचार्य के रूप में याद किये जायेंगे.

इस संस्था में अपने, मात्र एक सत्र के कार्यकाल में ही **प्रो. सुरेन्द्र देव मिश्र** ने महाविद्यालय के पूरे परिवार का सम्मान और स्नेह अर्जित कर लिया था. उनके व्यक्तित्व में गणितीय अनुशासन का लालित्य और सैनिक संस्कारों की दृढ़ता का अभूतपूर्व सम्मिश्रण है.

प्रो. सुरेन्द्र देव मिश्र

उनका जन्म १३ मार्च, १९२१ को एक सम्पन्न और कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ था. १९४२ में उन्होंने ऑनर्स के साथ गणित में स्नातकोत्तर उपाधि ली. दूसरे विश्वयुद्ध के समय उन्होंने रॉयल इंडियन एयर फोर्स में कमीशन लेकर दो वर्ष तक फ्लाइंग ऑफसर के रूप में कार्य किया. युद्ध की समाप्ति पर वे लोक सेवा आयोग द्वारा राज्य शिक्षा सेवा के लिये चुने गये और नागपुर के साईस कॉलेज से उन्होंने अपने शिक्षक जीवन की शुरूआत की और बाद में रायपुर के महाविद्यालय में उनका अधिकांश समय व्यतीत हुआ. सतना, दमोह, ग्वालियर के महाविद्यालयों में प्राचार्य के रूप में कार्य करने के उपरांत १९७८ में वे इस महाविद्यालय में पदस्थ हुए.

लगभग १६ वर्षों तक वे एन.सी.सी. से सक्रियता के साथ जुड़े थे. इन्फेन्ट्री में सिगनल ऑफीसर के रूप में केप्टन के पद पर और एयरविंग में स्क्वेड्रन लीडर के पद पर उन्होंने कार्य किया. वे नवनिर्मित भोपाल विश्वविद्यालय के कुल सचिव भी थे. होलकर विज्ञान महाविद्यालय से सेवा-निवृत्ति के उपरांत उन्होंने इन्दौर विश्वविद्यालय की महाविद्यालयीन विकास परिषद के निदेशक और म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी के संचालक के रूप में भी सफलता पूर्वक कार्य किया.

दबंग और प्रभावी व्यक्तित्व के प्रो. मिश्र ने कॉलेज में व्यवस्था और अनुशासन के मानदण्ड स्थापित किये और नयी कार्य-शैली विकसित की. कॉलेज स्नेह सम्मेलन के सर्वाधिक भीड़ भरे कार्यक्रम संगीत प्रतियोगिता में बाहर के कुछ उपद्रवी और 'दादा' किस्म के छात्रों को भीड़ में घुसकर, गला पकड़ कर खींचकर बाहर लाते हुए हम सबने उन्हें देखा है.

उन्होंने कॉलेज के जीवन को एक नयी प्रफुल्लता और ताजगी दी.

इन दिनों वे स्थायी रूप से भोपाल में रह रहे हैं.

डॉ. धर्मवीर शर्मा एक ख्यातिप्राप्त प्राणि-विज्ञानी थे 'Anatomy of the Indian insectives, suncus murinus' पर किया गया उनका कार्य विदेशों में भी सराहा गया था. Genetic code and Protein Biosynthesis पर १९७० में प्रकाशित उनका शोध-पत्र अपने वैज्ञानिक अनुमान के लिये चर्चित हुआ था, जिसमें उन्होंने लिखा था -"Some of the top scientists are now engaged in intensive work to synthesise genes. It is only a matter of time, their success seems guaranteed. What Next? Genetic Control of hereditary diseases may appear today to be a remote possibility. The problem surely is overwhelmingly difficult but its solution is not beyond the reach of the bands of dedicated and competent scientists spread all over the world." और कुछ समय पश्चात डॉ. खुराना के कार्यों ने इन अनुमानों की सत्यता की पुष्टि की. 'Nature' -जैसी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त शोध-पत्रिका में उनके लेख प्रकाशित हुए हैं.

अध्ययन की उनकी रुचियाँ बहुत व्यापक हैं. विज्ञान के इतिहास, धर्म और विज्ञान, भौतिकी की अधुनातन शोध-प्रवृत्तियों के साथ संस्कृत ग्रंथों एवं दर्शन में उनकी गहरी रुचि है. अध्ययन के साथ उनमें वैज्ञानिक विश्लेषण की क्षमता गजब की है. उन्होंने अनेकों, अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में भाग लिया था और वे कन्सास मेडिकल रिसर्च सेंटर (केनाडा) के अतिथि प्राध्यापक थे. १९८१ में वे होलकर विज्ञान महाविद्यालय से सेवा-निवृत्त हुए. बाद में उन्होंने विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलपति के रूप में भी कार्य किया.

सौम्य और स्नेहिल डॉ. शर्मा - लॉन टेनिस और टेबल टेनिस के अच्छे खिलाड़ी हैं.

बायें से दायें - डॉ. ओ.एन. माथुर, प्रो. बी.के. निलोसे, डॉ. डी.एस. जोशी, डॉ. एस.जी. हरमलकर एवं डॉ. डी.आर. शर्मा

अध्ययन के अपने व्यापक आयामों और गहरी शैक्षणिक प्रतिबद्धता के साथ उन्होंने इस महाविद्यालय को आत्मीय नेतृत्व प्रदान किया.

उनके बाद आये **डॉ. माधव गणेश नेने**, भौतिकी के प्राध्यापक थे. वे इसके पूर्व भी ६० के दशक में यहाँ कार्य कर चुके थे. डॉ. नेने भौतिकी के प्रतिष्ठित शिक्षक थे. तीक्ष्ण और कुशाग्र डॉ. नेने गम्भीर अध्ययन प्रवृत्तियों के साथ-साथ खेल-कूद में समान रुचि लेते हैं, और टेनिस के अच्छे खिलाड़ी हैं. अपनी सांस्कृतिक अभिरुचियों सांश्लेषिक क्षमताओं, स्पष्टवादिता और दृढ़ निर्णयों के लिये वे हमेशा ही याद किये जायेंगे. उनका जन्म बांदा (उ.प्र.) में हुआ था. उन्होंने उन्नाव, कानपुर और आगरा में शिक्षा प्राप्त की. डॉ. एस.एस. जोशी (जोशी-प्रभाव) और डॉ. अरनीकर के मार्गदर्शन में उन्होंने 'The Effect of Nuclear Radiation on Electrical Discharge' विषय पर पी.एच.डी. प्राप्त की. उनके १० शोध-पत्र प्रकाशित हो चुके हैं. शैक्षणिक नवाचारों के प्रति उनका विश्वास रहा है. यही वजह है कि व्यवस्था का पक्षधर होते हुए भी उनका मन समकालीन परिवर्तनों की प्रासंगिकता और व्यवस्था विरोधी स्वरों की ओर आकर्षित होता रहा है.

खगोल-विज्ञान के अध्ययन में और रात्रि आकाश में भ्रमण कर रहे यायावर तारों, नक्षत्रों और ग्रहों को पहचानने तथा दूरबीन से उन को पकड़ने में उनकी गहरी रुचि थी.

उनके समय में ६ठी योजना में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्यक्रमों में कॉलेज की पूरी योजनाएँ स्वीकृत हुईं और अनुदान प्राप्त हुआ था. नये बने भोजन-कक्ष और भौतिकी के डार्क-रूम तथा व्याख्यान कक्ष का निर्माण-कार्य उन्हीं के कार्यकाल में स्वीकृत हुआ था. महाविद्यालय की शताब्दी - सम्बंधी प्रारंभिक कार्य उन्हीं के समय में शुरू किये गये थे. अतिरिक्त संचालक के रूप में वे इस कॉलेज को 'आदर्श' किये जाने सम्बंधी

डॉ. माधव गणेश नेने

और स्वशासी योजनाओं से भी सक्रिय रूप से जुड़े थे. वर्तमान में वे Indian Association of Physics Teachers से सम्बद्ध हैं.

प्रो. गिलोरे इसी महाविद्यालय में भौतिकी विभाग के अध्यक्ष के रूप में सफलता पूर्वक कार्य कर चुके थे. साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक अभिरुचियों के प्रो. गिलोरे - रामकृष्ण आश्रम की गतिविधियों से भी सक्रिय रूप से जुड़े हुए हैं. उनमें सक्षम एवं प्रभावी नेतृत्व की नैसर्गिक क्षमताओं के साथ-साथ अपने सहयोगियों को भी प्रेरित करने की योग्यता थी. उन्होंने कॉलेज परिसर को स्वच्छ और आकर्षक बनाने के लिये अथक परिश्रम किया. स्वशासी योजना को तैयार करने में उनका योगदान था. वैज्ञानिक जानकारियों को जन-सामान्य तक पहुँचाने के उद्देश्य से - उन्होंने महाविद्यालय में अनेकों कार्यक्रम प्रारंभ किये. १९८५-८६ में हेली के धूमकेतु के आगमन के समय - उन्होंने व्याख्यानों के माध्यम से और रात्रि को दूरबीन से धूमकेतु को दिखाये जाने की व्यवस्था से जन साधारण तक 'हेली' को पहुँचाया. इन दिनों वे अम्बेडकर संस्थान से सम्बद्ध हैं.

डॉ. ओम नारायण माथुर मूलतः भौतिकी के थे. वे अत्यंत शालीन, शिष्ट और मृदुभाषी थे. उनके काल में स्वशासी योजना के सभी पक्षों पर विस्तार से प्रतिवेदन तैयार किया गया और इस योजना के क्रियान्वयन की दिशा में प्रथम चरण प्रारंभ हुआ. इन्हीं दो वर्षों में शताब्दी कार्यक्रमों को विस्तार मिला और इसकी मूल अवधारणा का प्रारम्भिक प्रारूप तैयार किया गया.

वर्तमान में वे म.प्र. उच्च शिक्षा अनुदान आयोग, भोपाल में सचिव हैं.

प्रो. प्रभाकर काले - कॉलेज के वर्तमान प्राचार्य हैं. वे इसी महाविद्यालय के विद्यार्थी हैं. सरल और सात्विक प्रवृत्तियों के प्रो. काले अत्यंत परिश्रमी और संस्था के लिये समर्पित व्यक्ति हैं. कॉलेज के शैक्षणिक कार्यक्रमों की

प्रो प्रभाकर काले

गुणवत्ता तथा सौ वर्ष पुरानी गौरवशाली परम्पराओं को बनाये रखने के लिये वे प्रतिबद्ध हैं. स्पष्टवादी, प्रो. काले अपने दृढ़-निर्णयों के लिये भी शिक्षा जगत में प्रसिद्ध हैं.

एक सामान्य परिवार में २१ - दिसम्बर, १९३२ को जन्मे प्रभाकर ने लगभग आर्थिक विपन्नता की स्थितियों से संघर्ष करते हुए फ्री-शिप छात्रवृत्ति के सहारे अपना अध्ययन पूरा किया. उन्होंने १९४७ से १९५३ तक के वर्षों में होलकर कॉलेज से बी.एससी. और एम.एससी. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की. बी.एससी. में मध्यभारत क्षेत्र में आगरा विश्वविद्यालय में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने पर उन्हें गोविंद राम सक्सेरिया पुरस्कार प्राप्त हुआ था. वे इस कॉलेज की एम.एससी. भौतिकी के प्रथम समूह के विद्यार्थी हैं. विद्यार्थी जीवन के संघर्षों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं ने उन्हें आत्मविश्वास और मितव्ययिता की जो पूँजी दी है वह उनकी कार्य प्रणाली में स्पष्ट दिखाई देती है.

□□

मुर्झाती कलियाँ

मैं टहल कर
बाग से
जब कभी आता हूं
खुशबू फूलों की साथ लिये आता हूं
दुःख कष्ट संसार के
भूल-भूल जाता हूं
जब कभी टहल कर
गलियों से
मैं आता हूं
दुःख सब संसार के भूल नहीं पाता हूं
नन्हीं नन्हीं कलियां
बसंत की तलाश में खिल भी नहीं पाती हैं
सूख-सूख जाती हैं
जब कभी गलियों में
झांक कर मैं आता हूं
फिर को कोसना
भूल नहीं जाता हूं

सच्चिदानंद कवीश्वर
बी.एससी. प्रथम वर्ष
- होलकर सायन्स कॉलेज बुलेटिन - १९६८-६९ से

मानवेन्द्रनाथ राय और उनका दर्शन

- वी.एम. तारकुंडे

एम.एन. राय पर बोलना मुझे अच्छा लगता है. इस महाविद्यालय में आकर अपने प्रिय विषय पर बोलने का अवसर मिलने पर मुझे प्रसन्नता है. एम.,न. राय का व्यक्तित्व अत्यंत रोमानी था. मात्र १४ वर्ष की आयु में वे सशस्त्र क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आये और अनुशीलन समिति के सदस्य बने. प्रथम विश्वयुद्ध के समय, वे युद्ध सामग्री प्राप्त करने के लिये विदेश गये. अमेरिका होते हुए वे मेक्सिको पहुँचे, जहाँ उन्होंने समाजवादी पार्टी की स्थापना की और जिसे बाद में उन्होंने कम्यूनिस्ट पार्टी का रूप दिया. इस प्रकार रूस के बाहर बनी पहली कम्यूनिस्ट पार्टी के वे संस्थापक थे. मेक्सिको से वे रूस गये. वहाँ लेनिन से उनके सैद्धान्तिक मतभेद हुए. १९३० के लगभग वे भारत आये. यहाँ नागपुर षड्यंत्र में उन पर मुकदमा चला और वे ६ वर्षों तक जेल में रहे. वे स्वयं शिक्षित व्यक्ति थे. मैं, जितने भी लोगों के सम्पर्क में आया हूँ, उनमें राय का व्यक्तित्व अत्यंत विलक्षण और प्रभावी था. कांग्रेस से उनके मतभेद द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अधिक स्पष्ट हुए. राय के मत में यह साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के बजाय फासिस्ट विरोधी युद्ध था. उनके अनुसार जर्मनी, इटली जैसी फासिस्ट ताकतों की विजय का अर्थ था, लोकतांत्रिक स्वातंत्र्य का अंत. उनके मत में फासिस्ट ताकतों की पराजय से ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के शक्तिशाली होने की बजाय ब्रिटेन की प्रजातांत्रिक शक्तियाँ ज्यादा मजबूत होंगी और भारत अपने स्वतंत्रता के लक्ष्य के अधिक निकट पहुँच सकेगा. उनके इस विश्लेषण से अनेक लोग सहमत नहीं थे. परंतु बाद की घटनाओं ने यह स्पष्ट किया कि भारत की स्वतंत्रता में जिन ऐतिहासिक कारणों का योगदान रहा है, उसमें फासिस्ट ताकतों की पराजय की मुख्य भूमिका रही है.

भारतीय लोकतंत्र अत्यंत कमजोर है. इसका कारण है कि हमारा स्वतंत्रता प्राप्ति का आंदोलन भी दुर्बल था. उसमें लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों की बजाय ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का बाहुल्य था. इस प्रकार सारा आंदोलन एक प्रकार के ऋणात्मक राष्ट्रवाद द्वारा संचालित था. सामान्य जनता में लोकतंत्र के बारे में जानकारी नहीं थी. भारतीय जनता अंग्रेजों को भगाकर देश में गाँधी राज या रामराज चाहती थी. स्वराज्य नहीं. फलस्वरूप भारत स्वतंत्र तो हो गया परंतु भारतीय जनता परतंत्र बनी रही. इस प्रकार के विचारों से राय की लोकप्रियता में कमी आयी - पर इसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी. वे कहा करते थे - "If we are not willing to sacrifice our popularity for the sake of our principles then we do not deserve to be called a Revolutionary at all."

शताब्दी व्याख्यान माला के अंतर्गत सुप्रसिद्ध न्यायविद् और मानवतावादी श्री तारकुंडे का यह व्याख्यान ९ फरवरी, १९९१ को महाविद्यालय में, म.प्र. उच्च शिक्षा अनुदान आयोग के सौजन्य से आयोजित किया गया था. कार्यक्रम के अध्यक्ष थे डॉ. आर.एन. जैन आयोग के सदस्य डॉ. हजेले भी विशेष रूप से उपस्थित थे

इतिहास ने उनकी स्थापनाओं को सिद्ध किया है. राय की मान्यता थी कि राष्ट्रीयता अपने आप में प्रगतिशील ताकत नहीं है. राष्ट्रीयता संशोधन-धर्मा प्रवृत्तियों का एक रूप है. उन्होंने आक्रामक राष्ट्रीयता के खतरों से आगाह करते हुए स्पष्ट किया कि लोकतंत्र की मर्यादा में ही राष्ट्रीयता अपना प्रगतिशील स्वरूप बनाये रख सकती है. आज भी हमारे बीच ऐसे राष्ट्रवादी मिलेंगे जो परोक्ष या अपरोक्ष रूप से फासिस्ट ताकतों का पोषण कर रहे हैं. भारत में आज भी धार्मिक फासीवाद के फैलाव की गुंजाइश है.

मानववाद में व्यक्ति को महत्व दिया जाता है. यदि मैं, इसे परिभाषित करना चाहूँ तो कहूँगा कि यह एक ऐसा दर्शन है या मानसिक प्रवृत्ति है जिसकी केन्द्रीय भावना में व्यक्ति को महत्व दिया जाता है और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके प्रतिष्ठा के साथ रहने के अधिकार को सुनिश्चित किया जाता है. व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बंधों को समझने के लिये उनमें जो फर्क है उसे समझ लेना चाहिये. व्यक्ति को प्रतिबोध है, उसके मन है, उसमें चेतना है, उसमें बोधशक्ति है. वो सुख-दुःख, प्रगति-अवनति जानता है. समाज प्राणी नहीं है. समाज प्राणियों का समूह है. व्यक्तियों की उन्नति में ही समाज की उन्नति है. मानववाद के अनुसार किसी भी राजनैतिक या आर्थिक व्यवस्था के अच्छे या बुरे होने का मापदण्ड मनुष्य है. पिछले ७० वर्षों में रूस में जो व्यवस्था चलन में थी, उसकी सफलता या विफलता की, एक औसत रूसी व्यक्ति की प्रगतिशीलता, शिक्षा, उसके स्वतंत्र विचार करने की क्षमता और स्वयं को विकसित करने की योग्यताओं के आधार पर ही मापा जा सकता है. समाज और राष्ट्र स्वयं में जैविक-इकाइयाँ नहीं हैं. इसलिये व्यवस्थाओं का मूल्यांकन व्यक्ति के विकास के आधार पर ही किया जा सकता है. प्रगत व्यक्तियों का समाज भी प्रगतिशील होता है.

मानववाद दो प्रकार का होता है. एक तो शास्त्रीय और दूसरा धार्मिक या ईश्वरीय. भारत में धार्मिक मानववाद की परम्पराएँ अत्यंत प्राचीन हैं. दोनों ही व्यक्ति और विश्व-बन्धुत्व को महत्व देते हैं. परंतु हम अपने मूल्यों को किस प्रकार प्राप्त करते हैं - यहीं दोनों में मूलभूत अंतर है. राय के मानवतावादी विचारों की पृष्ठभूमि वैज्ञानिक है. राय ने शास्त्रीय मानववाद के जिस स्वरूप की व्याख्या की है वह जैविक-विकास के वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है. इसके अनुसार प्रत्येक जीव-जन्तु जीवन चाहता है. सभी प्राणियों का केन्द्रीय आग्रह अस्तित्व के लिये है. डार्विन ने इसी प्रवृत्ति को अस्तित्व के लिये द्वन्द कहा है. मनुष्य में भी यही जीवन-इच्छा मौजूद है. परंतु मनुष्य में इसके साथ-साथ बुद्धि की भी अधिकता है. जानवरों में भी बुद्धि होती है परंतु मनुष्य की बुद्धि ज्यादा प्रगल्भ है, ज्यादा विकसित है. इसीलिये मनुष्य की जीवन-इच्छा में भौतिक सुख के साथ मानसिक संतुष्टि की चाह भी रहती है. ललित-कलाओं के विकास में मनुष्य की यही मानसिक संतुष्टि और उसका आनन्द देखा जा सकता है. यही नहीं अवमानवीय स्तर पर जीवन-इच्छा से मानवीय स्तर पर जीवन इच्छा कहीं ज्यादा व्यापक और समृद्ध है.

मानसिक वृद्धि से तात्पर्य बौद्धिक और नैतिक विकास तथा सौंदर्य-बोध से है. स्वतंत्रता का अर्थ ही है, ऐसे मानवीय जीवन की इच्छा जिसमें भौतिक अनुभवों के साथ-साथ मानसिक विकास के अवसरों का सम्मिश्रण हो. जीवन-इच्छा सभी प्राणियों में होती है, परंतु मनुष्य में उसका रूपान्तरण स्वतंत्रता के रूप में होता है. इस प्रकार मानववाद के अनुसार मानवीय प्रगति के मूल्यों में प्राथमिक रूप से स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण स्थान है. मानववाद के अनुसार दूसरा महत्वपूर्ण मूल्य बुद्धिवाद. कहा जाता है ज्ञान ही शक्ति है. ज्ञान अनुभव और बुद्धि से प्राप्त किया जाता है. उचित और अनुचित के निर्णय के लिये उपयोग किये जाने वाले विवेक को बुद्धिवाद कहा जा सकता है. नैतिक शक्ति, मानववादी मूल्यों के क्रम में तीसरा महत्वपूर्ण अंग है. प्राय: लोग समझते हैं कि नैतिकता धर्म से आती है. बिना धार्मिक हुए नैतिक नहीं हुआ जा सकता. यह एक भ्रांति है. मानववाद के अनुसार मनुष्य के जैविक-विकास की परम्पराओं में प्रवृत्तियों का निर्माण हुआ है. जीवन की सुरक्षा के लिये सामूहिक अनिवार्यता सामाजिक प्रवृत्तियों को जन्म देती है. ये सामाजिक प्रवृत्तियाँ ही लोकतंत्र का आधार हैं और नैतिक मूल्यों को विकसित करती हैं. इस प्रकार मानववाद के वैयक्तिक-दर्शन में स्वतंत्रता, बुद्धिवाद और नैतिकता का महत्वपूर्ण स्थान है. किसी भी प्रकार की क्रांति का उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है - जिसमें बहुसंख्यक लोग स्वतंत्र हों, बुद्धिवादी हों और स्वत: स्फूर्त नैतिक हों.

मानववाद के सामाजिक दर्शन की व्याख्या करते हुए राय ने सामाजिक क्रांति के पूर्व सांस्कृतिक सुधारों की आवश्यकता पर जोर दिया. राय की यही अवधारणा मानववाद और मार्क्सवाद में मूलभूत अंतर को स्पष्ट करती है. मार्क्स के अनुसार पहले आर्थिक सुधार आवश्यक है - सांस्कृतिक क्रांति उसके बाद आयेगी. भारत के प्रसंग में राय की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक है. हमारा संविधान लोक-तात्रिक है. परंतु प्रजातांत्रिक-संस्कारों के अभाव में केवल संवैधानिक लोकतंत्र पर्याप्त नहीं है. हमें यह भी विचार करना चाहिये कि हम किस सीमा तक लोक-तांत्रिक हैं? जिस समाज में असमानता और विषमताओं की जड़ें परम्परागत रूप से मजबूत हों वहाँ समानता अप्रासंगिक हो जाती है. लोकतंत्र में स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व होता है. भारत में आज जो परिस्थितियाँ हैं, उनके रहते मनुष्य मत देने के लिये मानसिक रूप से स्वतंत्र नहीं है. जब हमारा मत दूसरे की जेब में हो - तब वहाँ लोकतंत्र कैसे आ सकता है? इस व्यवस्था ने मतों के क्रय-विक्रय की परम्परा को जन्म दिया है और फलस्वरूप आज पूरी की पूरी राजनीति का अपराधीकरण हो चुका है. एक समय बिहार की विधान सभा में ४० विधायक हिस्ट्री-शीटर थे. इसलिये राय द्वारा प्रतिपादित सामाजिक सुधारों के पहले सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता बहुत महत्वपूर्ण है. हमें संयोग से स्वतंत्रता मिल गयी है, परंतु हममें स्वतंत्र वृत्ति का अभाव है. मैं निराशावादी नहीं हूँ. मेरी दृढ़ मान्यता है कि तीसरी दुनिया के तमाम देशों में जहाँ तेजी से लोकशाही समाप्त होती जा रही है - भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ लोकतंत्र सुरक्षित रह सकेगा. इसका कारण यह है कि हमारी दार्शनिक परम्पराओं में मानववादी मूल्य मौजूद हैं. सांस्कृतिक परिवर्तन इन परम्पराओं को और सशक्त करेगा तथा सामाजिक सुधारों को एक ठोस आधार देगा. राय ने रूस के आंदोलन और सुधारों के बारे में जो कुछ कहा था वो आज सही साबित हो रहा है. राय ने कहा था कि यह क्रांति ऐसे लोगों के मध्य लायी गयी है जिनमें मानवतावादी संस्कारों का अभाव है और इसलिये यह सफल नहीं होगी. राय के मतानुसार हमारा लोकतंत्र बहुत संकुचित, कमजोर और अवास्तविक है. इसमें जनता के हाथ में वास्तविक सत्ता नहीं होती. लोकतंत्र को मजबूत करने के लिये सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये. एक सुसंगठित लोकतंत्र के लिये लोक-समितियों की आवश्यकता अनुभव करते हुए, राय ने यह कल्पना की थी कि इन समितियों के पास ज्यादा से ज्यादा अधिकार होंगे - तभी हमारा लोकतंत्र एक यथार्थवादी रूप ले सकेगा. संसदीय परम्पराओं वाले लोकतंत्र में सत्ता जनता के हाथ से निकल कर किसी राजनैतिक दल और अंत में दल के नेतृत्व के पास केन्द्रित हो जाती है. इस व्यवस्था में न केवल, राजनैतिक दल आवश्यक हैं अपितु उनका अच्छा होना भी

आवश्यक है. दुर्भाग्य से आज राजनीति में अच्छे लोगों के लिये जगह नहीं है. राय के मत में राजनैतिक दलों को उनमें रह कर सुधारा नहीं जा सकता. उनमें बाहर से ही परिवर्तन लाया जा सकता है. राजनैतिक दल सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया के औजार हैं, जब कि लोकतंत्र में सत्ता का विकेन्द्रकरण होना चाहिये. इसलिये राय के मत में लोक-समितियाँ ही राजनैतिक दलों का विकल्प हो सकती हैं. राय ने क्रांति की चर्चा करते हुए चेतावनी दी थी कि ऊपर से आयी हुयी क्रांति, सांस्कृतिक परिवर्तनों के अभाव में, अंतत: तानाशाही में बदल जाती है. उनके अनुसार क्रांति नीचे जड़ों से आना चाहिये.

पूँजीवादी व्यवस्था आर्थिक विषमता को अधिक बढ़ाती है. समता का निर्माण नहीं होता है. ये व्यवस्था एक प्रकार के स्वार्थ का निर्माण करती है, जिसमें धनी अधिक धनी और गरीब अधिक गरीब होते हैं. इसमें धन की वृद्धि तो होती है परंतु संस्कृति का विनाश होता है. राष्ट्रीयकरण भी इन समस्याओं का हल नहीं है. इसलिये राय ने सहकारिता पर आधारित अर्थ-व्यवस्था की वकालत की थी. पूँजीवाद में उद्योगों का आधिपत्य पूँजीपतियों के पास होता है, कम्यूनिज्म में आधिपत्य राज्य का होता है - राय की प्रस्तावित व्यवस्था में उद्योग-धंधों पर आधिपत्य काम करने वाले श्रमिकों का होता है - जिसमें नौकरी करने वाले और नौकरी देने वालों में कोई अंतर नहीं होता है.

इस प्रकार हम देखते हैं कि राय ने राजनैतिक दर्शन के नये और क्रांतिकारी विचार दिये. राय का शायद यही दोष था कि वे अपने समय से कहीं ज्यादा आगे थे. हमें स्वतंत्र विचार करना चाहिये और नैतिक होने में आनन्द का अनुभव करना चाहिये. ये मानववाद के मूल तत्व हैं और इस नये परिवर्तन की शुरूआत आप सबसे ही हो सकेगी.

आप सबने मुझे धैर्य-से सुना इसके लिये मैं आपके प्रति धन्यवाद व्यक्त करता हूँ.

प्रस्तुति : महेश दुबे

□□

Dr. C.D. Deshmukh at Holkar College

Dr. C.D. Deshmukh, Chairman University Grants Commission, Chairman National Book Trust and former Finance Minister of the Government of India, visited our college on Tuesday the 23rd September in the noon. Though it had been declared a local holiday on account of *Dol Gyaras*, the Holkar College was specially permitted to remain working to enable Dr. Deshmukh to go round and meet the staff and students.

The meeting was arranged in the pleasent green setting of the garden opposite the college porch. The gathering also included members of some of the other educational institutions of Indore. Principal Dr. W.V. Bhagwat welcomed the distinguished guest and read out a brief report regarding the recent achievements of our college in the academic and other fields.

Addressing the audience Dr. C.D. Deshmukh appreciated the high status and achievements of this college and discussed the position of such a Government-owned college vis-a-vis the University Grants Commission. Disapproving the overcrowding in colleges, he hoped that adequate educational institutions would be opened in the country and that the requisite funds would be provided by the Government. He expressed his concern over the low pass percentage in Indian educational institutions resulting in a great wastage of energy and money.

From the Holkar College Times October 1, 1958.

Science & Religion

- Dr. P. Krishna

I am indeed very thankful to the organisers of this function for inviting me to my own college and making it possible for me to visit my alma-mater. It is always a great pleasure for a student to return to the portals of the institute where he acquired knowledge and learned so many things. It is doubly so for me because almost all of my childhood was spent playing in this campus. I therefore feel grateful not only to the people who built this college, maintained it and made it possible for me to learn here, but also to all the trees on this campus which provided me with the fruit and the shade under which I grew in my childhood. I owe a debt of gratitude not only to my teachers, but also to this place as a whole.

I have chosen to speak on the topic of science and religion, which though it may sound like an old topic, is in my opinion much misunderstood. It is commonly believed that science is antagonistic to religion and that we are now living in a scientific age and therefore that religion needs to be relegated into the background. I would like in this lecture to examine whether that is really so or it is a feeling that comes because we give to the words science and religion a rather superficial interpretation. It is true that we are now living in the scientific age in the sense that our life is very much affected and changed from the life of the past on account of the development of science and all the technological discoveries which have followed the development of science. In that sense it is true that we are living in a scientific age. It is also true that science has progressed dramatically; modern science as we know it is only about 300 or at most 400 years old. Before that there was not much distinction between religion, science, mathematics, astronomy or philosophy. A learned man was one who was learned in all these areas. The differentiation arose after the seventeenth century, because in the seventeenth century with the advent of Galileo and Newton there took place the development of modern science and its methodology, which have completely revolutionised our life. It did not start for that reason. They were not enquiring or doing science in order to develop technology. They did not know at that time that there is such a thing as technology. Indeed, I have read that when Faraday discovered the laws of electromagnetism and he demonstrated it in a Lecture hall, showing that a magnet moving through a conducting coil can cause an electric current to flow through it. It looked at that time like something that was a magical phenomenon. And at the end of the lecture, somebody in the audience got up and said. "All this is very well but of what use is it?" And Faraday's reply, which has become a classic in the history of science was. "Sir, It is a newborn child. Of what use is a new born child?"

We know now that small little discovery of electromagnetism has developed into all these fans and radios and so many other gadgets which have completely revolutionised our way of living. But that was not the reason why Faraday was investigating electromagnetism. I am telling you this story because I want us to be clear that the pursuit of science is the pursuit of truth about the order that exists in the external universe around us. Its aim and purpose is not technology or the application; that is a by-product of science. Science in itself is man's enquiry into the order that pervades in nature all around him. Whether it is the laws of physics, or the laws of chemistry, or the laws of biology, the fact that things follow a law, they don't occur at random, tells us that there is a tremendous order which governs the universe, of which we ourselves are also a part. It is precisely for this reason that science has succeeded. If there was not an order, if things happened randomly, if the law of gravitation was different on the earth and on the moon and out there in the universe, it would have very little significance. But that is not so. The laws which govern the outer universe are universal. That is the importance of the laws. And one of the questions which scientists have been asking, which is almost a religious question, is "why should there be laws at all?" It is a question to which the scientist has no answer. He says when I observe around me, I find that there exists this tremendous order in Nature and these laws which I am formulating are merely revealed by my experiments and observations. I find that they always hold. I cannot prove it, otherwise it would not remain a law. It is a description of the order which I see around me in the universe. The discovery of that order is the development of science. It is not only so in the inanimate world. There is also tremendous order in the animate world. The peepul tree gives rise to a peepul tree. It does not give rise to any other kind of tree. All life

starts as a single cell whether it is you and I or that dog around the corner or that big oak tree. It all starts as a single cell with a programme. And it lives, by and large, according to that programme which is in the seed. That seed contains the order along which this entity will develop. In the case of a human being that seed contains the fact that this individual will live for 70, 80 or at the most about a 100 years. If it is not unfortunate enough to die earlier in an accident, that's what happens in nature. But if you ask why 100 years, we do not really know, we don't know why an elephant should live longer and a dog should live less, why at the age of 13 or 14 we should develop sexual characteristics, why the moustache should grow. But that is what happens in the case of all the boys. All that is contained in the seed, the single cell, and if that single cell happens to be that of a human being then that is the order which is dictated. And all living things have a similar order contained within the seed according to which they develop. Therefore, there is tremendous order also in the animate world as there is in the inanimate world. And the study of that order is biological science. The discovery of the laws of genetics is all part of Biological Science. So science is the quest for order in the outer world.

Similarly, another enquiry, which manking has conducted over a much longer period of time, over thousands of years, if not a million years, is in the field of religious enquiry. Scientists now believe that man has been around for something like 50 million years and some form of religious inquiry must have gone on at least in the later part of his existence. Man's history for only the last three thousand years or so is definitely known to us in some detail. In this period there have been great religious personages who have excelled at this enquiry, which is the enquiry into the inner world of man's consciousness through which he relates with the outer world. People like Buddha, Christ, Mohammed, Socrates, Plato and nearer to our times people like Aurobindo, Ramana Maharshi, Krishnamurti, Tagore and Gandhi are all people who have deeply enquired into religious questions and tried to arrive at an order in their inner consciousness. So I would say that there are two great quests for truth which mankind has been engaged in and the reason why man engages himself in any quest is simply that it is his nature to do so. There is no reason, you cannot give a reason why the scientific enquiry began. Wherever there is a mystery, it is man's nature to enquire and find out about that mystery. It is not that he does so in order to get the fruits. The fruits of that effort are by-products. They are not the justifications of it. No justification is needed. He has this innate curiosity with which the whole of mankind has lived. That curiosity in the outer world manifests itself as the scientific enquiry and in the inner world of our consciousness it manifests itself as the religious quest. Just as, there have been great scientists like Galileo, Newton, Darwin and others there have been great religious personages who have deeply delved into themselves and arrived at an extra-ordinary measure of self-knowledge, discovered deep truths in their

Dr. P. Krishna is an old student of this college. He is a physicist and at present is associated with Krishnamurti Foundation, Varanasi. He delivered this talk at Holkar Science College on 25th Feb., 1991 as a part of centenary celebrations.

consciousness and then spoken and tried to communicate those truths to humanity, in much the same way as scientists try to communicate the truths which they discover out of their efforts. So there have been these two parallel streams of investigation by mankind.

The scientific stream has gone on and developed very considerably and man has progressed greatly in that field of enquiry; but in the field of religious enquiry, we have hardly progressed. This has created a lopsided development of the human being. We have now at our disposal, tremendous power, tremendous ability, all of which has been rendered in our hands, by the development of the scientific enquiry and the consequent development of technology, but inwardly, in or psyche, man has not changed very much from what the primitive man was. We may now be able to talk more intelligently, we may have built universities, written millions of books which are put in the libraries in the form of knowledge, but these are all acquisitions. Like money, like property, like houses, bridges and buildings, there is this knowledge which is all documented and kept in the library. It is also an acquisition. But if you strip a human being, the modern man, of his acquisitions and look at his consciousness, you will not find much difference between his consciousness today and the consciousness of the primitive man. He still finds it difficult to love his neighbour, he is still worried, he is still has fears, he is still violent, he talks about peace but prepares for war. That hatred, that tribal feeling of forming groups in order to dominate over other groups which the primitive man had is still there in modern man. Only those groups now are national or religious groups instead of being tribal groups. But basically that urge to dominate and exploit others is still there and he has not been able to conquer the violence within

himself with the result that this violence has brought him to a stage where we are very near annihilating ourselves from the face of the earth completely. It is really doubtful, and I want you to think of this carefully, whether we can really claim that evolution went in the right direction when man evolved out of the ape. No doubt, the individual has tremendous capacity compared to the animal. He can think, he has tremendous imagination, he has memory. So we have got capacity. But do we have the intelligence to use that capacity? Have we used that capacity rightly? Has man been kinder, gentler, more compassionate, more loving and friendly than the beasts whom he hunts? How will you prove that Sir? With a million years of history of war? No other animal kills his own kind the way human beings kill their own kind. No other species has tortured members of its own species and other living things to the extent to which human beings have created torture and suffering in the world. So I really ask you, seriously, whether we have a right to say that it was progress in evolutionary terms when man evolved out of the ape. There have been other animals which have lived on the surface of this earth for a longer period than man has been around. We have been around only 50 million years. And if we decimate ourselves, we will go for precisely the reason that Darwin mentioned, "Survival of the fittest". How do you know you are the fittest, when we have through this lopsided development brought ourselves to the point of annihilation? So one must sit and consider whether this direction in which we are going, which we have called progress, which we so greatly admire, whether it is the right direction to go. Whether we really need more progress, more ability, more cleverness. If so, then that is the direction to go. But one sees that, that is the direction of annihilation unless it is coupled with love, with wisdom, with humanity-what in Sanskrit is known as prajna. The word intelligence in English has a double meaning the intelligence of thought is cleverness, the intelligence of wisdom is prajna. The religious quest is the quest for prajna not the quest for knowledge but the quest for wisdom.

So we must examine where we have failed as human beings. And there is not too much time left to do that examination. It is not simply a philosophical exercise. The whole world needs to take stock of it because we are at the brink of disaster. You cannot afford to postpone this problem any more. So that is what I want to inquire into in this talk today. To analyze why we are so intelligent, so capable,so progressive when it comes to science and so stupid, so disabled when it comes to the religious quest, although the religious quest is much older than the scientific quest. Let us examine the scientific quest first. How has the scientist gone about it and why has it progressed? Then we will examine how we have gone about the religious quest. Man sees this tremendous mystery of the universe around him the tremendous order that permeates the universe, and he has wanted to investigate that and to find out about that. To do this what is the method which the modern scientist follows? To understand any phenomenon he gives great importance to observation, he begins it with a very careful, faithful observation-recording what you observe truely, honestly, exactly as you see it. If a biologist looking at a fish and trying to describe the behaviour of that fish, introduces his desires into it and writes what he thinks the fish ought to be and not what he sees then he is not a scientist, we don't respect him for that. So to record what you sees as it is, is the first step in scientific analysis. Then to arrive at empirical relationships, if there are any, which you then call as laws. Those laws are not held as something that is never to be questioned, which are never to be doubted. It is something that you have discovered exists, applies within constraints, within limits, within boundaries, and you are willing to question it, find out where it is valid and where it is not valid. The next step in physics, for instance, taking that as an example, is to develop a model, to make an intelligent guess of the reality underlying this phenomenon. It is only a guess. It is a model which needs to be tested, examined, and if it is wrong thrown out, if it is approximate refined and so on, but always dealing with a model. So you have Bohr's model of the atom, then Sommerfeld's model of the atom (which is a refinement of Bohr's model) you have the molecular model of a gas, you have the model of the universe and so on. A physicist is always dealing with models, never directly with reality. Those models are conjectures, and he applies to those conjectures the known laws of physics, reason, logic and mathematics. Mathematics is a symbolic form of logic, a highly cultivated form of logic which is known to work and has been tested out. From this he develops what is called a theory. From this theory he makes predictions about more things which have not yet been observed. Then he comes back to observation, to find out whether that is really so or not. The extent to which his observations tally with the prediction tells him the extent to which his model approximates to reality. Then he decides whether to discard that model, to refine that model or to hold it for the time being as a good approximation to reality.

So it begins with observation and it ends with observation. The scientist holds to theories like opinions. Opinions in themselves are not important; they are only used to lead to facts which reveal the truth. And truth is posited as the unknown. We don't know what the truth is. I make a model which I think is an approximation to the truth and I test it through observation. Through experiment. That is how science has progressed. Those of you who have been science students know that there used to be 50 different laws in Physics—Joules Law, Ohm's law, laws of elasticity, laws of friction and so on. Later they discovered that many of these laws can be proved from other laws, so you don't have to assume them as laws any more. Similarly, there were a score of different types of forces which were postulated to begin with, but as our understanding has become deeper we now have only four different types of force-laws which we need to assume in physics in order to explain all the physical phenomena that take place in the inanimate world, in the universe. They are now trying to evolve a single unified field theory which may explain the origin of all these forces-the force of electromagnetism, the force of gravitation, the nuclear force

and another called weak interaction. If you ask, why does the earth attract a stone the scientist does not really have an answer. He has some speculative answers in terms of the general theory of relativity, but he does not have an exact answer as to how this action takes place at a distance. Why does the earth attract the sun? The gravitational field is still a postulate for him. The Newton's law of gravitation which was given 300 years ago is still very much a postulate. But he finds that it works and therefore he describes it as the order which exists in nature. So that is how the scientific quest has gone on and there have been many great scientists like Newton, Galileo Faraday and others who are highly respected. The scientist respects their work, but does not accept it on authority. He does not accept something as true on authority. He needs proof, reason, evidence. Einstein may have been the greatest scientist, but what he said is not accepted as the absolute truth. He himself would not accept it as such because it needs to be tested. Its a theory which he has given and it needs to be tested whether that is a fact or not. Therefore you respect what you know and still you doubt what you know. It is very important, that element of doubt. If Einstein was completely taken up with classical physics and accepted all that Newton had said and did not have a doubt, he could not have come upon the theory of relativity. The personal element has to be removed from the quest. Whether what was observed or stated is true is more important than who the observer or the scientist was.

In the religious quest the interaction between the observer and the observed is much greater than in the scientific quest though, even in the scientific quest, when it comes to atomic phenomena and looking at elementary particles and so on it becomes important. The very process of observation disturbs what you are observing and therefore there is a limit to which you can determine the truth. And one has to respect that law, which is called Heisenberg's law of uncertainty. It tells us that nature is willing to reveal itself to you only upto a point, and then it says "My dear chap, no more." And you have to respect Nature because that is the way it is. That is the law. Thus when it comes to the study of optics, man would like that light should behave either as a particle or as a wave because then it would all fit with our concepts, models and so on; but Nature does not oblige. It says, "No Sir, its not that way. Sometimes it behaves like a wave and sometimes like a particle." And when you say it must be only one way. Nature says, "That is the limitation of your thinking. I am not going to oblige just because you think so." The fact is that it behaves both ways. Either you take it or leave it. So the scientist says, "Alright, I will use two sets of equations, sometimes I will treat it as a particle and sometimes as a wave." That is its intrinsic nature. We may not like it but we have to accept that. But the quest is not given up, it goes on. So science has progressed like that. The knowledge of science is an additive process. We now learn what took Newton a lifetime to discover, in three or four years and then you can work on it and build further, discover new things and so on. It is an additive process.

When it comes to the religious quest, it is not an additive process. Buddha found out something in his consciousness and he wrote. "Ignorance is the cause of sorrow". I know this, but it does not eliminate my sorrow. It does not take away my ignorance. That is just a statement for me. Unless I discover the truth of this for myself, it does not become the truth for me. I merely repeat Buddha's words. Buddha came upon a consciousness in which he eliminated personal sorrow from his consciousness. I have not eliminated that. I am merely repeating the words of the Buddha. It is like repeating Newton's laws without knowing what they mean. We don't allow that, do we? We teach Newton's laws and the boy has to do experiments and he has to actually verify for himself that it works so that he really begins to see that they are true. If he merely defines it, he may pass the examination but he has not understood Newton's laws. In the religious field we have not been very intelligent, we have been very very glib. Let us examine what we have done. When we had a great teacher like Christ, and he spoke out of what he had discovered within his own consciousness he was trying to convey to us what he had discovered, through the Sermon on the Mount, which contains more of less the gist of Christianity. But what did his followers do? The followers did not try to come upon the truth or the consciousness of Christ. They formed a church, and they said, this man was our great leader and we will worship him. They said you must join this church and they demanded certain beliefs. They said he was the son of God and this is not to be questioned. Sir, it is the same story with the Hindu religion or any other religion. I am not denigrating Christianity here I am just taking an example. It is exactly the same with every other religion. Around each great man, they developed a church. That church is not trying to come upon the truth which that great man discovered and expounded. Instead they started propagating words. And the words don't carry the truth as I have just pointed out. I know the words that "Ignorance is the cause of sorrow." That does not make me the Buddha. But if you discover the truth of that for yourself then you may come upon what Buddha actually meant. You cannot come upon that without going through the process of enquiry, which the Buddha went through. Otherwise it is held only as knowledge or words and does not mean anything. You also have the opposite proverb saying. "Ignorance is bliss." So you can choose! Sometimes you can say ignorance is bliss and sometimes you can say ignorance is the cause of sorrow. Two great opposite statements made by two great people. Which one are you going to accept and on what basis? If you go by a great man who pleads for vegetarianism, there is an qually intelligent man and authority who pleads for non-vegetarianism. And there is the person who gives the communist philosophy and there is the one who gives the capitalist philosophy. One who speaks in favour of marriage, and the other who speaks in favour of free love, and so on, endlessly. For every thing which you quote on one authority I can quote an equally intelligent authority on the opposite side. So what we find is, that instead of carrying con with the enquiry and discovering what the great man had expounded, his followers took the easier course.

The easier course was to build a chruch, start worshipping that individual, say that this worship is religion, that you must not question, you must accept, give 'dos' and 'donts' which they must follow, build a group around this, and say this is our leader, our group, our religion and this the greatest. And that kills all enquiry, at least limits the enquiry tremendously because you are not willing to question everything. And you have substituted hero-worship and knowledge for enquiry and wisdom. If the scientists had done the same, if people who believed in Newton's laws had grouped around Newton and started worshipping Newton and made a temple to Newton would we have called them scientists? No, science would not have accepted them as scientists. You have to go through and understand what Newton has said and build further, then you are a scientist. Then why do we accept a man as a religious man if he merely repeats the gospel or puts on certain clothes or sits and worships in a particular way? I am not condemning worship, I am saying, that in itself is not the religious quest. So we have substituted the religious quest, which is what religion is supposed to be, with these by-products of the religious quest. They are by-products. If you were to worship the motor car as science, it would be at the same level of absurdity. Worship or prayer when done not in order to feel religious, but because they do what they do, namely they give you a certain experience, may have a place; but when you think that is being religious, it is an illusion. Like the illusion that if I bathe in the Ganges it washes away my sins---that is just superstition, that is not religion.

Therefore what I want to say to you is that science is not basically antagonistic to religion at all. But there are three aspects to religion as it is practiced today. One is belief which means I will not question I will not inquire because to do so is heresy. Science would not accept that. And we must see the reason why we must not accept that. Because if you have your belief and you are not willing to question it, and the other man comes up with his own belief and he is not willing to question it; then you fight with each other and kill each other which is completely contrary to being religious. Even within the same religion it happens. The catholics and the protestants in Ireland have formed churches and groups and are killing each other; Neither of them is christian according to me. You are a christian if you live by the sermon on the mount. The sermon on the mount says, love thy neighbour. It does not say go and kill the man who does something contrary to your opinion. It does not say that. But we have reduced religion to membership of a church. I can tomorrow become a christian or a Buddhist by paying Twenty Rupees a month to some organisation and putting on a different dress. What will that change? Would I have acquired a greater depth of understanding, greater self-knowledge? Without coming upon that how is one a religious being? The mistake is not in going to the church, the mistake is not in the worship, the mistake is when you substitute that for the religious quest.

The second aspect of religion is worship, prayer and rituals. Science is not antagonistic to that so long as it does not forbid enquiry. It is a purely personal activity, like the form of exercise you choose to do or the way you bathe or clean your teeth. The third, and in my opinion the essential aspect of religion is the process of enquiry with which you have to go on, if you are a religious being. Even if you are not caught in worship and prayer and do not substitute them for religion, you still hav to ask many many fundamental questions. For example, what is God? Posit that as the unknow, something to be discovered. Not accept the opinion of this group or that group, align yourself with one group and then for the rest of your life live like an advocate who pleads for that group. That is not being religious, that is being an advocate for a particular point of view. That would be like a scientist who pleads only for one theory, who is not in quest of truth, he is not a scientist. If we will not accept a scientist as a scientist unless he is pursuing the truth, why should we accept a religious man as a religious man, if he is not pursuing the truth, trying todiscover the truth? If he is only pleading for his particular belief, it is like one particular theory at best and could also be superstition. We really do not know. We must have the humility and the intelligence to say, "I do not know." I don't know what the purpose of life is. I dont know whether there is a soul or not, whether there is reincarnation. I want to discover whether it is true or not. They are valid questions and we must live with the question in order to discover the truth. But when you say this is so because, my Guru said so, you cease to be religious. So long as you are asking that question and living with that question, you are religious, because that enquiry is still going on and you are yourself exploring, instead of sticking to a conclusion.

So I want to put it to you, for your consideration, that the scientific quest and the religious quest are really complementary to each other. Because the whole universe is made up of matter as well as consciousness. The existence of consciousness is as much a fact as the existence of matter. The understanding of matter and the biological development of the living things according to a certain order are all parts of the scientific investigation. In the consciousness of man, discovering what virtue is, not positing first what virtue is and then following what is posited, but asking that question in a fundamental sense and exploring what really virtue means, whether nonviolence is something positive that can be really practiced, or there is only such a thing as the ending of violence? Whether the pursuit of happiness is the same thing as the pursuit of pleasure or it is different? These are all religious questions which must be explored. If you have not come upon that order in your consciousness, if you have not come upon that happiness, you only have words. Until then, one is not truly a religious being. If we posit that as true religion, then the quest can go on. But because we have accepted belief and the different religious groups and so on, to mean being religious, we have eliminated religious enquiry altogether from the field of education. Because we say we are a secular state and if we have to educate the child in religion, then in which religion will we educate him? So we say, because I must not speak about any one religion,

therefore I cannot teach him religion at all. So we teach him only science and leave this. Which means an important area of living is ignored completely. Thereby we have ensured the lopsided development of man, which is what we find in the world today which we said has brought us to the point of disaster and annihilation. But if we respect the different religions as historical by-products of the religious inquiry, then we can continue with the religious inquiry for ourselves and treat Hinduism, Buddhism, Christia- nity, Islam etc as different by-products. But we have to go on with the enquiry ourselves. Then you can inculcate religious enquiry and self knowledge as an essential part of Education. Real virtue is only a by-product of self-knowledge, otherwise it is not virtue. We have not done that. And therefore, we find this dichotomy and we think science is antagonistic to religion, when they are really two complementary quests. One is the quest for truth and order in the outer world, the other is the quest for truth and order in the inner world of our consciousness. How can there be contradiction between two quests for truth? Truth is universal. Is it not? If something is true, it must be true for the Buddhists, and the Christians and the Hindus; just as the law of gravitation, if it is true, is true everywhere and for everybody. Otherwise it is not the truth, it is just your particular view, and you group around that view and you fight with people of the other view.

So I think the important thing is not to look upon science and religion as two antagonistic activities. It is as important to have a religious mind, in this sense of an enquiring mind which is asking fundamental questions in the field of religion, as it is to have a scientific mind which is precise, which is enquiring, which is critical and sharp in the scientific realm. Indeed the greatest scientist of this century, Einstein, has said that "the truly religious mind is also the truly scientific mind" -one which is engaged in discovering the mystery of existence itself. Don't divide that as the mystery of the outer world and mystery of the inner world of our consciousness. It is all one great mystery. We divide it for the purpose of description, as the outer world and the inner world. But that whole thing is the world in which we live and we are also part of that world. In that spirit if you enquire, you dont say this is antagonistic to that. You enquire at both the places. You observe and reflect to arrive at the truth. You also say, I don't know, because the really intelligent man is the one who knows that he knows very little. A am like Einstein says; "All my knowledge is like one pebble on all the sea-shores of the world." But the young scientist who has just done his M.Sc. and got good marks in the paper on relativity thinks he knows everything about relativity. That certainty from which he speaks is born of ignorance. The man who says I know, is almost invariably the man who does not know. And the man who really says I do not know, probably knows quite a lot and therefore knows that he does not know.

□□

गन्दी बस्ती

एक संकरी गली में
फैली हुई दुर्गन्ध,
भौंकते खजैले
कुत्तों की पलटन.
सड़ता हुआ नाला
और लोटते सूअर,
बिलबिलाते कीड़े
गोबर के कच्चे घर
जैसे काल-कोठरी;
खाली कटोरा लिये
बिलखते बच्चे
भूखे पेट

उस होटल में उछलते चूहे
लुढ़का हुआ
चाय का प्याला और
बेशुमार मक्खियाँ.
बीड़ी के धुंए में
फैली हुई कुढ़न
अलसाता हुआ बैरा
और चाय पीते लोग.

चिथड़ों में लिपटी
लड़ती औरतें
गाली-गलौज में
उड़ता हुआ
कूड़ा-करकट
कांव-कांव करते कौवे
और घूमती हुई
'जिन्दा लाशें'
उस बस्ती में.

– सूर्यकान्त जोशी
एम.एससी. प्रीवियस (वनस्पति विज्ञान)

होलकर सायंस कॉलेज बुलेटिन १९६८-६९ से
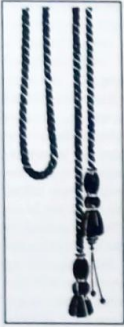
शताब्दी वर्ष : एक झलक

आरम्भ – ९१

२६ जनवरी १९९१ को आयोजित 'आरम्भ - ९१' से महाविद्यालय के शताब्दी समारोह कार्यक्रमों का शुभारंभ हुआ. महाविद्यालय में आयोजित इस कार्यक्रम में परिवार के वरिष्ठतम प्राध्यापक एवं प्राचार्य प्रो. नीलकंठ पद्मनाभन का स्वागत किया गया. एक लम्बे अंतराल के बाद महाविद्यालय परिसर में पद्मनाभन दंपत्ति की आत्मीय और अनौपचारिक उपस्थिति सबके लिये सुखद और पुरानी स्मृतियों को सजीव सी करती हुई थी. उपस्थित सभी की ओर से डॉ. भागवत ने प्रो. पद्मनाभन का स्वागत किया. महाविद्यालय परिवार ने अपनी कृतज्ञता के प्रतीक स्वरूप उन्हें शाल और श्रीफल भेंट किया. प्रो. शशि ताम्बे ने अपना गायन प्रस्तुत कर कार्यक्रम को आत्मीय मधुरता दी. प्रो. पद्मनाभन ने अपने संक्षिप्त उद्बोधन में महाविद्यालय से अपने लम्बे सम्बंधों की याद करते हुए - इसके सुखद भविष्य की कामना की.

महाविद्यालय के प्राध्यापकों, छात्रों, कर्मचारियों के साथ कार्यक्रम में अनेकों पूर्व तथा वरिष्ठ विद्यार्थी एवं नगर के प्रबुद्ध नागरिक भी उपस्थित थे.

'स्मरण – होलकर कॉलेज'

१० जून, १९९१ आज से सौ वर्ष पूर्व आज ही के दिन इस महाविद्यालय की स्थापना हुई थी. 'ओहा' और महाविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में, १० जून १९९१ को 'स्मरण होलकर कॉलेज' कार्यक्रम आयोजित किया गया. प्रातः ९ बजे राजबाड़े पर अहिल्या प्रतिमा पर माल्यार्पण के साथ महाविद्यालय से (पूर्व तथा वर्तमान में) सम्बद्ध प्राध्यापकों, छात्रों कर्मचारियों एवं नगर के प्रबुद्ध नागरिकों की एक रैली निकली, जो कृष्णपुरा स्थित होलकरों की परम्परागत ऐतिहासिक छतरियों पर पहुँचकर एक सभा में परिवर्तित हो गयी. प्रारंभ में महारानी शर्मिष्ठा देवी होलकर, प्राचार्य प्रभाकर काले एवं 'ओहा' के पदाधिकारियों द्वारा स्व. महाराजा तुकोजीराव होलकर द्वितीय और स्व. महाराजा शिवाजी राव होलकर की प्रतिमाओं पर पुष्पांजली अर्पित की गयी. नव श्रृंगारित छतरियों के गलियारों में प्रो. शशि ताम्बे ने अपने

गायन से कार्यक्रम की औपचारिक शुरूआत की. न्यायमूर्ति श्री गोवर्धन लाल ओझा और श्री सतीश कंसल ने अपने छात्र जीवन के रोचक संस्मरण प्रस्तुत किये. होलकर घराने को प्रतिनिधित्व देते हुए महारानी शर्मिष्ठा देवी होलकर ने महाविद्यालय के यशस्वी जीवन की कामना की. इस अवसर पर डाक-तार विभाग के सहयोग से 'प्रथम दिवस आवरण' जारी किया गया. महाविद्यालय के लिये प्रथम दिवस आवरण का निरसन करते हुए पोस्ट मास्टर जनरल श्री विजय चितले ने इसे आदरणीय बैजनाथ महोदय को भेंट किया - जो

इस अवसर पर विशेष रूप से आमंत्रित थे. श्री महोदय और श्री चितले दोनों ही होलकर कॉलेज के विद्यार्थी रह चुके हैं. श्री बैजनाथ महोदय ने १९२१ में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की. मालवा अंचल के तपोनिष्ठ एवं वरिष्ठतम व्यक्तित्व के रूप में परिचित महोदय जी अपनी दीर्घ सामाजिक एवं राजनैतिक यात्रा में नवजीवन, सस्ता साहित्य मण्डल, गाँधी सेवा संघ और प्रजामन्डल से सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे. वे लोकसभा के (१९५२-५७) सदस्य भी थे. ११ मई, १८९७ को जन्में श्री महोदय आज भी तरूणों की स्फूर्ति के साथ अपनी सम्पूर्ण वैचारिक निष्ठा से सामाजिक चेतना के कार्यक्रमों से जुड़े हुए हैं. इस अवसर पर पोस्ट ऑफिस के निदेशक श्री रेड्डी सहित अनेक अधिकारी और कर्मचारी भी उपस्थित थे. उपस्थित जन-समुदाय ने कॉलेज की स्मृति को अपने पास सुरक्षित रखने तथा अपने अन्य मित्रों तक इसे पहुँचाने के लिये प्रथम दिवस आवरणों का क्रय किया. कार्यक्रम पुरानी स्मृतियों को ताजा करने और आत्मीय वातावरण की सृष्टि करने की दृष्टि से प्रासंगिक और सार्थक रहा.

सायंकाल महाविद्यालय के यशवंत हाल में आयोजित कार्यक्रम हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' तथा श्री दिनकर साठे की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ. श्री सुमन ५० के दशक में इस कॉलेज के हिन्दी विभाग से सम्बद्ध थे. ४० के दशक में यहाँ के छात्र रह चुके श्री साठे आई.सी.एस.

में उत्तीर्ण हुए. वे महाराष्ट्र के मुख्य सचिव और शिमला संस्थान के निदेशक भी थे. कार्यक्रम में महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्यों का सम्मान किया गया. डॉ. भागवत और डॉ. दयाशंकर जोशी ने अपने संस्मरण प्रस्तुत किये.

२६ जनवरी, १९९१ को 'आरंभ' से प्रारंभ हुए शताब्दी कार्यक्रमों की श्रृंखला में 'स्मरण : होलकर कॉलेज' एक लम्बे समय तक याद किया जायेगा.

शताब्दी समारोह के अंतर्गत इसी क्रम में महाविद्यालय के विभागों में शैक्षणिक कार्यक्रम सेमीनार संगोष्ठियाँ और व्याख्यान भी आयोजित किये गये. श्रीतारकुंडे और डॉ. पी. कृष्णा के व्याख्यानों के अतिरिक्त श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी का बाबा साहब अम्बेडकर पर तथा डॉ. मोहन बांडे का बीरबल साहनी पर व्याख्यान हुआ. श्री ठेंगडी, अम्बेडकर के साथ प्रारंभिक वर्षों से जुड़े थे. और एक विख्यात सामाजिक चिंतक हैं. श्री मोहन बांडे इसी महाविद्यालय के छात्र रह चुके हैं और सम्प्रति बीरबल साहनी संस्थान में कार्यरत हैं.

प्रस्तुति : डा. कु. माणिक सांबरे

□□

शताब्दी समारोह
७ से १० दिसम्बर - १९९१

आनन्द, उल्लास और गौरव की ऐतिहासिक स्मृतियों को साकार करते हुए, महाविद्यालय ने अपना शताब्दी समारोह आयोजित किया. इस चार दिवसीय - भव्य एवं गरिमामय कार्यक्रम का शुभारंभ भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल जी शर्मा ने किया. डॉ. शर्मा का इस महाविद्यालय

से परिचय आत्मीय रूप से घनिष्ठ और लगभग तीन दशक पूर्व की स्मृतियों से जुड़ा हुआ है. अपने उद्बोधन में डॉ. शर्मा ने औद्योगिक व आर्थिक विकास के लिये नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर जोर दिया. उन्होंने सत्य की खोज में विज्ञान और दर्शन की समन्वयात्मक भूमिका को स्पष्ट करते हुए भारतीय उपलब्धियों का उल्लेख किया. उन्होंने आशा व्यक्त की कि महाविद्यालय परम्परागत शिक्षण के साथ-साथ शोध के क्षेत्र में भी सक्रिय भूमिका निभायेगा. अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रदेश के शिक्षामंत्री माननीय श्री विक्रम वर्मा ने होलकर कॉलेज के गौरवशाली इतिहास और कीर्तिमानों का उल्लेख किया. उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे शैक्षणिक परिवर्तनों की चर्चा करतेहुए प्रदेश में इस क्षेत्र में किये जा रहे प्रयासों की भी जानकारी दी.

कार्यक्रम में महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय ने शिक्षा, विज्ञान, न्यायिक, खेलकूद, साहित्य, पुरातत्व आदि क्षेत्रों से जुड़ी महाविद्यालय की प्रतिभाओं को उनकी उपलब्धियों के लिये सम्मानित किया. जिन प्रतिभाओं का सम्मान किया गया वे हैं - डॉ. भागवत, हरिहर त्रिवेदी, अक्षय कुमार जैन, एल.सी.

गुप्ता, डॉ. केन्कर, डॉ. डी.आर. शर्मा, अरूण दाते, नरेन्द्र जैन, गोवर्धन लाल ओझा, रामकृष्ण विजयवर्गीय, पद्माकर मुले, वी.एस. कोकजे, एन.देव, जनार्दन नेगी, भास्कर गोखले, अविनाश खरे, मीर रंजन नेगी, श्रीमती पद्मनाभन, डॉ. शम्भूदयाल सिंहल, डॉ. सुमन, डॉ. कवठेकर, डॉ. रविप्रकाश, डॉ. देशमुख और लक्ष्मीनारायण शर्मा.

८ दिसम्बर, को संसद में प्रतिपक्ष के नेता श्री लालकृष्ण अडवानी मुख्य अतिथि थे. उन्होंने राष्ट्र के विकास के लिये उत्कृष्टता, अनुशासन, समर्पण, और एकता के महत्व को बताते हुए युवा पीढ़ी से इन मूल्यों को स्वीकार करने का आग्रह किया. प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री सुंदरलालजी पटवा ने महाविद्यालय की सौ वर्ष की उपलब्धियों के गौरव का स्मरण करते हुए वर्तमान पीढ़ी से संस्था के उत्तरोत्तर विकास में सक्रिय रुचि लेने का आग्रह किया. श्री अडवानी और श्री पटवाजी ने महाविद्यालय परिसर में वृक्षारोपण किया और आयोजित "स्मृति" प्रदर्शनी का अवलोकन भी किया. "स्मृति" प्रदर्शनी के अंतर्गत - 'मालवा की धरोहर' शीर्षक से पुरातत्व और होलकर वंश से सम्बन्धित ऐतिहासिक अभिलेख एवं मुद्राएं भी रखी गई थीं. इसके संयोजक थे डॉ. शशिकांत भट्ट.

इन दो दिनों में पूर्व छात्रों के मिलन-समारोह व वैज्ञानिक व्याख्यान भी आयोजित किये गये.

प्रतिदिन शाम को महाविद्यालय के पूर्व तथा वर्तमान विद्यार्थियों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये. पूर्व छात्रों ने अपनी प्रभावी प्रस्तुति से कार्यक्रम के आकर्षण को बढ़ाया. इन कार्यक्रमों में श्री वसंत पोतदार द्वारा प्रस्तुत एकल अभिनय (वंदे मातरम्) विशेष उल्लेखनीय रहा. भारत और विश्व राजनीति विषय पर एक रोचक परिसंवाद का आयोजन किया

गया. जिसमें म.प्र. उच्च शिक्षा अनुदान आयोग के अध्यक्ष डॉ. ओम नागपाल प्रमुख वक्ता व अध्यक्ष थे. डॉ. विष्णुदत्त नागर , डॉ. नलिनी रेवाडीकर और प्रो. नंदकिशोर मालानी ने भी परिसंवाद में भाग लिया.

१० दिसम्बर को शताब्दी समारोह कार्यक्रमों का समापन प्रदेश के पंचायत मंत्री श्री भेरूलाल जी पाटीदार के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ. इस कार्यक्रम में श्री पाटीदार ने वर्ष भर आयोजित विभिन्न गतिविधियों एवं प्रतिस्पर्धाओं में उल्लेखनीय सफलता के लिये छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत किया. कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. शंभूदयाल सिंहल ने की. इन्दौर विकास प्राधिकरण के चेयरमेन श्री देवीसिंह विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थे. शताब्दी समारोह के कार्यक्रमों में पूर्व प्राचार्यों, प्राध्यापकों एवं छात्रों के साथ नगर के प्रबुद्ध नागरिकों की उपस्थिति महत्वपूर्ण थी.

प्रस्तुति :

डॉ. भोलेश्वर दुबे
डॉ. नरेन्द्र जोशी.

□□

अपनी बात

किसी भी संस्था के लिये अपने जीवन के सौ वर्ष - शैक्षणिक गुणवत्ता की यात्रा के सौ वर्ष, कीर्तिमानों से भरे हुए सौ वर्ष और संस्कारों एवं परम्पराओं से जुड़े सार्थक सौ - वर्ष, पूरे कर लेना - निश्चित ही एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है. १० जून, १८९१ को स्थापित इस महाविद्यालय ने प्रारंभिक वर्षों में ही न केवल तत्कालीन होलकर रियासत, मालव अंचल अपितु पूरे सेन्ट्रल इण्डिया प्रांत में अपनी एक विशेष पहचान बना ली थी. दूर-दूर की कई रियासतों, बरार और महाराष्ट्र से अनेक विद्यार्थी प्रतिवर्ष यहाँ पढ़ने आते थे. बंगाल और दक्षिण के विद्यार्थी भी यहाँ प्रवेश लेते थे. इन्दौर की अपनी विशेषताओं के साथ-साथ, विद्वान और प्रतिष्ठित प्राध्यापक, खेलकूद और छात्रावास की सुविधाएँ बाहर के विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिये पर्याप्त थीं. होलकर कॉलेज सारे देश में जाना जाने लगा था. शैक्षणिक गुणवत्ता के इन्हीं संस्कारों के साथ, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं क्रीड़ेय गतिविधियों की परम्परा के साथ इस महाविद्यालय ने सौ वर्ष पूरे कर, अब दूसरी शताब्दी की अपनी यात्रा प्रारंभ की है.

निश्चित ही सौ वर्ष की यात्रा बहुत लम्बी होती है. परंतु शैक्षणिक संस्थाएँ तो सदैव ही युवा बनी रहती हैं, क्योंकि, उनमें सतत व्याप्त है जीवन का उत्साह, चिर-नूतन व्यापार और युवा स्वप्न हैं. इस यात्रा का अपना एक अलग इतिहास होता है. इस इतिहास को जानने का एक आनन्द यह भी है कि स्मृतियाँ क्रमशः परत-दर-परत खुलती जाती हैं और बन जाती हैं एक नदी! एक कृतज्ञता नदी-स्मृतियों की-जिसके तट से टकराकर बार-बार लौटती हैं अतीत की ध्वनियाँ यह 'स्मारिका' स्मृतियों की नदी से टकराकर लौटती हुई ध्वनियों को पकड़ने के हमारे विनम्र प्रयासों की प्रतीक है.

आज से लगभग ९-१० वर्ष पूर्व जब शताब्दी सम्बंधी कार्य प्रारंभ किये गये तब कॉलेज के पास न तो कोई संदर्भ-सूत्र थे, न नाम, न पते और न ही कोई प्रामाणिक विवरण. लगा कि उस शताब्दी से हमें जोड़ने वाले पुल टूटे हुए हैं और वो सड़क जो उस ओर जाती है- बहुत लम्बी, अँधेरी और जन-शून्य है. लेकिन दो, चार, दस, बीस कदम चलने के बाद हमें लगा कि सब कुछ नष्ट नहीं हुआ है. कुछ शेष है. यह स्मारिका इन्हीं शेष-स्मृतियों को जुटाने के हमारे प्रयासों की कहानी है. हमारा प्रारंभ ही शुभ था. सबसे पहला पत्र जो लिखा गया वो प्रो. एस.एन. धर को सम्बोधित था. इसी क्रम में दूसरा पत्र लिखा गया स्व. प्रो. गोले के पुत्र को. प्रो. धर का संदर्भ दिया श्री एन.सी. जमींदार ने और गोले - परिवार से हमें जोड़ा डॉ. श्रीधर हसबनीसकर ने और इस प्रकार शुरू हुई आत्मीय सम्बंधों और सम्पर्कों की एक लम्बी श्रृंखला जिसका एक सिरा १८९१ से कहीं प्रारंभ होकर इतिहास के गलियारों में घूमता था, तो दूसरा सिरा हम तक आता था. हमारा विश्वास बढ़ता गया. हमारे संकल्पों में दृढ़ता आती गयी. धीरे-धीरे हमारे पास जानकारियाँ, तथ्य, संस्मरण और विवरण एकत्र होने लगे और स्मारिका का स्वरूप भी स्पष्ट होता गया. इस सारी सामग्री को काल-क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है.

प्रारंभ में मैंने महाविद्यालय के जीवन के इन सौ वर्षों को सुविधानुसार चार काल खण्डों में विभाजित किया था -

१८९१ - १९२१ : आरम्भ
१९२२ - १९४६ : विकास
१९४७ - १९६१ : स्वतंत्र चेतना
१९६२ - १९९१ : केवल विज्ञान
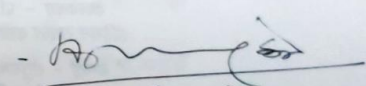
परंतु फिर लगा कि सौ वर्षों के इतिहास को एक स्थान पर समेट लेना न तो सम्भव है और न ही आवश्यक. यह भी स्पष्ट हुआ कि प्रारंभिक वर्षों की जानकारी देने वाले संदर्भ सूत्र एक तो बहुत ही कम शेष हैं, दूसरे जो हैं वे भी दूर होते जा रहे हैं और तीसरे सम्पर्कों में निरंतरता के अभाव में उन तक पहुँच पाना भी सरल नहीं है. आने वाले कुछ वर्षों के बाद उस समय की जानकारी प्राप्त करना लगभग असम्भव होगा - इसीलिये मैंने इन प्रारंभिक वर्षों के बारे में अधिक से अधिक विवरण एकत्र करने का निश्चय किया. इसी प्रकार ४० के दशक तक की जानकारी देने वाले स्रोत भी कम ही थे. इसलिये महाविद्यालय के विकास की यात्रा को रेखांकित करते हुए, मेरी दूसरी प्राथमिकता इस कालखण्ड पर केन्द्रित थी. १९४७ से महाविद्यालय के जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन यह आया कि यह अब एक 'शासकीय' संस्था हो गई. फलस्वरूप व्यवस्थाएँ बदलीं, कुछ पुरानी परम्पराएँ अप्रासंगिक हो गयीं और नये संस्कारों ने धीरे-धीरे अपनी उपस्थिति का एहसास कराना प्रारंभ किया. प्राध्यापकों के स्थानांतर से सम्बंधों और सम्पर्कों की अब तक चली आ रही निरंतरता भंग होने लगी. फलस्वरूप इस कालखण्ड के विवरण इतने बिखरे हुए हैं कि उन्हें सुसम्बद्ध रूप से एक सूत्र में प्रस्तुत करना सम्भव नहीं था. हाँ, संस्मरणों के माध्यम से मैंने इस अवधि को 'स्मारिका' में प्रस्तुत किया है. इसलिए १९४७ से ६१ तक की गतिविधियों को विस्तार नहीं मिल सका है. फिर, हमारे वित्तीय साधन भी सीमित थे. इसलिए पृष्ठ संख्या भी अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती थी. होलकर विज्ञान महाविद्यालय के रूप में हमारी आयु अभी मात्र ३०-३१ वर्ष की ही है. इस वर्तमान को अतीत की स्मृतियों में ले जाने के लिये, अभी कुछ और वर्षों तक प्रतीक्षा की जा सकती है. एक प्रकार से यह स्मारिका महाविद्यालय के सौ वर्षों के पूर्वार्द्ध पर केन्द्रित अतीत का पुनरावलोकन है. आप सब, इसे इसी भावना से स्वीकारेंगे - ऐसा विश्वास है.

पिछले ९-१० वर्षों से, मैं, इन पृष्ठों में वर्णित व्यक्तित्वों की उपस्थिति, अपने आस-पास अनुभव करता रहा हूँ. इस सम्मोहन से बचने का मेरे पास, सिवाय इसके अन्य कोई उपाय नहीं था, कि तिलिस्म की इस सुरंग को आप सब तक भी पहुँचाया जाय. इन पृष्ठों में यदि एक क्षण के लिये आप देख सकें प्रो. चमले का दबंग व्यक्तित्व, इन्हें पलटने की फड़फड़ाहट में सुनाई दे सके आपको गार्डनर ब्राउन की हुंकार, अनुभव कर सकें आप इसमें प्रो. पाटणकर या प्रो. घाटे की सात्विक उपस्थिति और एक पल को ही सही, साक्षात्कार कर सकें आप गोले, कार्नेलियस, सागिर अली, डाबसन, चतुर्वेदी, घोष और बोरगाँवकर से तो हमारा यह श्रम सार्थक हुआ, समझिये! पर इसके लिये आपको चलना होगा हमारे साथ, उस सुनसान सड़क पर और गुजरना होगा उस टूटे पुल से जो जोड़ता है इस शताब्दी को उस शताब्दी से और मुझे ही नहीं हम सबको आप सबकी भाव-प्रवणता पर पूरा विश्वास है. इन पृष्ठों में जितना कहा गया है, उससे कहीं अधिक छूट गया है.

फिर कभी, किसी अन्य अवसर पर किसी अन्य द्वारा यह शेष गाथा प्रस्तुत की जा सकेगी यह विश्वास बनाये रखिये. स्मारिका में हुई त्रुटियों एवं खामियों के लिये हम आपसे क्षमा चाहते हैं कुछ चित्र जो हमें मिले थे वे बहुत अस्पष्ट और क्षतिग्रस्त थे. तकनीकी दृष्टि से उनकी ठीक अनुकृति प्रस्तुत करना सम्भव नहीं था फिर भी ऐतिहासिक महत्व के कारण हमने उन्हें प्रकाशित किया है.

मैं, डॉ. भागवत, डॉ. हरमलकर, डॉ. आर.एन. जैन गोवर्धन लालजी ओझा और प्रो. प्रभाकर काले के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ. इन सभी ने घंटों धैर्य-पूर्वक मेरे साथ बैठकर इस सामग्री को देखा है. उनकी प्रसन्न सहमति ने मुझे सम्बल दिया है. मैं, आदरणीय मनोहरसिंह जी मेहता, आनन्दसिंह जी मेहता और डॉ. हरिहर त्रिवेदी का आभारी हूँ - जिन्होंने आंशिक रूप में इस सामग्री को देखाहै, अनेक अवसरों पर मेरी मदद की और मेरा उत्साह बढ़ाया है. स्मारिका और शताब्दी समारोह की प्रारंभिक तैयारियाँ डॉ. माधव गणेश नेने के साथ प्रारंभ की गयी थीं. बाद के वर्षों में प्रो. निलोसे और डॉ. ओ.एन. माथुर के कार्यकाल में इन प्रयासों में गति आयी और उनका एक स्पष्ट स्वरूप तैयार किया जा सका. इन सब के प्रति मेरे विनम्र आभार. स्मारिका की प्रस्तुति में सभी आत्मीय स्वजनों से मिले सहयोग को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करता हुआ, मैं उन सबके प्रति अपने प्रणाम निवेदित करता हूँ. सदस्य सहयोगियों (सांबरे, दुबे और जोशी) के अथक श्रम और रुचि से ही स्मारिका को बेहतर रूप में प्रस्तुत किया जाना सम्भव हुआ. मैं स्नेहपूर्वक उनके योगदान को स्वीकार करता हूँ. उनका यह ऋण मुझ पर सदा ही बना रहेगा.

आइये! हम सब मिलकर इतिहास को बार-बार पढ़ें! अपने पितृ-पुरुषों का स्मरण करें और उन बीते क्षणों को एक बार फिर जियें. संस्कारों का जो अश्वत्थ हमें विरासत में मिला है, उसे सुरक्षित रखने के अपने संकल्पों को दोहरायें.

ज्येष्ठ शुक्ल १०, सम्वत् २०४९.
१० जून, १९९२.

(महेश दुबे)

सौजन्य और आभार ...

*** इन्दौर** – प्रो. पद्मनाभन, डॉ. वा.वि. भागवत, मनोहरसिंह मेहता, आनन्दसिंह मेहता, खुर्शीद हसन खान, प्रो. ब्रह्मे, श्यामराव नाईक, डॉ. श्रीधर हसमलकर, 'अण्णा' सरवटे, डॉ. एल.एन. शुक्ला, प्रो. चावड़ा, डॉ. आर.एन. जैन, केप्टन गंगराडे, डॉ. अ.ला. पुरोहित, राहुल बारपुते, स्वरूप धारीवाल, प्रो. पी.डी. शर्मा, एन.सी. जमींदार, डॉ. के.के. चतुर्वेदी, डॉ. मालती ढोबले, पी.आर. ढोबले, एन.डी. दिघे, डॉ. हरिहर त्रिवेदी, एल.सी. गुप्ता, जुजर लाकडवाला, जी.एन. पुजारी, गौरीशंकर दुबे, डॉ. डी.डी. भवालकर, विश्वनाथ आचार्य, सरोजकुमार, रमाकांत सांबरे, हिन्दी साहित्य समिति, नई-दुनिया, प्रो. श्रीधर मुंशी, प्रो. श्रीमती एल. कुर्डे, डी.आर. बायन, डॉ. श्रीमती उषा गुप्ता, शिव दुलारे दुबे, प्रो. द्वारका दीक्षित, डॉ.बी.सी. जैन, प्रभाकर घाटे, एन.सी. जमींदार.

*** कलकत्ता** – प्रो. एस.एन. धर, श्रीमती हेमापूर्वा घोष, अविनाश माथुर, इंडियन साइंस कांग्रेस ऐसोसिएशन.

*** बम्बई** – सेतुमाधवराव पगडी, प्रो. सत्यव्रत घोष, श्रीमती मालिनी बिसेन, पवनकुमार जैन, दिव्या जैन, मिलिन्द नासकर, निर्मला भावे, सम्पादक -'माधुरी'.

*** पुणे** – त्र्यम्बक वामन तलवलकर, श्रीमती पद्मजा परांजपे, एन.वी. गोले, डॉ. बाधवा.

*** नागपुर** – हरिविष्णु बारपुते.

*** जयपुर** – प्रो. शांतिप्रसाद वर्मा.

*** उदयपुर** – प्रो. के.एल. बोर्डिया.

*** देहरादून** – श्रीमती सुमति बागची.

*** ग्वालियर** – प्रो. बी.एन. मिसे.

*** सीहोर** – डॉ. दानवीर जैसवाल.

*** भोपाल** – श्री ए.बी. कवीश्वर.

*** नई दिल्ली** – भारतीय खेल प्राधिकरण, जन सम्पर्क निदेशालय - रक्षा विभाग, केनेडियन उच्चायुक्त.

*** संयुक्त राष्ट्र अमेरिका** – (ट्राय) - जयंत सुभेदार.

* शताब्दी कार्यक्रमों के निमित्त उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, श्रीमती उषा राजे मल्होत्रा एवं अहिल्या ट्रस्ट से प्राप्त उदार आर्थिक सहयोग के प्रति महाविद्यालय परिवार का कृतज्ञ आभार.

* हम, विज्ञापनदाता प्रतिष्ठानों एवं शासकीय उपक्रमों के आर्थिक सौजन्य के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं.

* स्मारिका की प्रस्तुति महाविद्यालय के समस्त प्राध्यापकों और कर्मचारियों के आत्मीय सहयोग एवं 'ओहा' की सहभागिता से सम्भव हो सकी है. एतदर्थ - आभार!

* स्मारिका के लिये, आर्थिक आधार जुटाने के सहयोग को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करते हुए, हम निम्न प्राध्यापकों के प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं -

डॉ. श्रीमती उषा गुप्ता, डॉ. चन्द्रकांत दवे, डॉ. रामपाल सिंह, प्रो. ए.बी. सीतवानी, प्रो. राजेन्द्र नागर, श्रीमती लीला नाइक, डॉ. एस.बी. घाग्रुरे, प्रो. एच.एन. गुप्ता, डॉ. बी.के. माहेश्वरी, प्रो. डी.के. बेनर्जी, प्रो. श्रीधर मुंशी, डॉ. के.के. चतुर्वेदी, प्रो. जी.के. दुबे, डॉ. आर.एस. पुरवार, प्रो. ए.वाय. कालनदेडीकर, प्रो. वी.एन. भटनागर, प्रो. सुरेश मिश्रा, प्रो. एस.पी. नागर, प्रो. कैलाश अग्रवाल, प्रो. श्रेणिक बंडी, प्रो. आर.एस. माहेश्वरी, डॉ. आर.पी. राजपूत, श्रीमती मीनाक्षी शर्मा, प्रो. एन.एन. मुंशी.

* हम आदरणीय गोवर्धनलालजी ओझा एवं श्री एस.के. पंडित के भी आभारी हैं, जिनका मार्ग दर्शन हमें सतत् उपलब्ध था.

* स्मारिका की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान हमें, प्रो. प्रभाकर काले से सदैव प्रेरणा और ऊर्जा मिलती रही. वे हमारे परिवार के वरिष्ठ सदस्य हैं. उनके प्रति हमारी आत्मीय कृतज्ञता.

* प्रकाशन सहयोग और रूपांकन के लिए क्रमशः स्वाध्याय परिवार और आलोक दुबे के प्रति आभार.

– महेश दुबे
– माणिक सांबरे
– भोलेश्वर दुबे
– नरेन्द्र जोशी

आवरण पृष्ठ पर महाविद्यालय का रंगीन-चित्र प्रो. डी.एस. ठकार, प्राणिकी विभाग के सौजन्य से.

शताब्दी वर्ष में प्राध्यापक परिवार

प्राचार्य – प्रो. प्रभाकर काले

रसायन विभाग

१. प्रो. श्रीमती लीला नाईक
२. प्रो. एम.जी. फड़के
३. डॉ. एच.जी. असावा
४. डॉ. बी.के. माहेश्वरी
५. डॉ. सी.के. खुराना
६. डॉ. के.के. चतुर्वेदी
७. श्रीमती एस. ढोबले
८. प्रो. के.डी. वर्मा
९. प्रो. एस.टी. मुंशी
१०. प्रो. एम.एल. जोशी
११. डॉ. आर.डी. श्रीवास्तव
१२. डॉ. एम.सी. दुबे
१३. डॉ. सी.पी. सक्सेना
१४. डॉ. व्ही.एन. भटनागर
१५. डॉ. ए.जी. फडनीस
१६. डॉ. ए.एस. कोठारी
१७. डॉ. डी.पी. दुबे
१८. डॉ. आर.सी. दग्धी
१९. श्रीमती एम. जैन
२०. श्रीमती के. जैन
२१. प्रो. एस.के. बडजात्या
२२. प्रो. एम.एस. छाबड़ा
२३. प्रो. के.सी. चौधरी
२४. डॉ. जी.पी. शर्मा
२५. प्रो. श्रीमती एम. मंडलोई
२६. प्रो. आर.के. वेद
२७. डॉ. (कुमारी) वंदना शर्मा
२८. प्रो. ए.के. सिलावट
२९. डॉ. श्रीमती वृषाली चौधरी
३०. प्रो. श्रीमती ए. सक्सेना
३१. प्रो. (कुमारी) एस. हार्डिया

भौतिकी विभाग

१. डॉ. श्रीमती ऊषा गुप्ता
२. डॉ. एस.बी. घारपुरे
३. प्रो. आर.जी. केकरे
४. डॉ. एस.एस. अभ्यंकर
५. डॉ. के.एन. सक्सेना
६. डॉ. एन.आर. भारतीय
७. डॉ. एस.डी. पांडे
८. डॉ. आर.एस. श्रीवास्तव
९. डॉ. एम.के. लालन
१०. डॉ. एस.सी. मेहता
११. डॉ. के.एन. चतुर्वेदी
१२. डॉ. एस.जी. वेलनकर
१३. डॉ. पी.सी. गुप्ता
१४. डॉ. एस.के. राठौर
१५. प्रो. एम.एम. मुंशी
१६. प्रो. डी.पी. दीक्षित
१७. प्रो. ए.ए. दीक्षित
१८. प्रो. एस.एल. शर्मा
१९. प्रो. एस.जी. घाटपांडे
२०. प्रो. एस.एस. सेंगर
२१. प्रो. के.के. जैन
२२. प्रो. श्रीमती एस. गुप्ते
२३. प्रो. श्रीमती एस. पेंढारकर
२४. डॉ. कु.एस. वैद्य
२५. प्रो. कु. रागिनी सिंह

वानस्पतिकी विभाग

१. प्रो. ए.बी. सीरवानी
२. प्रो. पी.पी. सिंह
३. प्रो. एस.सी. गुप्ता

४. प्रो. श्रीमती के. गंजीवाले
५. प्रो. एस.के. मिश्रा
६. डॉ. एस.पी. नागर
७. प्रो. श्रीमती एस. विवरेकर
८. प्रो. श्रीमती के. पंचोली
९. डॉ. भोलेश्वर दुबे
१०. प्रो. श्रीमती प्रीति चतुर्वेदी
११. प्रो. (कुमारी) स्मिता सत्या
१२. प्रो. श्रीमती मनीषा दण्डवते
१३. प्रो. श्रीमती संचिता श्रीवास्तव

प्राणिकी विभाग

१. डॉ. आर.पी. सिंह
२. डॉ. आर.एस. पुरवार
३. डॉ. डी.एस. ठकार
४. डॉ. जी.के. दुबे
५. डॉ. ए.के. दीक्षित
६. डॉ. अशोक शर्मा
७. डॉ. एल.के. मुद्गल
८. डॉ. श्रीमती एस. कुर्डे
९. डॉ. श्रीमती पी. कासखेडीकर
१०. प्रो. श्री के.सी. अग्रवाल
११. प्रो. श्रीमती के. मिश्रा
१२. डॉ. श्रीमती रेखा पुण्डीर
१३. डॉ. श्रीमती मीनाक्षी शर्मा
१४. डॉ. श्रीमती आशा पाल

गणित एवम् सांख्यिकी विभाग

१. डॉ. सी.के. दवे
२. डॉ. डी.जी. जोशी
३. प्रो. जे.सी. मिश्रा
४. प्रो. जी.डी. पालीवाल
५. डॉ. सी.एल. परिहार
६. प्रो. एस.पी. नेमा
७. प्रो. डी.के. बेनर्जी
८. प्रो. एस.के. बंडी
९. प्रो. एम.के. दुबे
१०. प्रो. के.बी. राजोले
११. प्रो. पी.एस. मूंदड़ा
१२. प्रो. श्रीमती पी. खाबिया
१३. प्रो. श्रीमती मधु तिवारी
१४. प्रो. श्रीमती मंगला चौरागढ़े
१५. प्रो. (कुमारी) अनिता सिंह

जीव रसायन विभाग

१. प्रो. आर.के. नागर
२. प्रो. आर.एस. माहेश्वरी
३. प्रो. अनिल राय बाथम
४. प्रो. बबलू सातनकर

भौमिकी विभाग

१. डॉ. बी.सी. जैश
२. प्रो. ए.वाय. कासखेड़ीकर
३. प्रो. जे.पी. सक्सेना
४. प्रो. आर.डी. तापी
५. प्रो. श्रीमती विनीता कुलश्रेष्ठ
६. डॉ. नरेन्द्र जोशी

अंग्रेजी/हिन्दी विभाग

१. प्रो. एच.एन. गुप्ता
२. प्रो. श्रीमती बी. गुजराल
३. प्रो. एन.जी. काले
४. डॉ. आर.सी. बिल्लोरे
५. डॉ. (कुमारी) एम. सांबरे
६. डॉ. आर.पी. राजगुरू (हिन्दी)
७. प्रो. श्रीमती पी. श्रीवास्तव
८. प्रो. श्रीमती रजनी मिश्रा
९. डॉ. (कुमारी) प्रेरणा ओझा

अन्य सदस्य

१. श्रीमती पी. कवीश्वर - रजिस्ट्रार
२. श्री आर. के. लंगर - क्रीड़ा अधिकारी

कर्मचारी परिवार

(अ)

१. श्री आर.सी. भार्गव
२. श्री बी.एल. शर्मा
३. श्री एन.पी. डागोर
४. श्रीमती टी. जैन
५. श्री एन.के. व्यास
६. श्री टी.एच. वर्मा
७. श्री एल.एन. परिहार
८. श्री शरद जोशी
९. श्री एस.एन. यादव
१०. श्री डी.एन. गड़क

११. श्री गणपत सिंह
१२. श्री व्ही.जी. शेर्लेकर
१३. श्री पी.एम. उपासनी
१४. श्री आर.एस. बंगलावाला
१५. श्री जी.डी. पारिख
१६. श्री बी.डी सुरवाड़े
१७. श्री नाथूलाल वर्मा
१८. श्री एन.एल. वर्मा
१९. श्री ए.के. जैन
२०. श्री एम.वी. तारे
२१. श्री आर.एस. चतुर्वेदी
२२. श्री जे.सी. भारतीया
२३. श्री सी.आर. धर्माधिकारी
२४. श्री जे.एल. जैन
२५. श्री घनश्याम चतुर्वेदी
२६. श्री एस.डी. शुक्ला
२७. श्री एस.एन. अग्रवाल
२८. श्री आर.सी. जायसवाल
२९. श्री सतीश तारे
३०. श्री राजेश कछवाह
३१. श्री ए.के. वाबले
३२. श्री पी.डी शर्मा
३३. श्री एन.के. चौहान
३४. श्री प्रहलाद वर्मा
३५. श्री गोविन्द दुबोलिया
३६. श्री ए.के. वाजपेई
३७. श्री गोपाल सुरईवाल
३८. श्री लोकेन्द्र सोंलकी
३९. श्री सी.एस. सकरगाये
४०. श्री गणपत राणे
४१. श्री मोहनलाल शर्मा
४२. श्री मोहनलाल चौहान
४३. श्री समंदर सिंह भण्डारी
४४. कुमारी पुष्पा चौहान
४५. श्री मंशाराम भार्गव
४६. कुमारी मीना दीक्षित
४७. कुमारी ज्योति चौहान
४८. श्री रमेश लालचन्द
४९. श्री ओ.पी. कारपेंटर
५०. श्री नरेन्द्र सिंह नागर

(ब)

१. श्री रामेश्वर बैरागी
२. श्री दुर्गेश कौशल
३. श्री सुरेश केशव
४. श्री ओ.पी. नागर
५. श्री जी.एन. कुन्हारे
६. श्री रामदयाल
७. श्री लालाराम
८. श्री भैरूलाल
९. राजाराम जाधव
१०. श्री किशोर
११. श्री काशीराम चौहान
१२. श्री बद्रीलाल
१३. श्री राहू छेदी
१४. श्री मोतीलाल
१५. श्री गंगाराम जाधव
१६. श्री जयराम
१७. श्री रामसिंह
१८. श्री छगनलाल पंचवाल
१९. श्री रामचन्द्र मोहन
२०. श्री उमाकांत
२१. श्री हेमंत जनार्दन
२२. श्री दिनेश सूरजदीन
२३. श्री विजय नागर
२४. श्री ओ.पी. यादव
२५. श्री एस.एन. वर्मा
२६. श्री कमल जैन
२७. श्री प्रकाश मावते
२८. श्री रामचरण
२९. श्री शांतवंत
३०. श्री रमेश अमरसिंह
३१. श्रीमती देवीबाई बोराड़े
३२. श्रीमती बेबीबाई कदम
३३. श्री ईश्वरलाल
३४. श्री गोविन्द सिंह
३५. श्री राजेश लिखार
३६. श्री संजय जायसवाल
३७. श्री दित्या डाबर
३८. श्री केसरसिंह बघेल
३९. श्री राजेन्द्र शर्मा
४०. श्री सतीश सारवान
४१. श्री पी.एस. मुंगी
४२. श्री किशनलाल रेडवाल
४३. श्री खेमचन्द जाटव
४४. श्री मदनलाल
४५. श्री के.डी. शर्मा
४६. श्री यादवराव
४७. श्री लालसिंह पटेल
४८. श्री जे.बी. आठले
४९. श्री डी.जी. पोफलकर
५०. श्री रामभाऊ
५१. श्री मुन्नालाल
५२. श्री तुलसीराम
५३. श्री मोहनलाल

५४. श्री ठाकुरलाल
५५. श्री गोविन्द सिंह
५६. श्री केशवराम छोटेलाल
५७. श्री नंद किशोर
५८. श्री रामचन्द्र गोस्वामी
५९. श्री सुरेश रामचन्द्र
६०. श्री कालूराम मेहता
६१. श्री अमृतलाल
६२. श्री लीलाधर
६३. श्री खुशियाल
६४. श्री नरबहादुर
६५. श्री बालादीन
६६. श्री रामगोपाल
६७. श्री राजू रामप्रसाद
६८. श्री राजाराम चौहान
६९. श्री महेश रामदुलारे
७०. श्री पूनमचन्द्र
७१. श्री राजेन्द्र यादव
७२. श्री प्रताप कानाजी
७३. श्रीमती शकुंतलाबाई
७४. श्री भैयालाल
७५. श्रीमती रतनबाई
७६. श्री भगवानदास
७७. श्रीमती कलाबाई
७८. श्री ओ.पी. बिसनलाल
७९. श्री एन.आर. केलकर
८०. श्री केशव कुमार दुबे
८१. श्री संतोष कुशवाह
८२. श्री महादेव
८३. श्रीमती आशाबाई
८४. श्री गणपत कानीराम
८५. श्री गुलाबसिंह
८६. श्री सुरेश रामदयाल
८७. श्री गोकुल नागर
८८. श्रीमती सुमनबाई
८९. श्री कमल कुमार सारवान

पं. राहुल सांकृत्यायन होलकर महाविद्यालय में - १९४७-४८

बायें से दायें कुर्सी पर-
कु. गुप्ता, के.एस. भटनागर, बलभद्र ठाकुर, प्रो. डी.एम. बोरगाँवकर, पी.डी. शर्मा, पं. राहुल सांकृत्यायन, प्राचार्य एन. पद्मनाभन, के.एल. डूंगरवाल, जी.एल. ओझा और ओ.एल. वर्मा.

अपील

होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर
एवं
ओल्ड होलकेरियन्स एसोसिएशन

मान्यवर,

यह महाविद्यालय अपने जीवन के सौ वर्ष पूरे करने जा रहा है. अपनी इस दीर्घ शैक्षणिक यात्रा में महाविद्यालय ने अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये हैं और अपनी उपलब्धियों से अपनी एक विशेष पहचान बनायी है. शैक्षणिक गतिविधियों के साथ-साथ सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासकीय एवं क्रीड़ा के क्षेत्रों में इस महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने उल्लेखनीय सफलताएँ अर्जित कर संस्था के और नगर के गौरव को बढ़ाया है. व्यापक रूप से नगर की अस्मिता से तादात्म्य रखते हुए महाविद्यालय ने राष्ट्रीय स्तर की ख्याति अर्जित की है.

आज जब चारों ओर मूल्यों का तेजी से पतन हो रहा है, तब ऐसे संक्रमण काल में भी होलकर विज्ञान महाविद्यालय स्थापित मूल्यों पर चलने के लिए कृत-संकल्प है. इसकी यह नई यात्रा आस्थाओं की दृढ़ता और संकल्पों की पवित्रता की यात्रा है जिसमें यशस्वी भविष्य के सुखद संकेत हैं.

महाविद्यालय के शैक्षणिक आयामों को नये स्वरूप देने के लिए उसकी भौतिक सुविधाओं का विस्तार और परिवेश की भव्यता प्राथमिक रूप से महत्वपूर्ण है. इसीलिए महाविद्यालय के भावी विकास की यात्रा में आप सबकी सक्रिय सहभागिता को रेखांकित करते हुए हम इस पत्र के माध्यम से आप तक पहुँच रहे हैं.

महाविद्यालय परिवार और पूर्व विद्यार्थियों ने सम्मिलित रूप से इस दिशा में ठोस कार्य करने हेतु कुछ संकल्प लिये हैं, जिनमें मुख्य हैं: -

महाविद्यालय में एक सुसज्जित सभागृह का निर्माण :

इस कार्य के लिये सम्भावित 25 लाख की धनराशि आप सबके सहयोग से एकत्रित किये जाने का निश्चय किया गया है. इस पुनीत कार्य में नगर के सभी प्रबुद्ध नागरिकों और महाविद्यालय के पूर्व विद्यार्थियों के सहयोग का हमें पूर्ण विश्वास है.
* यदि आप महाविद्यालय के पूर्व विद्यार्थी हैं तो Old Holkarians Association के संरक्षक/आजीवन या वार्षिक सदस्य बन सकते हैं.
इनके लिये क्रमशः 5000 रुपये, 500 रुपये या 50 रुपये (25 रुपये प्रवेश शुल्क, 25 रुपये वार्षिक सदस्यता शुल्क) भेजें.

* महाविद्यालय में भौतिक सुविधाओं के विस्तार के लिये अपनी सहयोग राशि यथाशक्ति भेजें. ये राशि आप क्रॉस्डचेक अथवा डिमांड-ड्राफ्ट से निम्नांकित पते पर भेजें -

अध्यक्ष - ओल्ड होलकेरियन्स एसोसिएशन, द्वारा - प्राचार्य, होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर, म.प्र.

आइये, हम सब इन ऐतिहासिक क्षणों के साक्षी बनें, महाविद्यालय की इस नयी यात्रा के मंगलाचरण को अपने समवेत स्वर दें और इसके संकल्पों को अपनी शक्ति दें.

एस.के. पंडित   प्रभाकर काले   गोवर्धनलाल ओझा

ओल्ड होलकेरियन्स एसोसिएशन का खाता स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर होलकर विज्ञान महाविद्यालय एक्सटेंशन काउन्टर में Ex-8-52 है. राशि क्रॉस चेक द्वारा जमा कराई जा सकती है.

NIRMA BATH
NIRMA
BATH
FOR HEALTHY BATH

With Best Compliments From :

PRATAP STEEL

Pithampur, Dist. Dhar,
(Madhya Pradesh)

With Best Compliments From :

Jyoti Laxmi Geotex Pvt. Ltd.

Pithampur, Dist. Dhar,
(Madhya Pradesh)

होलकर विज्ञान महाविद्यालय के शताब्दी
वर्ष पर हार्दिक शुभकामनाएँ

योगेन्द्र कुमार खुराना

८, चौथमल कॉलोनी, इन्दौर

होलकर विज्ञान महाविद्यालय के शताब्दी
वर्ष पर हार्दिक शुभकामनाएँ

मे. बी.जे. कम्पनी प्रा.लि.,

महारानी रोड, इन्दौर

होलकर विज्ञान महाविद्यालय के शताब्दी
वर्ष पर हार्दिक शुभकामनाएँ

मे. नेशनल ब्रिक्स, इन्दौर
प्रो. गुरू मुखदास आहूजा

होलकर विज्ञान महाविद्यालय के शताब्दी
वर्ष पर हार्दिक शुभकामनाएँ

अध्यक्ष, हरिजन श्रमिक कामगार
व कारीगरों की सह. समिति, इन्दौर.

पुरातत्व एवं संग्रहालय, म.प्र.

हमारे प्रकाशन –

पुस्तक का नाम	लेखक	कीमत
आर्ट ऑफ इंडिया-ओरछा	के.के. चक्रवर्ती	450.00
ग्वालियर फोर्ट	के.के. चक्रवर्ती	200.00
रॉक आर्ट ऑफ इंडिया	सं. के.के. चक्रवर्ती	450.00
आर्ट ऑफ इंडिया खजुराहो	के.के. चक्रवर्ती	300.00
शैव केटलॉग	विभागीय प्रकाशन	125.00
म्यूजियम्स एंड मान्युमेंट्स ऑफ मध्य प्रदेश	विभागीय प्रकाशन	4.00
तुमैन उत्खनन (रिपोर्ट)	के.डी. बाजपेयी एवं एस.के. पांडे	35.00
आर्ट ऑफ कलचुरि	विभागीय प्रकाशन	189.00
शैव प्रतिमाएँ	आर.एस. गर्ग	84.00
शाक्त प्रतिमाएँ	आर.एस. गर्ग	87.00
दंगवाड़ा उत्खनन (रिपोर्ट)	के.के. चक्रवर्ती, वी.एस. वाकणकर एवं एम.डी. खरे	387.00

पुस्तक का नाम	लेखक	कीमत
उज्जयिनी	अजीत रायजादा	25.00
मालवा के जनपदीय सिक्के	शैफाली भट्टाचार्य	200.00
व्यंतर देव-देवी प्रतिमाएँ	विभागीय प्रकाशन	189.00
जैन एवं बौद्ध प्रतिमाएँ	विभागीय प्रकाशन	130.00
वैष्णव प्रतिमाएँ	विभागीय प्रकाशन	170.00
रहली का सूर्य मंदिर	जी.एल. रायकवार	10.00
बौद्ध वॉड्मय में नारी	कमल डफाल	44.00
पुरातन अंक - 1	शोध पत्रिका	21.00
पुरातन अंक - 2-3	शोध पत्रिका	22.00
पुरातन अंक - 4	शोध पत्रिका	25.00
पुरातन अंक - 5	शोध पत्रिका	36.00
पुरातन अंक - 6	शोध पत्रिका	240.00
पुरातन अंक - 7	शोध पत्रिका	140.00
पुरातन अंक - 8	शोध पत्रिका	158.00

आयुक्त, पुरातत्व एवं संग्रहालय, म.प्र.
बाणगंगा रोड, भोपाल.

लाल बाग पेलेस, इन्दौर.

जैसे वृक्ष धरती से लवण और जल,
वातावरण से वायु, और सूर्य से ऊर्जा
ग्रहण करता हुआ अपने शरीर को स्वस्थ
रखता है, वैसे ही हे प्रभो! विश्व का
प्रत्येक प्राणी प्रकृति से आवश्यक तत्वों
का संचय करता हुआ अपने-आपको
स्वस्थ रखे!

- श्रुति -

रसोमा

रसोमा लेबोरेटरीज़ प्रा.लि.

149, भमोरी, मुम्बई-आगरा राजमार्ग,
पोस्ट बेग नं. 9, इन्दौर-452 008
ग्राम: रसयोग फोन: 7834, 22691, 5092, 21525

RUSOMA

SURLUX **Because We Care**

Surlux. A name synonymous with health care in India is providing **Free** and **Concessional** treatment to poor and needy patients. SURLUX, dedicated to provide better health care not only to those who can afford it, but also to those who are unfortunate and needy, through its various schemes.

This act of charity provides the share holders of the Surlux group the blessings of millions of people who have benefited from these schemes. Besides paying a regular dividend, Surlux has also provided share holders a 20% discount to all services rendered.

SURLUX is all set to make the national dream of "HEALTH for all by 2000 AD" a reality. It is bringing to India the state of art equipment viz; CT Scanners and MRI systems from Hitachi Japan, and is setting up a chain of medical centres in collaboration with an international giant in medical care.

The potential is immense. The benefits many. The need is vast. The time is here to join Surlux for Socio-Economic upliftment.

SURLUX

113, Maker Chambers V, Nariman Point, Bombay-400 021.

WD
WinsomE

MOTOROL
HI-PERFORMANCE ENGINE OIL

KALANI
FINANCE
SCHEME

मध्यप्रदेश विद्युत मण्डल

विद्युत मण्डल की यशस्वी यात्रा
अप्रैल, 1957 से विद्युत उत्पादन, वितरण एवं पारेषण
के क्षेत्र में
फरवरी, 1992 तक अनेक मील के पत्थर.

- विद्युत उत्पादन क्षमता 81.5 मेगावाट से बढ़कर 3,178.5 मेगावाट (39 गुना वृद्धि)
- विभिन्न ताप विद्युत केन्द्र अनेकों बार पुरस्कृत
- 221 सर्किट किलोमीटर लम्बी इ.एच.टी. लाइनें बढ़कर 18,051 सर्किट किलोमीटर (82 गुना वृद्धि)
- विद्युतीकृत 142 स्थानों की तुलना में 64,488 ग्राम विद्युतीकृत (454 गुना वृद्धि)
- ऊर्जित 265 पम्पों की तुलना में 9,27,920 पम्प ऊर्जित (3,502 गुना वृद्धि)
- प्रदेश की 22,358 हरिजन बस्तियाँ विद्युतीकृत
- ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के दोहन कार्यक्रम के अंतर्गत 685 ग्राम सौर ऊर्जा द्वारा विद्युतीकृत.

– जनसम्पर्क विभाग, मध्यप्रदेश विद्युत मण्डल, जबलपुर द्वारा प्रकाशित –